एमएएचआई –202

मध्यकालीन भारत का इतिहास

छात्र हित में निर्गत पूर्व प्रकाशन प्रति

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाई पास रोड़, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी–263139
फोन नं. 05946–261122, 261123
टॉल फ्री नं. 18001804025
फैक्स न. 05946–264232, ई–मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन बोर्ड समिति

डॉ. गिरिजा प्रसाद पाण्डे, प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	अध्यक्ष
प्रोफेसर रविन्द्र कुमार, इतिहास विभाग, समाज विज्ञान विद्याशाखा,इग्नू, नई दिल्ली	सदस्य
डॉ.लाल बहादुर वर्मा, प्रोफेसर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद	सदस्य
डॉ.रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा,इतिहास विभाग,जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली	सदस्य
डॉ. मदन मोहन जोशी, सहायक प्रोफेसर एवं समन्वयक इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	सदस्य

पाठ्यक्रम संयोजन एंव संपादन

डॉ. मदन मोहन जोशी, सहायक प्रोफेसर एवं समन्वयक इतिहास,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

ब्लाक–एक

इकाई एक–राजपूतों का उदय तथा भारतीय सामंतवाद– विविध दृष्टिकोण डॉ.दीपक कुमार,इतिहास विभाग,जामिया मिलिया इस्लाममिया विश्वाविद्यालय,नई दिल्ली

इकाई दो–हर्षोत्तर उत्तर भारत की राजनीतिक,सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात.महा.हल्द्वानी

इकाई तीन–पल्लव,चालुक्य,चोल कालीन दक्षिण भारत दीपांकर दास इतिहास विभाग, मोतीलाल नेहरू कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

ब्लाक दो

इकाई एक– तुर्क आक्रमण : परिस्थितियां, कारण एवं परिणाम डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

इकाई दो– मामलुक सुल्तान डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

इकाई तीन– दिल्ली सल्तनत का विस्तारः खिलजी वंश डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

ब्लाक तीन

इकाई एक– दिल्ली सल्तनत की पराकाष्ठा : तुगलक वंशडॉ. रमा जैसवाल,डी– 170, गामा 1,ग्रेटर नोयडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

इकाई दो–दिल्ली सल्तनत का पतन : सैयद तथा लोदी वंश डॉ. रमा जैसवाल,डी– 170, गामा 1,ग्रेटर नोयडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

इकाई तीन– विजयनगर साम्रज्य, बहमनी साम्राज्य डॉ. रमा जैसवाल,डी– 170, गामा 1,ग्रेटर नोयडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश,

ब्लाक चार

इकाई एक–सल्तनत काल में राज्य तथा सम्प्रभुता डॉ. रमा जैसवाल,डी– 170, गामा 1,ग्रेटर नोयडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

इकाई दो– सल्तनत कालीन सैनिक तथा प्रशासनिक प्रणाली डॉ. रमा जैसवाल,डी– 170, गामा 1,ग्रेटर नोयडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश,

इकाई तीन– शर्की वंश, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग,एम.बी.पी.जी.स्नात. महा.,हल्द्वानी।,

ब्लाक पांच

इकाई एक– मुगल साम्राज्य की स्थापना : बाबर एवं हुमायूं डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

इकाई दो–शेरशाह, इस्लामशाह तथा सूरी सैनिक प्रशासन डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

इकाई तीन–मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार : अकबर, जहांगीर डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग, एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी!

ब्लाक छह

इकाई एक– मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार :शाहजहां, औरंगजेब डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग,एम.बी.पी.जी.स्नात.महा.

इकाई दो–मुगलों की धार्मिक नीति, डॉ.सिराज मुहम्मद, इतिहास विभाग,एम.बी.पी.जी.स्नात. महा.,हल्द्वानी।,

इकाई तीन– मराठों का उदय : शिवाजी की उपलब्धियां डॉ.सुबीर डे, सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज, जं.एन.यू., नई दिल्ली

ब्लाक सात

इकाई एक – मुगलों के विरूद्व विद्रोह डॉ.सुबीर डे, सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज, जं.एन.यू., नई दिल्ली

इकाई दो– मुगल साम्राज्य का पतन फरजाना असफाक,इतिहास विभाग, सत्यवती कालेज(सांध्य)दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रकाशन वर्षः अगस्त, 2018

कापी राइटः/ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करणः सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशकः कुलसचिव, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड।

मध्यकालीन भारत का इतिहास

		पृष्ठ संख्या
इकाई एक–	राजपूतों का उदय तथा भारतीय सामंतवाद– विविध दृष्टिकोण	1–16
इकाई दो–	हर्षोत्तर उत्तर भारत की राजनीतिक,सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति	17–29
इकाई तीन–	पल्लव,चालुक्य,चोल कालीन दक्षिण भारत	30–49
इकाई एक–	तुर्क आक्रमण : परिस्थितियां, कारण एवं परिणाम	50–61
इकाई दो–	मामलुक सुल्तान	62–77
इकाई तीन–	दिल्ली सल्तनत का विस्तारः खिलजी वंश	78–91
इकाई एक–	दिल्ली सल्तनत की पराकाष्ठा : तुगलक वंश	92–105
इकाई दो–	दिल्ली सल्तनत का पतन : सैयद तथा लोदी वंश	106–121
इकाई तीन–	विजयनगर साम्रज्य, बहमनी साम्राज्य	122–140
इकाई एक –	सल्तनत काल में राज्य तथा सम्प्रभुता	141–156
इकाई दो–	सल्तनत कालीन सैनिक तथा प्रशासनिक प्रणाली	157–173
इकाई तीन–	शर्की वंश	174–184
इकाई एक–	मुगल साम्राज्य की स्थापना : बाबर एवं हुमायूं	185–200
इकाई दो–	शेरशाह, इस्लामशाह तथा सूरी सैनिक प्रशासन	201–213
इकाई तीन –	मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार : अकबर, जहांगीर	214–228
इकाई एक–	मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार : शाहजहां, औरंगजेब	229–240
इकाई दो–	मुगलों की धार्मिक नीति	241–250
इकाई तीन–	मराठों का उदय : शिवाजी की उपलब्धियां	251–262
इकाई एक –	मुगलों के विरूद्व विद्रोह	263–283
इकाई दो–	मुगल साम्राज्य का पतन	284–295

राजपूतों का उदय तथा भारतीय सामंतवाद :विविध दृष्टिकोण

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 राजपूतों का उदय

1.3.1 पृष्ठभूमि

1.3.2 स्वदेशी उत्पत्ति का मत

1.3.3विदेशी मूल

1.3.4राजपूत पहचान का निर्माण एक सामाजिक- राजनीतिक प्रक्रिया

1.4. भारतीय सामंतवादका विवाद

1.4.1पृष्ठभूमि

1.4.2 उत्पादन की एशियाई पद्धति

1.4.3 भारतीय सामंतवाद की अवधारणा

1.4.4भारतीय सामंतवाद के विपक्ष अवधारणा

1.5 सारांश:

1.6अभ्यास प्रश्न

1.7 विशेष शब्दावली:

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

1.9 अध्ययन सामग्री

1.10 प्रस्तावित अध्ययन सामग्री:

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1प्रस्तावना

इस इकाई में हम मुख्यता भारत के पूर्व-मध्यकालीन इतिहास का अध्ययन करेंगे।यह एक ऐसा कालखंड है जिसे प्राचीन काल तथा मध्यकाल के बीच माना गया है, इसकी चारित्रिक पहचान दोनों से भिन्न मानी गई है, इसलिए इस समय काल को इंगित करने के लिए पूर्व-मध्यकाल के रूप में नवीन संज्ञा दी गई है।हालांकि पूर्व-मध्यकाल के रूप में कालखंड का वर्गीकरण करने से पहले,भारत के इतिहास लेखन में इस समय काल के इतिहास को हम प्राचीन काल में अथवा मध्यकाल में ही समेटते रहे।जैसे–जैसे इतिहास लेखन की शैली विकसित होती जा रही है हम विभिन्न विमर्शों और विचारधाराओं के अधीन इतिहास का पुनर्निर्माण होता

हुआ पाएंगे।सामान्य रूप से कह सकते हैं कि इस काल खंड की राजनीतिक, सामाजिक,आर्थिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाएं इस प्रकार की नहीं थी कि उन्हें मध्यकालीन कहा जाए और ना तो वह पूर्णता प्राचीन व्यवस्थाओं सी थी।

पूर्व-मध्यकाल के रूप में भारतीय इतिहास को एक और काल खंड में वर्गीकृत करनाऔर इस काल को संक्रमणकाल के रूप में देखना,इसका तर्कसंभवतः यह है कि इतिहास में दीर्घकालीन प्रक्रियाओं के प्रभावों का अध्ययन समय-काल की निर्धारित इकाई में करना व समेटना वास्तविकता में अराजक और मुश्किल काम है। परिवर्तन,पतन और विकास कुछ भी अकस्मात ही किसी काल खंड की समयसीमा में बंध कर नहीं होता।इन प्रक्रियाओं की निरंतरता के लक्षण मानवीय समयसीमा के आरपार देखे जाते हैं।भारत के इतिहास का वर्गीकरण उसकी अपनी वास्तविकताओं के आधार पर होना चाहिए। इसलिए नवीन विमर्श, परिस्थितियों, नए इतिहास लेखन और नवीन शोध परिणाम के कारण समय-काल का भी नवीन रूपसे विभाजन संभव है।

भारत के इतिहास लेखन में ‘पूर्व-मध्यकाल’को मुख्यता निम्न दृष्टिकोण से समझा गया हैं।

प्रारंभिक विदेशी विद्वानों,औपनिवेशिक अधिकारियों और कुछ राष्ट्रवादी इतिहासकारों की दृष्टि में यह काल पतन और अंधकार का था।भारतीय मार्क्सवादी इतिहासकारों ने उत्पादन की पद्धति (mode of production)के आधार पर इसे सामंतवाद का काल माना है, जबसत्ता, समाज और अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति का सामंतीकरण हुआ।वहीं इतिहासकारों में यह मत सामान्य होता गया कि यह काल प्राचीन से मध्यकाल के बीच का संक्रमण काल रहा है, लेकिन भारतीय सामंतवाद की संकल्पना को नकारते हुए कई नए विचार सामने आए हैं,जिसके अनुरूप वह इस काल में राज्य निर्माण और विकास की बात पर बल देते हैं। इस इकाई में हम जिन विषयों का अध्ययन कर रहे हैं उनसे हम पूर्व-मध्यकाल की गतिशीलता को समझ पाएंगे। हम पहले राजपूतों की उत्पत्ति को लेकर विभिन्न मतों का अध्ययन करेंगे,उसके बाद भारतीय सामंतवाद को लेकर इतिहासकारों के विभिन्न दृष्टिकोण की चर्चा करेंगे।

1.2 उद्देश्य

- इस पाठ को पढ़ने के बाद हम प्राचीन और मध्यकालीन भारत में, निरंतरता और दीर्घकालीन बदलावों एवं विकास की प्रक्रिया को समझ पाएंगे।
- हम राजपूत उत्पत्ति के विमर्श पर विभिन्न मतों को जान पाएंगे।
- हम भारतीय सामंतवाद को लेकर इतिहासकारों के दृष्टिकोण को समझेंगे।

1.3राजपूतों का उदय

1.3.1 पृष्ठभूमि

‘राजपूत’ यह पद (term) कब और कैसे क्षत्रिय पद का प्रायबन गया यह ध्यानदेने की बात है, इसका सटीकता से पता लगाना मुश्किल है। हालांकि यह कहा जा सकता है कि बारवीं शताब्दी तक राजपूत पद एक खास वंश या बहुत सारे वंशों को इंगित करने के लिए, एक सामूहिक पहचान के पद के रूप में चलन में आ गया था। इतिहासकारों ने इस पद के प्रयोग में आने और इसके अर्थ के आधार पर भी राजपूत उत्पत्ति को समझने का प्रयास किया है।

राजपूत पद के अर्थ को लेकर भी इतिहासकार एक मत नहीं हैं, एक मत के अनुसार यह केवल वैदिक क्षत्रिय और राजपुत्रों के लिए उपयोग होता था। राजपूत को देशी मूल का मानने वाले इतिहासकार जयनारायण असोपा का मानना है कि राजपूत पद कालांतर में वैदिक राजपुत्र,राजन्य या क्षत्रिय वर्ग के लिए ही उपयोग में आने लगा था। उनका मानना है कि राजपुत्र और राजन्य समानार्थक रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं। वह राजपूत को केवल क्षत्रिय के रूप में ही देखते प्रतीत होते हैं।

वहींगौरीशंकर प्रसाद ओझा ने विभिन्न स्रोतों में राजपूत पद के प्रयोग का अर्थ निकलते हुए कहा है कि, यह शब्द विभिन्न अर्थों के रूप में प्रयोग हुआ है,कहीं रजा के पुत्रों के लिए तो कहीं सामंतों के पुत्रों के लिए, तो कहीं भू-स्वामियों के लिए भी इसका प्रयोग हुआ है। कुछ इतिहासकारों ने राजपूतों के कुछ वंशों को ब्राह्मण कुल से उत्पन्न माना है, जैसे परमार वंश को ब्रह्म-क्षत्रिय माना गाया है, उनके अनुसार परमार मूलतः ब्राह्मण थे।

गुप्तोतर काल के साथ विभिन्न देशी और विदेशी जनजातियों का भारत में शक्तिशाली राजनीतिक प्रभाव तथा नए राज्यों के निर्माण की प्रक्रिया दृष्टिगोचर हुई। साथ ही इस काल में नई सामाजिक एवं राजनीतिक पहचानो का निर्माण भी हुआ। अनेक स्थानीय राजपूत स्रोतों में तथा जनश्रुतियों के माध्यम से राजपूतों के क्षत्रिय धर्म, शक्ति, साहस और बलिदान का महिमामंडन किया गया है, इस बात पर बल दिया गया है कि उन्होंने उस समय के हिंदुस्तान में बढ़ रही इस्लामी शक्तियों (अरब और तुर्क) को कठोर चुनौती दी तथा हिन्दू धर्म रक्षक की भूमिका निभाई थी। वस्तुतः हमें राजपूतों के इस गुणगान को उनकी संप्रभुता के निर्माण के प्रयास के रूप में भी देखना चाहिए।

राजपूतों की उत्पत्ति के विषय को लेकर इतिहासकारों के मध्य विवाद है, इसलिए राजपूतों का उदय कैसे हुआ इस पर अनेकों विचार सामने रखे गए हैं। इन विचारों को मूलतः निम्न प्रकार की संभावनाओं में प्रकट किया गया है।

- राजपूत देशी मूल के थे, वह वैदिक आर्य-क्षत्रिय थे। राजपूत सूर्य एवं चन्द्र वंशी थे।उनकी उत्पत्ति अग्निकुल/अग्निकुंडसे हुई थी।
- राजपूत विदेशी थे।
- राजपूतों क उदय एक सामाजिक एवं राजनीतिक प्रक्रिया का परिणाम है।

3.3.2. देशी उत्पत्ति का मत

राजपूतों की उत्पत्ति को देशी मूल का मानने वाले लोगों के विचार का मुख्य आधार यह है कि, राजपूत अपने समय की सामाजिक व्यवस्था में क्षत्रिय वर्ण के ही थे तथा वह मूल रूप से भारत के ही निवासी थे, वह राजपूतों को प्राचीन आर्यों की संतान मानते हैं।वहीं कुछ लोग राजपूतों की उत्पत्ति को मिथकीय कथाओं से समझाने का प्रयास करते हैं। उपरोक्त मत वाले सभी लोग राजपूतों को कमोबेश देशी मूल का ही मानते हैं, इसलिए इन के विचारों को हमने देशी उत्पत्ति के मत के अंतर्गत ही समझने का प्रयास किया है।

सूर्य एवं चंद्रवंशी होने का मत:

बहुत सारे इतिहासकारों का मत है कि अपने आपको दिव्य,श्रेष्ठ और कुलीन दर्शाने के लिए राजपूतों ने अपनी प्रभावशाली वंशावली बनवाई तथा अपनी उत्पत्ति के संदर्भ में वह खुद को सूर्य और चन्द्र वंशी मानते हैं।वहीं डॉ ओझा ने ऐतिहासिक स्रोतों(अभिलेखों तथा ग्रंथों) के संदर्भ से राजपूतों को सूर्य और चन्द्र वंश का माना है,उदाहरण के लिए गुहिल एवं राठौर राजपूतों को सूर्यवंश से उत्पन्न तो भाटी और चन्द्रावती के चौहान राजपूतों को चंद्रवंशी माना है। इन प्रमाणों के आधार पर वह राजपूतों को प्राचीन क्षत्रिय के वंशज ही मानते हैं।*कुमारपालचरित*,*वर्णरतनाकार* और *राजतरंगिणी* जैसे स्रोतों में राजपूतों की जो सूचियाँ मिली है उनके आधार पर राजपूतों की 36 जातियां थी। इन सूचियों के आधार पर ही कुछ इतिहासकार इन्हें प्राचीन क्षत्रिय और सूर्य एवं चन्द्र वंश का मानते हैं,हालांकि इन अलग-अलग स्रोतों में दी गई यह सूचियाँ आपस में पूर्णतः मेल नहीं खाती हैं।

पंडित गौरी शंकर ओझा का मत है कि राजपूत पारंपरिक क्षत्रियों के ही वंशज हैं, राजपूत पद असल में संस्कृत शब्द राजपुत्र का ही अपभ्रंश है। इस शब्द का अर्थ है राजघराने का व्यक्ति,इसलिए राजपूत पुरानी क्षत्रिय वर्ण की जातियों के ही थे। वह कर्नल जेम्स टॉड की बातों का खंडन करते हुए कहते हैं किविदेशी जातियों और राजपूतों की वेशभूषा और रीति-रिवाजों में कोई समानता नहीं थी। राजपूत विदेशियों से इतने भिन्न थे कि उनको विदेशी साबित करना गलत होगा।सी.वी.वैद्य के अनुसार राजपूत वस्तुतः वैदिक आर्यों के ही वंशज थे, वैदिक आर्यों के अलावा कोई और इतने शौर्य से हिन्दू (वैदिक) परंपराओं की रक्षा हेतु नहीं लड़ सकता था, राजपूतों ने अरब और तुर्कों का सामना और विरोध इसलिए ही किया था।

दशरथ शर्मा का मानना है कि राजपूत जातियों ने विदेशी शक्तियों का प्रतिकार करने की प्रक्रिया के दौरान ही समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया, वह महत्व में तभी आए जब उन्होंने विदेशियों के खिलाफ संघर्ष शुरू किया, उनका मत है कि कुछ ब्राह्मण जातियों ने भी निज जन, समाज, संस्कृति और अपनी भूमि की रक्षा के लिए शस्त्र उठा लिए थे तथा क्षत्रिय धर्म का पालन किया। आर.सी.मजुमदार ने भी राजपूतों के संदर्भ में प्राचीन क्षत्रिय के मत को महत्व दिया है।

वहीं इस मत से विभेद रखते हुए कुछ इतिहासकारों का मानना है कि, इस प्रकार के प्राचीन क्षत्रिय वंशों से अपनी वंशावली को जोड़ कर राजपूतों ने खुद को क्षत्रिय साबित किया क्योंकिक्षत्रियों को राज्य करने का

अधिकार था, तथा उन्होंने पौराणिक मान्यताओं के आधार पर अपनी शासन करने की राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक वैधता को स्थापित एवं प्रसारित करने का प्रयास किया। उनके लिए यह आवश्यक था क्योंकिसंभवतः वह शक्तिशाली राज्यों के निर्माण करने से पहले सामाजिक पहचान के धारक थे। खुद को सूर्य एवं चन्द्र वंशीय क्षत्रिय कुल से जोड़ कर उन्होंने अपनी राजनीतिक और सामाजिक पहचान बनाई।

बी.डी.चट्टोपाध्या का मानना है कि 36 राजपूत जातियों की जो सूचियाँ हमें मिलती हैं, वह सभी स्रोतों में एक समान नहीं हैं और हम यह मान सकते है कि वंशावली और इस प्रकार की सूचियों के निर्माण और संकलन में छेड़छाड़ की गई है। उनका मानना है कि अपने गौरवशाली इतिहास की रचना करते हुए यह सामान्य प्रवृत्ति देखी जा सकती है कि राजपूत राज-वंशावलियों के निर्माण के समय बहुत सारे ऐसे शासकों को, जिनकी उत्पत्ति का काल और पीढ़ियों की कोई सूचना भी नहीं है, उन्हें भी उन्होंने ने अपनी वंशावलियों में स्थान दिया है।अर्थात् समय के साथ राजपूत शासकों ने अपने कुल को इन सूचियों से जोड़ लिया, उन्होंने अपनी वंशावलियों का निर्माण कर अपनी उत्पत्ति को प्रमुख वंश से जोड़ कर खुद के कुल को विशेष, प्रभावशाली, सिद्ध और ऐतिहासिक प्रमाणित करने का प्रयास किया। इसलिए अलग-अलग राजपूत जातियों की सूचियाँ अलग-अलग स्रोतों में कुछ हेरफेर के साथ वंश-क्रम की सूचना प्रस्तुत करती प्रतीत होती हैं।

अग्निकुल/अग्नि कुंड से उत्पत्ति का मत:

एक मिथक के अनुसार राजपूतों की उत्पत्ति उस अग्निकुंड अथवा यज्ञ से हुई जिसे गुरु वशिष्ठ ने अपनी कामधेनु गाय को पुनः प्राप्त करने के लिए किया था,क्योंकि विश्वामित्र ने कामधेनु गाय को हर लिया था अतः गुरु वशिष्ठने एक यज्ञ किया जिससे चार प्रमुख राजपूत जातियों (प्रतिहार,चाहमान, चौलुक्य और परमार) की उत्पत्ति मानी गयी है। धीरे-धीरे यह कथा गोण हो गयी लेकिन कुछ बदलावों साथ यह मिथकीय विचार जन स्मृतियों में जीवंत रहा है। यह सामान्यता माना गया कि अग्नि कुल के राजपूतों का जन्म विशेष प्रयोजन के लिए हुआ,जब ब्राह्मण धर्म खतरे में था और क्षत्रियों का अकाल था तब एक यज्ञ के द्वारा उसकी अग्नि से राजपूतों का जन्म विशेष प्रयोजन के लिए हुआ था।कलियुग में मलेच्छोंका नाश करने के लिए इनका जन्म हुआ।चंदबरदाई द्वारा रचित पृथ्वीराज रासो में इस मिथक का वर्णन है,पृथवीराजरासो को ऐतिहासिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकार करने वालों में बहुत सारे लोग इस मिथक को भी ऐतिहासिक घटना मानते हैं। यह माना जाता है कि राजस्थान के अबू पर्वत में हुए यज्ञ से चार प्रमुख राजपूत जातियों की उत्पत्ति हुई।क्योंकि इनकी उत्पत्ति अग्निकुंड अर्थात् यज्ञ की अग्नि से हुई तभी इनको अग्निकुल का माना जाता है। यह पहले ब्राह्मण थे और बाद में इन्होंने क्षत्रिय धर्म अपना लिया था।

इस मत को भी इतिहासकारों ने नाकारा है क्योंकि यह मत भी पौराणिक कथाओं पर आधारित है और वास्तविकता में यह संभव प्रतीत नहीं होता है। इसके विपरीत इतिहासकारों का तर्क है कि अग्नि अथवा यज्ञ द्वारा पवित्रीकरण/शुद्धि का अनुष्ठान संभव है,क्योंकि बहुत सारी राजपूत जातियां या तो विदेशी मूल की मानी गई हैं, या वह निम्न सामाजिक पृष्ठभूमि से उभर कर सामने आई हैं। हम जानते हैं की निम्न वर्ण और विदेशियों

को वर्ण व्यवस्था में पवित्र नहीं माना गया है बल्कि उनको मलेच्छ इंगित किया गया है। इस लिए यह संभव है कि इस तरह के अग्निकुंड अथवा यज्ञ द्वारा शक्तिशाली लेकिन निम्न सामाजिक दर्जे वालों को अथवा विदेशियों को राजपूत जाति के रूप में पवित्र किया गया हो।

3.3.3. विदेशी मूल

भारतविदIndologist)/ अंग्रेज़अधिकारी जेम्स टॉड, विलियम क्रूक और वि.ऐ. स्मिथ के अनुसार राजपूत सीथियन, शक, कुषाण और हूण इत्यादिबाहरी जनजातियों की ही वंशज हैं। इतिहासकार आर.जी.भंडारकर ने भी गुर्जर को विदेशी मूल का माना है और प्रतिहारों को वह गुर्जरों से उत्पन्नमानते हैं।हूणों की तरह गुर्जर भी विदेशी नस्ल के थे वह उत्तर-पश्चिम से भारत से आए और धीरे-धीरे वह भारत के आंतरिक भागों में विस्तार करते रहे जहाँ सदी के अंतराल में उन्होंने हिंदु धर्म और संस्कृति को अपना लिया। सर जेम्स कैम्पबेल (Sir James Campbell) की तरह भंडारकर ने भी गुर्जरों को खज़र (Khazar) मना है।खज़र यूरोप और एशिया के सीमांत क्षेत्रों में रहते थे।

लेकिन इस मत का विरोध करने वाले सी.वी. वैद्य का मानना है कि गुर्जर आर्य थे और वह भारत के थे। खज़र और गुर्ज़र शब्द की ध्वनि समानता के चलते लोगों ने गलत दिशा में बढ़ता हुए, गुर्जरों को खज़रों के रूप में एक ही मानना शुरू कर दिया। खज़र मूलतः व्यापार करते थे वहीं गुजर घुमक्कड़ पशुपालन करने वाले थे।

विदेशी उत्पत्ति की विचारधारा को मानने वाले कर्नल जेम्स टॉड का मत था कि राजपूत और इन विदेशी जन-जातियों के रीती रिवाजों में समानता है। वह इस समानता के प्रतिबिंब के आधार पर उनका संबंध राजपूतों से जोड़ते हैं, जैसे यह विदेशी भी सूर्य के उपासक थे, उनके अनुसार सती प्रथा, अश्वमेध यज्ञ, शास्त्रों और घोड़ों की पूजा करने की रीत तथा दोनों की पौराणिक कथाओं में भी समानताएं हैं।

स्मिथ का विचार है कि शक, कुषाण गुर्जर व हुण जन जातियों का भारत में धार्मिक परिवर्तन हुआ है,इन्होंने भारत में अपने राज्य बना लिए थे, आगे चलकर इन्हीं से राजपूतों की उत्पत्ति हुई। अपनी राजनीतिक और सामाजिक प्रतिष्ठा का संवर्धन करने के लिए अपनी वंशावलियों को सूर्य एवं चन्द्र वंश से जोड़ लिया। विलियम क्रूक की बात से सहमत होकर स्मिथ का भी मानना है कि पृथवीराज रासो में जिस अग्नि द्वारा राजपूतों की उत्पत्ति बताई गयी है वह वास्तविकता में इन विदेशी जनजातियों का पवित्रीकरण कर समाज में विलय था।

इन जनजातियों को धीरे-धीरे मुख्यधारा में संकलित कर लिया गया और क्षत्रिय वर्ण का माना गया। इन विदेशी मूल की जातियों ने भी ब्राह्मण धर्म को अपना लिया, अपनी सामाजिक पहचान को सुदृढ़ करने के लिए उन्होंने वंशावलियों का निर्माण कर खुद को सूर्य और चन्द्र वंश से जोड़ लिया।हलांकि विदेशी उत्पत्ति का मत रखने वाले इतिहासकार इस संभावना को निरस्तनहीं कर सकते कि कुछ राजपूत जातियां पूर्णता भारतीय मूल की ही थी।

वहीं राजपूतों के मिश्रित उत्पत्ति के विचार के अनुरूप यह अवधारणा भी रही है कि राजपूतों की उत्पत्ति दोनों

विदेशी एवं देशी मूल के वंशजों से संभव है, विभिन्न विदेशी भारत आए और भारत में उनका सामाजिक-सांस्कृतिक विलय सुगमता से हो गया, साथ ही साथ इस काल में ब्राह्मण धर्म का भी विस्तार हुआ और बहुत सारी जनजातियों को मुख्य धरा में शामिल किया गया था, कई सारी देशी-विदेशी शक्तिशाली जनजातियों को राजपूत के रूप में मुख्यधारा के सामाजिक व्यवस्था में क्षत्रिय का स्थान प्राप्त हुआ, हालांकि बहुत सी अन्य जन-जातियों को निम्न वर्ग में ही समाहित किया गया था।

3.3.4.राजपूत उत्पत्ति एक सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रिया

हाल के समय में राजपूतों की उत्पत्ति को लेकर नवीन विचार प्रस्तुत किए गए हैं,इतिहासकारों ने राजपूतों की योद्धा के रूप में सम्मान, उदय और उनकी उपलब्धियां को राजनीतिक प्रक्रिया समझा है। वह राजपूतों की उत्पत्ति को एक लम्बी प्रक्रिया के विकास के रूप में समझते हैं, जहाँ एक से अधिक कारणों के साथ उस समय की व्यवस्थाओं में राजपूत जैसी जातियों का उदय संभव था।

आर.एस.शर्मा के अनुसार राजपूत सामंत थे, जिनका उदय गुप्तोत्तर काल के बाद और सल्तनत के उदय से पहले सामंतवादी काल में हुआ, जब राज्यों की शक्ति और सत्ता का राजनीतिक विकेंद्रीकरण हो रहा था। इस समय अंतराल में राजनीति, अर्थव्यवस्था और समाज के सामंतीकरण हुआ, सामंतवादी उत्पादन के चलन एवं व्यवस्था का प्रभाव उस समय की सभी व्यवस्थाओं पर भी पड़ा।

इरफ़ान हबीब के अनुसार 7 वीं और 12 वीं सदी का काल गोत्र/बिरादरी आधारित राजतंत्र (clanmonarchies) और आद्य-राजपूत राज्य का था। इरफ़ान हबीब इस बात की और संकेत करते हैं कि फ़ारसी स्रोतों में राजपूत शब्द १६ वीं सदी से ही मिलता है, इससे पहले सल्तनत काल में राजस्थान और उतर भारत के बड़े–बड़े भू-स्वामियों के लिए यह शब्द प्रयोग नहीं किया गया है।

नार्मनपि.ज़ेग्लेर (Norman P Ziegler) ने राजपूतों के शौर्यवान,विदेशीयों का विरोध करने वाली छवि से हटकर उनके संबंधों को समझने का प्रयास किया है,उनके अनुसार राजपूतों के केंद्रीय शक्तियों के साथ जो संबंध थे उन्हें केवल राजनीतिक और सांस्कृतिक टकराव के रूप में नहीं समझा जा सकता है। उनका मानना है कि राजपूत इन ‘मुस्लिम’ शासकों को अपनी ही ‘जाति’ की उप श्रेणी का मानते थे, जो केवल शक्ति और हैसियत में उनसे अलग थे।

एक बार जब तुर्क और मंगोलों की केंद्रीय सत्ता और संप्रभुता का निर्माण हो गया,उसके बाद नए और पहले से ही प्रतिष्ठित राजपूतों ने इनकी अधीनता स्वीकार कर ली। उन्होंने ऐसी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में, जहाँ तुर्क और मुग़ल संप्रभुता को स्वीकार कर लिया गया था, खुद को रजा का पुत्र माना।

नई नैतिक व्यवस्था में अपने स्वामी के प्रति पूर्ण सेवा एवं निष्ठा रखना जिसके बदले उससे भू-क्षेत्र, राज दरबार में स्थान एवं सम्मानित पद मिलता था। सेवा एवं निष्ठा का यह नैतिक मूल्य राजपूत राजनीतिक-संस्कृति का प्रमुख मूल्य बन गया। जब कभी यह केन्द्रीय राज्य राजपूतों के क्षेत्र को अपने अधिकार में ले आते थे और इनकी वरीयता कम करते थे, तभी इन राजपूतों और मुस्लिम शासकों के बीच टकराव होता था।उनका मानना

है कि राजपूतों का तुर्क और मुग़लों के साथ टकराव और सहयोग,के व्यवहार को राजपूतों के विश्वास, मिथक और नैतिक मूल्यों द्वारा समझा जा सकता है।

डी.एच.ऐ. कोल्फ (D.H.A. KOLF) के अनुसार मध्यकाल में राजस्थान और उतर भारत के अन्य क्षेत्रों में भी बहुत सारे चरवाहा पृष्ठभूमि वाले घुमक्कड़ समूह जिन्हें सैनिक या लड़ाकों वाले गुण विद्यमान थे, वह समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर पाए। राजपूत पद एक व्यापक नाम के रूप में इस तरह की सैनिक और भू-स्वामी वर्ग के लिए उपयोग होने लगा था।

इनका मानना है कि वस्तुतः राजपूत कोई जाति न होकर किसी प्रकार का सैनिक कार्य करने वालों की पहचान सूचक पद था। जिस प्रकार 'सिंह' पद का उपयोग हुआ है उसी प्रकार राजपूत पद भी सैनिक, योद्धा या सैन्य कार्य करने वालों के लिए उपयोग में आया,मध्यकाल की भारतीय सेनाओं में आम लोग ही सैनिक के रूप में श्रम देते थे, कोई विशेष सैनिक भर्तियाँया प्रशिक्षणनहीं होता था, किसान भी बेहतर आय और खली समय में अपने स्थान से बहुत दूर-दूर जाकर भी सैनिक की भूमिका निभाते थे।

१६ वीं सदी तक राजस्थान के राजपूत परिवारों ने खुद को श्रेष्ठ साबित करने का प्रयास किया और अपनी वंशावलियों का निर्माण किया उनके बीच महान राजपूत परंपरा का भाव था। इस तरह उन्होंने अपने गौरव, शक्ति और प्रतिष्ठा को पुष्ट किया। लेकिन राजस्थान के बहार, उत्तर भारत में भी इस प्रकार के निम्नसामाजिक हैसियत वाले घुमक्कड लड़ाकू समूह और सैनिक लगातार राजपूत के नाम के खुले सामाजिक वर्ग में आधुनिक समय की शुरुवात तक आते रहे।अर्थात् यह केवल उन लोगों का वर्ग नहीं था, जो क्षत्रिय परिवार में पैदा हुए थे, बल्कि यह उन लोगों का भी सामाजिक समूह था जिन्हें लड़ना आता था और जो इस प्रकार की सेवाएं दे रहे थे।

हिन्दुस्तान में सैनिक श्रम की अत्यधिक मांग थी, स्थानीय मुखिया अथवा सरदार लोगों को एकत्रित कर बढ़े–बढ़े राज्यों और मुग़ल साम्राज्य को सैनिक सेवा प्रदान करते थे। इस तरह की सैन्य बाजारों में न तो केवल हिन्दू, न केवल क्षत्रिय ही सैनिक कार्य करने हेतु प्रस्तुत थे, बल्कि विभिन्न सामाजिक और जाति के लोग प्रस्तुत थे, आगे चलकर इन सब लोगों की एक ही सामाजिक और आर्थिक पहचान बनी की वह किस के सेवक हैं।कोल्फ का मानना है कि अपने निम्न सामाजिक पहचान को छिपाने के लिए इन आम लोगों ने खुद को राजपूत कहना शुरू किया क्योंकि वह सैनिक कार्य करते थे।कोल्फ के अनुसार राजपूत और सिपाही के रूप में इन लोगों की पहचान इनकी जाति के परे स्थापित हो गयी।कोल्फ इस तरह मध्यकाल में 'राजपूतीकरण' की प्रक्रिया की ओर इशारा करते हैं।

बी.डी. चट्टोपाध्यायने आर.एस.शर्मा की तरह 8वीं से 13वीं सदी के काल को साम्राज्यों या राज्यों के राजनीतिक विकेंद्रीकरण और आर्थिक पतन का काल नहीं माना है। वह इस समय-काल को सामंतवादी व्यवस्थाओं का काल नहीं मानते हैं, बल्कि वह इस समय-काल को 'पूर्व-मध्य काल' की संज्ञादेने के ही पक्षधर हैं। वह हमारा ध्यान इस समय हो रही ऐतिहासिक क्रियाओं पर केंद्रित करना चाहते हैं। कृषि विस्तार,

वह इस समय जन-जातीय क्षेत्रों में कृषक बस्तियों का स्थापना और फैलाव की बात करते हैं,जिसके चलते समाज में निरंतर बदलाव हुए, विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच सत्ता और जमीन को लेकर संघर्ष हुआ। आगे चलकर शक्तिशाली सरदारों के अधीन कुछ क्लैन(clan)/बिरादरियां अपने आपको संघटित कर राज्य बनाने में सफल रही, इनमें से बहुत सारे निम्न सामाजिक स्तर से उठ कर यह कर पाए थे। इस समय जन-जातियों चरवाहों का कृषि अर्थव्यवस्था और कृषक समाज में विलय हो गया, नई जातियों का निर्माण हुआ और कबीलों का राजतन्त्र के रूप में उद्भव हुआ। इन नए उभरते राज्यों ने क्षत्रिय पहचान पाने के लिए ब्राह्मण विचारधारा के ढांचे में खुद को रख कर शक्ति और सत्ता को अपना अधिकार साबित करने का प्रयास किया।

इसी तरह वह इस बात पर बल देते हैं कि, राजपूतों की उत्पत्ति उनके समय काल की सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक प्रक्रियाओं के प्रभाव के अध्ययन के बिना नहीं समझी जा सकती है।राजपूत पहचान अपनाने वाली अथवा कहलाई जाने वाली जातियां, वह कुल/गोत्र थे जिनका विकास उस समय की कृषि-अर्थव्यवस्था के विस्तार, भूमि वितरण के नए चलन खासकर शासक वर्ग की अपनी बिरादरी के अन्दर ही भूमि वितरण होना, राजनीतिक और वैवाहिक संधियों के द्वारा बिरादरी में अंतर-सहभागिता बनाना और अभूतपूर्व पैमाने पर गढ़ों का निर्माण करने के साथ ढलती या निर्मित होती रही।

राजपूत पहचान एक प्रक्रिया के रूप में उभर के सामने आई जिसे वह 'राजपूतीकरण' के रूप में समझते हैं। वह मानते हैं कि यह प्रक्रिया अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग समय में होती रही, इस तरह विभिन्न भारतीय राजपूत कई चरणों में राजपुतीकरण की जटिल प्रक्रिया से गुजरते हुए राजपूत कहलाए गए, तथा इनमें बहुत से पहले निम्न सामाजिक स्तर के थे।

उनके मत अनुसार देशी और विदेशी मूल के राजपूत उत्पत्ति के सिद्धांत उस समय काल की जटिल सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति को विशेष महत्व नहीं देते, जबकि राजपूतों की उत्पत्ति को राजस्थान में और उसके बहार भी एक पूर्ण प्रक्रियाके रूप में ही समझा जा सकता है।

1.4 भारतीय सामंतवाद

1.4.1 पृष्ठभूमि

सामंतवाद की चर्चा करने वाले विद्वानों ने इस शब्द के अर्थ का व्यापक रूप में प्रयोग किया हैतथा सामंतवाद की मूल परिभाषा को लेकर भी उनमेंमतभेद हैं। प्रोफ़ेसर हरबंस मुखिया का मानना है कि वस्तुतः 'सामंत'(feudal) शब्द का प्रयोग मध्यकालीन यूरोप में कानूनी अर्थ में किसी के संपत्तिगत अधिकार को इंगित करने के लिए होता था।वहीं'सामंतवाद'(feudalism) शब्द का प्रयोग काफी बाद लगभग अठारहवीं सदी में आरंभ हुआजिसके उद्देश्य छोटे-छोटे राजकुमारों और अधिपतियों के बीच संप्रभुता की साझेदारी को परिभाषित करना था।फ्रांसीसी क्रांति के दौरान इस शब्द का उपयोग पुरानी राजतंत्रीय व्यवस्था (Ancien regime) की आलोचना करने के लिए किया गया, इसके बाद 'सामंतवाद' शब्द का प्रयोग और भी व्यापक

होता गया। अधिकांश इतिहासकारों ने पश्चिमी और मध्य यूरोप में 10 वीं से 12 वींसदीकी राजनीतिक और सामाजिक ढांचे के रूप में सामंतवाद को इस काल की एकमहत्वपूर्ण व्यवस्था माना है।
भारत के इतिहास में भी गुप्तोत्तर काल से दिल्ली सल्तनत के निर्माण से पहले के काल की व्यवस्थाओं को परिभाषित करने के लिए इतिहासकारों में मतभेद है और इस इकाई में हम केवल भारत के इतिहास लेखन में भारतीय सामंतवाद को लेकर विद्वानों के मुख्य दृष्टिकोण को प्रस्तुत करेंगे।
यूरोपीय लेखकों ने (Orientalism) पूर्व के प्रति अपने पूर्वाग्रह से ग्रसित विचारधारा के चलते एशियाई सभ्यताओं का पूर्वाग्रही चित्रण विश्व के सामने प्रस्तुत किया, भारत का भी उन्होंने एक धूमिल चित्रण ही प्रस्तुत किया।औपनिवेशिकअधिकारियों अथवा विद्वानों ने भी अपने साम्राज्यवादी शासन को सही प्रमाणित करने के लिए भारत के इतिहास को अंधकारमय युग के रूप में प्रस्तुत किया जहाँ यूरोपीय आधुनिक ज्ञान और व्यवस्थाओं से पहले केवल अव्यवस्था,पिछड़ापन और अपरिवर्तनशील समाज था।भारत के संदर्भ में कर्नल जेम्स टॉड ने राजस्थान के इतिहास संकलन किया और उसमें माना की राजस्थान में भी यूरोपीय सामंतवादी व्यवस्थाएं और संबंध दृष्टिगोचर हैं।

1.4.2 उत्पादन की एशियाई पदाति

भारत समेतएशिया की आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक अवस्था पर कार्लमार्क्सने विशेष सैद्धांतिक पक्ष रखने का प्रयास किया।लेकिन उन्होंने भी एशियाई देशों की व्यवस्थाओं को पश्चिमी औपनिवेशीकरण के काल से पहले तक अपरिवर्तनशील रहने की अवधारणा प्रस्तुत की थी, जिसका मुख्य कारणएशिया की एशियाई पद्धति(Asiatic mode of Production)थी।मार्क्स के अनुरूप उत्पादन की यह पद्धति एक अपवाद थी, क्योंकिएशियाई देशों में सभी संपत्ति और भूमि का वास्तविक स्वामी या तो राजन था अथवा वहां भू-संपत्ति व्यक्तिगत अधिकार में न होकर समुदाय की थी। ऐसे समाज में वर्ग संघर्षसंभव नहीं था। इसलिए औपनिवेशिक काल से पहले के समय में उत्पादन व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया और भारत भी इस 'अपरिवर्तनशील पूर्व' का हिस्सा था। इस उत्पादन पद्धति के अंतर्गत भारत में निरंकुश शासकों के अधीन गतिहीन अर्थव्यवस्था थी।यहाँ मुख्यता वस्तु उत्पादन बाजार और व्यापार के लिए नहीं किया जाता था, अपितु एशिया की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी जहाँ सीमित आवश्यकताकी पूर्ति के लिए ग्राम आत्मनिर्भर थे, इसलिए भारत में एशिया के अन्य क्षेत्रों की तरह बंध-अर्थव्यवस्था (closed economy) उभरी जहाँ मुख्यता व्यापार और मुद्रा विनिमय चलन में नहीं था।
भारतीय इतिहास लेखन के ऊपर राष्ट्रीय संघर्ष का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था,राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारत के गौरवशाली इतिहास को उभारा,उन्होंने गुप्तोत्तर काल से लेकर दिल्ली सल्तनत के निर्माण से पहले तक के राज्यों को भी केंद्रीय एवं सुसंगठित शक्तिशाली राज्य के रूप में प्रस्तुत किया। वहीं आर्थिक समीक्षा और आलोचनात्मक अध्ययन से मार्क्सवादी इतिहासकारोंने लगभग गुप्तोत्तर काल से मध्यकाल के प्रारंभ के

समय काल को लेकर भारतीय सामंतवाद का अध्ययन प्रस्तुत किया।

भारतीय मार्क्सवादी विद्वानों ने 1950-60 के दशकों में ना सिर्फ भारत के संदर्भ में मार्क्स कीअवधारणा (Asiatic mode of Production)की आलोचना की अपितु उसे पूरी तरह से नकारते हुए,भारत के पूर्व-मध्यकाल के समय को वस्तुतःसामंतवादी युग माना है। भारत में सामंतवादी व्यवस्था के पक्षधरविद्वान;भारत में सामंतवाद कैसे पनपा? उसकी चारित्रिक विशेषता क्या थी ? क्या भारतऔर यूरोपीय सामंतवाद एक समान थे, या भारतीय सामंतवाद उससे भिन्न था? ऐसे प्रश्नों के उत्तर तलाश रहे थे।

1.4.3 भारतीय सामंतवाद की अवधारणा

1956 में अपनी पुस्तक 'एन इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री' में डी.डी. कोसाम्बी ने भारत में सामंतवाद के उदय को द्विमार्गी प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया। 'ऊर्ध्वगामी'और 'अधोगामी सामंतवाद'।सामंतवाद के उदय में राजा द्वारा अधिकारियों की सेवा और सैन्य शक्ति हेतु उन्हें वेतन की जगह भूमि-अनुदान के साथ-साथ उस भू-क्षेत्र पर विभिन्न अधिकार प्रधान करने से रजा द्वारा स्वयं शक्ति औरअधिकारों का विकेंद्रीकरण,क्षेत्रीय अभिजात वर्ग का शक्तिशाली होना तथा ग्रामीणअर्थव्यवस्था के विकास को प्रमुख कारक माना गया।

राजा अपने अधीनस्थ सामंतों से नज़राना लेते थे जिसके चलते उन्हें अपने अधिकार क्षेत्रों में राज्य करने की स्वतंत्रता थी।इसे कोसाम्बी 'ऊर्ध्वगामी' सामंतवाद' की प्रक्रिया मानते हैं, यह राजनीतिक निर्णयों का परिणाम था।वहींआगे चलकर राजा और किसान के मध्य ग्रामीण समाज में बिचौलियों की श्रृंखलाउभरी, जो राज्य के लिए किसानों पर बल प्रयोग का जरिया भी थे,सामंतवाद की इस सामाजिक और आर्थिक प्रक्रिया को 'अधोगामी सामंतवाद' की प्रक्रिया मानते हैं।

1964 में अपनी पुस्तक 'इण्डियन फयूडलिज़्म' में आर. एस. शर्मा ने सामंतवाद का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करने का प्रयास किया।शर्मा ने हेनरी पिरेंन(Henri Pirenne) की यूरोपीय सामंतवाद की अवधारणा को अपनाया और उसी के आधार पर भारत के सामंतवाद को समझने का प्रयास किया। उनका मानना था की भारत में गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ-साथ लंबी दूरी का व्यापार और शहरीकरण अवरुद्ध हो गया, साथ ही मुद्रा विनिमय भी ठप होता गया था, परिणामस्वरूप सामंतवादी व्यवस्था में आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था विकसित होती गई।

राज्य ब्राह्मणों के साथ-साथ अब बड़े अधिकारियों को भी उनकी (सैन्य एवं प्रशासनिक)सेवाओं के भुगतान के लिए भूमि देने लगे थे।इस भूमि पर प्राप्तकर्ता को पूर्ण अधिकार होता था, अपने क्षेत्र एवं निवासियों के ऊपर न्याय एवंप्रशासनिकअधिकार के साथ-साथ प्राप्तकर्ता का क्षेत्रीय स्तर पर सामाजिक एवं आर्थिक दबदबा कायम हो गया था।कृषिप्रधान ग्रामीण व्यवस्था में कृषक भू-सामंतों केअत्यधिक अधीन होते गएऔर इस बदलते अंतर संबंधों के फलस्वरूप कृषक, कृषक-दास (serfdom) में बदलते गए। आर. एस.शर्मा का

मानना है कि सामंतों के अधीन अत्यधिक शोषण हो रहा था,सामंतों द्वारा लोगों से बलपूर्वक श्रमदान भी लिया जाता था।अतः शर्मा के अनुसार सामंतवाद के अन्तर-संबंधित मुख्य कारक एवं लक्षण थे- भूमि एवं अधिकारों का वितरण, सत्ता का विकेंद्रीकरण,उप-सामंतीकरण, कृषक दास एवं बलपूर्वक श्रम (विष्टि) और नगरों का पतन तथा मुद्रा ह्रास।वह मानते हैं की सामंतवाद का पतन 11वीं सदी में व्यापार और नगरों के पुनरुत्थान के साथ ही संभव हो पाया।

1.4.4 भारतीय सामंतवाद के विपक्ष अवधारणा

1971 में हरबंस मुखिया ने अपने लेख द्वारा भारतीय मार्क्सवादियों की भारतीय सामंतवाद के विचार पर गंभीर प्रश्न खड़े किए।खासकर भारतीय सामंतवाद पर आर.एस.शर्मा के विचारों की उन्होंने कड़ी आलोचना की।उन्होंने पूछा क्या भारत के इतिहास में वास्तविक रूप में कभी सामंतवाद था?

मुखिया सामंतवाद को पूंजीवाद की भांति एक सार्वभौमिक व्यवस्था ना मानते हुए केवल एक क्षेत्रीय व्यवस्था के रूप में देखते हैं,जहाँ उत्पादन अत्यधिक लाभ पर नियंत्रणके लिए नहीं बल्कि उपभोग की प्रवृति से प्रेरित था। इसमें उत्पादन वृद्धि एवं बाज़ार विस्तार द्वारा सार्वभौमिक व्यवस्था के रूप में उभरना संभव नहीं है। मुखिया का मानना है कि अगर सामंतवाद अलग -अलग स्थानों में अलग प्रकार का था तो व्यवस्था के रूप में भी उसकी एक सटीक परिभाषा देना मुश्किल है।

मुखिया के अनुसार भारत में यूरोप की तुलना में खेती साल के अधिक महीनों तक की जाती थी,साथ ही खेती के लिए उर्वरक भूमि तथा कृषि श्रम के लिए जनसंख्या भी यूरोप की तुलना में बहुत अधिक थी। भारत में कूबड़ वाले बैल का उपयोग होता था जिससे अधिक संतुलन के साथ हल का उपयोग होने के कारण खेत जोतने की क्षमता यूरोप की तुलना में अधिक थी। भूमि उत्पादकता की दर भी भारत में अधिक थी, भारत में अधिकांश जगह साल में दो बार खेती की जाती थी।

जैसा दबाव यूरोपीय कृषक समाज पर था वही दबाव भारतीय कृषक समाज पर नहीं था। इसलिए कृषक-दास और कृषि में बलपूर्वक श्रम प्रथा का भारत में उभारना संभव नहीं था।इसके अतिरिक्तभरत में बंधुवा श्रम गैर-उत्पादक कार्यों के लिए अधिक प्रयोग होता था। मुखिया का मानना है कि भारतीय किसानों का श्रम उनके अपने नियंत्रण में था।

हरबंस मुखिया के इस लेख के बाद आर.एस.शर्मा ने 'भारतीय सामंतवाद कितना सामंती था' के रूप में अपने विचारों को पुनः नवीन दृष्टिकोण एवं शोध अध्ययन के साथ प्रस्तुत किया तथा भारतीय सामंतवाद को उन्होंने सामाजिक एवं आर्थिक संकटों के कारण उत्पन्न हुई एक आर्थिक प्रक्रिया के रूप में देखने पर अधिक बल दिया। अपने पुराने तर्कों को संशोधित करते हुए, हाल ही में उन्होंने सामंती समाज के विचारात्मक एवं सांस्कृतिक पहलुओं की ओर अपना ध्यान मोड़ा था।उनके अनुसार सामंती मानसिकता, कला एवं वास्तुशिल्प में पदानुक्रम के तत्व विद्यमान थे तथा सामंती समाज के वैचारिक आधार में स्वामी के प्रति कृतज्ञता एवं निष्ठा दृष्टिगोचर होती है।भारतीय सामंतवाद के पक्षधर कई विद्वानों ने सांस्कृतिक पहलुओं के

माध्यम से भी सामंतवाद काअध्ययन करने का प्रयास आरम्भ किया है। उनके द्वारा भक्ति काल में स्वामी के प्रति अधीनता एवं निष्ठा संबंधित विचारधारा को ब्राह्मणवादी प्रभुत्व के आधार स्तंभ के रूप में देखा गया,उनके अनुसार ईश्वर के प्रति समर्पण और निष्ठा को सामंतों के प्रति मोड़ना कठिन नहीं था।

अपने अध्ययनों में इतिहासकार बी. डी.चट्टोपाध्याय ने इस काल में सम्पूर्ण भारत मेंसिक्कों की कमी और नगरों के पतन के विचार का खंडन किया है तथा रणवीर चक्रवर्ती ने सामंतवादी काल में भारत में व्यापार के विकसित होने के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं,भारत में कौड़ीका मुद्रा के रूप में उपयोग लम्बी दूरी के व्यापार में पूर्व-मध्यकाल में भी होता रहा था। भारतीय मार्क्सवादी इतिहासकारों ने सामंतवादी काल में राज्यों के पतन की बात पर बल दिया था, लेकिन बाद के कई शोधकार्यों के आधार पर विद्वानों ने इसी काल में भारत में नवीन राज्य निर्माण की प्रक्रिया को उजागर किया।

बर्टन स्टीन (Burton Stein) ने अपने दक्षिण भारत के शोधकार्य में भारत के संदर्भ में 'खंडित राज्य' निर्माण की अवधारणा प्रस्तुत की। उनके अनुसार भारत में औपनिवेशिक काल से पहले तक राजन केवल नाम मात्र को स्वामी होता था,वास्तविक रूप में उसकी राजनीतिक संप्रभुता केवल उसके राज्य के मुख्य केंद्रीय क्षेत्र तक सीमित थी, लेकिन राज्य के अधिकांश भू-भाग पर उसकी धार्मिक संप्रभुता कायम थी। राज्य में इसलिए स्थानीय स्वतंत्र इकाई थी जिन्हें अपने प्रशासनिक एवं आर्थिक अधिकार हासिल थे। इस धार्मिक संप्रभुता कानिर्माण रजा धार्मिक क्रियाकलापके माध्यम से करता था।

भारतीय सामंतवाद की अवधारण को चुनौती देते हुए हरमन कुलके और बी.डी.चटोपाध्याय ने इस काल को सामंतवादी काल की जगह पूर्व-मध्यकाल कहना अधिक उचित माना है। उनके अनुसार इस समय नए राज्यों का निर्माण की प्रक्रिया भी चल रही थी,जिसे उन्होंने अपने ''समग्र राज्य' के अवधारणा द्वारा प्रस्तुत किया है।उनके अनुसार इस समय काल में जन-जातियों का मुख्यधारा में आना, कृषि का विस्तार, जातियों का प्रादुर्भाव,राजनीतिक वंशों की उत्पत्ति, धार्मिक (भक्ति)क्षेत्रीय एवं केन्द्रीय संस्कृतियों इत्यादि अनेक प्रक्रियाओं सेराजनीतिक, सामाजिक,आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास हो रहा था।

समग्र राज्यकी अपनी अवधारणा के अधीन इनका मानना था कि राजा भू-अनुदान द्वारा राज्य का विकेंद्रीकरण नहीं अपितु विस्तार और निर्माण कर रहे थे।भू-अनुदान द्वारा राज्य का भौगोलिक विस्तार हुआ,जनजातियों को मुख्य संस्कृति से जोड़ा गया, कृषि क्षेत्र बड़ा तथा मंदिरों और ब्राह्मणों के माध्यम से राजन अपनी संप्रभुता का निर्माण करता था तथा साथ ही पारस्परिक संस्कृति का निर्माण हुआ। अतः भू-अनुदान द्वारा राज्य अपनी शक्ति, लोकप्रियता और राज्य का विस्तार कर रहा था ना की विकेंद्रीकरण और उप-सामंतीकरण।

1.5 अभ्यास एवं बोध प्रश्न

प्र.1अग्निकुल अथवा अग्निकुंड के विचार के अनुसार राजपूतों का उदय कैसे हुआ है?

प्र.2 राजपूतों की कितनी जातियों की संख्या का राजतरंगनी में अंकित है?

प्र.3 औपनिवेशिक काल से पूर्व, भारत के संदर्भ में किसने खंडित राज्य की अवधारणा प्रस्तुत की?

प्र.4 भारतीय मार्क्सवादी इतिहासकारों ने कार्लमार्क्स द्वारा भारत और एशिया के संदर्भ में कौन सी उत्पादन पद्धति की अवधारण को पूर्णता नकारा है?

3.6 सारांश

अंततः: हम यह कह सकते हैंकि इतिहास लेखन में पारंपरिक दृष्टिकोणों को निरंतर चुनौती देकर उसका पुनर्निर्माण किया जा रहा है। इतिहास की इस पुनर्निर्माण प्रक्रिया में हमेशा तथ्यों अथवा स्रोतों का अध्ययन विभिन्न विचारधाराओंके साथ-साथ नवीन संकल्पनाओं और विमर्श से जहाँ एक और लगातार जटिल होता रहा है, वहीं इससे हमारी इतिहास को समझने और उसका अवलोकन करने की क्षमता कुशल होती रही है। इतिहास का कालखंडो में वर्गीकरण भले ही अपनी सुविधा के लिए किया गया हो लेकिन यह इतिहास की स्थाई छवि नहीं हैं।हमारी सबसे बड़ी चुनौती यह है कि हमें इतिहास पढ़ने, लिखने और समझने में पूर्वाग्रहों से बचना होगा और इतिहासकार को तार्किक दृष्टि से सभी प्रकार के मौखिक अथवा लिखित स्रोतों का अवलोकन करना चाहिए।

भारत के इतिहास का वह हिस्सा जिसे अंधकार युग माना गया था, वह अत्यंत क्रियाशील था।राजपूतों की उत्पत्ति और भारतीय सामंतवाद,इन दोनों विषयों के नए अध्ययन से हमें,पूर्व-मध्यकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक निरंतरता एवं परिवर्तन की प्रक्रियाओं को समझने का मौका मिलता है।जिन्हें कृतिम समय सीमा में बांधना मुश्किल है।जहाँ एक और आर्थिक समीक्षा और आलोचनात्मक अध्ययन से मार्क्सवादी इतिहासकार भारत के इतिहास लेखन में भारतीय सामंतवाद की चर्चा करते हैं वहींउनके द्वारा किए गए अध्ययन को संसोधनवादियों ने लगातार चुनौती प्रदान कर भारतीय सामंतवाद को नाकारा है तथा पूर्व-मध्यकाल को विकासशील माना है।

3.7विशेष शब्दावली

- क्लैन/Clan:क्लैन की ठीक-ठीक और एक सटीक परिभाषा देना संभव नहीं है, यह व्यक्तियों का वह समूह है जिसका वास्तविक,मिथकों अथवा मान्यताओं के आधार पर मनुष्य या अन्य किसी समान पूर्वज से उत्पत्ति हुई है।इस परम पूर्वज से वह अपना किसी ना किसी प्रकार से रक्त संबंध मानते हैं।कभी-कभी इस समूह के लोग यह मानते हैं, की उनकी उत्पत्ति एक ही स्थान में हुई है।

- ओरिएंटलिज्म/ORIENTALISM:पूर्वी राष्ट्रों के प्रति पश्चिमी लोगों की पूर्वाग्रही,काल्पनिक,अतिरंजित एवं विकृत औपनिवेशिक मानसिकता जिसके द्वारा वह पूर्व की दुनिया को अपने से भिन्न ‘अन्य ‘केरूप मेंप्रस्तुत करते हैं।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उ.1 अग्निकुल के मिथक के अनुरूप राजपूतों का उत्पत्ति विशेष परियोजन हेतु यज्ञ अग्नि से हुआ है।

उ.2राजतरंगिणी में राजपूतों जातियों की संख्या 36 अंकित की गई है।

उ.3 बर्टन स्टीन।

उ.4 एशिया की एशियाई पद्धति (Asiatic mode of Production)

3.9 अध्ययन सामग्री

- B.D. Chattopadhaya, *The Making of Early Medieval India*, Oxford University Press, 1997
- R.S. Sharma, Indian Feudalism: C.300-1200, 1963
- D.H.A. Kolf, *Naukar, Rajput and Sepoy, The Ethnohistory of military Labour Market in Hindustan 1450-1850*, Cambridge University Press, 2002
- Upender Singh, *A Histroy of Ancient and Early Medieval India from Stone Age to the 12th Century*, Pearson, Delhi, 2008
- Norman P. Ziegler, *Marwari Historical Chronicles Sources for Social and Cultural History of Rajasthan,* The Indian Economic and Social History Review, 1976 also seeSome Notes on Rajput Loyalties during the Medieval Period by Norman P. Ziegler in J.F Richards (ed*) Kingship and Authority in south Asia, Madison: South Asian studies, 1978,*
- NiharRanjan Ray, Origin of the Rajputs (A) The Nationality of the Gujars, Annals of the Bhandarkar Oriental Rresearch Instituiute, Vol. 12, No.2 (1931) also see URL: http://www.jstor.org/stable/41688201
- Herman Kulke, Fragmentation and Segmentation Versus Integration? Reflections on the Concepts of Indian Feudalism and the Segmentary State in Indian History, Studies in History, Vol.iv, No.2, 1982
- HarbansMukhia, *The Feudalism Debate in India,*Manohar,1999
- हरबंस मुखिया, *सामंतवाद पर विभिन्न दृष्टिकोण,*अध्याय 20, 2018,
- *भारतीयइतिहास में सामंतवाद विभिन्न दृष्टिकोण*, अध्याय 10. इज्ञानकोष,इग्नू,2018, (http://egyankosh.ac.in)

3.10प्रस्तावितअध्ययन सामग्री

- Burton Stein, *Peasant, State and Society in Medieval South India*, 1980
- J.N Asopa*, Origin of Rajputs*, Delhi, 1976

- C.V. Vaidya, *History of Medieval Hindu India and Early History of Rajputs* (750 to 1000 AD), Poona, 1924
- D. Sharma, *Rajasthan Through Ages*, Bikaner, 1996
- James Tod, *Annals and Antiquities of Rajasthan*, ed William Crooke, (1920)
- Satish Chandra, The History of Medieval India,
- Irfan Habib, Agrarian System of the Mughal India 1556-1707. Also see '*The social Distribution of Landed Property in Pre-British India: A Historical Survey*' in R.S. Sharma ed; Indian Society: Historical Probings;1974

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्र(1) राजपूतों की उतपत्ति के संदर्भ में विभिन्न विचारों की चर्चा करते हुए उनकी उत्पत्ति की वैज्ञानिक परिकल्पना पर टिप्पणी करें ?

प्र(2) पूर्व-मध्यकाल अथवा भारतीय सामंतवाद के संदर्भ में इतिहासकारों के विभिन्न विचारों का विश्लेषण करें ?

हर्षोत्तर उत्तर भारत की राजनीतिक,सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 राजनीतिक स्थिति
1.4 कन्नौज के लिए त्रिपक्षीय संघर्ष
1.5 उत्तरी भारत के अन्य क्षेत्रीय राज्यों का उदय
 1.5:1 चाहमान या चौहान वंश
 1.5:2 चन्देल वंश
 1.5:3 परमार वंश
1.6 सामाजिक स्थिति
 1.6:1 सामन्तवाद का विकास
 1.6:2 कठोर वर्ण व्यवस्था
 1.6:3 नवीन वर्ग कायस्थ का उदय
 1.6:4 वैश्य वर्ण का पतन तथा शूद्र वर्ण का उत्थान
 1.6:5 अंतर्जातीय विवाह
 1.6:6 अस्पृश्यता
 1.6:7 स्त्रियों की दशा
 1.6:8 दास प्रथा
1.7 धार्मिक स्थिति
 1.7:1 वैष्णव सम्प्रदाय
 1.7:2 शैव सम्प्रदाय
 1.7:3 शाक्त सम्प्रदाय
 1.7:4 गणेश सम्प्रदाय
 1.7:5 सूर्य पूजा
 1.7:6 तांत्रिक सम्प्रदाय
 1.7:7 बौद्ध धर्म
 1.7:8 जैन धर्म
1.8 सारांश
1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
1.10 सन्दर्भ–ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

गुप्तों के पश्चात् भारत अनेक क्षेत्रीय शक्तियों में विभाजित हो गया और इन शक्तियों के मध्य संघर्ष प्रारम्भ हो गया। ऐसे समय में थानेश्वर में एक नये वंश का उत्कर्ष हुआ। जिसने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करने वाले हूणों से देश की रक्षा कर भारत को पुनः राजनैतिक एकता के सूत्र में बाँधने में सफलता प्राप्त की। यह वंश थानेश्वर के वर्धन वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिसका सबसे प्रतापी

सम्राट हर्षवर्धन था। हषवर्धन (606 ई0–647 ई0) की मृत्यु के पश्चात् उत्तर भारत में राजनैतिक विकेन्द्रीकरण एवं विभाजन की शक्तियाँ एक बार पुनः सक्रिय हो गयी। सामान्यतः यह काल पारस्परिक संघर्ष तथा प्रतिद्वन्दिता का काल था। हर्ष के पश्चात् उत्तर भारत की राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु कन्नौज बन गया। जिस पर अधिकार करने के लिए त्रिपक्षीय शक्तियों के मध्य संघर्ष के पश्चात् भारत अनेक छोटे–छोटे क्षेत्रीय राज्यों में बंट कर रह गया।

1.2: उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि

- उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति एवं कन्नौज के लिए त्रिपक्षीय संघर्ष (पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट।
- उत्तर भारत के नए क्षेत्रीय शक्तियों का उदय।
- हर्ष के बाद उत्तर भारत की सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति।
- भारत का विकेन्द्रीकरण एवं सामन्तवाद का उदय।
- हर्षोत्तर काल में भारत की सांस्कृतिक स्थिति।

1.3 राजनीतिक स्थिति

कन्नौज शासक यशोवर्मन हर्ष की मृत्यु के बाद लगभग 75 वर्षों तक का कन्नौज का इतिहास अंधकारमय है। यशोवर्मन ने सम्भवतः 700 ईसवी से 740 ईसवी तक शासन किया। सोन घाटी से विंध्य पर्वत होते हुए मगध शासक पर चढ़ाई कर उसे मार गिराया। तत्पश्चात् बंग लोगों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इसके उपरांत यशोवर्मन ने दक्षिण के राजा को परास्त कर मलमगिरी को पार किया। यहाँ पारसीकों पर चढ़ाई करके उन्हें युद्ध में पराजित किया। तत्पश्चात् हिमालय क्षेत्र की विजय की। यशोवर्मन शैवमतानुयायी था। उसका उत्थान और पतन उल्का की भाँति रहा। उसके पश्चात् कन्नौज में आयुध नामधारी राजाओं का शासन रहा। इनमें वज्रायुध, इन्द्रयुध तथा चक्रायुध के नाम मिलते हैं। ये सभी अन्यन्त निर्बल शासक थे।

1.4 कन्नौज के लिए त्रिपक्षीय संघर्ष (पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट)

हर्ष के पश्चात् कन्नौज विभिन्न शक्तियों के आर्कषण का केन्द्र बन गया। इसे वही स्थान प्राप्त हुआ जो गुप्तयुग तक मगध का था। उत्तर भारत का चक्रवर्ती शासक बनने के लिये कन्नौज पर अधिकार करना आवश्यक समझा जाने लगा। राजनैतिक महत्व होने के साथ–साथ कन्नौज नगर का आर्थिक महत्व भी काफी बढ़ गया तथा यह भी इसके प्रति आकर्षण का महत्वूपर्ण कारण सिद्ध हुआ था। व्यापार–वाणिज्य की दृष्टि से भी यह नगर काफी महत्वपूर्ण था क्योंकि यहाँ से विभिन्न दिशाओं को व्यापारिक मार्ग जाते थे। जिस प्रकार पूर्वकाल में मगध उत्तरारपथ के व्यापारिक मार्ग को नियंत्रित करता था उसी प्रकार की स्थिति कन्नौज ने भी प्राप्त कर ली। अतः इस पर अधिकार करने के लिए आठवीं शताब्दी की तीन बड़ी शक्तियों– पाल, गुर्जर–प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट– के बीच त्रिपक्षीय संघर्ष प्रारम्भ हो गया जो आठवीं–नवीं शताब्दी के उत्तर भारत के इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है।

आठवीं शताब्दी के अन्त में गुर्जर–प्रतिहार नरेश वत्सराज (780–805 ई0) राजपूताना और मध्य भारत के विशाल भू–भाग पर शासन करता था। बंगाल के पालों का एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित हुआ। वत्सराज का पाल प्रतिद्वन्दी धर्मपाल (770–810 ई0) था। वत्सराज और धर्मपाल का समकालीन राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव (780–793 ई0) था। वह भी दक्षिण भारत में अपना राज्य सुदृढ़ कर लेने के पश्चात्

राजधानी कन्नौज पर अधिकार करना चाहता था। अतः कन्नौज पर आधिपत्य के लिए प्रथम संघर्ष वत्सराज, धर्मपाल तथा ध्रुव के बीच हुआ।

सर्वप्रथम कन्नौज पर वत्सराज तथा धर्मपाल ने अधिकार करने की चेष्टा के परिणामस्वरूप दोनों में गंगा–यमुना के दोआब में युद्ध हुआ। युद्ध में धर्मपाल की पराजय हुई। इसका उल्लेख राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय के राधनपुर लेख (808 ई0) में हुआ है जिसके अनुसार 'मदान्ध वत्सराज ने गौड़राज की राजलक्ष्मी को आसानी से हस्तगत कर उसके दो राजछत्रों को छीन लिया'। इस प्रकार वत्सराज ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया तथा वहाँ का शासक इन्द्रायुध उसकी अधीनता स्वीकार करने लगा। इसी समय राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव ने विन्ध्यपर्वत पार कर वत्सराज पर आक्रमण किया। वत्सराज बुरी तरह परास्त हुआ तथा वह राजपूताना के रेगिस्ताना के रेगिस्तान की ओर भाग खड़ा हुआ। राधनपुर लेख में कहा गया है कि उसने वत्सराज के यश के साथ ही उन दोनों राजछत्रों को भी छीन लिया जिन्हें उसने गौड़नरेश से लिया था। ध्रुव ने पूर्व की ओर बढ़कर धर्मपाल को भी पराजित कर दिया। संजन लेख के अनुसार उसने 'गंगा–यमुना' के बीच भागते हुए गौड़राज की लक्ष्मी के लीलारविन्दों और श्वेतछात्रों को छीन लिया। परन्तु इन विजयों के पश्चात् ध्रुव दक्षिण भारत लौट गया जहाँ 793 ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी।

ध्रुव के उत्तर भारत के राजनीतिक दृश्य से ओझल होने के बाद पालों तथा गुर्जर–प्रतिहारों में पुनः संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इस समय पालों का पलड़ा भारी था। खालीमपुर अभिलेख मे वर्णन मिलता है कि धर्मपाल ने कान्यकुब्ज के राजा का अभिषेक किया। इसे भोज, मत्सय, मद्र, कुरू, यदु, यवन, अवन्ति, गन्धार तथा कौर के राजाओं ने अपना मस्तक झुकाकर धन्यवाद देते हुये स्वीकार किया था। इस विवरण से स्पष्ट है कि कन्नौज के राजदरबार में उपस्थित उक्त सभी शासक धर्मपाल की अधीनता स्वीकार करते थे। परन्तु उसकी विजयें स्थायी नहीं हुई। गुर्जर–प्रतिहार वंश की सत्ता को जीता तथा कन्नौज पर आक्रमण कर चक्रायुध को वहाँ से निकाल दिया। नागभट्ट कन्नौज को जीतने मात्र से संतुष्ट नहीं हुआ, अपितु उसने धर्मपाल के विरूद्ध भी प्रस्थान कर दिया। मुंगेर में काव्यात्मक विवरण इस प्रकार प्रस्तुत करता है–' बंगनरेश अपने गजों, अश्वों एवं रथों के साथ घने बादलों के अन्धकार की भाँति आगे बढ़कर उपस्थित हुआ किन्तु त्रिलोकों को प्रसन्न करने वाले नागभट्ट ने उदयमान सूर्य की भांति उस अन्धकार को काट डाला। इस विवरण से स्पष्ट है कि युद्ध में धर्मपाल की पराजय हुई। भयभीत पालनरेश ने राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय (793–814 ई0) से सहायता माँग नागभट्ट पर आक्रमण किया। संजन ताम्रपत्र से पत चलता है कि उसने नागभट्ट द्वितीय को पराजित किया तथा मालवा पर अधिकार कर लिया। धर्मपाल तथा चक्रायुध ने स्वतः उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। गोविन्द आगे बढ़ता हुआ हिमालय तक जा पहुँचा परन्तु वह उत्तर में अधिक दिनों तक नहीं ठहर सका। उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर दक्षिण के राजाओं ने उसके विरूद्ध एक संघ बनाया जिसके फलस्वरूप उसे शीघ्र ही अपने गृह–राज्य वापस आना पड़ा।

भोज प्रथम के बाद उसका पुत्र महेन्द्रपाल प्रथम शासक हुआ जिसने 910 ई0 तक शासन किया। बिहार तथा उत्तरी बंगाल के कई स्थानों से उसके लेख मिलते हैं जिनमें उसे 'परमभट्टारकपरमेश्वरमहाराजाधिराजमहेन्द्रपाल' कहा गया है। इनसे स्पष्ट है कि मगध तथा उत्तरी बंगाल के प्रदेश भी पालों से गुर्जर–प्रतिहारों ने जीत लिया। इन प्रदेशों के मिल जाने से प्रतिहार–साम्राज्य अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुँच गया।

इस प्रकार साम्राज्य के लिए नवीं शताब्दी की तीन प्रमुख शक्तियाँ–गुर्जर–प्रतिहार, पाल तथा राष्ट्रकूट–में जो त्रिपक्षीय संघर्ष प्रारम्भ हुआ था, उसकी समाप्ति हुई। देवपाल की मृत्यु के बाद पाल उत्तरी भारत की राजनीति में ओझल हो गये तथा प्रबल शक्ति के रूप में उनकी गणना न रही।अन्तोगत्वा प्रतिहारों की सफलता के साथ युद्ध समाप्त हुआ। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रतिहार शासक महिपाल प्रथम (912–943

ई0) के समय में राष्ट्रकूट राजाओं इन्द्र तृतीय तथा कृष्ण तृतीय ने कन्नौज नगर पर आक्रमण किया तथा थोड़े समय के लिए प्रतिहारों के अधिकार को चलायमान कर दिया। किन्तु राष्ट्रकूटों की सफलता क्षणिक रही और उनके हटने के बाद वहां प्रतिहारों का अधिकार पुनः सुदृढ़ हो गया। अब प्रतिहारों की गणना उत्तर भारत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में होने लगी।

1.5 उत्तरी भारत के अन्य क्षेत्रीय राज्यों का उदय

दसवीं शताब्दी के मध्य एक प्रतिहार वंश की शक्ति लगभग पूर्ण रूप से क्षीण हो चुकी थी। पश्चिमी भारत एवं मध्य देश के इस शक्तिशाली साम्राज्य के अवशेषों पर एक नहीं अपितु अनेक शक्तियों का उदय हुआ। जो प्रतिहारों की सामन्त रह चुकी थी। परमार चौहान (चाहमान), चंदेल, चालुक्य एवं गहड़वाल ऐसी ही शक्तियां थी जब महमूद गजनवी एवं मौहम्मद गौरी के आक्रमण हो रहे थे और भारत में तुर्की राज्य की स्थापना की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। तब उत्तरी भारत में इन्हीं राजनीतिक शक्तियों का बोलबाला था।

1.5:1 चाहमान या चौहान वंश

इस वंश का उदय शाकंभरी (साम्भर अजमेर के आस–पास का क्षेत्र) में हुआ। चाहमान वंश के प्रारम्भिक राजाओं में वासुदेव और गूवक के नाम उल्लेखनीय हैं। इस वंश का सर्वप्रथम लेख वि0सं0 1030–973 ई0 का दुर्लभ हर्षलेख है, जिसमें गूवक प्रथम तक वंशावली दी गई है। दूसरा प्रसिद्ध लेख बिजौलिया शिलालेख–पूरी वंशावली देता है।

चाहमानों की शक्ति का विशेष विकास अर्णोराज के पुत्र चतुर्थ विग्रहराज बीसलदेव (1153–1164 ई0) के समय हुआ। उसने सबसे बड़ा कार्य मध्य देश से मुसलमान आक्रमणकारियों को समाप्त करके किया जो पंजाब को जीतने के बाद धीरे–धीरे मध्य देश में आकर बस गये थे। गहड़वाल भी उसके हाथों पराजित हुए। बीसलदेव के पुत्र अपर गांगेय को बीसल के ही भतीजे पृथ्वीराज द्वितीय ने राज्य का मौका नहीं दिया। पृथ्वीराज का उत्तराधिकारी बीसल का छोटा भाई सोमेश्वर हुआ।

सोमेश्वर का पुत्र और उत्तराधिकारी चाहमान वंश का सबसे प्रसिद्ध और अंतिम शक्तिमान राजा पृथ्वीराज तृतीय (1179–1193 ई0) था। इसके राजकवि चंद्रबरदाई ने पृथ्वीराज रासो नामक अपभ्रंश महाकाव्य और जयनिक ने पृथ्वीराज वियज नामक संस्कृत काव्य की रचना की। लगभग 1182 ई0 में उसने उत्तर भारत के प्रसिद्ध राजा परमर्दिदेव चंदेल को पराजित किया। बीसलदेव के काल से ही चाहमानों और गहड़वालों की प्रतिद्वंदिता चल रही थी। दुर्भाग्य से यह आंतरिक कलह उस समय चल रही थी जब भारत के द्वार पर मुहम्मद गौरी दस्तक दे रहा था। यद्यपि वह एक बार पृथ्वीराज के हाथों पराजित हो चुका था, किन्तु 1193 ई0 में तराईन के द्वितीय युद्ध में गौरी बदला लेने में सफल हुआ। अजमेर और दिल्ली दोनों ही तुर्कों के हाथ लगे। चाहमान सत्ता को नष्ट होने में देर नहीं लगी।

1.5:2 चंदेल वंश

जहाँ वर्तमान बुंदेलखंड पर चंदेलों की राजनीतिक शक्ति का उदय हुआ। खजुराहों उनकी राजधानी थी। इस वंश का सर्वप्रथम राजा नन्नुक हुआ। हर्षदेव (905–925 ई0) के समय से चंदेलों की शक्ति जोरों से बढ़नी शुरू हुई। उसके पुत्र यशोवर्मन ने मालवा, चेदि और महाकोसल पर आक्रमण करके अपने राज्य का पर्याप्त विस्तार कर लिया और व्यवहार में वह प्रतिहारों से बिल्कुल स्वतंत्र हो गया, यद्यपि वह उनका नाममात्र का आधिपत्य स्वीकार करता था।

यशोवर्मन का पुत्र (950–1008 ई0) बड़ा प्रतापी और विजयी सिद्ध हुआ। प्रतिहारों से पूर्ण स्वतंत्रता का वास्तविक श्रेय उसी को दिया जाता है। धंग की विजयों के फलस्वरूप उसका राज्य पश्चिम में ग्वालियर, पूर्व में वाराणसी और उत्तर में यमुना तट तक तथा दक्षिण में चेदि और मालवा की सीमा तक

फैल गया। शाही राजा जयपाल ने तुर्कों का प्रतिरोध करने के लिए जो संघ बनाया था, उसमें धंग ने सक्रिय भाग लिया। धंग के बाद उसका पुत्र गंड राजा हुआ। उसने भी 1008 ई0 मे महमूद गजनवी का सामना करने के लिए जयपाल के पुत्र आनंदपाल द्वारा बनाए हुए संघ में भाग लिया। दुर्भाग्य से यह दूसरा संघ भी पराजित हुआ। विद्याधर ने भोज परमार और कलचुरि गांगेय की सहायता से तुर्कों को मध्य देश से निकालने का प्रयास किया।

चंदेल वंश का अंतिम शक्तिशाली राजा परमर्दि अथवा परमल था। इसके समय मे अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज ने आक्रमण किया। 1203 ई0 में गहड़वालों की शक्ति नष्ट हो जाने के बाद जब कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर पर आक्रमण किया तब परमर्दि ने उसका घोर विरोध किया, किन्तु अंत में उसे हार का समाना करना पड़ा।

1.5:3: परमार वंश

दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब प्रतिहारों का आधिपत्य मालवा में नष्ट हो गया, तब वहाँ पर परमार शक्ति का उदय हुआ। इस वंश का प्रथम स्वतंत्र एवं शक्तिमान राजा सीयक या श्रीहर्ष था। राष्ट्रकूटों से इसका संघर्ष हुआ और खोट्टिग को हराकर सीयक ने विपुल सम्पत्ति लूटी। वास्तव में मालवा में परमारों की शक्ति का उत्कर्ष वाकपति मुंज (972–994 ई0) के समय में प्रारम्भ हुआ। उसकी सबसे प्रसिद्ध विजय कल्याणी के चालुक्य राजा तैलप द्वितीय पर थी।

भोज (1000–1055 ई0) इस वंश का सबसे लोकप्रसिद्ध राजा हुआ। उदयपुर प्रशस्ति के अनुसार उसने अनेक भारतीय राजाओं, विशेषकर चेदि के इंद्रनाथ, गुजरात के प्रथम जोग्गल और भीम, लाट और कर्णाट के राजाओं , गुर्जर और तुरूष्कों से युद्ध किए। अपने चाचा (वाक्पति मुंज) की मृत्यु का बदला लेने के लिए उसने कल्याणी के चालुक्य राजा विक्रमादित्य चतुर्थ को परास्त किया। किन्तु जयसिंह द्वितीय ने उसे शीघ्र हरा दिया और 'मालवा संघ' तोड़ दिया। इसके बाद भोज ने कलचुरि राजा गांगेयदेव को हराया। किन्तु चंदेल राजा विद्याधर के साथ युद्ध में मालवा नरेश को मुँह की खानी पड़ी। अंत में भोज के दो पुराने शत्रु–गुजरात के सोलंकियों और त्रिपुरा के कलचुरियों ने परस्पर मैत्री कर एक साथ मालवा पर आक्रमण किया और उन्होंने भोज की राजधानी धारा को खूब लूटा।

इन बड़े राज्यों के अतिरिक्त हर्ष के बाद ही उत्तरी भारत में अनेक छोटे–क्षेत्रीय राज्य थे, गहड़वाल (कन्नौज में ही– प्रतिहारों की शक्ति क्षीण होने पर) त्रिपुरी (आधुनिक जबलपुर के निकट) में कलचुरि, पंजाब, कश्मीर, नेपाल, उड़ीसा आदि के राजवंश।

1.6 सामाजिक स्थिति

प्राचीन भारत के इतिहास में आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी का काल समााजिक–आर्थिक परिवर्तनों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। इस काल में सामाजिक परिवर्तनों के पीछे कुछ आर्थिक घटनाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा जिन्होंने प्राचीन समाजिक व्यवस्था के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदल दिया।

भारत के इतिहास में हर्ष की मृत्यु के बाद से लेकर राजपूत वंशों के शासन तक (650–1200 ई0) का काल सामान्य तौर से पूर्व मध्य युग कहा जाता है। इसके प्रथम चरण (650–1000 ई0) को आर्थिक दृष्टि से पतन का काल निरूपित किया गया है। इस काल में व्यापार तथा वाणिज्य का ह्रास हुआ। रोम साम्राज्य के पतन हो जाने के कारण पश्चिमी देशों के साथ भारत का व्यापार बन्द हो जाने तथा इस्लाम के उदय के कारण भी भारत का स्थल मार्ग से होने वाला व्यापार प्रभावित हुआ। इस काल में स्वर्ण मुद्राओं का अभाव दृष्टिगोचर होता है। व्यापार–वाणिज्य के पतन के कारण व्यापारी तथा कारीगर एक ही स्थान पर रहने के लिये मजबूर हुए तथा उनका एक स्थान से दूसरे स्थान में आना–जाना बन्द हो गया। इस प्रकार

इस काल की अर्थव्यवस्था अवरूद्ध हो गयी। भारत में मुस्लिम सत्ता स्थापित हो जाने के बाद से मुसलमान व्यापारियों तथा सौदागरों की गतिविधियाँ तेज हुई, जिसके फलस्वरूप उत्तरी भारत में व्यापार–वाणिज्य की प्रगति हुई। बारहवीं सदी तक आते–आते देश आर्थिक दृष्टि से पुनः सुदृढ़ हो गया।

1.6:1 सामन्तवाद का विकास

यह समाज का सबसे शक्तिशाली वर्ग था। यद्यपि भारत में हमें सामन्तवाद का अंकुरण शक–कुषाण काल में ही दिखाई देने लगता है तथापि इसका पूर्ण विकास पूर्व मध्य काल में ही हुआ। इस काल में राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों ने सामन्तवाद के विकास के लिये उपयुक्त आधार प्रदान किया। बाह्य आक्रमणों के कारण केन्द्रीय सत्ता निर्बल पड़ गयी तथा चारों ओर राजनीतिक अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गयी। केन्द्रीय शक्ति की निर्बलता ने समाज में प्रभावशाली व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग तैयार किया, जिसके ऊपर स्थानीय सुरक्षा का भार आ पड़ा।

समान्तवाद के विकास में प्राचीन भारतीय धर्मविजय की अवधारणा का भी योगदान रहा। कालान्तर में शासकों की विजय का उद्देश्य अधिक से अधिक अधीन शासक तैयार कर उनसे करवाना हो गया। इस प्रवृत्ति ने भी सामन्तवाद को प्रोत्साहित किया।

सामन्तवाद को विकसित करने में आर्थिक कारक भी सहायक सिद्ध हुए। राजनीतिक अव्यवस्था में व्यापार–वाणिज्य का पतन हुआ। जिससे अर्थव्यवस्था मुख्यतः भूमि और कृषि पर निर्भर हो गयी। बड़े–बडे भूस्वामी आर्थिक स्त्रोतों के केन्द्र बन गये। समाज में भूसम्पन्न कुलीन वर्ग का अविभार्व हुआ। समाज के बहुसंख्यक शूद्र तथा श्रमिक जीविका के लिये उनकी ओर उन्मुख हुए। भूमिपतियों को अपने खेतों पर कार्य करने के लिये बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता थी। आर्थिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया ने सामन्तवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

राजाओं द्वारा अपने कुल के व्यक्तियों तथा सम्बन्धियों को विभिन्न प्रान्तों में उपराजा अथवा राज्यपाल नियुक्त करने की प्रथा से भी सामन्तवाद की जड़ें मजबूत हुई। राजकुमारों के साथ–साथ प्रशासन के मंत्रियो तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों को भी जागीरें दी गयी। पूर्व मध्यकाल में यह एक सर्वमान्य प्रथा हो गई। सामन्तों की विभिन्न श्रेणियां थी। कुछ बड़े सामन्त अपने अधीन कई छोटे सामन्त रखते थे। वे अपने–अपने अधिकार–क्षेत्रों में राजाओं जैसी सुख–सुविधाओं का ही उपभोग करते थे।

इस प्रकार समाज में ऐसे लोगो ंकी संख्या बढ़ती जिन्हें भूमि से दूसरे के श्रम पर पर्याप्त आय प्राप्त होने लगी। राजपूत–काल में सामन्तों के छोटे–छोटे राज्य स्थापित हो गये जो अपनी शक्ति और प्रभाव बढ़ाने के लिये परस्पर संघर्ष में उलझ गये। इन्होंने व्यापार–वाणिज्य को हतोत्साहित किया तथा आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया। सामन्त तथा उसके अधीनस्थों के अपने–अपने क्षेत्रों में ही व्यस्त और मस्त रहने के कारण प्रबल स्थानीकरण की भावना का विकास हुआ तथा सामाजिक गतिशीलता अवरूद्ध हो गयी।

प्रो0 यादव के अनुसार इस काल में हम सामाजिक स्तरीयकरण की दो प्रवृत्तियों को साथ–साथ चलते हुए पाते हैं। जहाँ एक ओर समाज के उच्च तथा कुलीन वर्ग द्वारा वर्ण नियमों को कठोरतापूर्वक लागू करने का प्रयास किया गया वहीं दूसरी ओर इस युग के व्यवस्थाकारों ने विभिन्न जातियों एवं वर्गों के मिश्रण से बने हुए, शासक एवं सामन्त वर्ग को वर्णव्यवस्था में समाहित कर आदर्श एवं यर्थाथ के बीच समन्वय स्थापित करने का कार्य भी किया। सामन्तवादी प्रवृत्तियों के विकास के साथ–साथ भू–सम्पत्ति, सामरिक गुण, राजाधिकार आदि सामाजिक स्थिति एवं प्रतिष्ठा के प्रमुख आधार बन गये। समाज के प्रथम दो वर्ण (ब्राह्मण तथा क्षत्रिय) एक दूसरे के निकट आ गये। इसी प्रकार अन्तिम दो वर्गों (वैश्य तथा शूद्र) में भी सन्निकटता आई। इस प्रकार पूर्वमध्यकालीन समाज दो भागों में विभाजित हो गया। प्रथम भाग में

ब्राह्मण एवं क्षत्रिय तथा द्वितीय में वैश्व एवं शूद्र समाहित हो गये। दोनों का अन्तर काफी बढ़ गया। समाज का यह द्विभागीकरण इस काल में पहले की अपेक्षा कही अधिक सुस्पष्ट हो गया।

1.6:2 कठोर वर्ण व्यवस्था

आठवीं शताब्दी से समाज पर इस्लाम धर्म का प्रभाव परिलक्षित होने लगा। इसके सामाजिक समानता के सिद्धान्त ने परम्परागत चातुर्वर्ण व्यवस्था को गम्भीर चुनौती दी जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू समाज में रूढ़िवादिता की वृद्धि हुई। समाज में शुद्धता बनाये रखने के उद्देश्य से विवाह, खान–पान तथा स्पृश्यता के नियम अत्यन्त कड़े कर दिये गये। अन्तर्जातीय खान–पान पर भी प्रतिबन्ध लग गया। ब्राह्मणों के लिये अन्य वर्णों के यहाँ भोजन करना (आपात काल को छोड़कर) निषिद्ध कर दिया गया। इस प्रकार समाज में शौचाचार की भावना प्रबल हो गयी। ब्राह्मणों के कुछ वर्ण इतने अधिक रूढ़िवादी थे कि जो ब्राह्मण, जैन आदि वैदिकेतर धर्मों को स्वीकार कर लेते थे उन्हें भी वे कुजात समझते थे। कलिवर्ज्य का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया जिसके अन्तर्गत विदेश यात्रा करने तथा विदेशियों से सम्पर्क स्थापित करने पर रोक लगा दी गयी। विभिन्न जातियों तथा उपजातियों की उत्पत्ति के कारण सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त जटिल हो गयी।

इस समय भी समाज में ऐसे लोग थे जिन्होंने जाति–प्रथा की रूढ़ियों को मान्यता देने से इन्कार कर दिया। ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी के जैन आचार्यों, शाक्त–तांत्रिक सम्प्रदायों तथा चार्वाकों ने जाति–प्रथा उसके प्रतिबन्धों का विरोध करते हुए कर्म की महत्ता का प्रतिपादन किया। जैन आचार्य अमितगति (ग्यारहवीं शताब्दी) ने यह प्रतिपादित किया कि जाति का निर्धारण आचरण से होता है, जन्म या वंश से नहीं। बौद्ध ग्रन्थ लटकमेलक में भी जाति–पाति एवं छुआछुत की निन्दा की गयी है।

सामाजिक परिवेश में हुए परिवर्तन के कारण पूर्व मध्ययुग में परम्परागत वर्णों के कर्तव्यों को भी नये सिरे से निर्धारित किया गया। प्रथम बार पराशर स्मृति (600–902 ई0) में कृषि को ब्राह्मण वर्ण की वृत्ति बताया गया है। अभी तक के शास्त्रकारों ने केवल आपत्तिग्रस्त ब्राह्मणों के लिए कृषि विधान किया था। इसके टीकाकार माधवाचार्य (1300–1380 ई0) ने बताया है कि कलियुग में आपद्धर्म ही सामान्य धर्म बन जाता है। इससे पता चलता है कि पूर्व मध्यकाल में अधिकांश ब्राह्मणों ने कृषि करना या कराना प्रारम्भ कर दिया था। भूमिदानग्राही कुलीन ब्राह्मण शूद्रों के द्वारा कृषि करवाते थे। क्षत्रिय वर्ण इस समय दो भागों में बँट गया। पहला शासक वर्ग तथा जागीरदार वर्ग था जबकि दूसरे में सामान्य क्षत्रिय थे। पराशर ने कृषि को सामान्य क्षत्रिय की भी वृत्ति बताया है। वृहद्धर्म पुराण में ब्राह्मणों की पूजा को क्षत्रिय के प्रमुख कर्त्तव्यों में रखा गया है। जहाँ तक वैश्य तथा शूद्र वर्णों का प्रश्न है, इस काल में हम दोनों के कार्यों में समानता पाते हैं। पराशर ने 'कृषि, वाणिज्य तथा शिल्प' को दोनों का व्यवसाय बताया है। यह उल्लेखनीय है कि 'कृषि' को सभी वर्णों का समान्य धर्म माना गया है। यह समाज के बढ़ते हुए कृषिमूलक स्वरूप का सूचक है जो सामन्तवाद के प्रतिष्ठित होने के कारण पूर्व मध्यकाल में अत्यधिक स्पष्ट हो गया था।

1.6:3 नवीन वर्ग कायस्थ का उदय

एक जाति के रूप में कायस्थों का आविर्भाव एक महत्वपूर्ण सामाजिक घटना है। कायस्थों का सर्वप्रथम उल्लेख याज्ञवल्क्य स्मृति में है। यह हिसाब–किताब रखते थे और पद का अनुचित लाभ उठाकर प्रजा पर अत्याचार करते थे। कौन सी भूमि कर मुक्त है, किससे कौन–से कर लिए जाने हैं, किस वर्ग से विष्टि लेनी चाहिए–भूमि तथा राजस्व सम्बन्धी इन सभी कार्यों का हिसाब–किताब या दस्तावेज कायस्थों को ही रखने पड़ते थे। फलतः कायस्थों की संख्या में वृद्धि हुई। न्यायाधिकरण में न्याय–निर्णय लिखने का कार्य 'करणिक' करते थे। ये लेखक, गणक या दस्तावेज रखने वाले अनेक नामों से पुकारे जाते थे, जैसे कायस्थ,

करणिक, पुस्तपाल, अक्षपाटलिक, दीविर, लेखक इत्यादि। किन्तु कलांतर में ये सभी कायस्थ वर्ग में समाविष्ट हो गए।

धीरे–धीरे कायस्थों ने मूल वर्णों से सम्बन्ध तोड़ दिया और एक नया वर्ग बना लिया जिसका सामाजिक सम्पर्क, खान–पान, शादी–विवाह आदि अपने ही वर्ग तक सीमित रह गया। पैतृकता तथा खान–पान सम्बन्धी सामाजिक सम्पर्कों के आधार पर कायस्थों की एक पृथक् जाति बन गई। कायस्थों में विभिन्न वर्णों के लोग थे। जब उनकी अलग जाति बन गई
तो वर्ण–व्यवस्था के अंतर्गत सम्मिलित करने में ब्राह्मणों को असमंजस का सामना करना पड़ा। 10 वीं से 12 वीं शताब्दी के बीच विभिन्न स्थानों के आधार पर कायस्थों की उपजातियां भी बन गईं, जैसे बंगाल से आए हुए गौड़ कायस्थ, बल्लभीय कायस्थ, माथुर, श्रीवास्तव, निगम आदि।

कायस्थ केवल लेखक और गणक ही नहीं रहे बल्कि वे अनेक ऊंचे पदों पर भी नियुक्त हुए। श्रीवास्तव कायस्थ चंदेलों के यहां मंत्री तथा सेनापति पद पर नियुक्त हुए और उन्हें 'ठाक्कुर' की सामंत उपाधि भी मिली। इसी प्रकार माथुर कायस्थ चौहानों के यहां मुख्यमंत्री तथा कोषाधिकारी कहा गया है। हरिघोषकरण कायस्थ बंगल में वालालसेन का संधि विग्रहिक था। लक्ष्मणसेन का मुख्यमंत्री भी करण कायस्थ था।

क्षेमेंद्र के अनुसार कायस्थों के उदय से ब्रह्मणों के अधिकारों पर आघात पहुंचा। रामशरण शर्मा के मतानुसार इससे ब्रह्मणों का एकाधिकार समाप्त हो गया । कायस्थों में अप्रसन्न होने का दूसरा कारण था, भूमि–सम्बन्धी दस्तावेजों में कायस्थों द्वारा हेराफेरी। इससे ब्राह्मण, जिन्हें भूमि दान में मिलती थी, काफी परेशान थे। इसीलिए कायस्थ ब्रह्मणों के कोपभाजन बने।

1.6:4 वैश्य वर्ण का पतन तथा शूद्र वर्ण का उत्थान

पूर्व मध्यकालीन समाज में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि वैश्य वर्ण की समााजिक स्थिति पतनोन्मुख हुई तथा उन्हें शूद्रों के साथ समेट लिया गया। वैश्यों की स्थिति में गिरावट का मुख्य कारण पूर्व मध्यकाल के प्रथम चरण में व्यापार–वाणिज्य का ह्रास है। इस काल में आंतरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के व्यापार का ह्रास हुआ, जिसके कारण वैश्य वर्ण अत्यन्त निर्धन हो गया। इस समय शूद्रों का सम्बन्ध कृषि के साथ हो जाने से उनकी आर्थिक दशा पहले से अधिक अच्छी हो गई। इस काल के कुछ ग्रन्थ भी वैश्यों की दीन–हीन दशा का चित्रण करते हैं। विष्णुपुराण में कहा गया है कि कलियुग में वैश्य कृषि तथा व्यापार छोड़ देंगे तथा अपनी जीविका दासकर्म एवं कलाओं द्वारा कमायेंगे। विष्णु तथा वायु पुराण तो यहाँ तक बताते हैं कि कलियुग में वैश्य वर्ण वस्तुतः विलुप्त हो जायेगा। वैश्यों की यह स्थिति सामन्तों तथा जागीरदारों के अविभार्व एवं व्यापार–वाणिज्य में ह्रास के कारण हुई।

जहाँ तक शूद्र वर्ण का प्रश्न है, हम देखते हैं कि पूर्व मध्यकाल के अनेक विचारक उन्हें कृषि–कार्य से सम्बन्धित करते हैं। स्मृतिकार देवल ने कृषि को वैश्य तथा शूद्र दोनों का समान कार्य बताया है। शूद्रों की स्थिति में यह परिवर्तन सामन्ती प्रवृत्तियों के विकसित हो जाने के कारण हुआ। भूमि अनुदानों की अधिकता के कारण सामन्तों तथा भूस्वामियों की संख्या अधिक हो गयी। इन्हें अपने खेतों पर कार्य करने के लिए बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता पड़ी। इसकी पूर्ति शूद्र वर्ण द्वारा ही सम्भव थी जो संख्या में अत्यधिक था। प्रभूत उत्पादन के कारण शूद्रों को भी कृषि की आय का अच्छा लाभ प्राप्त हुआ, जिससे उनकी आर्थिक दशा काफी अच्छी हो गयी। इस प्रकार उन्होंने कृषि को वैश्यों के अधिकार से छीन लिया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अब वैश्य, कृषि के अधिकारी नहीं रहे। उनमें से कुछ निम्न श्रेणी के लोग शूद्र वर्ण के साथ संयुक्त हो गये। किन्तु ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी में, जब व्यापार–वाणिज्य का पुनरूत्थान हुआ, तब वैश्य वर्ण की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

1.6:5 अंतर्जातीय विवाह

तथाकथित क्षत्रियों में बाह्य तथा आदिवासी जातियों के समावेश के कारण ब्राह्मण ने, रक्तशुद्धि की भावना से प्रेरित होकर, विवाह एवं खान–पान के नियम अत्यधिक कठोर बना दिए थे। अंतर्जातीय विवाहों को हतोत्साहित करने के लिए औशन तथा व्यास स्मृतियों में बताया गया कि अनुलोम अंतर्जातीय विवाह से उत्पन्न संतान की जाति माता पर आधारित होगी, पिता पर नहीं। इस नियम की पुष्टि पूर्वमध्यकालीन अभिलेखों से भी होती है। अलबरूनी ने भी लिखा है कि बच्चे की जाति माता की होती है, पिता की नहीं।

विवाह–सम्बन्धी निषेध के साथ–साथ भोजन–सम्बन्धी निषेध के नियम भी कट्टर हो गए। माँस, मदिरा, प्याज, लहसुन इत्यादि ब्राह्मणों के लिए वर्जित थे। ह्वेनसांग ने खान–पान के सम्बन्ध में ब्राह्मणों की कट्टरता का उल्लेख किया है। इस युग में धीरे–धीरे भोजन–सम्बन्धी नियम इतने कठोर हो गए कि ब्राह्मण, ब्राह्मण के हाथ का बना हुआ भोजन नहीं खा सकता था।

1.6:6 अस्पृश्यता

अस्पृश्यता में वृद्धि इस काल में दिखाई देती है। पूर्वकाल में चाण्डालों को तो अस्पृश्य माना ही जाता था, लेकिन अब कई जातियों को अस्पृश्य बताया गया। स्मृतियों में धोबी, चमार, नट, वरूड़, कैवर्त, धीवर, भेद तथा भिल्ल जातियों को अस्पृश्य माना है। देवयात्रा, विवाह, यज्ञोत्सव देश पर आक्रमण के समय अस्पृश्यता का भाव त्याग दिया जाता था।

1.6:7 स्त्रियों की दशा

स्त्रियों की स्थिति में पहले की तुलना में गिरावट आ गई थी। स्त्रियों की गिरती हुई स्थिति के कई कारण थे। अब विवाह की उम्र बहुत कम हो गई थी। इस काल के स्मृति तथा निबंध ग्रंथों के अनुसार स्त्री का विवाह 8 से 10 वर्ष की आयु तक हो जाना चाहिए। आदर्श विवाह आठ वर्ष का माना जाता था। आठ वर्ष की लड़की को 'गौरी' व 10 वर्ष की लड़की को 'कन्या' कहा गया है। बाल विवाह का स्त्रियों की शिक्षा पर भी असर पड़ा। जैसा कि कामसूत्र तथा मध्यकालीन साहित्य से प्रकट होता है, राजघराने, उच्चाधिकारियों और समृद्ध वैश्य परिवारों की स्त्रियां ही शिक्षित होती थी।

यद्यपि सती–प्रथा के कुछ उदाहरण पूर्व काल में भी मिलते हैं किन्तु 9 वीं शताब्दी से सती प्रथा अत्यधिक प्रचलित हो गई। इस प्रथा के बढ़ने के कई कारण थे जैसे वैराग्य तथा कठोर सयंम सम्बन्धी विचारधारा का समाज पर–विशेषतः ब्राह्मण वर्ग पर–बढ़ता हुआ प्रभाव, पनुर्विवाह का निषेध, विधवाओं के सम्पत्ति विषयक अधिकार को विलंब से तथा हिचकिचाहट के साथ मान्यता देना आदि। विधवाओं के इस सम्पत्तिगत अधिकार पर कई तरह के प्रतिबंधों ने विधवाओं की दशा को शोचनीय बना दिया और पति के साथ सती होने में ही उसे जीवन के इन कष्टों से मुक्ति दिखाई दी। अंगिरा, हारीत आदि पूर्वमध्यकालीन स्मृतियों तथा अपरार्की, विज्ञानेश्वर आदि निबंधकारों ने सती प्रथा की प्रशंसा की।

1.6:8 दासप्रथा

पूर्व मध्यकाल में दास प्रथा में वृद्धि हुई। केवल राजा, सामंत और गृहस्थ के यहाँ ही नहीं वरन् बौद्ध मठों, वैष्णव, शैव और शाक्त मंदिरों में भी दास रहते थे। इस युग में दास प्रथा के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए धर्म शास्त्रों के अतिरिक्त जैन ग्रन्थों, शिलालेखों तथा विदेशी यात्रियों के वृत्तांतों से भी जनकारी प्राप्त होती है। विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा में नारद द्वारा कथित 15 प्रकार के दासों का उल्लेख किया है। इनमें से 7–8 प्रकार के दासों के अस्तित्व की पुष्टि अर्थशास्त्र के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों तथा शिलालेखों

से होती है। जैन ग्रन्थ समराइच्छकहा तथा प्रबंधचिन्तामणि में दास व्यापार की अनेक कथाएं हैं जिनसे पता चलता है कि दास–व्यापार नियमित रूप से चल रहा था।

बहुत से लोग ऋण चुकाने के लिए अपने को दास रूप में बेच देते थे। मनु की मेधातिथि की टीका से पता चलता है कि यह प्रथा अधिक प्रचलित थी, हालांकि देश, धर्म और राजा द्वारा बनाए गए नियम के अनुकूल होते हुए भी, शास्त्र इसके विरूद्ध था। विज्ञानेश्वर ने अपनी मिताक्षरा में इस प्रथा का अनुमोदन किया है। ऋण न चुका सकने के कारण ऋणी स्वयं को ऋणदाता का दास बना लेता था। पूर्व काल की भांति इस युग में भी दास प्रायः घरेलू कामों में ही लगाए जाते थे।

इस काल के नियामकों ने दासों के जान–माल के अधिकारों की रक्षा के लिए कोई नियम नहीं दिए हैं, जिससे स्पष्ट है कि उनकी दशा पूर्व काल की अपेक्षा अधिक गिरी हुई थी। त्रिपष्टिशलाकाचरित में कहा गया है कि सामान्यतः दासों को खच्चर की तरह पीटना चाहिए, उन्हें भारी बोझ ढोना चाहिए और भूख–प्यास सहन करनी चाहिए। लेखापद्धति से पता चलता है कि दासियों को खरीदते समय उनसे यह स्वीकारोक्ति ली जाती थी कि भागने, चोरी करने, मालिक की निंदा करने अथवा मालिक और उसके सम्बन्धियों की आज्ञा की अवहेलना करने पर स्वामी को उसे पीटने तथा बाँधने का पूरा–पूरा अधिकार था।किसी भी लेखों में दास–दासियों को मुक्त करने का कोई उल्लेख नहीं है। अतिरिक्त परिश्रम अथवा स्वामी की कृपा से दासत्व से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। लेखापद्धति में कहा गया है कि दासी के भाई और पिता धन देकर उसे वापस नहीं ले सकते।

1.7: धार्मिक स्थिति

इस युग में ब्राह्मण और बौद्ध धर्म का नई दिशा में विस्तार हुआ। नवीन सिद्धांतों एवं धार्मिक क्रियाओं का समावेश हुआ। इन धर्मों के नए रूप समाज के सामने आए। जैन धर्म भी इस प्रगति से अप्रभावित न रह सका, यद्यपि इसमें परिवर्तन की गति धीमी रही।

धार्मिक विचारों के विकास का एक प्रबल कारण तांत्रिक पूजा और उपासना का वेग है। जिसने बौद्ध धर्म के मूल रूप को ही बदल दिया । इन तांत्रिक विचारों ने ब्राह्मण धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों में में भी प्रवेश किया और उनके आधारभूत विचारों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों ने एक–दूसरे को प्रभावित किया। वैष्णव और शैव धर्म की तरह बौद्ध और जैन धर्मों में ईश्वरवादी प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं। बुद्ध और जिन् देवता माने जाने लगे और उनकी मूर्तियों की पूजा मंदिर में भक्तिमय गीतों से होने लगी। बुद्ध और जिन् को विष्णु का अवतार माना जाने लगा।

1.7:1 वैष्णव सम्प्रदाय

गुप्त काल में वैष्णव धर्म पूर्ण रूप से विकसित हो चुका था और विष्णु के अवतारों का सिद्धांत स्थापित हो चुका था। अभिलेखों तथा स्मारकों से विदित होता है कि गुप्तोत्तर व हर्षोत्तर काल में वैष्णव धर्म भारतवर्ष में प्रचलित था और अनेक राजवंश इसके अनुयायी थे, जैसे कश्मीर के दुर्लभवर्धन, ललितादित्य, बंगाल के सेन नरेश, प्रतिहार नरेश देवशक्ति और अनेक गुहिल, चंदेल व चौहान नरेश। किन्तु वैष्णव धर्म का गढ़ दक्षिण मे तमिल प्रदेश में था। यहां वैष्णव मत के आदि प्रवर्तक अलवार संत थे। अलवार भक्ति आंदोलन की प्रमुख विशेषता है कि यह आंदोलन मूलतः भावनात्मक है, दार्शनिक नहीं। उनकी दृष्टि में भक्ति, प्रेम तथा शरणागति से मोक्ष की प्राप्ति संभव है। वे एकेश्वरवादी थे और विष्णु की ही पूजा करते थे। विष्णु परमदेव विश्वात्मा, सर्वज्ञानमय, अनंत, अमेय है, असीम ब्रह्म होते हुए भी प्राणियों के अनुग्रह के लिए वह पृथ्वी पर अवतार लेता है और मूर्ति के रूप में सीमित रहता है। अवतारों में कृष्ण का अवतार लोकप्रिय है। विष्णु के अर्चनावतारों की पूजा से बैकुंठ में ईश्वर की सेवा का अवसर मिलता है।

प्रपत्ति द्वारा ईश्वर से ऐक्य ऊंच और नीच सभी को प्राप्त हो सकता है। इसमें ज्ञान, सामाजिक स्तर तथा व्रत के बंधन नहीं हैं। अलवार में कुछ शूद्र थे, जैसे तिरूमंगाई वेल्लाल जाति का था।

1.7:2 शैव सम्प्रदाय

हिन्दू धर्म के अंतर्गत जितने सम्प्रदाय थे उनमें शैव सम्प्रदाय सबसे अधिक प्रबल था। जनसाधारण के अतिरिक्त अनेक राजवंशों ने शैव धर्म अपनाया और मंदिर बनवाये। शैव धर्म अनेक मतों में बंटा हुआ था। इनमें सबसे अधिक प्राचीन पाशुपत मत था। इसके प्रवर्तक लकुलीश थे। उसके बाद उनके शिष्यों की परम्परा बनी रही।

शैव का अतिमार्गी रूप भी था जिसे कापालिक और कालुमख के नाम से जाना जाता है। रामानुज के श्रीभाष्य मे कापालिकों का वर्णन इस प्रकार हैः वे खोपड़ी में भोजन करते थे, शरीर में राख मलते थे, हाथ में गदा रखते थे। सुरापात्र में विद्यमान देवता की पूजा करते थे। मालती माधव नाटक मे कापालिकों को जटाधारण किए हुए दिखाया गया है। वे अपने साथ खट्वांग (एक शस्त्र) रखते थे। चामुंडा को मनुष्य की बलि देते थे। कापालिकों और कालमुखों के धार्मिक कृत्यों में अनेक तांत्रिक क्रियाएं सम्मिलित थीं। वे नरमुंडमाला पहनते थे और श्मशान के समीप निवास करते थे। ये कालमुख भैरव की देवता के रूप में आराधना करते थे और भैरव को नरबलि तथा मदिरा चढ़ाई जाती थी। वे भक्ष्याभक्ष्य सभी ग्रहण करते थे। उनका विश्वास था कि मदिरापान आदि घृणित पदार्थों के भक्षण से चमत्कारिक शक्ति पैदा होती है और भक्ष्याभक्ष्य खान–पान तथा वीभत्स तांत्रिक क्रियाओं से सिद्धि तथा मोक्ष प्राप्ति होती है। किन्तु वास्तव में ये विचार मुनष्य की बुद्धि और आत्मा की पथभ्रष्टता, मतिभ्रम और नैतिक ह्रास के द्योतक हैं।

1.7:3 शाक्त सम्प्रदाय

शक्ति–पूजा भारत में प्राचीन काल से चली आ रही थी किन्तु पूर्व मध्यकाल में यह बहुत व्यापक हो गई। शक्ति पूजा के मूल में यह दार्शनिक विचार है कि ईश्वर अपनी शक्ति की सहायता से ही सृष्टि धारण एवं संहार करता है। परिणाम यह हुआ कि ईश्वरवादी संप्रदायों में, शक्ति, परमदेवता की अर्द्धांगिनी के रूप में संसार में प्रचलित हो गई। छठी शताब्दी से शक्ति–उपासना स्पष्ट एवं निश्चित रूप में दिखाई देती है और नवीं शताब्दी से तो इस मत का प्रबल प्रभाव दिखाई देता है। मध्यप्रदेश और उड़ीसा में चौंसठ योगिनियों के मंदिर हैं, जिनमें मातृदेवी चौंसठ रूपों में दिखाई गई हैं। इन चौंसठ योगिनियों के मंदिरों में तीन भेड़ाघाट (जबलपुर के पास), खजुराहो तथा ड़ीसा में सम्भलपुर में है। चौथा मंदिर कालाहंडी में और पांचवां ललितपुर (उत्तरप्रदेश) में है। जबलपुर और खजुराहों के मंदिर 9 वीं शताब्दी के हैं। बंगाल में शबर जाति के लोग शबरोत्सव पर पत्तों से आच्छादित पर्णेश्वरी की पूजा करते हैं। तांत्रिक पूजा की वृद्धि के साथ शक्ति मत का और विस्तार हुआ और अधिकंश तांत्रिक ग्रन्थों की रचना सीमावर्ती आदिवासी क्षेत्र में हुई।

1.7:4 गणेश पूजा

यद्यपि अग्नि और बराह पुराण में गणेश को उद्देश्य–पूर्ति में विघ्न डालने वाला कहा गया है, किन्तु जनसाधारण में गणेश को सिद्धि देने वाला तथा उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक देवता माना गया है। दसवीं शताब्दी में वह हिन्दू परिवार का लोकप्रिय देवता हो गया। विशेषकर पश्चिमी भारत में गणपति पूजा बहुत प्रचलित हो गई और गणपत्य संप्रदाय का आविर्भाव हुआ जो कि गणपति को सब देवताओं में श्रेष्ठ मानने लगा। गणेश के उपलक्ष में गणेश चतुर्दशी के व्रत का माहात्म्य अग्नि पुराण में दिया गया है जिसे 9 वीं–10वीं शताब्दी की रचना माना जाता है। गणपति–पूजा का जब अधिक प्रचलन हुआ तो अनेक रूपों मे गणेश की मूर्तियां बनाई जाने लगी।

1.7:5 सूर्य पूजा

भारत में सूर्य पूजा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रही है किन्तु बृहत् संहिता, भविष्य पुराण, अभिलेखों, अनेक सूर्य प्रतिमाओं और मंदिरों से पता चलता है कि सूर्य इस युग के अधिक लोकप्रसिद्ध था। आदित्य सेन और जीवितगुप्त के शाहपुर और देववर्नाक अभिलेख में सूर्य–पूजा का उल्लेख है।

कुछ प्रतिहार नरेश परम आदित्यभक्त थे। पालों के समय के बंगाल में सूर्य की अनेक मूर्तियां मिली हैं जिससे यह अनुमान स्वाभाविक है कि सूर्यपूजा लोकप्रसिद्ध थी। बंगाल के सेन शासक विश्वरूप सेन सूर्योपासक होने के कारण 'परमसोर' पदवी से विभूषित किए गए। ललितादित्य, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, सूर्योपासक था। उसने कश्मीर में सूर्य का प्रसिद्ध मार्तण्ड मंदिर बनवाया। इसके वर्तमान ध्वंसावशेष उसकी प्राचीन भव्यता का आभास देते हैं।

सूर्य पूजा का प्रसिद्ध केंद्र मुल्तान में था। मुल्तान के सूर्य मंदिर का उल्लेख ह्वेनसांग , आवूजइद, अलमसूदी तथा अलबरूनी ने किया है।

1.7:6 तांत्रिक सम्प्रदाय

तांत्रिक धर्म वह धर्म है जिसमें चर्य्या (ब्रह्म धार्मिक कृत्य), क्रिया (मंदिर निर्माण तथा मूर्ति पूजा), योग तथा ज्ञान के द्वारा मुक्ति और मुक्ति से इस लोक की सिद्धि, ऐश्वर्य तथा इष्टदेव के साथ अद्वैत भावना प्राप्त की जा सकती है। तांत्रिक रचनाओं का प्रारंभ छठी शताब्दी माना गया है, यद्यपि बौद्ध तंत्र और भी पहले के हैं।

पूर्व मध्य युग में तांत्रिक धर्म की व्यापक लोकप्रियता का प्रमाण वैष्णव, शैव, बौद्ध आदि अनेक प्राचीन धर्मों में दृष्टिगोचर होता है। जहां तक इस प्रवृत्ति के कारणों का प्रश्न है, यह विचारणीय तथ्य है कि जिस सामाजिक–आर्थिक संरचना का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, उसका स्पष्ट प्रभाव तांत्रिक प्रथाओं की बढ़ती लोकप्रियता पर भी दृष्टिगोचर होता है। भूमिगत बिचौलियों के उदय एवं कृषि के प्रसार के परिप्रेक्ष्य में उपरोक्त विकास को देखने का प्रयास किया गया है। तांत्रिक धर्म के तत्वों में केवल पंच मकार–मद्य, माँस, मत्स्य, मैथुन एवं मुद्रा ही नहीं अपितु मातृदेवी पंथ की महत्ता भी महत्वपूर्ण है।

भूमिदान अनुदानों के माध्यम से इन पिछड़े जनजातीय क्षेत्रों में को सभ्यता के कगार से हटाकर मुख्या धारा में मिलाने के प्रयास के फलस्वरूप तांत्रिक प्रथाओं का समागम अन्य धर्मों में भी हो गया। मिथुन एवं मातृदेवी प्रथाओं का, प्रजननशक्ति से सम्बन्ध होने के कारण, कृषिगत समुदायों में विशेष स्थान था और इसीलिए तांत्रिक धर्म में भी ये विशेश रूप से हमारे सामने आते हैं। जब बौद्ध संघ भी अपने द्वार दासों एवं ऋणियों के लिए बंद कर रहा था, तब तांत्रिक चक्र ने वर्ण, लिंग आदि का विचार किए बिना अपने द्वार सभी प्रकार के लोगों के लिए खोल दिए।

1.7:7 बौद्ध धर्म

अधिकांश विद्वानों का मत है कि सातवीं शताब्दी से बौद्ध धर्म का पतन स्पष्ट रूप से प्रारम्भ हो गया था। पाल राजाओं के संरक्षण में बंगाल और बिहार में बौद्ध धर्म सम्पन्न अवस्था में था। बोधगया, नालंदा, ओदंतपुरी, विक्रमशील पुरानी परंपरा को बनाए हुए थे किन्तु यहां भी वज्रयान और कालचक्रयान में बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांतों पर दूषित विचारों का बोलबाला हो गया था और वे बौद्ध धर्म को पतन की ओर अग्रसर कर रहे थे। 9 वीं से 12 वीं सदी तक बंगाल और बिहार इस दूषित पतनशील बौद्ध धर्म के प्रभाव क्षेत्र बने रहे किंतु बंगाल में सेन वंशीय राजाओं के आगमन से ब्राह्मण धर्म ने बौद्ध धर्म को निष्कासित कर दिया और बिहार में बख्तियारुद्दीन खिलजी के विध्वंसात्मक आक्रमण ने बौद्ध धर्म का उन्मूलन कर दिया।

1.7:8 जैन धर्म

इस समय तक जैन धर्म का पूर्ण रूप से विकास हो चुका था और इसके अनेक संप्रदाय थे जिनमे से दिगंबर और श्वेतांबर महत्वपूर्ण थे। राजस्थान, गुजरात तथा मालवा के अतिरिक्त उत्तर भारत में जैन धर्म को राजाओं का आश्रय नहीं मिला। किन्तु वैश्य वर्ग में यह लोकप्रिय था। इन राजपूत राजाओं से जैन धर्म को आश्रय तथा सम्मान मिला। नागभट्ट द्वितीय के जैन आचाार्य अक्षदेव से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे। राजस्थान में अनेक जैन मंदिरों का निर्माण हुआ जिनमें ओसिया में महावीर का मंदिर प्रसिद्ध है। मांडोर के प्रतिहार नरेश ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे।

जैन धर्म को लुप्त होने से बचाने तथा एक सजीव तथा उत्प्रेरक धर्म बनाने का श्रेय राजस्थान के अनेक जैनाचार्यों को है। इनमें से हरिभद्र सूरि का नाम उल्लेखनीय है। मठों और चैत्यों के जैनाचार्य, मंदिरों के लिए एकत्रित धर्म का अपने निजी व्यय के लिए उपयोग कर रहे थे और सरल जीवन को त्यागकर विलासी जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनके प्रवचन सरल और सुग्राह्य नहीं थे। वे धनी लोगों को प्रसन्न करने में लगे थे। हरिभद्र सूरि ने इन बुराइयों के विरूद्ध आंदोलन प्रारम्भ किया और जैन आचार्यों और श्रावकों में धार्मिक सुधार सम्बन्धी विचारों का प्रचार किया। हरिभद्र ने विद्वानों के लिए ही नहीं वरन् जनसाधारण के लिए भी ग्रंथों की रचना की। इनमें अनेकान्त विजय तथा धर्मबिन्दु उल्लेखनीय हैं।

1.8 सारांश

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि वर्धन वंश के पश्चात् भारत अनेक क्षेत्रीय शक्तियों में बंटकर रह गया। जिनके मध्य निरंतर युद्ध और संघर्ष चलता रहा। सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में कठोरता और रूढ़िवादिता आ गई। कठोर वर्ण व्यवस्था का पालन किया गया। नए–नए राजवंश एवं नई जातियों का उदय हुआ। राजपूत परमार, चन्देल और चौहान नामक शक्तियों में केन्द्रित होने लगे। इसी प्रकार एक नई कायस्थ जातियों का भी उदय हुआ। इस काल में वैश्य शक्ति का ह्रास हुआ, वहीं शूद्रों की शक्ति में वृद्धि हुई। निःसंदेह यह काल राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था का एक संक्रमण काल था, जिसने भारत के सभी वर्गों को प्रभावित किया।

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कन्नौज के लिए त्रिपक्षीय संघर्ष का वर्णन कीजिए।
2. भारत में सामन्तवाद के उद्‌भव तथा विकास के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।
3. हर्षोत्तर भारत में धार्मिक स्थिति का उल्लेख कीजिए।
4. हर्षोत्तर काल में उत्तरी भारत में कौन–से नये राजवंशों का उदय हुआ। समीक्षा कीजिए।
5. हर्षोत्तर भारत में सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन कीजिए।
6. कायस्थ जाति के उदय पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

1.10 सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. द्विजेन्द्रनारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली–प्राचीन भारत
2. हरीशचंद्र वर्मा–मध्यकालीन भारत
3. मणिकांत सिंह–भारतीय इतिहास
4. के0सी0 श्रीवास्तव–प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति

पल्लव, चालुक्य व चोल कालीन दक्षिण भारत

3.1 प्रस्तावना

3.2 उददेश्य

3.3 राजनीतिक घटनाक्रम: राजवंशों का प्रारम्भिक इतिहास

3.3.1 पल्लव

3.3.2 चालुक्य

3.3.3 पाण्ड्य

3.3.4 चेर

3.3.5 राष्ट्रकूट

3.3.6 चोल

3.4 राजनीतिक संघर्ष

3.5 राज्य और प्रशासन

3.5.1 राजसत्ता और राज्य का स्वरूप

3.5.2 प्रशासन

3.5.2.1 राजकुल और अधिकारी-वर्ग

3.5.2.2 राजस्व प्रशासन

3.5.2.3 प्रांतीय/ स्थानीय प्रशासन

3.5.2.4 सैन्य संगठन

3.6 सार संक्षेप

3.7 संदर्भ ग्रंथ

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

छठीं शताब्दी ईस्वी के आरम्भ में दक्कन व दक्षिण भारत में पूर्ववर्ती काल के नायकतंत्र व छोटे राज्यों का रूपांतरण बड़े राज्यो में हुआ, हालाकि यह नये तरह का राज्य तीसरी शत्ताब्दी ईस्वी से इन क्षेत्रों के राजनीतिक ढाँचों में देखी गई निरंतरताएं व अनिरंतरताएं दोनो दर्शाते है। इन राज्यो में तीन, नामतः पश्चिमी दक्कन (उत्तरी कर्णाटक का बीजापुर क्षेत्र) में बादामी या वातापी के चालुक्य, तमिल नाडु में कांची के पल्लव व मदुरई के पाण्ड्य बड़ी शक्तियाँ बनकर उभरे, और परस्पर को हराकर अपना-अपना क्षेत्रिय विस्तार करने व दक्षिण भारत पर अपना वर्जस्व स्थापित

करने के लिए छठीं शताब्दी के आरम्भ से नौवीं शताब्दी के अंत तक संघर्ष करते रहे। इसलिए प्रायद्विपीय भारत में छठी से नौवीं शताब्दी ईस्वी के राजनीतिक इतिहास को इन तीन शक्तियों के बीच परस्पर संहार-युद्धों द्वारा चिन्हित किया जाता है। नौवीं शताब्दी के मध्य में मान्यखेट (वर्तमान मालखेड, कर्णाटक) के राष्ट्रकूटों ने बादामी के चालुक्यों को और नौवीं शताब्दी के अंत में चोलों ने पल्ल्वों विस्थापित कर दिया, पर पाण्ड्य 14वीं शताब्दी तक अपना शासन कायम रख पाएँ। इनके अलावा इस काल में कुछ छोटे राज्यों का भी उदय हुआ, नामतः बादामी के चालुक्यों की दो अतिरिक्त शाखाएं, लाट (दक्षिणी गुजराट) के चालुक्य व वेंगी (पूर्वी आंध्र) के पूर्वी चालुक्य जो लगभग स्वतंत्र रूप से शासन करते थे; मैसूर (दक्षिणी कर्णाटक) के गंग; रेनंदु (रायलसीमा, आंध्र) के तेलेगु-चोल (जो पूर्ववर्ती संगम काल में तमिल क्षेत्र [उरैयूर] के चोलों का वंशज होने का दावा करते थे); तथा केरल के चेर। गंगों व पूर्वी चालुक्यों ने चालुक्य-पल्लव-पाण्ड्य संघर्ष में बीच-बीच में हस्तक्षेप भी किया।यह सारे राज्य कमोबेश वैदिक व आगमीय धर्म द्वारा प्रभावित हुए। जहाँ एक ओर हिदु धर्म में, विशेषतः उसके कुछ पंथों में, एक हद तक बौद्ध व जैन धर्म के प्रति उदासीन या द्वेष्पूर्ण भावना विकसित हुई, वहीं दुसरी ओर दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन ने हिंदु धर्म के विकास में तेज़ी लाने के साथ साथ आम जनता को उत्साहित किया तथा काफ़ी मात्रा में हृदय-स्पर्शी भक्ति साहित्य और दार्शनिक चिंतन को जन्म दिया। इस धार्मिक आंदोलन के प्रभाव से स्थापत्य-कला, मूर्ति-कला, चित्र-कला व संगीत में भी उल्लेखनीय विकास हुआ। अतः, इस काल में निरंतर राजनीतिक संघर्ष के साथ-साथ या उसके बावजुद काफ़ी सांस्कृतिक विकास हुआ।

नौवीं शताब्दी के मध्य में चोल शासन की शुरुआत हुई और 13वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उसका अंत हो गया। इस समय काल में चोल दक्षिण भारत का सबसे शक्तिशाली राज्य बनकर उभरे, पर उनके वर्जस्व को निरंतर चुनौति मिलती रही उत्तर में—पहले राष्ट्रकूटों से, फिर कल्याणी के चालुक्यों या पश्चिमी चालुक्यों से। अपने उत्तरी प्रतिस्पर्धियों के साथ संघर्ष में चोलों को मदद मिली पूर्वी चालुक्यों से जो उनके सामंत थे और उनसे वैवाहिक संबंध रखते थे।12वीं शताब्दी के अंत में यह बड़े राज्य आपसी युद्धों से कमज़ोर हो गए, और छोटे राज्य, जो उनके अधीनस्थ थे जैसे सुदूर दक्षिण में पाण्ड्य, मैसूर के होयसल और उत्तरी दक्कन में यादव और काकतीय, स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर अपनी शक्ति और क्षेत्र का विस्तार करने लगे।

3.2 उद्‌देश्य

इस इकाई का उद्‌देश्य पल्लव, चालुक्य व चोल कालीन दक्षिण भारत के विषय में जानकारी प्रदान करना है, इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- दक्षिण के राजवंशों के प्रारंभिक इतिहास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- दक्षिण के राजवंशों के बीच राजनीतिक संघर्ष की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- राज्य और प्रशासन तथा राजसत्ता और राज्य के स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- राजकुल और अधिकारी-वर्ग के पिषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे

- प्रशासन और सैन्य संगठन के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे

3.4 राजनीतिक घटनाक्रम: राजवंशों का प्रारम्भिक इतिहास

3.3.1 पल्लव

तमिल नाडु में स्थित कांची के पल्लवों ने तीसरी शताब्दी के अंत में दक्षिण आंध्र के गुंतुर ज़िले में कृष्णा नदी के आस-पास के इलाके में इक्षवाकुओं को विस्थापित कर अपने शासन की शुरुआत की थी। इनमें काफ़ी उत्तर भारतीय प्रभाव दिखता है। पहले के कुछ विद्वानों के अनुसार पल्ल्व पह्लव थे व भारत में बाहर से आए थे, पर कई विद्वान अब उनको दक्षिण भारतीय मूल का या उत्तर और दक्षिण भारतीय मिश्र मूल का मानते है। पल्लव वंश का प्राचीनतम ज्ञात अभिलेख, गुंतुर ज़िले से प्राप्त, तमिल में उत्कीर्ण व राजा सिंहवर्मन के छठें शासन-वर्ष में जारी किया गया पल्लंकोयिल ताम्र-पत्र अभिलेख कांचीपुरम के निकट स्थित एक जैन मंदिर को दिए गए अनुदान का ज़िक्र करता है। प्राकृत में दो और ताम्र-पत्र अभिलेख उत्तर में किए गए कुछ अनुदानों का विवरण देते है। संस्कृत में 12 ताम्र-पत्र अभिलेख स. 350 से 550 ईस्वी तक की प्रारम्भिक पल्लव वंशावली (शासकों की 8-9 पीढ़ीयाँ) की जानकारी देते है। इनमें से ज़्यादातर अभिलेख, संस्कृत व प्राकृत, ब्राह्मणों या मंदिरों को दिए गए अनुदानों से संबंधित है। इन अभिलेखों में अनुदान में दिए गए सारे गाँव दक्षिण आंध्र (यानी गुंतुर व नेल्लोर ज़िले) में स्थित थे सिवाय एक के, जो दक्षिणी तमिल नाडु में स्थित था। टी. महालिंगम के अनुसार, इससे यह प्रतीत होता है कि इन अभिलेखों में ज़िक्र किया गया कांचीपुरम तमिल नाडु का प्रसिद्ध कांचीपुरम नहीं, बल्कि शायद कृष्णा नदीमुख के पास स्थित कोई गाँव था, हालांकि इस सुझाव की पुष्टि करने के लिए कोई ठोस पुरातात्विक सबुत नहीं है। 5वीं शताब्दी तक पल्लवों का शासन पेन्नार नदी के दक्षिण तक स्थापित हो चुका था, और इसी शताब्दी में पल्लवों ने कदम्बों व गंगों के साथ क करीबी सम्बंध स्थापित किए उनके अधिपति व मित्र के रूप में। पल्लवों के क्षेत्र को तोण्डईमण्डलम् कहा जाता है, जो उत्तरी पेन्नार व उत्तरी वेल्लार नदीयों के बीच की भूमि, या कांचीपुरम व महाबलिपुरम तथा इनके आस-पास का इलाका है, ।

पल्लंकोयिल अभिलेख में राजा सिंहवर्मन का विवरण नहीं बल्कि उनके पुत्र और उत्तराधिकारी सिंहविष्णु की उपलब्धियों के बारे में विस्तार से बताया गया है। इस अभिलेख और बाद के अभिलेखों के अनुसार सिंहविष्णु (560-80 ईस्वी) ने तेलेगु चोलों को हराकर कावेरी तक के क्षेत्र को अपने अधीन किया, कलभ्रों द्वारा फैलाए राजनीतिक उपद्रवों का अंत किया, उत्तर में भी कुछ प्रतिद्वंद्वी शासकों को हराया, और पाण्ड्यों तथा श्री लंका के शासक से भी युद्ध किया। विष्णु के उपासक सिंहविष्णु ने *अवनीसिंह* ('पृथ्वी का सिंह') उपाधी ली। छठी शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में पल्ल्वों का एक बढ़ी शक्ति के रूप में उदय का श्रेय सिंहविष्णु को जाता है। उनके पुत्र और उत्तराधिआरी थे महेंद्रवर्मन-I (580-630 ईस्वी), जिनके शासन काल में पल्लवों का क्षेत्र उत्तर में कृष्णा तक बढ़ कर कंदर और विष्णुकुण्डिन राज्यों की सीमा तक पहुँच गया। महेंद्रवर्मन-I कला के संरक्षक तथा स्वयं एक कवि, संगीतज्ञ व मंदिर-निर्माता के रूप में प्रसिद्ध हुए। उनकी साहित्यिक रचनाएँ में उल्लेखनीय है *मत्तविलास*, *विचित्र-चित्त* और *गुणभद्र*। स्थापत्य-कला के क्षेत्र में उनके समय-काल में एक नयी शैली का आरंभ हुआ, नामतः गुफा-मंदिर। राजनीतिक क्षेत्र में उनके शासन काल

में ही कांची पर चालुक्य पुलकेशिन-II के आक्रमण से एक दीर्घ-कालिन पल्लव-चालुक्य संघर्ष की शुरुआत हुई। इसके बाद पल्लवों का शासन तमिल क्षेत्र तक ही सीमित रहा, हालांकि उन्होंने चालुक्यों के विरुद्ध कई सैन्य अभियान चलाए।

3.3.2 चालुक्य

चालुक्य शुरुआत में बनवासी (उत्तरी कन्नड़ ज़िला, कर्णाटक) के कदम्बों के अधीनस्थ शासक थे, पर बाद में उनसे स्वतंत्र हो गए। उनकी शक्ति का केंद्र था उत्तरी कर्णाटक में बादामी/वातापी और निकट्वर्ती ऐहोले, पर बाद में उन्होंने उत्तर में वाकाटक राज्य और पश्चिम में कुछ समुद्रतटीय क्षेत्रों को अपने अधीन कर लिया। छठी शताब्दी के मध्य में चालुक्यों को एक स्वतंत्र शक्तिशाली राजवंश के रूप में स्थापना की पुलकेशिन-I (535-66 ईस्वी) ने। उन्होंने 543-44 में बादामी में एक विशाल गढ़ का निर्मान किया और *अश्वमेध* समेत कई वैदिक श्रौत यज्ञ सम्पन्न कर कदम्बों से अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की। उनके पुत्र कीर्तिवर्मन-I (566/67-597/98 ईस्वी) बनवासी के कदम्बों, कोंकन के मौर्यो और बस्तर के नलों को हराकर राज्य का विस्तार किया। कोंकन पर विजय ने रेवतिद्वीप (गोआ) को चालुक्य साम्राज्य का हिस्सा बना दिया। उनके नाबालिग पुत्र पुलकेशिन-II के शासन-काल में उनके भाई और राज-प्रतिनिधि मंगलेश (597/8-609/10 ईस्वी) ने गुजराट, खांदेश और मालवा में कलचुरियों के क्षेत्र अर आक्रमण किया और रेवतिद्वीप के शासक के विद्रोह का दमन कर कोंकन पर चालुक्य शासन को पुनर्स्थापित किया। पुलकेशिन-II (609/10-42 ईस्वी) अपने चाचा मंगलेश के साथ संघर्ष में विजयी होकर 609-10 में सत्तारुढ़ हुए और महत्वपूर्ण सैन्य सफ़लताएं पाई, जिनका वर्णन रविकीर्ति द्वारा रचित ऐहोले प्रशस्ति (634-35 ईस्वी) में मिलता है। उन्होंने क्दम्बों को हराया, और दक्षिणी कन्ड़ के आलुपों, मैसूर के गंगों, कोंकन के मौर्यों, पूर्वी दक्कन के विष्णुकुण्डिनों, लाटों, मालवों, गुर्जरों, तथा कलिंग व दक्षिण कोसल के शासकों को अपनी अधीनता स्वीकार करने पर बाध्य किया। नर्मदा के तट पर हर्षवर्धन के साथ हुए युद्ध में उनकी विजय को सबसे अविस्मरणीय माना जाता है। पल्लवों की राजधानी कांची पर उनके सफल आक्रमण से शुरुआत हुई दीर्घकालीन पल्लव-चालुक्य संघर्ष की। उनके शासन में पूर्वी चालुक्य पश्चिमी और मध्य दक्कन में सबसे शक्तिशाली राजवंश बना। पुलकेशिन-II ने 625-26 ईस्वी में फ़ारसी शासक खुसरु-II के साथ राज-दूतों का भी आदान-प्रदान किया। उनके भाई विष्णुवर्धन ने वेंगी (पूर्वी आंध्र) में और पुत्र जयसिंहवर्मन ने लाट (दक्षिणी गुजराट) में दो अतिरिक्त राजवंशों की भी स्थापना की, जो बाद में बादामी के चालुक्यों से स्वतंत्र हो गए।

3.3.3 पाण्ड्य

दक्षिण भारत के प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल से ही तमिल संगम साहित्य में मदुरई के पाण्ड्य शासकों का ज़िक्र मिलता है, पर उनका प्रारम्भिक म्ध्यकाल यानी छठी शताब्दी के अंत में पाण्ड्य शासकों के साथ कोई प्रत्यक्ष संबंध स्पष्ट नहीं होता। प्रारम्भिक म्ध्यकालीन पाण्ड्य वंश के पहले दो शासक, कडुंगोन (590-630 ईस्वी) व उनके पुत्र मारवर्मन अवनिशूलामणि (590-620 ईस्वी) को कलभ्रों की शक्ति नष्ट करने तथा पाण्ड्यों की शक्ति पुनरुज्जीवित करने का श्रेय दिया जाता है। तीसरे पाण्ड्य शासक शेंदन (654-70 ईस्वी) ने चेर राज्य में अपना शासन स्थापित किया,

और चौथे शासक अरिकेसरि मारवर्मन (670-700 ईस्वी) ने पल्ल्वों के विरुद्ध युद्ध किया। पाण्ड्यों का पल्ल्वों तथा अन्य समकालीन राजवंशों के साथ युद्ध चलता रहा। 10वीं शताब्दी में चोलों ने पाण्ड्य-शक्ति पर पूरी तरह अंकुश लगा दिया।

3.3.4 चेर

हालांकि पल्लवों, पाण्ड्यों, चालुक्यों और राष्ट्रकूटों ने केरल पर अपनी-अपनी सैन्य विजय का दावा किया, फिर भी प्रारम्भिक मध्यकाल में केरल के तटीय क्षेत्र पर चेर पेरुमाल का वर्जस्व बना रहा। चेरों व पल्लवों के बीच सांस्कृतिक संबंधों के कई साक्ष्य भी उपलब्ध है, जैसे पल्लव शासक महेंद्रवर्मन-I द्वारा रचित *मत्तविलास* चाक्कियार नामक मालाबार के वंशागत नाट्य-अभिनेता समुदाय के पसंदीदा नाटकों में से एक बना; दण्डी द्वारा रचित *अवंतिसुंदरी-कथासार* में केरल के बारे में काफ़ी जानकारी उपलब्ध है और पल्लव-सभा में उनकी उपस्थिति में केरल के कई सौ ब्राह्मणों के आगमन का ज़िक्र है। पर चेर इतिहास के बारे में कहीं विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। 7वीं-8वीं शताब्दी में इस वंश का अंतिम प्रमुख शासक चेर पेरुमाल था, जिससे जुड़ी कई लोक-कथाएं है। अलग-अलग स्रोतों में उन्हें जैन, ईसाई, शैव या मुस्लिम कहा गया है, जिसका कारण शायद उनकी धार्मिक सहिष्णुता थी। संभवतः उन्होंने अपने परिजनों और अधीनस्थ सामनों के बीच अपने राज्य को बांट कर सांसारिक जीवन का परित्याग कर दिया। इसलिए केरल के इतिहास के बारे कोई ठोस जानकारी नहीं है 825 ईस्वी से पहले, जब एक नए सन्, कोल्लम संवत, की शुरुआत हुई। इस संवत के उद्भव के बारे में कई मत है, पर एम्. जी. एस्. नारायणन के अनुसार, इसका आरम्भ पाण्ड्य शासन से वेणाड की मुक्ति और कोल्लम बंदरगाह की स्थापना से संबंधित है।

3.3.5 राष्ट्रकूट

दक्कन में 8वीं शताब्दी के मध्य में राष्ट्रकूटों का उदय हुआ। 'राष्ट्रकूट' शब्द का मतलब है 'राष्ट्र का मुखिया/प्रमुख'; इसमें 'राष्ट्र' अलग-अलग संदर्भ में 'राज्य' या 'राज्य का प्रमंडल' (division) के अर्थ में इस्तमाल होता था। चौथी शतब्दी के बाद, कई राजवंशों के अभिलेखों में यह शब्द सामाण्यतः प्रांतीय अधिकारियों के एक वर्ग के लिए हुआ है। इसलिए संभवतः राष्ट्रकूट मूल रुप से उसी वर्ग के अधिकारियों का समूह रहे होंगे। इस राजवंश की उत्पत्ति कन्नड़-भाषी क्षेत्र में हुई होगी। इस राजवंश की मुख्य तथा सह शाखाओं के राजाओं की एक उपाधी 'लत्तलूर पुरेश्वर' ('लत्तलूर नामक शहर या पुर का अधिपति') से प्रतीत होता है यह मूलतः वर्तमान महाराष्ट्र-कर्णाटक सीमा पर स्थित लातूर क्षेत्र के थे। ऐसा प्रतीत होता है कि 625 ईस्वी में राष्ट्रकूटों का लातूर क्षेत्र से इलिचपुर (वर्तमान मध्य प्रदेश में तापी नदी के उद्गम के पास) में स्थानांतरण हुआ। वहाँ उन्होंने अपनी जागीर बनाई और कई पीढ़ियों तक चालुक्यों का सामंतों के रूप में शासन किया। दंतिदुर्ग ने राष्ट्रकूटों के स्वतंत्र राज्य की नींव डाली और 733 ईस्वी में राज्यारोहण किया। उन्होंने अनेक सैन्य सफलताएं पाई और साम्राज्यिक उपाधियां धारण की। उनके वंशज अमोघवर्ष (814-78 ईस्वी) ने मान्यखेट (वर्तमान मालखेड, कर्णाटक) के रूप में अपनी नई राजधानी का निर्माण किया। दंतिदुर्ग व उनके उत्तराधिकारीयों—विशेषतः कृष्ण-I, गोविंद-III और अमोघवर्ष—के नेतृत्व में राष्ट्रकूट साम्राज्य का बहुत विस्तार हुआ तथा उत्तर और दक्षिण में कई सैन्य सफलताएं प्राप्त हुई। किसी न किसी काल में उनसे सभी प्रमुख समकालीन

शक्तियां—जैसे पाल; प्रतिहार; बादामी, कल्याणी व वेंगी के चालुक्य; पूर्वी गंग; पल्लव; और चोल—पराजित हुए, किंतु उत्तर में प्राप्त उपलब्धियों को वे बहुत दिनों तक संभाल नहीं सके। 10वीं शताब्दी के अंत में परमारों द्वारा मान्यखेट पर कब्ज़ा करने के बाद राष्ट्रकूटों का पतन सुनिश्चित हो गया।

3.3.6 चोल

दक्षिण भारत के प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल से ही तमिल संगम साहित्य में उरैयूर के चोल शासकों का ज़िक्र मिलता है, पर संगमकाल के उपरांत उनका इतिहास अस्पष्ट है।है। हालांकि प्रारम्भिक मध्यकाल में तंजौर का चोलवंश के शासक संगमकालीन चोलों के वंशज होने का दावा करते थे। इस वंश के संस्थापक विजयालय शुरुआत में पल्लवों के सामंत थे। उन्होंने उरैयूर के आस-पास के क्षेत्र में अपने राज्य की स्थापना कर और 850 ईस्वी के आस-पास मुत्तरैयर सर्दारों से तंजौर छीन लिया जब पल्लवों के साथ पाण्ड्यों संघर्ष चल रहा था, जिसमें गंग, राष्ट्रकूट, सिंहल/श्रीलंका, तेलेगु-चोल भी लिप्त थे। विजयालय ने निचली कावेरी प्रदेश तक अपने राज्य का विस्तार किया। उनके वंशजों ने, विशेषतः आदित्य-I, परांतक-I, परांतक-II, राजराज-I और राजेंद्र-I, अपने-अपने शासन काल में पाण्ड्य, गंग, चेर, चालुक्य, पल्लव आदि समकालीन शक्तियों पर विजय पाकर चोलों को दक्षिण भारत की साम्राज्यिक शक्ति बना दिया, पर 13वीं शताब्दी में यह वंश पतनगामी हुआ।

3.4 राजनीतिक संघर्ष

छठी से नौवीं शताब्दी तक दक्कन और दक्षिण भारत के राजनीतिक संघर्षों में प्रमुख था पल्लव-चालुक्य-पाण्ड्य संघर्ष, जिसकी शुरुआत हुई पल्लव महेंद्रवर्मन-I के विरुद्ध चालुक्य पुलकेशिन-II के सैन्य अभियान से। जब चालुक्य पुलकेशिन-II सेना समेत पल्लव क्षेत्र के काफ़ी अंदर प्रवेश कर कांची के बिल्कुल निकट पहुंच गई, तब कांची के उत्तर में 15 मील दूर पुल्ललूर में पल्लव महेंद्रवर्मन-I ने चालुक्य पुलकेशिन-II से डट कर लड़ाई लड़ी और कांची को बचा लिया, पर राज्य का उत्तरी हिस्सा पुलकेशिन-II के कब्ज़े में चला गया। अपने राज्य में लौटने के बाद उन्होंने अपने भाई विष्णुवर्धन को वेंगी (पूर्वी आंध्र) का राज्यपाल बनाया। विष्णुवर्धन ने वहाँ पूर्वी चालुक्य वंश की स्थापना की।

पुलकेशिन-II ने पल्लवों के विरुद्ध 641-42 ईस्वी में दुसरा सैन्य अभियान चलाया। रायलसीमा पर शासनरत पल्लवों के अधीनस्थ सामंत बानों पर आक्रमण कर तथा उनको पराजित कर पुलकेशिन-II ने फिर पल्लव राज्य में प्रवेश किया और कांची के पास आ पहुंचे। नए पल्लव शासक नरसिंहवर्मन-I महामल्ल (630-68 ईस्वी) ने सिंहल/श्रीलंका के राजकुमार मानवर्मा की मदद से चालुक्यों को कई युद्धों में हराया। अतः पुलकेशिन-II का सैन्य अभियान असफल रहा।

संघर्ष में एक नए चरण की शुरुआत की पल्लव नरसिंहवर्मन-I ने। चालुक्यों पर आक्रमण कर उन्होंने बादामी पर कब्ज़ा कर लिया और *वातापिकोण्ड* ('वातापी का विजेता') की उपाधी ली। बादामी में मल्लिकार्जुनदेव मंदिर के पीछे एक पत्थर पर नरसिंहवर्मन-I के 13वें शासन-वर्ष में उत्कीर्ण एक अभिलेख बादामी पर उनकी विजय तथा *वातापिकोण्ड* की उपाधी ग्रहण करने के तथ्य की पुष्टि करता है। इस युद्ध में पुलकेशिन-II की मौत के बाद चालुक्य

राज्य संकट से घिर गया जब सामंतों तथा पुलकेशिन-II के दो पुत्रों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया।। अंत में पुलकेशिन-II के एक और पुत्र विक्रमादित्य-I (654/55-81 ईस्वी) अपने मामा दुर्विनीत की मदद से नरसिंहवर्मन-I को खदेड़ने, अपने भाईओं और विद्रोही सामंतों को हराने और राज्य की एकता कायम रखने में सफल हुए। उन्होंने स्वयं को 654-55 ईस्वी में एकीकृत चालुक्य राज्य का शासक घोषित किया और अपने वफ़ादार भाई जयसिंहवर्मन को लाट (दक्षिणी गुजराट) का राज्यपाल बनाया। जयसिंहवर्मन व उनके वंशजों लाट चालुक्य के नाम से जाना गए। अपने राज्य में लौटने के बाद नरसिंहवर्मन-I ने दो नौसैनिक अभियान भेजकर मानवर्मा को श्रीलंका का राजा बनने में मदद की, पर जल्द ही मानवर्मा ने श्रीलंका का राज्य खो दिया और पल्लवों के राजनीतिक आश्रय में चले गए। नरसिंहवर्मन-I को चोलों, चेरों, कलभ्रों और पाण्ड्यों को हराने का श्रेय दिया गया है, पर इन युद्धों के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। नरसिंहवर्मन-I स्थापत्य के एक उत्साही संरक्षक के रूप में भी जाने जाते है; मामल्लपुरम का बंदगाह और रथों के नाम से प्रसिद्ध मंदिरों के निर्माण का श्रेय उन्हें जाता है।

नरसिंहवर्मन-I की मौत (668 ईस्वी) के बाद उनके पुत्र महेंद्रवर्मन-II (660-70 ईस्वी) के छोटे शासन-काल में चालुक्य विक्रमादित्य-I के साथ युद्ध हुआ, जिसमें महेंद्रवर्मन-II की हार और मौत हुई। महेंद्रवर्मन-II के पुत्र परमेश्वरवर्मन-I (670-700 ईस्वी) के शासन-काल की शुरुआत में ही विक्रमादित्य-I ने पाण्ड्य शासक अरिकेसरि मारवर्मन की मदद से दोबारा पल्लव राज्य पर आक्रमण कर दिया और कांची के पास पहुंच गए। परमेश्वरवर्मन-I ने कांची से पलायन किया और विक्रमादित्य-I ने उरैयूर में पड़ाव डाला। परमेश्वरवर्मन-I ने एक बड़ी सेना इकट्ठा कर विक्रमादित्य-I के मित्र गंग शासक भूविक्रम से युद्ध किया, पर पराजित हुए। हतोत्साहित न होकर, उन्होंने शत्रु का ध्यान भटकाने के लिए एक सैन्य अभियान चालुक्य राज्य में भेजा, और स्वयं उरैयूर के पास पेरुवलनल्लूर में आक्रमणकारी पल्लव सेना से युद्ध किया और उसे हरा दिया। चालुक्य सेना विक्रमादित्य-I के पुत्र और पौत्र, विनयादित्य और विजयादित्य, को हराकर काफ़ी लूट की सम्पत्ति लेकर लौटी। दूसरी तरफ़, विक्रमादित्य-I को पल्लव क्षेत्र छोड़कर अपने राज्य लौटना पड़ा। दोनो तरफ़ भारी जानोमाल का नुकसान हुआ, क्योंकि दोनो का सैन्यबल लगभग समान था।

अगले पाँच दशकों तक, यानी चालुक्य शासक विनयादित्य (681-96 ईस्वी) और विजयादित्य (696-734 ईस्वी) तथा उनके समकालीन पल्लव शासक नरसिंहवर्मन-II राजसिंह (700-28 ईस्वी) के शासन कालों में युद्ध-विराम और शांति रही। पर चालुक्य विजयादित्य के लम्बे शासन काल और पल्लव परमेश्वरवर्मन-II के छोटे शासन काल (728-31 ईस्वी) के अंत में संघर्ष पुनरुज्जीवित हुआ, जब चालुक्य युवराज विक्रमादित्य (जो बाद में विक्रमादित्य-II बने) ने गंग शासक श्रीपुरुष के पुत्र एरेयप्प की मदद से पल्लव राज्य आक्रमण किया। विक्रमादित्य ने परमेश्वरवर्मन-II को भारी शान्ति-मूल्य देने के लिए मजबूर किया। परमेश्वरवर्मन-II की इस हार का बदला लेने की कोशिश विफल हुई जब श्रीपुरुष से साथ विलन्दे के युद्ध में उनकी मौत हो गई। बिना वारिस के परमेश्वरवर्मन-II की मौत होने पर पल्लव राज्य में उत्तराधिकार का संकट आ गया, पर राज्य के अधिकारीयों (*मात्र*) ने, विद्वान ब्राह्मणों की मण्डली (*घटिका*) व प्रजा (*मूलप्रकृति*) के सहयोग से, संपार्श्विक वंश (collateral line) के एक 12 साल के

राजकुमार नंदिवर्मन-II पल्लवमल्ल (731-96 ईस्वी) को राजा चुना। इस घटना का वर्णन नंदिवर्मन-II द्वारा निर्मित कांची के वैकुण्ठपेरुमाल मंदिर के अलंकृत पट्टिकओं तथा कुछ ताम्र-पत्र अभिलेखों से मिलता है।

पाण्ड्य शासक मारवर्मन राजसिंह-I (730-65 ईस्वी), चालुक्य विक्रमादित्य-II के साथ संधि कर, नंदिवर्मन-II के प्रतिस्पर्धी चित्रमाय का पल्लव सिंहासन पर दावे का समर्थन करते हुए नंदिवर्मन-II को कई युद्धों में हराया और नंदिग्राम (वर्तमान नंदिपुरम) नामक जगह पर उनका घेराव किया। पर पल्लव सेनापति उदयचंद्र ने पाण्ड्य सेना की घेरे को तोड़कर नंदिवर्मन-II को मुक्त किया, चित्रमाय को मारा और पल्लव सिंहासन को नंदिवर्मन-II के लिए सुरक्षित किया। उदयचंद्र ने नंदिवर्मन-II के अन्य शत्रुओं को भी परास्त किया, जिनकी शायद चालुक्य विक्रमादित्य-II से मिलीभगत थी। विक्रमादित्य-II (733/34-744/45 ईस्वी) ने 733/34 ईस्वी में सिंहासनारुढ़ होने के तुरंत बाद ही, 735 ईस्वी में गंग सामंत श्रीपुरुष के साथ पल्लव राज्य आक्रमण किया और नंदिवर्मन-II को हराकर कांची पर कब्ज़ा किया। पर विक्रमादित्य-II ने कांची को क्षति नहीं पहुंचाई, बल्कि वहां के निवासीओं को प्रचुर उपहारों से संतुष्ट किया और कैलाशनाथ व सारे मंदिरों का सोना लौटा दिया। कैलाशनाथ मंदिर के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण एक कन्नड़ अभिलेख में अपनी दानशीलता और अतीत में पल्लव नरसिंहवर्मन-I द्वारा बादामी-विजय के अपमान को मिटाने की अपनी इच्छा का ज़िक्र किया है। इसके बाद विक्रमादित्य-II अपने राज्य लौट गए। यहाँ उल्लेखनीय है कि पल्लव और चालुक्य दोनो ने एक-दूसरे के क्षेत्र पर स्थायी रूप से अधिकार करने की कोई प्रवृत्ति नहीं दिखाई। अपने शासन काल के अंत में विक्रमादित्य-II ने अपने पुत्र कीर्तिवर्मन (जो बाद में कीर्तिवर्मन-II बने) के नेतृत्व में पल्लवों के विरुद्ध एक और सफल सैन्य अभियान भेजा, और कीर्तिवर्मन कई हाथीओं व काफ़ी सोने व जवाहरात के साथ लौटे।

विक्रमादित्य-II के पुत्र कीर्तिवर्मन-II (744/45-55 ईस्वी) बादामी चालुक्य वंश के अंतिम शासक थे। कीर्तिवर्मन-II और उनके गंग सामंत श्रीपुरुष का संघर्ष पाण्ड्य शासक मारवर्मन राजसिंह-I के साथ हुआ, जब मारवर्मन ने पाण्ड्य शासन कोंगु क्षेत्र और उससे आगे बढ़ाने की कोशिश की। वेण्बै के युद्ध में मारवर्मन ने कीर्तिवर्मन-II और श्रीपुरुष को हराया, पर उनसे सुलह की और अपने पुत्र का विवाह गंग राजकुमारी से करवाया (750 ईस्वी)। इस संघर्ष में कीर्तिवर्मन-II के राज्य के दक्षिणी क्षेत्र पाण्ड्यों के कब्ज़े में चले गए। उनकी शक्ति को और भी तेज़ी से क्षीण कर रहे थे बादामी चालुक्यों के भूतपूर्व सामंत राष्ट्रकूट दंतिदुर्ग (752-56 ईस्वी) जिन्होनें मालवा के गुर्जरों, कोसल और कलिंग के शासकों तथा रायलसीमा के तेलेगु-चोलों को पराजित कर अपनी शक्ति का विस्तार किया। चालुक्यों के बाहरी प्रांतों पर कब्ज़ा करने के बाद दंतिदुर्ग ने 752/53 ईस्वी में कीर्तिवर्मन-II पर आखरी चोट की और स्वयं को दक्कन का संप्रभू शासक घोषित किया। दंतिदुर्ग ने कांची भी आक्रमण किया, पर नंदिवर्मन-II के साथ संधि कर ली, जिसके तहत उन्होंने अपनी पुत्री रेवा का विवाह नंदिवर्मन-II के साथ करवाया।

नंदिवर्मन-II पल्लवमल्ल ने चालुक्यों के 760 ईस्वी में गंग सामंत श्रीपुरुष को हराकर काफ़ी सम्पत्ति देने पर मजबूर किया। कुछ गंग क्षेत्रों को छीन कर उन्होंने अपने बान सामंत जयनंदिवर्मन को दे दिया। पर वह 767 ईस्वी में कावेरी के दक्षिणी तट पर पेण्णागडम के युद्ध में पाण्ड्य मारवर्मन राजसिंह-I के पुत्र परांतक नेडुंजडैयन या वरगुणमहाराज-I (765-815 ईस्वी) से हार गए। नंदिवर्मन-II ने पाण्ड्यों की बढ़ती शक्ति को रोकने के लिए उनके

विरुद्ध कोंगु, केरल और तगडूर (वर्तमान धर्मपुरी, तमिल नाडु) के शासकों के साथ गठबंधन किया। पर वरगुणमहाराज-I ने नंदिवर्मन-II के मित्र-शासकों को हराकर कोंगु क्षेत्र पर कब्ज़ा किया और पल्लव राज्य के काफ़ी अंदर प्रवेश कर तंजोर ज़िले में इडवई में अपनी छावनी स्थापित की। अतः पाण्ड्यों के विरुद्ध नंदिवर्मन-II का गठबंधन विफल हो गया और वह पाण्ड्यों को रोकने में असफल हुए। इसके बाद वरगुणमहाराज-I ने दक्षिणी केरल यानी वेणाड पर अधिकार किया। वरगुणमहाराज-I के पुत्र श्रीमार श्रीवल्लभ (815-62 ईस्वी) ने सेन-I (821-51 ईस्वी) के शासन-काल में श्रीलंका आक्रमण किया और राजधानी अनुराधपुर को ध्वस्त कर दिया, पर अंत में सेन-I से शांति समझौता कर सेना समेत श्रीलंका छोड़ दिया।

पल्लव नंदिवर्मन-II के पुत्र दंतिवर्मन (796-847 ईस्वी) को न केवल राज्य के दक्षिणी इलाकें विस्तारवादी पाण्ड्य शासक वरगुणमहाराज-I और श्रीमार के हाथों खोना पड़ा बल्कि उत्तर में राष्ट्रकूटों की बढ़ती शक्ति का सामना करना पड़ा। राष्ट्रकूट राज्य में निःसंतान दंतिदुर्ग के मौत के बाद उनके चाचा कृष्ण-I (756-75 ईस्वी) ने बादामी चालुक्यों को खत्म करने का कार्य पुरा किया और नए राज्य का विस्तार सारी दिशाओं में किया। उन्होंने दक्षिणी कोंकन जीतकर शिलार वंश को सामंत-शासक के रूप में स्थापित किया और गंग शासक श्रीपुरुष को हराकर अपने अधीन किया। उन्होंने वेंगी के पूर्वी चालुक्य शासक विजयादित्य-I के विरुद्ध एक सैन्य अभियान भेजा, और विजयादित्य-I ने बिना युद्ध के समर्पण कर दिया।एलोरा में उन्होंने प्रसिद्ध कैलाश मंदिर भी बनवाया। उनके पुत्र गोविन्द-II (775-80 ईस्वी) ने श्रीपुरुष के पुत्र शिवमार-II को उनके भाई दुग्गमार एरेयप्प के विरुद्ध गंग सिंहासन दिलाने में नंदिवर्मन-II की मदद की। अपने भाई ध्रुव के विरुद्ध गोविन्द-II ने पल्ल्व व गंग शासकों तथा वेंगी व मालवा के शासकों की मदद ली, पर ध्रुव (780-92 ईस्वी) सबको हराकर राजा बन गए। उन्होंने गंग शिवमार-II को बन्दी बना लिया, पल्लव शासक नंदिवर्मन-II से हाथियों का भेंट वसुल किया, मालवा के गुर्जर शासक वत्सराज को मरुस्थल में खदेड़ दिया, और वेंगी के पूर्वी चालुक्य शासक विष्णुवर्धन-IV को शांति-सम्झौता मानने पर मजबूर किया, जिसके तहत उन्हें अपने कुछ क्षेत्र और अपनी बेटी शीलमहादेवी देनी पड़ी। उन्होंने बंगाल के पाल शासक धर्मपाल को भी गंगा-यमुना दोअब में परास्त किया। उनके पुत्र गोविन्द-III (792-814 ईस्वी) ने अपने सत्ता के दावेदार भाईओं और उनके मित्र-शासकों का विद्रोह दमन कर उत्तर में मालवा के गुर्जर शासक नागभट-I, कनौज के शासक चक्रायुध तथा उनके संरक्षक पाल शासक धर्मपाल को भी हराया। दक्षिण में पल्लव राजधानी कांची पर आक्रमण कर दंतिवर्मन को हराया, पर वापस लौटकर तुंगभद्रा नदी के तट पर रामेश्वर-तीर्थ में अपना शिविर स्थापित किया।

दंतिवर्मन के लम्बे शासन-काल में पल्लवों का क्षेत्र उत्तर से राष्ट्रकूटों और दक्षिण से पाण्ड्यों के आक्रमणों से सिकुड़ गया। पाण्ड्यों के मित्र तेलेगु-चोल शासक श्रीकण्ठ ने भी पल्लवों का मूल क्षेत्र तोण्डईमण्डलम् तक अपना क्षेत्रिय विस्तार किया। दंतिवर्मन के पुत्र नंदिवर्मन-III (846-69 ईस्वी) ने गंगों, राष्ट्रकूटों और कावेरी-नदीमुख क्षेत्र में नई राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरते तमिल-चोलों की सहायता से पाण्ड्य श्रीमार श्रीवल्लभ और तेलेगु-चोल श्रीकण्ठ को तेल्लरु के युद्ध में हराया। लेकिन श्रीमार ने अपनी खोई शक्ति वापस पा ली और 859 ईस्वी में नंदिवर्मन-III और उनके मित्र-शासकों को कुम्बकोनम के युद्ध में पराजित किया। नंदिवर्मन-III के पुत्र नृपतुंगवर्मन (859-99

ईस्वी) ने अरिशिल नदी के तट पर पाण्ड्यों को हराकर पिता की हार का बदला लिया। इसी युद्ध के दौरान श्रीलंका के शासक सेन-II (851-55 ईस्वी) ने, जो पल्लवों के साथ मिले हुए थे, पाण्ड्यों के विरुद्ध एक सफल सैन्य अभियान भेजकर मदुरई ध्वस्त कर दिया। युद्ध में श्रीमार की मौत हो गई और उनके पुत्र वरगुणवर्मन-II (862-85 ईस्वी) को श्रीलंका के सेनानायक ने सिंहासन पर बिठाया। वरगुणवर्मन-II ने पल्लव नृपतुंगवर्मन का आधिपत्य स्वीकार किया। जब पल्लव, पाण्ड्य, और राष्ट्रकूट वर्जस्व के लिए युद्ध-रत थे, निचली कावेरी प्रदेश में विजयालय चोल () ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। उनके उत्तराधिकारी आदित्य-I (871-907 ईस्वी) ने श्रीपेरुम्बियम के युद्ध (885 ईस्वी) में पल्लव नृपतुंगवर्मन और उनके पाण्ड्य मित्र-शासक वरगुणवर्मन-II को हराने में नृपतुंगवर्मन के सौतेले भाई अपराजित की मदद की और तंजौर का कुछ हिस्सा हासिल कर लिया। आदित्य-I ने 893 ईस्वी में तोण्डईमण्डलम् पर आक्रमण कर अपराजित की हत्या कर दी। इसी के साथ पल्लव शासन का अंत हो गया और पूरा पल्लव क्षेत्र (तोण्डईमण्डलम्) चोल राज्य में सम्मिलित हो गया। उसके बाद उन्होनें कोंगु-प्रदेश पाण्ड्यों से छीन लिया और गंग राजधानी तालकड पर कब्ज़ा कर लिया। आदित्य-I के उत्तराधिकारी परांतक-I (907-953 ईस्वी) ने गंग शासक, कोदुम्बलुर सरदारों और केरल के शासक की मदद से कई सैन्य सफलताएं पाई। मदुरई कब्ज़ा कर उन्होंने मदुरईकोण्डा और मदुरांतक की उपाधियां ली। वेल्लुर के युद्ध में उन्होंने पाण्ड्यों और श्रीलंका की संयुक्त सेनाओं को हराया और पाण्ड्यों के एक बड़े क्षेत्र पर कब्ज़ा किया। पर इन सफलताओं के बावजुद 949 ईस्वी में वह तक्कोलम के युद्ध में राष्ट्रकूट कृष्ण-III से बुरी तरह हार गए। सुंदर चोल परांतक-II (957-73 ईस्वी) जैसे शासकों के काल में चोल-शक्ति पुनरुज्जीवित हुई। सुंदर चोल ने पाण्ड्य-श्रीलंका की संयुक्त सेना को हराया और श्रीलंका पर आक्रमण किया। उत्तम चोल (973-85 ईस्वी) के सिंहासन पर बैठने के समय तक राष्ट्रकूटों से तोण्डईमण्डलम् मुक्त करा लिया गया था। चोल शक्ति का चरम-बिंदु था राजराज-I (985-1014 ईस्वी) का शासन काल। उनके शासन काल से लकर 13वीं शताब्दी तक चोल दक्षिण भारत का सबसे शक्तिशाली राज्य बना रहा। उनकी सफल सैन्य अभियानों की लम्बी श्रृंखला ने पाण्ड्य और केरल तथा श्रीलंका के शासकों के मज़बूत संघ को नष्ट कर दिया। उनके एक सफल नौसैनिक अभियान ने श्रीलंका के उत्तरी प्रांत को चोल राज्य का हिस्सा बना लिया। उन्होंने पश्चिमी चालुक्यों और राष्ट्रकूटों को भी पराजित किया और अपने शासन के अंतिम दौर में मालदीव पर कब्ज़ा किया। चोलों के क्षेत्रिय विस्तार का सिलसिला उनके उत्तराधिकारी राजेंद्र-I (1012-44 ईस्वी) के नेतृत्व में चलता रहा। उन्होंने श्रीलंका और केरल के शासकों तथा पश्चिमी चालुक्यों को पराजित किया और गंगईकोण्डचोलपुरम् नामक एक नई राजधानी बनाई। 1025 ईस्वी में उन्होंने मलाय प्रायद्वीप के श्रीविजय शासकों के विरुद्ध एक सफल नौसैनिक बेढ़ा भेजा। परवर्ती चोल शासकों ने भी छिट-पुट सैन्य अभियान चलाएं पर चोलों का वर्जस्व कुलोत्तुंग-I (1070-1122 ईस्वी) के शासन काल के बाद खत्म हो गया। उनके शासन काल में व्यापारियों का एक प्रतिनिधि-मण्डल चीन भेजा गया, श्रीविजय राज्य के साथ समृद्धशाली वाणिज्यिक संबंध बना रहा, लेकिन शासन काल के उत्तरार्ध में उन्हें चालुक्यों और होयसलों का सामना करना पड़ा। विक्रमचोल (1118-35 ईस्वी) के काल में चोल शक्ति का पुनरुत्थान देख गया; उन्होंने वेंगी पर चोलों का नियंत्रण पुनर्स्थापित किया।

कुलोत्तुंग-II, राजराज-II और कुलोत्तुंग-III प्रायः अंतिम शासक गिने जातेहै। 13वीं शताब्दी में चोल वंश का पतन हो गया।

3.5 राज्य और प्रशासन

3.5.1 राजसत्ता और राज्य का स्वरूप

संगम काल के छोटे राज्यों की तुलना में छठी शताब्दी में दक्षिण भारत पर वर्जस्व के लिए संघर्ष करने वाले बड़े राज्यों में राज्त्व और शासन-कला का स्वरुप बहुत अलग था। उत्तर भारत की ब्राह्मणवादी राजनीतिक संस्कृति का प्रभाव दक्कन व दाक्षिण भारत के शासकों द्वारा अपनी सत्ता को वैधानिकता प्रदान करने के तरीकों में देख जा सकता है, जैसे आडंम्बरपूर्ण संस्कृत उपाधियां धारण करना; महाकाव्यों-पुराणों के सूर्य-वंश और चंद्र-वंश से अपनी उत्पत्ति का दावा करना; ब्राह्मण, क्षत्रिय या ब्रह्मक्षात्र (संयुक्त ब्राह्मण-क्षत्रिय) वंशपरम्परा से जुड़ा होने का दावा करना; *अश्वमेध, राजसूय, तुलापुरुष, हिरण्यगर्भ* जैसे वैदिक यज्ञों का आयोजन करना; ब्राह्मणों और मंदिरों को प्रचुर भूमिदान एवं अन्य अनुदान देना आदि। यह प्रवृति आरम्भिक रूप में सातवाहन-काल से ही दक्कन में विद्यमान थी (सातवाहन अभिलेखों में शासकों द्वारा *अश्वमेध* आदि यज्ञों के अनुष्ठान का उल्लेख है) और बाद में दक्कन और दक्षिण भारत में पल्लव, चालुक्य, पाण्ड्य, राष्ट्रकूट और चोल वंशों में सुदृढ़ हुई।

आरम्भिक पल्ल्व शासक शिवस्कंदवर्मन के एक प्राकृत ताम्र-पत्र अभिलेख में ज़िक्र है उनकी भव्य उपाधी *धर्म-महाराजाधिराज* (*'महान राजाओं के धार्मिक अधिपति'*) का, उनके द्वारा कुछ ब्राह्मणों को दिए गए एक पूर्व अनुदान की पुष्टि का, तथा उनके द्वारा *अश्वमेध* और अन्य वैदिक यज्ञों के आयोजन का। पल्लव स्वयं को भारद्वाज *गोत्र* का ब्राह्मण मानते थे, अपना उद्भव ब्रह्मा से होने का दावा करते थे और अपनी वंशावली में अंगिरस्, बृहस्पति, शम्यू, भरद्वाज, द्रोण, अश्वत्थामा आदि को पूर्वजों के रूप में सूचीबद्ध किया था। पल्लव नंदिवर्मन-II ने उत्तर से कई वेदज्ञ ब्राह्मणों को आमंत्रित किया तमिल क्षेत्र में *ब्रह्मदेयों* की स्थापना के लिए। पल्लव शासक *धर्म-महाराज, धर्म-महाराजाधिराज, महाराजाधिराज* और *महाराज* आदि उपाधियों क साथ-साथ राज्याभिषेक के समय *अभिषेकनाम* भी लेते थे।

छठी शताब्दी में दक्कन में चालुक्य वंश के संस्थापक पुलकेशिन्-I को बाद के अभिलेखों में *धर्म-महाराज* ('महान धार्मिक राजा') और *रणविक्रम* ('युद्ध में परक्रमी') जैसी उपाधियां दी गई है और *अश्वमेध, हिरण्यगर्भ* आदि वैदिक यज्ञों का आयोजक बताया गया है। चालुक्य अपने अभिलेखों में स्वयं को मानव्य गोत्र के हरितिपुत्र के रूप में ब्राह्मण मूल का बताते है। चालुक्य शासक शुरुआत में *श्री-पृथिवीवल्लभ-महाराज* की उपाधी लेते थे; पुलकेशिन्-II द्वारा हर्षवर्धन पर विजय के बाद *परमेश्वर* तथा विक्रमादित्य-I के शासन-काल में *महाराजाधिराज* और *भट्टारक* जैसी उपाधियां भी जुड़ गई।

पाण्ड्य स्वयं को चंद्रवंशी मानते थे। पाण्ड्य शासक अरिकेसरि मारवर्मन ने वैदिक *हिरण्यगर्भ* यज्ञ का आयोजन किया। राष्ट्रकूटों ने अपने कुछ ताम्र-पत्र अभिलेखों में स्वयं को यदु का वंशज बताया है (महाकाव्यों और पुराणों में यदु ययाति के पुत्र और कृष्ण के पूर्वज के रूप में जाने जाते है)। कई अन्य उपाधियों में शासकों का क्षत्रिय

मूल प्रतिबिम्बित होता है, जैसे राजराज चोल की *क्षत्रिय-शिखामणि* की उपाधी। कई शासकों के नाम के साथ *'वर्मन'* जुड़ा था, जिसे *मनुस्मृति* जैसे ब्राह्मणवादी शास्त्रों में क्षत्रियों के लिए प्रस्तावित किया है।

चोल अभिलेखों में राजा के लिए *को* (राजन्), *पेरुमाल/ पेरुमन्* (महान) के साथ साथ अतिशयोक्ति-पूर्ण उपाधियां प्रयुक्त हुई है, जैसे *राज-राजाधिराज* और *को-कोन्मई* (राजाओं के राजा)। उनकों महान योद्धा और विजेता, वर्णाश्रमधर्म का संस्थापक, कलियुग के कलुष-हर्ता, अति-उदार दानकर्ता और कला के महान संरक्षक के रूप में चित्रित किया गया है। इसके अलावा उनकी तुलना अक्सर देवताओं से की गई है। चोल स्वयं को सूर्यवंशी मानते थे। हालांकि चेर अभिलेखों में प्रशस्ति और वंशावली की कमी नज़र आती है, परवर्ती साहित्यिक परम्पराओं में ब्राह्मणों और मंदिरों के महत्व का वर्णन उनके वंश की उत्पत्ति के संदर्भ में किया गया है। उदाहरण के लिए, *पेरियपुराणम्* के अनुसार एक मंदिर मे बैठे चेरामन पेरुमाल को लोगों ने नगर में लाकर उनका राज्याभिषेक किया; 16वीं शताब्दी की *केरलोल्पत्ती* में ब्राह्मणों के राजा को राजगद्दी संभालने के लिए आमंत्रित करने की प्रथा का उल्लेख है।

हालांकि मध्यकालीन राजकीय अभिलेखों के माध्यम से उत्तर भारत की ब्राह्मणवादी परम्पराएं अखिल भारतीय स्तर पर सर्वमाण्य से प्रचलित थीं, किंतु पाण्ड्य अभिलेखों में स्थानीय तमिल परम्पराओं भी स्थान मिला। उदाहरण के लिए, इनके अभिलेखों में दावा किया गया है कि इनके शासकों ने राजकीय प्रतीक चिह्न, जुड़वा मछिलयों को मेरु या हिमालय पर्वत की चोटी पर उत्कीर्ण करवाया था, कि अगस्त्य ऋषि ने इनके शासकों का राज्याभिषेक किया था और तमिल भाषा का ज्ञान दिया था, तथा इन्होंने मदुरई की स्थापना की और संगम का आयोजन करवाया। इसके अलावा यह भी उल्लेखनीय है कि पाण्ड्य ताम्रपत्रों में संस्कृत में लिखित अंश के बाद तमिल का प्रयोग हुआ है और कई बार तमिल में लिखित अंश ज़्यादा विस्तृत है।

राजनीतिक सत्ता को वैधानिकता प्रदान करने के लिए उत्तर भारतीय ब्राह्मणवादी परम्पराओं से उद्धृत तरीकों का दक्कन और दक्षिण भारत के राजवंशों में छठी शताब्दी से ज़्यादा प्रचलन होने का कारण हिंदुधर्म और भक्ति आंदोलन का द्रुत विस्तार है। हालांकि छठी शताब्दी से पूर्व संगम/सातवाहन/आदि पल्लव कालीन शासक ब्राह्मणवादी राजनीतिक आचारों का पालन करते थे, बौद्ध-धर्म, जैन-धर्म और अन्य स्थानीय गैर-ब्राह्मणवादी धार्मिक परमपराओं का भी उन पर काफ़ी प्रभाव था।। पर 5वीं-6ठीं शताब्दी में उत्तर भारत से वैदिक-ब्राह्मणवादी-पौराणिक परम्पराओं और मंदिर-केंद्रित अनुष्ठानों से सम्नवित हिंदुधर्म के आगमन और इसके साथ विभिन्न स्थानीय धार्मिक परम्पराओं का समावेश के कारण दक्षिण भारत में धार्मिक तथा राजनीतिक परिवेश में काफ़ी परिवर्तन हुए। शिव, स्कंद/कातिकेय और विष्णु जैसे नए हिंदु देवताओं को मुरुगन, मैयोन, कोर्रवई जैसे पारम्पारिक स्थानीय देवी-देवताओं से जोड़ा गया। हिंदु देवताओं से संयुक्त इन स्थानीय देवताओं से जुड़े पारम्पारिक पवित्र स्थलों में मदिरों का निर्माण या जीर्णोद्धार हुआ। अन्य स्थलों में भी, जिनका कोई ऐसा पारम्पारिक धार्मिक महत्व नहीं था, शिव और विष्णु के कई मदिर बनवाए गए। उत्तरी और दक्षिणी सांस्कृतिक परम्पराओं के समन्यवय का एक और द्योतक है इस काल के अभिलेखों में संस्कृत और तमिल दोनो भाषाओं का प्रयोग। तमिल क्षेत्र में लोगों ने भी स्थानीय धार्मिक परम्पराओं से सम्मिश्रित इस हिंदुधर्म को उत्साह से अपनाया। परिणाम-स्वरूप इस क्षेत्र में शैव-वैष्णव भक्ति पर केंद्रित एक धार्मिक

आंदोलन का विकास और विस्तार हुआ। इसका प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र में भी दिखा, जिसका उदाहरण हैं कुछ शासकों का धर्मान्तरण। भक्ति-साहित्य में पल्लव शासक महेंद्रवर्मन-II और पाण्ड्य शासक नेदुमरन या अरिकेसरि मारवर्मन द्वारा भक्ति संत अप्पर और सम्बंदर के प्रभाव में आकर जैन-धर्म त्यागकर शैव-धर्म अपनाने की कथाएं वर्णित है। इसी संदर्भ में दक्षिण भारत के राजत्व तथा राजनीतिक संस्कृति में उत्तर भारतीय संस्कृति के प्रभाव से हुए द्रुत परिवर्तनों को समझा जा सकता है।

इस बदलती राजनीतिक संस्कृति में राज-सत्ता की वैधानिकता और राज-शक्ति की सीमा से जुड़े कुछ मुद्दे विचारनीय है, जैसे राजा और ब्राहमणों का आपसी संबंध, तथा राजा का प्रांतीय/स्थानीय प्रशासन व शासकों से संबंध। *राजसूय* यज्ञ में प्रतिबिम्बित राजा और ब्राहमण के संबंध का सही स्वरूप काफ़ी विवाद का विषय रहा है। सैद्धांतिक स्तर पर राजा उच्चतर है या ब्राहमण—इस पर विद्वानों में मतभेद है। जे. सी. हीस्टमैंन के अनुसार राजा की राजनीतिक सत्ता और ब्राहमण की धार्मिक/आध्यात्मिक सत्ता एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न और परस्पर-विरोधी है, और सैद्धांतिक रूप से वर्जस्व या श्रेष्ठता के लिए उनके आपसी संघर्ष का कोई हल न होने के कारण भारत में राजत्व का एक अविरोधी सुसंगत सिद्धांत नहीं बना। पर डेवीड शुल्मन के अनुसार ब्राहमण की आध्यात्मिक शक्ति और राजा का सामरिक व प्राशासनिक कौशल स्थायी रूप से भिन्न या परस्पर-विरोधी नहीं बल्कि परस्पर-निर्भर, परस्पर-भेदी और परस्पर-प्रभावी है। राजा और ब्राहमण के वैचारिक संबंध चाहे कुछ भी हो, इतिहास दर्शाता है कि उनके वास्तविक संबंध परस्पर-निर्भर थे। राजा को अपने प्रभूत्व को वैधता देने के लिए ब्राहमणों की ज़रुरत थी, और ब्राहमणों को अपनी आजीविका के लिए राजा के संरक्षण पर निर्भर रहना पड़ता था। यही विशिष्ट संबंध इस काल के राजकीय अभिलेखों में राजाओं की दैवीय उत्पत्ति-मिथकों से समन्वित वंशावलीयों, उनके द्वारा आयोजित यज्ञानुष्ठानों, और ब्राह्मणों को दिए गए प्रचुर विशेषाधिकार समेत भूमिदानों के उल्लेख से, और काफ़ी संख्या में *ब्रह्मदेयों* की स्थापना से स्पष्ट होता है।

राजा और ब्राहमणों के संबंध के अलावा राजत्व का अन्य ऐतिहासिक आयाम है शासक की राजनीतिक सत्ता का विस्तार-क्षेत्र, विशेषतः राज्य के केंद्र में सतारुढ़ शासक का प्रांतीय/स्थानीय प्रशासन व शासक वर्गों के साथ संबंध, जिसे केंद्र और परिधि का संबंध भी कहा जाता है। एक तरफ़ बर्ट्न स्टाईन चोल राज्य के संदर्भ में यह तर्क देते है कि राजा के पास धार्मिक सत्ता तो थी, पर राजनीतिक शक्ति नहीं थी। दूसरी तरफ़ निकोलस् डर्क्स् दोनो के सह-संबंध पर ज़ोर देते है। चेर, पल्लव व चोल राज्यों की परिधि में अनेक स्थानीय शासक भी सम्मिलित थे (हालांकि पाण्ड्य राज्य में इनकी भूमिका नगण्य प्रतीत होती है; सिर्फ़ *अय* नामक प्रमुखों का ही उल्लेख है)। एक दृष्टिकोण के अनुसार, ऐसे स्थानीय प्रमुख शासकों द्वारा राज्य के विभिन्न प्रमण्डलों में गवर्नरों/राज्यपालों के रूप में नियुक्त किए जाते थे, पर वास्तव में ये अधीनस्थ सामंत प्रतीत होते है, जो प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल से ज्ञात स्थानीय मुखिया या सरदारों की ही तरह थे, या कुछ स्थितियों में उनके ही वंशज रहे होंगे। अवसर आने पर अपने अधिपतियों को सैन्य-बल मुहैया करते थे। ये अधिपतियों को नज़राना भी पेश करते थे और उनके दरबारों में मौजुद रहते थे। ये आपस में तथा अपने अधिपतियों से साथ वैवाहिक संधियों से जुड़े थे। उदाहरण के रूप में, चोल साम्राज्य में शासकों का प्रत्यक्ष अधिकार-

क्षेत्र था चोलमंण्डलम् जिसमें वर्तमान तमिल नाडु के तंजौर और तिरुचिरापल्ली ज़िले के कुछ हिस्से पड़ते थे। चोल राज्य के इस मूल क्षेत्र के बाहर पलुवेत्तरैयर, कोदुलम्बलुर के वेल, मिलाडु, बाण तथा गंग जैसे प्रमुखों का नियंत्रण था। चोल शासक की शक्ति और सामंतों के अभिलेखीय उल्लेखों में एक विपरीत संबंध प्रतीत होता है। 11वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, विशेषतः कुलोत्तुंग-I (1070-1122 ईस्वी) के शासन-काल के बाद, इनके अभिलेखीय उल्लेखों में वृद्धि इनकी बड़ती हुई शक्ति और चोल शासक की घटती हुई शक्ति का द्योतक है।

3.5.2 प्रशासन

3.5.2.1 राजकुल और अधिकारी-वर्ग

पूर्वमध्यकाल में राजतंत्र ही एकमात्र वैध व स्वीकृत राजनीतिक व्यवस्था थी। सामाण्यतः उत्तराधिकार वंशागत था, पर ज्येष्ठाधिकार हमेशा निश्चित नहीं था। ज्येष्ठ पुत्र के अलावा अन्य पुत्रों का सिंहासन का उत्तराधिकारी के रुप में चयन तथा उत्तराधिकार के किए गृह-युद्ध के कई उदाहरण मिलते है दक्कन और दक्षिण के राजवंशों में। कभी कभी मंत्रियों तथा जनता की भी उत्तराधिकारी के चयन में भूमिका रहती थी, जैसे परमेश्वरवर्मन-II की मृत्यु पर पल्लव राज्य के अधिकारीयों (*मात्र*), विद्वान ब्राह्मणों की मण्डली (*घटिका*) व प्रजा (*मूलप्रकृति*) ने संपार्श्विक वंश के राजकुमार नंदिवर्मन-II को राजा चुना।

राजवंशों के अपने ध्वज तथा मुहर (*लाञ्चन*) होते थे, जो उनके धार्मिक विश्वास का द्योतक थे। जैसे पल्लवों का मुहर ऋषभ (*ऋषभ-लाञ्चन*) था, जो अनके शैव-धर्म के अनुयायी होने का संकेत देता है। इन राजवंशों की कई रानीयों की राजनीतिक व धार्मिक जीवन में भूमिका थी। उदाहरण के लिए, राष्ट्रकूट शासक ध्रुव की पत्नी शिलभट्टारिका ने *परमेश्वरी* तथा *परमभट्टारिका* जैसे आड़म्बरपूर्ण उपाधियां ग्रहण की, भूमिदान किए तथा राज्य के अधिकारियों को आदेश जारी किए।

राजसभा के साथ जुड़े महत्वपूर्ण अधिकारियों में पुरोहित व राजा के सलाहकार होते थे। अभिलेखों तथा साहित्यिक स्रोतों में कई अधिकारियों का उल्लेख मिलता है, पर इन सभी के कार्यभार सष्ट नहीं है। तमिल भक्ति-साहित्य के अंतर्गत *तिरुनावुक्करसु-नायनूर-पुराणम्* नामक ग्रंथ और पल्लव शासक शिवस्कंदवर्मन के हिरहडगल्लि ताम्र-पत्र अभिलेख में *अमच्च/अमात्य* नामक उच्च-पदस्थ अधिकारियों का ज़िक्र है। पल्लव व चेर राज्य में मंत्रिमण्डल/मंत्रि-परिषद् के होने का पता चलता है, और पाण्ड्य अभिलेखों में मंत्रियों (*मन्त्रिण्*) की चर्चा की गई है जो सम्भवतः एक परिषद् के रूप में संगाठित थे। कुछ अभिलेख उल्लेख करते है *वायिल केट्पार* या *रहस्याधिकृत* का, जो शायद राजा के व्यक्तिगत सचिव/सेक्रेटरी थे, उनके मौखिक राजादेश (*राजश्रावितम्*) सुनकर लिपिबद्ध करते थे और इनकी जानकारी उपयुक्त अधिकारियों तक कार्यान्वयन के लिए पहुँचाते थे। अभिलेखों में इसके अलावा उल्लेख मिलता है *कोशाध्यक्ष* या राजकोश के अधीक्षक का, तथा कृषि-भूमि का सर्वेक्षण और मूल्यांक्न करने वाले *मिलक्कलत्तार* और *अधिकारी* का। राज्य में राजा तथा न्यायपालिकाओं के आदेश कार्यांन्वित करते थे *शासन-संचारिन्*, जिनका सहयोग करते थे *भट* या अधीनस्थ सिपाही। नीलकण्ठ शास्त्री जैसे विद्वानों के अनुसार विवादों के हल के लिए गाँवों, जातियों तथा शिल्पकार-वणिक संघों की अपनी-अपनी पंचायतों के अलावा *अधिकरण* या

धर्मासन नाम के शाही या केंद्रीय न्यायालय थे जिनकी अध्यक्षता राजकीय अधिकारी न्यायज्ञ सलाहकारों के सह्योग से करते थे। पर यह सिद्धांत इस अवधारणा से प्रेरित हो सकता है कि सैद्धांतिक रूप से राजा ही सर्वोपरि न्यायिक अपीलीय अधिकारी था। ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव में दैनिक न्याय-प्रशासन *उर्*, *सभा* जैसी स्थानीय के अधीन था।

ताम्र-पत्र दान-अभिलेखों का प्रारूप रचने वाले व्यक्तियों के नाम अभिलेखों के अंत में मिलते है, जिनमें से कुछ *महासंधिविग्रहक, करणिक, उत्तर-करणिक* और *परमोत्तर-करणिक* जैसे पदाधिकारी थे। अभिलेखों, विशेषतः प्रशस्ति-अभिलेखों, के रचयिता कुछ कवि भी थे, जैसे पल्लव शासक सिंहवर्मन के विलवेत्ति अभिलेख के रचयिता अच्चुतन्, और नंदिवर्मन-II के तण्डंतोट्टम् अभिलेख के रचयिता परमेश्वर।

नोबोरु काराशिमा, वाई. सुब्बरयलु व तोरु मात्सुई द्वारा 1982 में तैयार की गई तमिल चोल अभिलेखों में व्यक्तिगत नामों, पदवियों और उपाधियों की समानुक्रमणिका यह दर्शाती है कि पल्लव-पाण्ड्य-चेर अभिलेखों की तुलना में चोल अभिलेखों में उल्लिखित पदों तथा पदाधिकारियों की काफ़ी संख्या ज़्यादा है, जो चोल-काल में, विशेषतः राजराज-I के शासन-काल (985-1016 ईस्वी) से, प्राशासनिक ढांचों और अधिकारी वर्ग में विस्तार का द्योतक है। पर कुलोत्तुंग-I के शासन-काल के बाद ऐसे उल्लेखों में कमी देखी जा सकती है, जो प्रशासन के संकुचन या पतन का सूचक है। प्राशासनिक अधिकारियों के लिए प्रयुक्त *आराईन्* उपाधि सम्मानित व्यक्तियों को दी जाती थी। दरबारी अधिकारियों के लिए प्रयुक्त *उडईयन्*, *वेलन्*, और *मूवेंदवेलान्* जैसी उपाधियां संकेत करती है कि इन उपाधियों के धारक भूस्वामी थे। इसके अलावा ब्राह्मण *पुरोहित* तथा *राजगुरु* का भी उल्लेख मिलता है। चोल शासक के सचिव तथा अन्य अधिकरी थे: *तिरुमंदिर-ओलई* या *ओलई*, जो राज-लिपिक या राजा के व्यक्तिगत सचिव थे; *नडुविरुक्कइ*, जो न्यायतंत्र-संबंधित विषयों के माहिर विद्वान ब्राह्मण थे; *उडन्कूट्टम्* यानी दरबारी अधिकारी; और *विडइयिल*, जो राज्य के दौरे पर रहते हुए राजादेश कार्यान्वित करते थे। अक्सर *अदिकारि* कहे जाने वाले इन उच्च-अधिकारियों की उपाधियों में तत्कालीन सत्तारुढ़ राजाओं के नाम उपसर्ग के रूप में लगते थे, जैसे *राजराज-मूवेंदवेलान्*, *राजेंद्रचोल-ब्रह्मरायन्*, *कुलोत्तुंग्चोल-पल्लवरायन्* । *सेनापति* और *दण्डनायकम्* पद-धारी सैन्य अधिकारी भी ऐसी उपाधियां धारण करते थे।। एक और महत्वपूर्ण अधिकारी थे *श्रीकारियम्* जो राज्य के लिए मंदिर-संबंधित विषयों का पर्यवेक्षण करते थे। उपरोक्त पदों में अधिकतर राजराज-I के काल तक बन चुके थे और चोल-काल के अंत तक बने रहे।

3.5.2.2 राजस्व प्रशासन

चालुक्य-पल्लव काल में राजस्व के स्रोत अर्थात् करों की जानकारी ब्राह्मणों, मंदिरों तथा बौद्ध-जैन संस्थाओं को दिए अनुदानों से संबंधित अभिलेखों में मिलती है। अभिलेखों में कृषि-उत्पाद में राज्य का भाग तो स्पष्ट रूप से उल्लिखित नहीं है, पर *इरइ* शब्द भूमि-कर (उत्पाद पर कर) और *इरइयिलि* शब्द कर-मुक्ति (विशेषतः धार्मिक अनुदानों के दृष्तांतों में) के द्योतक है। अभिलेखों के *परिहार*-सॅबंधित अंश में कई करों का परोक्ष उल्लेख मिलता है। *परिहार* राजकीय अनुदान पाने वालों को दिए गए विभिन्न करों से छुट और अन्य विशेषाधिकार है। पल्ल्लवों के आरम्भिक प्राकृत अभिलेखों में *अ-लोणगुलछ्छोभम्* और बाद के तमिल अभिलेखों में *उप्पुक्कोच्चेयगइ* शब्द का अर्थ है ‘नमक

(*लवण*) की समस्याओं से मुक्त', जिससे यह अनुमान लगाया गया है कि नमक उत्पादन पर राज्य का अधिकार था और इसके इस्तमाल पर कर देय था। इसी तरह *अपरम्पराबलिवदम्* शब्द का अर्थ है 'बैल (मुहैया कराने की बाध्यता/ज़िम्मेदारी) से मुक्त', जिससे यह पता चलता है कि दौरें पर अधिकारियों को बोझ ढोने वाले मवेशी मुहैया करवाना की सेवा एक तरह का कर था। राजस्व के अन्य स्रोत थे: *ईलम्पूट्चि* (पेशेवर ताड़ी बनाने वालों पर कर), *ईडइपूट्चि* (पशु-पालकों पर कर), *ब्राह्मणराशक्काणम्* (धार्मिक अनुष्ठानों में पौरहित्य करने वाले ब्राह्मणों पर कर), *कल्लाणक्काणम्* (विवाह के अवसर पर कर), *कुशक्काणम्* (कुम्हारों पर कर), *तट्टुक्कायम्* (सुनारों पर कर), *विशक्काणम्* (गाँव के मुखिया के दायित्वों के निर्वाह के लिए गाँव के निवासियों द्वारा देय कर), *पारइक्काणम्* (धोबियों पर लगाया गया कर, या धोबियों द्वारा कपड़े धोने के लिए सार्वजनिक तालाबों का या सार्वजनिक भूमि के पत्थरों का इस्तमाल करने पर देय कर), *पुत्तगविलइ* (कपड़े बेचने वालों पर कर या शिविर लगा कर रहने के लिए देय कर), *पट्टिगइ-काणम्* (नौका-यात्रा पर शुल्क या मल्लाहों पर कर), *तरगु* (दलाली से मुनाफे पर दलालों द्वारा देय कर), *तरि* (जुलाहों पर कर), *पडाम्कलि* (सूत काटने वालों पर कर), *पट्टिनशेरि* (मछुआरों पर कर), *नाट्टुवगइ* (गाँव द्वारा नाडु को देय कर), *नेय-विलइ* (घी बेचने वालों पर कर), कत्तिक्काणम् (शस्त्र इस्तमाल करने वालों या बनाने वालों, यानी लोहारों पर कर), तथा *एच्चोरु* (इरइ वसूल करने वाले अधिकारियों के रखरखाव के लिए ग्रामवासियों द्वारा देय कर)। चोलों का राजस्व-विभाग काफ़ी बड़ा और सुसंगठित था, जो विशेष रूप से राजस्व का लेखा-जोखा रखता था। राजस्व-विभाग को *पुरवुवरि* कहा जाता था और इसके अंतर्गत कई कार्यालय, पद, दायित्व और विशेषताएं थी, जैसे *पुरवुवरि-तिणइक्कल-कंकाणि* या *पुरवुवरि-तिणइक्कल-नायगम्* (राजस्व-विभाग का लेखपाल-अध्यक्ष, *वरिपोत्तगम्* (कर-पंजिका), *मुगवेट्टि* (राजकीय मुहर), *वरिपोत्तग-कणक्कु* (कर-पंजिका का लेखा-जोखा), *वरियिलिडु* (कर-पंजिका में प्रविष्टि[) और *पट्टोलई* (ताड़-पत्र लेखक)। राजेंद्र-I का करंदई ताम्र-पत्र अभिलेख जिसमें, 1080 ब्राह्मणों को 50 से भी ज़्यादा गांवों के अनुदान का विवरण है, उल्लेख करता है इस दान के प्रबंधक के रूप में 40 से ज़्यादा राजस्व-अधिकारियों तथा उनकी उपाधियों का। यह अकेला ही साक्ष्य है चोलों के सुविकसित अधिकारी-वर्ग का, विशेषतः राजस्व-प्रशासन में। राजस्व का निर्धारण और उसकी वसूली का कार्य उर, *नाडु*, *सभा* तथा *नगरम्* जैसी निगम या संस्थाएं और कई बार केंद्र के प्रतिनिधि के रूप में स्थानीय प्रमुख/सरदार भी करते थे।11वीं शताब्दी की शुरुआत में, राजराज-I ने भूमि-सर्वेक्षण और कर-निर्धारण की एक व्यापक परियोजना चलाई।। उनके पुत्र राजेंद्र-I के अभिलेखों में उल्लिखित *मलिगइ-कोल* नामक एक नया मापदंड राजराज के शासन-काल में हुए भूमि-सर्वेक्षण में ज़रुर इस्तमाल हुआ था। कुलोत्तुंग-I के शासन-काल में भी दो सर्वेक्षण हुए।

चोल अभिलेखों में उल्लिखित कर-संबंधित शब्दों से राज्य द्वारा वसूले जाने वाले करों की जानकारी मिलती है। काराशिमा के शोध ने दर्शाया है कि चोल राज्य के दो मुख्य/मूल *मण्डलमों* (*चोल-मण्डलम्* और *जयन्गोण्डचोल-मण्डलम्*) में जारी किए गए अभिलेखों में पूरे चोल-काल (846-1279 ईस्वी) के दौरान बारम्बार उल्लिखित सात शब्द सात मुख्य कर माने जा सकते है। ये है: *अंतरायम्, एच्चोरु, कडमइ, कुडिमइ, मुट्टइ-अल्, तट्टार्-पाट्टम्,* और *वेट्टि*। *कडमइ* व *कुडिमइ* भू-लगान थे, पहला भूस्वामियों पर और दूसरा किसानों पर लगाया जाता था। चुकिं चोल राज्य और

अर्थ-व्यवस्था मुख्यतः कृषि-निर्भर थी, धान और अन्य फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहित किया जाता था। सिंचाई *चोल-मण्डलम्* में तालाबों तथा *जयन्गोण्डचोल-मण्डलम्* में नदी के पानी से होती थी। सिंचाई व्यवस्था के रख-रखाव के लिए, यानी समय-समय पर तालाबों और नदियों का तालों को रेगमुक्त करने के लिए, बल-श्रम सेवाकर के रूप में वसूल किया जाता था, जिसका द्योतक है *मुट्टइ-अल्* और *वेट्टि*। *अंतरायम्* और *तट्टार्-पाट्टम्* व्यापारियों और शिल्पकारों से वसूला जाता था, और इस कर की आवृत्ति 11वीं शताब्दी के अंत से हुई बढ़त व्यापार और दस्त्कारी में विकास का सूचक है। *एच्चोरु* ग्रामवासियों द्वारा राज कर्मचारियों को देय खाद्यान्न के रूप में कर था। अभिलेखों में कर-संबंधित शब्दों के संख्या में उतारोत्तर वृद्धि हुई, जो अपने चरम पर राजेंद्र-II (1052-63 ईस्वी) पहुँच गया, पर इसमें कुलोत्तुंग-I के काल से ह्रास शुरु हो गया।

3.5.2.3 प्रांतीय/ स्थानीय प्रशासन

पल्लव और चालुक्य राज्य प्रांतीय तथा स्थानीय स्तर पर कई प्रमण्डलों/इकाईओं में विभाजित थे। इनकों अलग-अलग काल तथा भिन्न-भिन्ने क्षेत्रों में *आहार, विषय, राष्ट्र, कोट्टम्, मण्डलम्* और *नाडु* कहा जाता था और इनकें आकार और पदानुक्रम में भी काफ़ी अंतर था। ऐसा प्रतीत होता है कि विजित क्षेत्रों के शासकों को राजा का आधिपत्य स्वीकार करने, यदाकदा अधिपतियों को नज़राना पेश करने तथा युद्ध या सैन्य अभियान के समय सैन्य-बल मुहैया करने के एवज़ में स्थानीय प्रशासन का संचालन करने दिया जाता था, अर्थात् ये सामंत के रूप में स्थनीय प्रशासन के जुड़े थे। जैसे बनराज *विषय* एक स्वतंत्र राज्य था, पर बाद में चालुक्यों के अधीन एक प्रांतीय प्रमण्डल बन गया। दक्कन में *विषय* और *राष्ट्र* तथा तमिल क्षेत्र में *मण्डलम्* बड़ी इकाईयां थी।

अपने शक्ति के चरम पर चोल साम्राज्य 9 *मण्डलमों* या *पडियों* में विभाजित था, जिनमें श्रीलंका के विजित क्षेत्र समेत अन्य विजित क्षेत्र भी शामिल थे। प्रशासन को केंद्रिकृत करने के लिए राजराज-I ने सबसे छोटी इकाई *नाडु* और सबसे बड़ी इकाई *मण्डलम्* के बीच *वलनाडु* नामक एक इकाई का गठन किया, और इस इकाई के राजस्व की वसूली का भार इसके अधिकारियों पर डाल दिया। उनका उद्देश्य कृषि-उत्पादन की पारम्परिक इकाई *नाडु* में नातेदारी और क्षेत्रिय संबंधों के आधार पर सशक्त और प्रभावशाली स्थानीय शासक-वर्ग को कमज़ोर करना था। राजराज-I के काल में 10 *वलनाडु* थे, जो 12वीं श्ताब्दी की शुरुआत में विभाजन तथा पुनर्विन्यास के कारण बढ़कर 15 हो गए।

साधारणतः प्रांतीय प्रशासन के प्रमुख थे राजकुमार (*युव-महाराज*)। अभिलेखों में *देशटिक, भोजक, वल्लभ, गोवल्लभ, सञ्चरंत, आयुक्त, अध्यक्ष* आदि ज़िला-स्तरिय अधिकारियों का उल्लेख है। पल्लव राज्य के गैर-तमिल-भाषी क्षेत्रों में भूमि के लेन-देन तथा दान की प्रक्रिया में कई अधिकारियों को सूचित करना होता था। इनमें शामिल थे *सेनापति, राष्ट्रिक* (राष्ट्र के प्रमुख), *मदविक* (सीमा-शुल्क अधिकारी), *देशाधिकृत* (ज़िला-अधिकारी), *वल्लभ* और *गोवल्लभ* (घोड़े और अन्य मवेशियों के अधीक्षक), *नायक* (सैनिक दस्तों के अध्यक्ष/कप्तान), और *सञ्चरंत* (गुप्तचर)। चालुक्य विक्रादित्य के लक्ष्मेश्वर अभिलेख में राज-प्रशासन और ग्रामीण संस्थाओं के संबंध का संकेत मिलता है। इसमें यह बताया गया है कि स्थानीय मुद्दों का आखरी हल राजादेशों से होता था, जिन्हें राजकीय अधिकारी (*राजपुरुषर*) कार्यान्वित करते थे। चोल काल में *नाडु* के स्तर पर अधिकारियों में *नाडु-वगइ, नाडु-काकनी-नायकम्,*

नाडु-कुरु तथा *कोट्टम्- वगइ* शामिल थे, पर इनमें से सभी का दायित्व स्पष्ट नहीं है और ऐसा प्रतीत होता है कि इनके कार्य में एक-दूसरे से पूर्णतया पृथक नहीं थे।

पल्ल्व-चोल काल में तमिल क्षेत्र का ग्रामिण प्रशासन उर्, और *सभा* के अधीन था। सबसे छोटी प्राशासनिक इकाई *नाडु* के अंतर्गत कई गाँव थे, कुछ *नाडुओं* में एक-दो शहर (*नगरम्*) भी थे। गाँव दो तरह के थे: उर् और *ब्रह्मदेय*। संख्या में अधिक उर् किसानों के पारम्परिक गाँव थे। इनमें उर् (बाद के पल्लव अभिलेखों में *उरार्*) नाम की ही ग्रामीण सभा थे, जिसके सदस्य ज़्यादातर *वेल्लल* नामक भूस्वामी थे। संख्या में काफ़ी कम *ब्रह्मदेय* ब्राह्मणों को राजाओं द्वारा उपजाऊ क्षेत्रों में दिए गए भूमि-दानों के परिणाम-स्वरूप बने गाँव थे। इन *ब्रह्मदेयों* की ग्रामीण सभा को *सभा* या *महासभा* कहा जाता था और इनके सदस्य ब्राह्मण भूस्वामी *पेरुमक्कल्* (अर्थात् 'महान व्यक्ति') कहलाते थे। ये *सभाएं* मंदिरों के लिए अनुदानों का अनुमोदन; मंदिरों, सड़कों, नहरों, तालाबों तथा कृषि-भूमि का रखरखाव; कर- तथा कर-मुक्ति निर्धारण, न्याय-प्रशासन आदि दायित्वों का पालन करती थी। इन *सभाओं* का प्राशासनिक कार्य *वरियम्* नामक कमेटीयां/समितियां करती थी। पल्लव शासक दंतिवर्मन (796-846 ईस्वी) के 9वें राज्य-वर्ष के प्रसिद्ध उत्तिरमेरूर अभिलेख में उत्तिरमेरूर गाँव की सभा के *वरियमों* की गतिविधियों की सबसे पहला ज्ञात विवरण मिलता है। 8वीं शताब्दी से ही ये *वरियम्* ग्रामीण प्रशासन में काफ़ी सक्रिय थे। 10वीं शताब्दी की शुरुआत में ये *वरियम्* अपने भिन्न तथा विशिष्ट कार्यों से जाने गए, जैसे *एरि वारिय पेरुमक्कल्* (तालाबों या सिंचाई व्यवस्था के रखरखाव के लिए *वरियम्*), *तोट्टा वारिय पेरुमक्कल्* (जन-उद्यानों के रखरखाव के लिए *वरियम्*)। पल्लव कम्पवर्मन के उक्क्ल अभिलेख में एक वार्षिक समिति, *सम्वत्सरस्य वरिय पेरुमक्कल्*, का भी उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने दैनिक प्राशासनिक गतिविधियों ये *सभाएं* केंद्रीय प्रशासन से काफ़ी हद तक स्वंतंत्र थी।थी। यहाँ तक कि राजकुल के सदस्यों को भी इनके अधिकार-क्षेत्र में स्थित किसी मंदिर को भूमि-दान देने के लिए भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में इनकी अनुमति तथा सहयोग लेना पड़ता था। शहरों के प्रशासन का भार *नगरम्* या वणिकों की सभा पर था।

दक्कन के चालुक्य अभिलेखों में ग्राम-प्रशासन गाँव के प्रधान (*गामुण्ड*) तथा वृद्ध और वरिष्ट लोगों (*महा-जन*) के हाथों में था। प्राशासनिक कार्यों में सहयक थे *करण* (लेखपाल)। *गामुण्ड* केंद्रीय/राजकीय और ग्रामीण प्रशासन के बीच सम्पर्क-सूत्र था, और शायद उसकी नियुक्ति केंद्र द्वारा की जाती थी। मंदिरों को दान देने की अनुमति *गामुण्ड* और *महाजनों* से लेनी होती थी। पर दक्षिण की तुलना दक्कन में राज-अधिकारी ग्रामीण सभाओं के साथ ज़्यादा करीबी संबंध रखते थे।

3.5.2.4 सैन्य संगठन

पूर्व मध्यकाल में दक्कन और दक्षिण भारत के शासकों के सैन्य अभियानों और परस्पर-युद्धों से एक प्रभावशाली सैन्य संगठन का अंदाज़ा लगाया जा सकता है, पर इस संबंध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। अभिलेखों में कुछ पल्लव शासकों को युद्ध में हाथिओं के इस्तमाल की विद्या (*गज-शास्त्र*) में निपुण बताया गया है। अभिलेखों तथा वैकुण्ठपेरुमाल मंदिर की अलंकृत दिवारों से युद्ध में हाथिओं के व्यापक उपयोग के बारे में पता चलता है। परमेश्वरवर्मन-I के एक अभिलेख पल्लव सेना के संगठन और शस्त्रों की जानकारी देता है। नंदिवर्मन-II के

सेनानायक उदयचन्द्र जैसे कुछ युद्ध-निपुण सैन्य अधिकारियों के भी उल्लेख मिलते है। चीनी-बौद्ध तीर्थयात्री श्वैन ज़ंग के वृतांत में चालुक्य सेना के बारे में जानकारी उपलब्ध है, जैसे विजयी सेना द्वारा हारे हुए सैनिकों को स्त्रियों के कपड़े पहनने पर मजबुर करने और इस अपमान से बचने के लिए कई सैनिकों द्वारा आत्महत्या करने की प्रथा।

चोल राज्य की सैन्य-व्यवस्था के बारे में ज़्यादा जानकारी उपलब्ध नहीं है, हालांकि चोल सेना (*नियायम्*) की कुछ पलटनों के नाम मिलते है तंजौर के शिव-मंदिर में उत्कीर्ण अभिलेखों से, जो उल्लेख करते है मंदिर में राजकुल द्वारा स्थापित देव-प्रतिमों के उद्देश्य में सैनिकों द्वारा किए गए धन-दान का। इन पलटनों या सैन्य-दलों में शामिल है *विल्लिगल्* (धनुर्धारी सेना), *कुदिरइच्चेवइच्चेवगर्* (अश्वारोही सेना), *आनइयाल्गल्* (हस्ति सेना), *परिवारत्तार्* (राजभवन-रक्षक-दल), और *वेलइक्कारर्* (राजा के अंगरक्षक-दल)। इन पलटनों के नामों में अधिकतम के साथ उपसर्ग के रूप में जुड़े है राजा अथवा राजकुमार के नाम तथा *तेरिंद* शब्द, जिसका अर्थ है *''चुनिंदा'* या *''चयनित'*। उदाहरण के रूप में *'केरलांतक-तेरिंद- परिवारत्तार्'*, अर्थात् 'केरलांतक नामक चुनिंदा राजभवन-रक्षक'। इनके अलावा अन्य अभिलेखों में उल्लिखित है *वालिलार्* (तलवार-धारी) और *कोंदवर्* (भाला-धारी) नामक सैन्य-दल, तथा *सेनापति* व *दण्डनायकम्* नामक महत्वपूर्ण सैन्य-अधिकारी। कोनेरिराजपुरम के एक अभिलेख से पता चलता है कि *कैक्कोलर्*, जो चोलोत्तर काल की एक जुलाहा जाति थी, चोल काल में एक महत्वपूर्ण सामरिक जाति थी।

सैनिकों की भर्ती कैसे होती थी इसका कोई साक्ष्य नहीं है, पर राज्य द्वारा नियुक्त व पोषित स्थायी सेना अवश्य होता होगी, हालांकि आवश्यक्ता पड़ने पर स्थानीय मुखियाओं/सरदारों सैन्य सहायता ली जाती थी। शासकों और सरदारों के अंगरक्षकों की बहाली व्यक्तिगत निष्ठा के आधार पर होती थी, उनके चयन में वंशानुगत निष्ठा के तत्व मौजुद थे और उन्हें सेवा के बदले में भू-राजस्व वसूलने के अधिकार दिए जाते थे।

राजराज-I का श्रीलंका पर और राजेंद्र-I का श्री विजय पर सैन्य-अभियानों का उल्लेख चोल नौसेना के प्रमाण के रूप में कई बार किया गया है, पर यह स्पष्ट नहीं है कि क्या चोलों की अलग से नियुक्त व संघठित नौसेना थी या इन अभियानों में सिर्फ़ स्थलसेना को समुद्र-मार्ग से ले जाया गया था।

3.6 सार संक्षेप

इस इकाई में 6ठीं से 12वीं शताब्दी तक दक्कन व दक्षिण भारत में निरंतर राज्य-निर्माण, राज्य-विस्तार तथा राजनीतिक संघर्षों की प्रक्रियाओं का विवरण दिया गया है। 6ठीं से 9वीं शताब्दी में बादामी चालुक्य, पल्लव व पाण्ड्य अपने सहयोगी सामंत-राज्यों के साथ प्रायद्वीपिय भारत पर वर्जस्व पाने के लिए निरंतर युद्ध-रत थे। 9वीं शताब्दी से ही शक्ति का संतुलन बदलने लगा, और चोल, राष्ट्रकूट तथा काल्याणी चालुक्य जैसे नए राज्यों के विकास, विस्तार और संघर्ष की प्रक्रिया चली। इन प्रक्रियाओं के चलते राजत्व की अवधारणा, राज-सत्ता के वैधिकरण के तरीके, केंद्र-परिधि के संबंध तथा प्राशासनिक ढ़ांचों में कई निरन्तरताएं और अनिरंतरताएं देखी जा सकती है। अनुष्ठानों, वंशावलियों, धार्मिक अनुदानों, अतिरंजित प्रशस्तियों के माध्यम से राज-सत्ता को वैधानिकता प्रदान करने तथा सशक्त करने की निरन्तर कोशिशे चल रही थी। पर स्थानीय स्तर पर उर और *सभा* जैसी परम्परागत संस्थाएं केंद्रीय या राजकीय प्रशासन से काफ़ी हद तक स्वतंत्र होकर काम कर रही थी। राज-शक्ति के बड़ने से स्थानीय

शासक-वर्गो की शक्ति या उनके प्रभाव में कोई दीर्घ-कालीन ह्रास नहीं हुआ, बल्कि केंद्र में राजा तथा इन स्थानिय शासक-वर्गो के बीच का घटता-बड़ता तनाव इस क्षेत्र की राज्य-व्यवस्थाओं की स्थायी विशेषता बनी रहीं।

3.7 संदर्भ ग्रंथ

कारािशमा, नोबोरु, सम्पादित, *अ कॅन्साइस् हिस्ट्री ऑफ़ साउथ इंडिआ*, 2014.

मीनाक्षी, सी, ऐड्मिंस्त्रेश्न् ऐंड शोशल् लाईफ़ अण्डर द पल्लवस्, 1938.

शास्त्री, नीलकण्ठ, *अ हिस्ट्री ऑफ़ साउथ इंडिआ*, 1975.

सिंह, उपिंदर, *प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास*, 2017.

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. दक्षिण भारत के प्रारंभिक इतिहास पर चर्चा कीजिए।
2. प्रारंभिक दक्षिण भारतीय शासकों के आपसी संघर्ष पर चर्चा कीजिए।

तुर्क आक्रमण–परिस्थितियां, कारण एवं परिणाम

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 सामाजिक परिस्थिति
1.4 राजनीतिक परिस्थिति
1.5 धार्मिक परिस्थिति
1.6 तुर्क आक्रमण के आर्थिक कारण
1.7 तुर्क अक्रमण के राजनीतिक कारण
1.8 तुर्क अक्रमण के धार्मिक कारण
1.9 तुर्कों के सफलता के कारण
1.10 तुर्कों के सफलता के राजनीतिक कारण
  1.10.1 राजनीतिक विश्रृंखलता
  1.10.2 राष्ट्रीयता का अभाव
  1.10.3 राजपूतशासकों में कूटनीति का अभाव
  1.10.4 प्रशासन में सामन्तवाद का उत्कर्ष
  1.10.5 भारतीय शासक और जनता में उदासीनता
  1.10.6 सुदृढ़ सीमांत नीति का अभाव
  1.10.7 युद्ध का भार केवल राजपूतों पर
  1.10.8 शासकों के आपसी द्वेष और राजनीतिक एवं प्रशासनिक भेद–भाव
1.11 सैनिक कारण
  1.11.1 स्थाई सेना का अभाव
  1.11.2 भारतीय सेना में पदातियों बाहुल्य
  1.11.3 कोतल **(Reserved)** सेना का अभाव
  1.11.4 हस्ति सेना की दुर्बलता
  1.11.5 राजपूतों के प्राचीन युद्ध प्रणाली
  1.11.6 सैनिकों की दोषपूर्ण नियुक्ति
  1.11.7 राजपूत शासकों द्वारा आक्रामक नीति का पालन नही करना
  1.11.8 तुर्कों की सैन्य श्रेष्ठता
1.12 तुर्कों के सफलता के सामाजिक कारण
1.13 तुर्कों के सफलता के आर्थिक कारण
1.14 तुर्कों के सफलता के धार्मिक कारण
1.15 तुर्क आक्रमण के परिणाम
1.16 भारतीय सैन्य शक्ति और राजनीतिक दुर्बलता का प्रदर्शन
1.17 भारत के अपार धन की क्षति
1.18 भारतीय संस्कृति का विनाश
1.19 इस्लाम का प्रसार
1.20 दास प्रथा का विकास

1.21 मध्य एशिया माम्राज्य की सुरक्षा एवं विस्तार
1.22 कला एवं साहित्य का संरक्षण
1.23 भारत पर आक्रमण के नवीन मार्ग की खोज
1.24 सारांश
1.25 अभ्यासार्थ प्रश्न
1.26 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

तुर्क आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति चिन्ताजनक थी। यहां का सामाजिक ढांचा अत्यन्त दोषपूर्ण था। वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्त ने भारत के लोगों की सम्यक चेतना और देश भक्ति की भावना का नाश कर दिया था। देश के प्रति लोगों में निष्ठा की कोई भावना नही थी। व्यक्तिगत तथा सामुदायिक दृष्टि से इसके कारण लोगों का नैतिक पतन हुआ जिसके परिणाम अत्यन्त घातक सिद्ध हुए। वस्तुतः जाति का सिद्धान्त मानवोचिज सम्मान का निषेध है। भारतीय सामाजिका वर्ण व्यवस्था काल एवं राजनीतिक विखण्डता ने भारत को अन्दर से खोखला कर दिया था। भारतीय राजाओं के मध्य व्याप्त कलह एवं द्वेष ने तुर्कों के कार्य को और आसान कर दिया। तुर्कों के भारत आगमन ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन लाया और विभिन्न क्षेत्रों में इनके आगमन के परिणाम दृष्टिगोचर हुआ।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप तुर्कों के भारत पर आक्रमण के कारण और इसके परिणामों से अवगत हो सकेंगें साथ ही यह भी जान सकेंगें कि;

- भारतीयों के पराजय और तुर्कों के सफलता के क्या कारण थे।
- भारत के तत्कालीन, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक व्यवस्था।
- राजपूतों के सैनिक क्षमता एवं युद्ध निति।
- भारत की आर्थिक सम्पन्नता विदेशियों के लिए आकर्षण।
- तुर्कों के आक्रमण के परिणाम
- तुर्कों के आगमन से भारतीय समाज एवं संस्कृति पर प्रभाव।

1.3 सामाजिक परिस्थिति

भारतीय समाज परम्परागत चार–प्रधान वर्णों, ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में बँटा हुआ था। प्रख्यात विद्धान अलबरूनी ने लिखा है, "हिन्दू अपनी जाति को वर्ण कहते है जिसका अर्थ है रंग और वंश के दृष्टिकोण से व उन्हे जातक अर्थात जन्मित कहते हैं। आरम्भ से ही ये जातियां चार थी अर्थात ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । ब्राहमण समाज की चोटी पर थे और उन्हे मनुष्यों में सर्वोत्तम समझा जाता था "। अबलरूनी के अनुसार वेदों का अध्ययन करने तथा मोक्ष प्राप्ति का अधिकार केवल ब्राहमण तथा क्षत्रियों को ही था। क्षत्रिय शासन और सैनिक कार्य करते थे। वैश्यों और शूद्रों के सामाजिक अनुक्रम में नीचे का दर्जा

प्रदान किया गया था। वैश्यों का मुख्य पेशा खेती, व्यापार एवं पशुपालन था। अलबरूनी के शब्दों में, " शूद्र, ब्राहमण के नौकर के समान थे वेदों का पाठ करते तो इनकी जीभ काट ली जाती थी "। इस पर टिप्पणी करते हुए पो0 हबीब ने ठीक ही लिखा, "ऋग्वैदिक काल में ऐसी नीति की आवश्यकता हो भी सकती थी और नही भी किन्तु ग्यारहवी शताब्दी में अर्थात, अलबरूनी, अबूसेना तथा सुलतान महमूद के काल में यह मूर्खतापूर्ण पागलपन से भरी तथा आत्मघाती नीति थी और ब्राहमणों को जो स्वंय बड़े तर्कवादी तथा अत्यन्त प्रबुद्ध वर्ग के लोग थे, इस महान अक्षम्य सामाजिक अपराध के लिए बहुत भयंकर मूल्य चुकाना था "

उल्लेखित चार वर्णों के अतिरिक्त समाज में एक ऐसा भी वर्ग था जिसकी गणना किसी जाति में नही थी और जिसे अंत्यज कहते थे। इनमें उल्लेखनी थे, धोबी,चर्मकार, नाविक, मछुआरा, बहेलिया, जुलाहे, जादूगर, एवं ढोलक बनाने वाले। ये द्विज के गाँवों अथवा नगरों के पास किन्तु बाहर रहा करते थे। अलबरूनी ने लिखा है, " यदि कोई अपनी जाति का व्यवसाय या कर्तव्य ग्रहण करना चाहता है चाहे वह दूसरी जाति के लिए सम्मान का विषय ही क्यों न हो, तो वह पाप समझा जाता है"।

डोम, चंडाल, बधातु इत्यादि का भी एक अलग वर्ग था और वे सबसे निम्नकोटि के लोग होते थे। उन्हें गन्दा काम करना पड़ता था। अलबरूनी लिखता है कि " वास्तव में वे लोग अवैध बच्चों की भांति समझे जाते थे और उनके साथ समाज से बहिष्कृत व्यक्ति की तरह व्यवहार किया जाता है समाज छुआ–छूत भी भयंकर बीमारी से बुरी तरह ग्रसित था। जो भारतीय समाज के लिए अत्यन विनाशकारी सिद्ध हुआ। उल्लेखित तत्व भारतीय समाज को अन्दर से खोखला कर दिया था।

1.4 राजनीतिक परिस्थिति

उस समय राजनीतिक शक्ति के रूष में केवल राजपूत राज्यों का महत्व था। राजपूतों की नीति ने भारत में सामंतशाही संस्थाओं को जन्म दिया । जाति की प्रथा ने समाज को संकीर्ण वर्गों में विभाजित कर दिया था। इस कारण ही भारत में सामूहिक नागरिकता की भावना लुप्त हो गई जो तुर्क आक्रमणकारी के लिए बड़ा ही लाभदायक सिद्ध हुआ। भारतीय राजनीतिक जीवन की एक विशेषता बहुशासकीय प्रणाली थी। भारत ऐसे राष्ट्रों का समूह मात्र था जो प्रत्येक दृष्टि से स्वतंत्र थे। इन शासकों के बीच पारस्परिक द्वेष, एवं कलह, की भावना बलवती होती गई। एकता एवं अखण्ड़ता का प्रश्न ही नही था। राजपूत सरकारों का स्वरूप पूर्णतः सामंती था।

प्रत्येक राज्य जागीरों में विभाजित था। खेद की बात यह थी कि सामन्त अपने कर्तव्यों की अवहेलना करने लगे थे। उनके द्वारा निजी सेना का रखा जाना, कर लगाना तथा करों की वसूली करना आदि बातों के कारण राजीनतिक सत्ता पूर्णरूप से नष्ट हो गई थी और विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को काफी बल मिला। शासन और सेना पर सामन्तों का प्रभाव व्यापक रूप से बढ़ गया जो राजा की सत्ता के लिए घातक सिद्ध हुआ। इन सिद्धान्तों के कारण आंतरिक अराजंकता एवं अशक्ति की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। ये सारे राजनीतिक एवं सामाजिक तत्व भारत की बहुत बड़ी कमजोरी थी जिसका लाभ तुर्कों को मिला।

तुर्कों के आक्रमण के समय भारत अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था इन राज्यों में एकता, सहयोग, देश–प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना के स्थान पर ईर्ष्या, द्वेष एवं संघर्ष की प्रधानता थी। शासन का स्वरूप प्रायः सामन्तशाही राजतंत्र था। युद्ध में अधिक व्यस्त रहने के कारण इन सभी राज्यों की नीति पर सैनिक आवश्यकताओं का भारी प्रभाव रहता था। साधारण जनता राज्य के कार्यों एवं नीतियों की ओर से उदासीन हो गई थी। उन्हें शासन एवं राजवंशों के उत्थान अथवा पतन से कोई मतलब नही रह गया था। ऐसे राजनीतिक वातावरण में महत्वकांक्षी आक्रमणकारियों को निश्चित ही लाभ मिलता है और तुर्कों ने इसका भरपूर फायदा उठाया।

1.5 धार्मिक स्थिति

सामाजिक क्षेत्र की तरह धार्मिक क्षेत्र में भी भारत में उच्च आदर्शो का अभाव देखने को मिलता हैं धर्म में भी अधःपतन होने लगा था। यद्यपि शंकराचार्य के प्रयत्नों के कारण इस काल में पौराणिक हिन्दू धर्म का उत्थान हुआ था, किन्तु इस धर्म में भी अनेक बुराइयां थी। अन्धविश्वास, प्रबल–मूर्ति–पूजा, मन्दिर–निर्माण, कर्मकाण्ड, व्रत, उपवास, उत्सव आदि पर काफी जोर दिया जाता था। हिन्दू धर्म में अनेक शक्तिशाली सम्प्रदाओं का विकास हुआ था। इनके बीच पारस्परिक संघर्ष था। शैव एवं वैष्णव परस्पर संघर्षरत थे। इस काल में बाममार्गी सम्प्रदाय अधिक प्रभावशाली हो गया था। इसके अनुयायी, सूरापान, मांसाहार, व्याभिचार आदि बुराइयों में लिप्त थे, लोग "खाओ–पिओ और मौज करो" वाले सिद्धान्त के समर्थक थे। नालन्दा जैसे शौक्षिक संस्थाओं में भी इन दूषित भावनाओं का प्रदर्शन देखने को मिला है। मन्दिर एवं मठों में धन का बाहुल्य था। यहां देवदासियां तथा अन्य स्त्रियां भी रहती थी। स्त्री और धन के संगम से विलासिता और भ्रष्टाचार का आगमन होता हैं। इस प्रकार इस काल में मठ एवं मन्दिर व्याभिचार एवं भ्रष्टाचार्य के अड्डे बन गये। धर्म में नैतिकता एवं अध्यात्मिकता का आभाव रहा। साधु–सन्त और संन्यासी श्रद्धा की अपेक्षा उपहास के पात्र बन गये। इस काल में बौद्ध धर्म का पतन हुआ। धर्म की यह स्थिति भारत में इस्लाम धर्म के प्रचार में सहायक सिद्ध हुई। संक्षेप में किसी योग्य एवं महत्वकांक्षी आक्रमणकारी के लिए भारत में परिस्थितियां बिल्कुल अनुकुल थी। देश की पतन्मुखी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति आक्रमणकारियों को निमंत्रण दे रही थी। तुर्को ने इसी स्र्वणिम अवसर से लाभ उठाया और भविष्य में भारत में एक विस्तृत मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना कर ली।

1.6 तुर्क आक्रमण के आर्थिक कारण

भारत पर तुर्क आक्रमण के अनेक कारण थे । अनेक इतिहासकारों ने यह प्रमाण्ति करने का प्रयास किया है कि तुर्की आक्रमणकारियों (महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गोरी) के भारत–आक्रमण का मुख्य कारण भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार करना तथा मूर्ति–पूजा को समाप्त करना था। कुछ अन्य इतिहासकार विशेषकर प्रो0 हबीब एवं निजामी इत्यादि यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि तुर्क आक्रमणकारियों ने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर भारत पर आक्रमण नही किया, बल्कि उनका उद्‌देश्य भारत के विख्यात मन्दिरों को लूटकर उनके धन प्राप्त करना था, जिसके आधार पर मघ्य एशिया में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जा सके। अतः, धन, प्राप्ति की लिप्सा ही आक्रमण का मुख्य कारण था। इसके साथ–साथ यह बात भी याद रखने योग्य है कि भले ही तुर्कों का उद्‌देश्य भारत की धन–सम्पदा हासिल कर, उससे सुदृढ़ सेना तैयार कर मध्य–एशिया में अपनी स्थिति मजबूत करना था। लेकिन इसके साथ साथ उनका ध्येय काफिरों के देश में, इस्लाम धर्म का प्रभाव स्थापित करना भी था। अगर सिर्फ धन कमाने का ही उद्‌देश्य रहता, तो मन्दिरों एवं मूर्त्रियां को तोड़ा नही जाता। यह कहना कि "केवल लड़ाई के समय अपने मुस्लिम भाइयों की सहानुभूति और सहायता प्राप्त करने के लिए महमूद ने मन्दिरों को तहस–नहस किया और धन लूटकर ले गया" वास्तविकता को नकारना जैसा है।

प्रो0 हबीब, एवं निजामी के इलावा एस0एम0जाफर ने भी महमूद के आक्रमण का प्रधान उद्‌देश्य लूट का लोभ ही बताते है। इस उद्‌देश्य को छिपाने के लिए उसने धर्म की तो केवल आड़ ली थी। प्रमुख विद्धान हैवल का कथन है कि,"यदि बगदाद में उतना ही धन मिलने की सम्भावना होती, जितना कि सोमनाथ में थी तो महमूद उसे भी उतनी ही निर्दयता से लूटता" । आर0एस0 शर्मा वी0ए0 स्मीथ एवं डा0 ईश्वरी प्रसाद का भी मत है कि भारत में सदियों से संचित धन का लूटना ही उसका प्रधान उद्‌देश्य था।

1.7 राजनीतिक कारण

तुर्की आक्रमण के कुछ राजनीतिक कारण भी थे। भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति किसी भी महत्वाकांसी आक्रमणकारी को आकृष्ट किए बिना नही रह सकती थी। 11वीं –12वीं शताब्दी में सम्पूर्ण भारत आपसी संघर्ष में लिप्त अनेक राज्यों मे विभक्त था। आपसी प्रतिस्पर्द्धा एवं द्वेष ने इन्हें दुर्बल बना दिया था। ये किसी भी महत्वाकांक्षी तथा दृढ़ निश्चयी शक्ति को रोकने में अक्षम थे। भारत पर आक्रमण कर यहां से धन तथा हस्ती दल प्राप्त कर महमूद मध्य एशिया में अपनी स्थिति सूदृढ़. करना चाहता था। इसके अतिरिक्त, पंजाब के हिन्दूशाही शासक जयपाल ने समानी शासन के अन्तर्गत भूत पूर्व गर्वनर के पुत्र के साथ मिलकर गजनी पर चढ़ाई की थी। इस युद्धों में युवराज के रूप में महमूद न सक्रिय रूप से भाग लिया अतः गजनी का शासक बनते ही उसने अपने दुशमनों से बदला लेनी की योजना बनाई। मुलतान के विरूद्ध संघर्ष का मुख्य कारण यह था कि मुलतान के शासक, इस्लाम के उस सम्प्रदाय को माननेवाले थे, जिनका महमूद कट्टर विरोधी था।

महमूद की ही तरह मुहम्मद गोरी भी एक महत्वाकांक्षी शासक था। पंजाब से गजनी–वंश का शासक समाप्त कर वह अपनी श्रेष्ठता कायम करना चाहता था। इसी प्रकार वह सिन्ध और मुलतान के इस्मालिया शिया–राजवंशों, जो उसके कट्टर विरोधी थे, पर नियन्त्रण स्थापित करना चाहता था। गोरी के आक्रमण का एक अन्य कारण यह था कि मध्य एशिया में ख्वारिज्मी शासकों के प्रभाव के कारण उसे अपना विस्तार भारत की तरफ, करने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नही था। इस प्रकार अनेक आर्थिक, धार्मिक, व्यक्तिगत और राजनीतिक कारणों से प्रेरित होकर तुर्को ने भारत–विजय की योजना बनाई तथा इसमें वे सफल भी रहे।

1.8 धार्मिक कारण

अनेक इतिहासकारों का मत है कि महमूद के आक्रमणों का उद्देश्य भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार करना भी था। उसका दरबारी लेखक उतबी ने लिखा है कि भारत पर उसके आक्रमण 'जिहाद' के रूप में थे और उनका उद्देश्य भारत में प्रचलित मूर्ति–पूजा को समाप्त कर इस्लाम का प्रचार–प्रसार करना था। इसलिए महमूद ने मूर्तियों को तोड़ा और मन्दिरों को लूटा। उसने खलीफा को ऐसा करने का आश्वासन भी दिया था। कुछ मुस्लिम लेखकों के मतानुसार महमूद ने केवल इस्लाम धर्म का प्रचार ही नही किया बल्कि इसके गौरव को भी बढ़ाया। उन्होने उसे "अल्लाह के रास्ते पर चलने वाले एक ऐसे मुजाहिद के रूप में प्रस्तुत किया है कि उसके पद चिन्हों को अनुकरण कर सभी मुसलमान बादशाह गर्व का अनुभव करेगें"। डा0 ताजिम ने भी महमूद को एक धर्म प्रचारक के रूप स्वीकार किया है। इनका मत है कि सोमनाथ के मन्दिर की मूर्ति–पूजा पर इस्लाम की चमत्कार पूर्ण विजय थी और धर्म–रक्षक के रूप में समस्त मुस्लिम संसार में महमूद की प्रशंसा की गई। अलबरूनी ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि महमूद कट्टर सुन्नी मुसलमान था। अतः इसमें कोई आश्चर्य नही कि इस्लाम का प्रचार करना उसके भारतीय आक्रमणों का उद्देश्य रहा हो।

1.9 तुर्कों के सफलता के कारण

बारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुहम्मद गोरी को अपने भारतीय आक्रमणों में अदभुत सफलता मिली। तूर्कों के सफलता एवं भारतीयों के पराजय के अनेक कारण उत्तरदायी थे। सर जादुनाथ सरकार ने तुर्कों की सफलता के तीन कारणों का उल्लेख किया है :–

(1) जहां तक वैधानिक स्थिति और धार्मिक विशेषाधिकार का प्रश्न है तुर्कों में पूर्ण समानता और सामाजिक संगठन था।

(2) ईश्वर पर पूर्ण निर्भरता से उत्पन्न भाग्यवाद और विश्वास कि अल्लाह की इच्छा समस्त मानवीय प्रयत्नों से सर्वोपरि है। इस भावना ने युद्ध करते समय उनकी मुत्यु का भय नष्ट कर दिया।

(3) मधपान से मुक्ति। तुर्क इससे दूर थे जबकि मधपान ने राजपूतों, मराठों तथा अन्य हिन्दू सैनिकों का सर्वनाश कर दीया और उनकी अकस्मात छापामार युद्धों का नेतृत्व यहां तक कि अपने ही सैनिक शिविरों की आवश्यक सावधानी से रक्षा करने की क्षमता नष्ट कर दी। यद्यपि उल्लेखित कारण युक्ति संगत है, परन्तु इन्हें पूर्ण नही माना जा सकता है। इसके कुछ महत्वपूर्ण राजनीतिक सैनिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक कारणों की चर्चा की जा सकती है।

1.10राजनीतिक कारण

तुर्कों की विजय और भारतीयों के पराजय के निम्नलिखित राजनीतिक कारण थे।

1.10.1 राजनीतिक विश्रृंखलता

तुर्कों के आक्रमण के पूर्व, भारत की राजनीतिक स्थिति अच्छी नही थी। हर्षवर्धन की मुत्यु के पश्चात भारत अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभाक्त हो गया था। इन राज्यों में राजपूत शासकों का शासन था। इनमें आपसी एकता और संगठन की नितांत कमी थी। वे एक दूसरे के साथ संघर्षरत रहते थे। अनेक बार राजपूत राजाओं ने अपने प्रतिद्वंद्धी का विनाश करने के लिए विदेशियों कों आमंत्रित किया, उन्हे अपने प्रतिद्वंद्वी के विरूद्ध सहायता एवं सहयोग दिया। तुर्कों ने इस राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाकर आक्रमण किया और एक–एक करके राजपूत शासकों को परास्त कर दिया।

1.10.2 राष्ट्रीयता का अभाव

राजपूत शासकों के बीच राजनीतिक एकता और राष्ट्रीयता की भावना का सर्वथा अभाव था। राजपूत अत्यंत स्वाभिमानी थे और वे अपने वंश के लिए अधिक स्वामिभक्त थे। यद्यपि अपने राज्य पर हुए आक्रमणों का उन्होंने जमकर सामना किया, किन्तु भारत के अन्य भागों पर होने वाले विदेशी आक्रमणों के प्रति वे उदासीन और तटस्थ रहे। कभी भी संगठित होकर उन्होने अपने शत्रु का सामना नही किया। राजपूत शासक और सामान्य जनता के बीच भी राष्ट्रीयता की भावना नही के बरबर थी । देश में राजनीतिक एकता और दृढ केन्द्रीय सत्ता का भी अभाव था।

1.10.3 राजपूत शासको में कूटनीति का अभाव

राजपूत शासक सफल कूटनीतिज्ञ भी नही थे। धर्म–युद्ध उनका आदर्श था। युद्ध में वीरगति प्राप्त करना उनका ध्येय होता था। शत्रुओं के विरूद्ध युद्धों में विजयी होना नही चाहते थे। वे वचन के पक्के थे। अपनी वचन पूर्ति के लिए वे राष्ट्रीय हितों को बलिदान भी कर देते थे। दूसरी ओर तुर्क आक्रमणकारियों ने युद्धों में छल–कपट का सहारा लिया। इससे राजपूतों को काफी क्षति उठानी पड़ी।

1.10.4 प्रशासन में सामन्तवाद का उत्कर्ष

इस काल में प्रशासन एवं सैन्य व्यवस्था का स्वरूप सामंतवादी हो गया था। सामंत ही प्रशासन एवं सेना में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित होते थे। इन सामन्तों के बीच राज–भक्ति एवं आपसी एकता की कमी थी। सामन्तवादी व्यवस्था के उत्कर्ष के चलते राजा की शक्ति धीरे–धीरे क्षीण होने लगी थी। राजा के दुर्बल होने पर अथवा उसकी मुत्यु के बाद बड़े–बड़े सामंत अपने क्षेत्र में स्वतंत्र राज्यों की स्थापना कर लेते थे। इस प्रकार सारा उत्तरी भारत कलह, गृह–युद्ध और विद्रोह का अखाड़ा बन गया था।

1.10.5 भारतीय शासक और जनता में उदासीनता

भारत में अनेक अरब और तुर्क व्यापारी आते–जाते रहते थे और उनमें से कुछ यहां स्थायी रूप से बस गये थे। भारतीय शासकों ने न सिर्फ उनका विरोध किया बल्कि कभी–कभी उनकी सहायता भी की। भारत में बसे हुए इन मुसलमानों ने इस देश में न सिर्फ इस्लाम का प्रचार किया, बल्कि अरब और तुर्क आक्रमणकारियों का सहयोग भी दिया। फिर भी भारतीय शासक और प्रजा दोनों में ही राजनीतिक उदासीनता रही। यह देश के लिए हानिकारक सिद्ध हुई।

1.10.6 सुदृढ़ नीति का अभाव

प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक भारत में उत्तरी–पश्चिमी सीमा की ओर से ही आक्रमण हुए। बारहवीं सदी के भारतीय शासकों ने सुदृढ़ सीमांत नीति अवलम्बन न कर इस क्षेत्र को अत्यन्त असुरक्षित बना दिया। अतः गोरी की सेना को भारत में प्रवेश करने में किसी प्रकार की कठिनाई नही हुई। आक्रमणकारियों को सीमा पर रोकने और खदेड़ने के प्रयत्न नही किये गये। इस प्रकार आक्रमणकारी सीमान्त क्षेत्र से सरलता से पंजाब के पास और जल्द ही उन्होने भारत के अन्य क्षेत्रों पर विजय प्राप्त कर ली।

1.10.7 युद्ध कर भार केवल राजपूतों पर

उस युग में देश की रक्षा और युद्ध का भार केवल राजपूतों पर ही था। राजपूतों को छोड.कर अन्य सभी हिन्दू जातियां युद्ध के प्रति उदासीन रहती थी। भला कब तक सिर्फ राजपूत विदेशी आक्रमणकारियों से निरन्तर युद्ध कर सकते थे। निरन्तर युद्धों के चलते उनकी शक्ति क्षीण होती गई और उनकी संख्या में भी कमी आने लगी। यह भी हिन्दुओं की पराजय का एक मुख्य कारण था।

1.10.8 शासकों के आपसी द्वेष और राजनीतिक एवं प्रशासनिक भेदभाव

राजपूत शासकों में पारस्परिक वैमनस्य, ईर्ष्या और द्वेष की भावना बलवती थी। उनमें सदभावना और सहयोग की नितांत कमी थी। राजपूत शासक अपनी शक्ति का दुरूप्रयोग आपसी युद्धों में कर रहे थे। विदेशियों के विरूद्ध संयुक्त मोर्चा स्थापित कर उनका सुदृढ़ता से सामना करना, उनके वश की बात नही थी। इसी प्रकार इस काल में राजनीतिक और भेद–भाव भी काफी बढ़ गये थे। सिर्फ ब्राहमण और क्षत्रीय ही ऊँचे–ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित किये जाते थे। इस प्रकार अन्य जाति के लोग राज्य के कार्यों और कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन हो गये थे। अतः जनता असन्तुष्ट थी और विदेशी आक्रमणों के संकट काल में उसने अपने शासकों को उचित सहयोग नही दिया ।

1.11सैनिक कारण

मुहम्मद गोरी की विजय एवं राजपूतों की पराजय के कुछ महत्वपूर्ण कारण भी थे। –

1.11.1 स्थाई सेना का अभाव

भारतीय राज्यों में उन दिनों स्थाई सेना का अभाव था। राजा सामंतों द्वारा प्रदत्त सेनाओं पर निर्भर करते थे। आवश्यकता पड़ने पर वे नौसिखियों को भी सेना में भरती कर उन्हे रण क्षेत्र में भेज देते थे। इस प्रकार इन सैनिकों में उचित प्रशिक्षण, अनुशासन और योग्यता की नितांत कमी रहती थी। उनमें अपने शासकों के प्रति स्वामी भक्ति भी नही होती थी।

1.11.2 भारतीय सेना में पदातियों का बाहुल्य

राजपूत सेना में पदातियों का बाहुल्य था। पैदल सेना न तो अधिक गतिशील और पैतंरेबाज होती थी और न पूर्ण रूप से प्रशिक्षित। दूसरी ओर तुर्क सेना में अश्वारोहियों की प्रधानता थीं। वे बड़े गतिशील और प्रशिक्षित थे। भारतीय सैनिक इन अश्वारोहियों का सामाना करने में असमर्थ थे। भारतीय पदातियों को परास्त करना तुर्क अश्वारोहियों के लिए आसान था।

1.11.3 कोतल (Reserved) सेना का अभाव

मुहम्मद गोरी की सेना में कोतल (Reserved) सैनिकों की व्यवस्था थी। राजपूत सेना में इस तरह की कोई व्यवस्था नही थी। राजपूत शासक अपनी सम्पूर्ण सेना को लेकर रणक्षेत्र मे डटे रहते थे। जब वे युद्ध करते करते थक जाते थे तब गोरी अपनी कोतल सेना का उपयोग करता था। इस प्रकार कोतल सेना को थके हुए राजपूत सेना परास्त करने में कम कठिनाई होती थी।

1.11.4 हस्ति–सेना की दुर्बलता

हिन्दू शासकों की पराजय का एक महत्वपूर्ण कारण उनका हस्ति दल भी था। राजपूत अपने सेना में हाथियों को अग्रिम पंक्ति में रखते थे। उद्देश्य था शत्रु सेना को रौंद कर मार डालना । किन्तु अनेक युद्धों में भीषण अघात के कारण हाथी भड़क कर पीछे की ओर भागते और इस प्रकार अपनी सेना को ही रौंद डालते थे। इसके विपरित तुर्क आक्रमणकारी अश्वारोही सेना का अधिक उपयोग करते थे। उनकी सेना द्रुत गति से शत्रु सेना पर आक्रमण करती थी।

1.11.5 रापपूतों के प्राचीन युद्ध–प्रणाली

राजपूतों के अस्त्र–शस्त्र और युद्ध प्रणाली अत्यन्त पुरानी थी। वे प्रायः तलवार और भालों का प्रयोग करते थे। दूसरी ओर तुर्क सेना में तीरन्दाजों की प्रधानता थी। तुर्क सैनिक आग्नेय अस्त्रों का भी प्रयोग करते थे। राजपूत सैनिक विदेशी तीरन्दाजों के सामने नही ठहर सके। राजपूत सेनापति आगे बढ़कर अपनी सेना के साथ युद्ध करते थे। युद्ध में उनकी मृत्यु अथवा घायल हो जाने से राजपूत सैनिकों की हिम्मत टूट जाती थी और वे भाग खड़े होते थे। शत्रु इसका लाभ उठाकर सरलता से विजय प्राप्त कर लेते थे। तुर्क सेनापति रण क्षेत्र में पीछे से अपनी सेना का संचालन करते थे और उनको प्रोत्साहित करते रहते थे। अतः उन्हें राजपूतों के विरूद्ध आशातीत सफलता मिली।

1.11.6 सैनिको की दोषपूर्ण नियुक्ति

भारतीय सैनिक और सैन्य अधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर नही बल्कि जाति और वंश की श्रेष्ठता के आधार पर की जाती थी। इसके अतिरिक्त सैनिक अशक्त और वृद्ध होने पर भी अपने पदों पर बने रहते थे। सैनिक के भरती–क्षेत्र भी सीमित थे। तुर्क सेना में ये सारी बुराइयां नही थी। वे योग्यता के आधार पर न कि जाति अथवा वंश के आधार पर नियुक्त किए जाते थे। उनकी सेना में युवक सैनिकों की भरमार थी। भारतीयों की पराजय का वास्तविक कारण उनकी सामाजिक व्यवस्था और घृणित वर्णात्मक भिन्नता थी जिसने समस्त सैन्य संगठन को जर्जर और कमजोर बना दिया था। वर्ण एवं जाति व्यवस्था के भेदभाव तथा छुआ–छूत की भावना ने सामाजिक एवं राजनीतिक एकता की भावना को नष्ट कर दिया था। देश की सुरक्षा के प्रति जनता की उदासीनता बड़ी घातक सिद्ध हुई। वर्ण व्यवस्था ने राजपूतों की सैनिक क्षमता को भी नष्ट कर दिया था। सैनिक कार्य एक वर्ग विशेष का उत्तरदायित्व मान लिया गया और साधारण जनता को इससे कोई प्रयोजन नही रहा।

1.11.7 राजपूत शासकों द्वारा आक्रामक नीति का पालन नही करना

राजपूत शासकों ने मुहम्मद गोरी के विरूद्ध आक्रमक नीति का पालन न कर रक्षात्मक युद्ध किये। अगर वे आगे बढ़कर सीमा पर ही शत्रु सेना को रोकने का अथवा परास्त करने का प्रयास करते तो सम्भव था कि उनकी इस ढंग से पराजय नही होती। समस्त युद्ध भारतीय क्षेत्र में हुए। विजय चाहे जिस पक्ष की हो, क्षति भारतीयों की होती थी। इन युद्धों के कारण भारतीय कृषि, उद्योग–धन्धे और वाणिज्य–व्यवस्था को अपार क्षति हुई।

1.11.8 तुर्कों की सैन्य श्रेष्ठता

युद्ध सामरिक दृष्टि से भी भारतीय सैनिक तुर्कों की युद्ध कला से अनभिज्ञ थे। भारतीय तथा तुर्की सेनाओं के रण क्षेत्र में संगठन और युद्ध करने के सिद्धान्त में भी अन्तर था। तुर्कों के सैन्य संगठन का मूल सिद्धान्त गतिशीलता था वह युग गतिशील घोड़ों का था। दूसरी ओर भारतीय सामरिक नीति शक्ति को गतिशीलता से अधिक महत्व देती थी । तीव्र और गतिशील अश्वरोही तुर्क सैनिक भारी भरकम तथा विशाल भारतीय सेना, जो हस्तिदल पर अधिक विश्वास करती थी, पर भारी पड़े। तुर्क सेना की दूसरी विशेषता उनकी

धनुर्विधा थी। गतिशील अश्वारोही सैनिक ने रकाबों एवं नये लगाम के प्रयोग के कारण भी तुर्क अश्वारोही सैनिक काफी सफल रहे।

1.12 तुर्कों के सफलता के सामाजिक कारण

राजनीतिक एवं सैनिक व्यवस्था की भांति भारत की सामाजिक व्यवस्था भी दोषपूर्ण थी। हिन्दू समाज का पतन हो रहा था और इसमें अनेक दोष आ गये थे। समाज में वर्ग और जाति भेद थे। वर्ण–व्यवस्था में जटिलता आ गई थी अमीर–गरीब, ऊंच–नीच, छुआ–छूत आदि के भेद–भाव के कारण हिन्दु समाज की एकता प्रायः लुप्त हो गयी थी। नीचे जाति के लोगों के साथ उच्च जाति के लोगों का व्यवहार अमानुषिक था। समाज दुर्बल हो गया था और लोगों ने इसकी सुरक्षा और संगठन पर ध्यान देना छोड. दिया था। वर्ग एवं जाति विभाजन से उत्पन्न संकीर्ण मनोवृत्ति से राजपूतों का वीरत्व, साहस, रण कौशल और सदगुणों का उपयोग नही हो सका। राजपूत ही एक मात्र ऐसी जाति थी जो देश की रक्षा कर सकती थी। किन्तु इस समय तक राजपूत समाज में सामन्तवादी प्रवृत्ति काफी बढ़ गई थी और उनका पतन हो रहा था । यह देश के लिए अत्यन्त घातक साबित हुआ।

समाजिक विषमता के अतिरिक्त हिन्दू समाज में अनेक बुराइयां हार का कारण बन गई थी। बाल–विवाह, बहु–विवाह, सती प्रथा, कन्या–वध, आदि बुराइयां हिन्दू समाज को घुन की तरह खा रही थी। समाज अन्ध विश्वास और भाग्यवादिता का शिकार था। हिन्दु भविष्यवाणी और ज्योतिषियों में अधिक विश्वास करते थे। वे भाग्य के सहारे बैठे रहते थे। उनकी यह धारणा हो गई थी कि ”कलियुग में मलेच्छों का शासन होगा”। इससे समाज में अकर्मण्यता और निराशा का संचार हुआ। लोगों में जागरूकता और कार्य–क्षमता लुप्त हो गई। उनमें आत्म विश्वास नष्ट हो गया और उत्साही आक्रमणकारियों के सामने धराशायी हो गये।

1.13 तुर्कों के सफलता के आर्थिक कारण

राजपूत शासक विलास प्रिय थे। अतः वे स्वंय पर बड़ी मात्रा में खर्च करते थे। अनेक बीच परस्पर युद्धों की भरमार एवं परम्परा भी थी। इससें न सिर्फ सैनिकों की संख्या दिन–प्रतिदिन धट रही थी अपितु उनके राजकोष भी रिक्त हो रहे थे। देश में कृषि, उद्योग–धन्धे और वाणिज्य के क्षेत्रों में भी स्थिरता आ गयी थी। अतः आर्थिक कठिनाई का उत्पन्न होना स्वाभाविक था । इसका असर हानिकारक सिद्ध हुआ। दूसरी ओर देश में धन–वैभव तो थे ही मन्दिरों, धार्मिक स्थानों, तीर्थो आदि में जतना ने अतुल सम्पत्ति संचित कर रखी थी। आक्रमणकारी धन–लोलुप थे। वे भारत को लूटकर अपने वैभव में वृद्धि करना चाहते थे। इस प्रकार राजकोषों की रिक्ता और देश की सम्पन्नता दोनों राजपूत शासकों की पराजय का कारण बनी।

1.14 तुर्कों के सफलता के धार्मिक कारण

तुर्कों की सफलता और भारतीय शासकों की पराजय में इस्लाम एवं हिन्दू धर्मो की व्यवस्थाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस्लाम अपेक्षाकृत एक नया धर्म था। इसके अनुयायियों में धार्मिक जोश थी । इस्लाम का प्रचार, काफिरों का अन्त, मन्दिरों और मूर्तियों को नष्ट–भ्रष्ट करना मुसलमानों का आदर्श था। उन्होने हिन्दुओं के विरूद्ध युद्धों में जिहाद के नारे लगाये। उनकी दृढ़ धारणा थी कि जिहाद और इस्लाम के प्रचार में पुण्य प्राप्त होता है और इसमें मृत्यु हो जाने पर स्वर्ग प्राप्त होता है। यदि वे भारत में जिहाद और इस्लाम के लिए युद्ध करके विजयी हुए तो उन्हे अतुल सम्पत्ति और राज्य प्राप्त होगा और यदि पराजित हुए या मारे गये तो भी उन्हे जन्नत मिलेगा। अतः वे पूरे जोश–खरोश के साथ लड़ते थे। इसके विपरीत राजपूत शासकों और सैनिकों में धर्म के प्रति उदासीनता थी। ऐसे भी वे हिसां को निन्दनीय मानते थे। अतः विरोधियों के सामने उनका उत्साह, आत्मविश्वास, साहस और दृढ़ता लुप्त हो गयी और वे युद्धों में पराजित हुए।

1.15 तुर्क आक्रमणों के परिणाम

महमूद गजनवी के आक्रमण के प्रभाव उतना स्थायी सिद्ध नही हुआ जितना कि मुहम्मद गोरी के। मूलरूप से महमूद एक लुटेरा था जबकि मुहम्मद गोरी एक साम्राज्य निर्माता। उसने भारत में गोरी राज्य एवं गुलाम वंश की नीव रखी जिसने लगभग एक शताब्दी तक शासन की महमूद गजनवी ने लगभग सत्ताई वर्षों तक भारत पर निरंतर सफल आक्रमण किये। उसके भारतीय आक्रमणों का उद्देश्य मन्दिरों एवं मूर्तियों को विध्वंस करना और भारत की सम्पदा का अपहरण करना था। भारत में उसका मुख्य लक्ष्य धन प्राप्त करना था, राज्य का विस्तार नही। उसके आक्रमण उसे झंझावत के समान थे जो तुफानी शील से प्रारम्भ होता है और मार्ग के छोटे–मोटे वृक्षों को धराशायी करता हुआ स्वतः ही शान्त हो जाता है। अतः कुछ विद्धानों का मत है कि महमूद के आक्रमणों का कोई खास स्थायी प्रभाव नही पड़ा। भारत ने महमूद द्वारा की गयी सम्पत्ति की क्षति को अल्पकाल में ही पूर्ति कर लिया। कुछ स्थानों पर उसके आक्रमणों का प्रभाव जल्द ही नष्ट हो गया और भविष्य में लगभग दो सौ वर्षों तक राजपूत शासक सम्पूर्ण उत्तरी भारत के राजनीति में महत्वपूर्ण बने रहे। भारतीय आन्तरिक शासन–प्रणाली और युद्ध नीति अक्षुण्य रही। इस प्रकार महमूद का आक्रमण भारतीय इतिहास में केवल एक घटना मात्र था। यद्यपि इस मत में सत्य का अंश है, फिर भी ऐसा नही कहा जा सकता है कि महमूद के भारतीय आक्रमण के प्रभाव शून्य थे। उसके आक्रमण के कुछ परिणाम अवश्य हुए।

1.16 भारतीय सैन्य–शक्ति और राजनीतिक दुर्बलता का प्रदर्शन

महमूद गजनवी एवं मुहम्मद गोंरी के आक्रमणों का भारतीय सैन्य शक्ति और राजनीति पर गहरा आघात हुआ। इन आक्रमणों के चलते अनेक भारतीय राजवंशों का अन्त हो गया और कुछ सदा के लिए दुर्बल हो गये। आक्रमणों और युद्धों में लाखों भारतीय सैनिकों की जान चली चई। अनेकों को पकड. कर तुर्कों ने अपना दास बना लिया। सैनिकों के स्त्रियों एवं बच्चों को या तो मृत्यु की गोद में डाल दिया गया, अथवा दास बना लिया गया। इस प्रकार भारत की सैन्य शक्ति पर भारी आँच आई। युद्ध में भारतीय शासकों की पराजय ने विदेशियों को भारतीय नरेशों की पारस्परिक फूट, उनके बीच एकता और संगठन का अभाव, उनकी रण–नीति और सैन्य–संगठन सम्बंधित दोषों का ज्ञान दिया। ये समस्त राजनीतिक, सैनिक, सामाजिक तथा अन्य दुर्बलताएं भारत की भावी मुस्लिम आक्रमणकारियों के लिए प्रेरणादायक साबित हुई और अन्त में भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना हुई।

1.17 भारत के अपार धन की क्षति

महमूद का मुख्य उद्देश्य भारत की अपार सम्पत्ति का अपहरण करना था। इन आक्रमणों के पूर्व भारत धन–धान्य से पूर्ण देश था। वह सोने की चिड़िया के नाम से विख्यात थी। राजकोष और मठ–मन्दिरों में सदियों से अपार धन–सम्पत्ति, रत्न–राशि और सोने–चांदी संग्रहित हो रहे थे। महमूद ने इस विपुल सम्पदा का अपहरण कर भारत को धनहीन कर दिया। इससे भारत की आर्थिक व्यवस्था को गहरा आधात लगा।

1.18 कला और संस्कृति का विनाश

अपने आक्रमणों के क्रम में महमूद ने अनेक मनोरम नगरों, मन्दिरों, मूर्तियों तथा अन्य स्मारकों को तोड़ दिया। मथुरा, कन्नौज, थानेश्वर नगरकोट, सोमनाथ आदि नगरों के कलात्मक भवनों को नष्ट कर दिया गया। इस प्रकार महमूद के आक्रमणों से स्थापत्य एवं मूर्ति निर्माण की कला को काफी क्षति हुई और भारतीय संस्कृति की प्रगति में अवरोध उत्पन्न हो गया। इतना ही नही, भारतीय शिल्पियों और कलाकारों को वह बलपूर्वक पकड़ कर गजनी ले गया। स्पष्ट है कि भारतीय कला और संस्कृति पर उसके आक्रमणों के प्रभाव घातक थे।

1.19 इस्लाम का प्रचार

महमूद ने उत्तर भारत में कन्नौज और दो–आब तक धावे बोले। इस प्रकार राज्य–सीमा के विस्तार के साथ–साथ भारत में इस्लाम का क्षेत्र भी विस्वत हुआ। अनेक व्यक्ति बल प्रयोग के द्वारा मुसलमान बना दिये गये। भारत में सैनिकों के साथ–साथ मुस्लिम सन्त और धर्म प्रचारक भी आये। इन्होंने इस देश में इस्लाम का प्रचार किया और बहुत से लोगों को इस धर्म में दीक्षित किया। इन नये मुसलमानों ने भविष्य में मुम्मद गोरी तथा अन्य मुस्लिम आक्रमणकारियों को भारत के विरूद्ध काफी सहायता प्रदान की। एक तरफ इस्लाम का प्रचार हुआ तो दूसरी ओर हिन्दुओं में इस्लाम के विरूद्ध प्रतिक्रिया भी हुई। महमूद की हिंसात्मक एवं लूट–पाट की नीति ने हिन्दुओं के दिलों में इस्लाम के प्रति धृणा उत्पन्न कर दी।

1.20 दास प्रथा का विकास

आक्रमण एवं विजय के क्रम में बहुत से हिन्दु दास बना लिये गये और उन्हे गजनी भेज दिया गया। दास और धन की वृद्धि से सैनिकों में अनैतिकता एवं भोग विलास को प्रोत्साहन मिला। सैनिकों में लड़ने की क्षमता जाती रही। यह तत्व गजनवी साम्राज्य के पतन में सहायक सिद्ध हुआ।

1.21 मध्य एशियाई साम्राज्य क सुरक्षा एवं विस्तार

महमूद ने भारतीय आक्रमणों में अपार धन–राशि और हाथी प्राप्त किये। ये साधन उसके मध्य एशियाई साम्राज्य की सुरक्षा एवं विस्तार में काफी सहायक सिद्ध हुए। धन और हस्ति सेना क अभाव में ऐसा सम्भव नही होता महमूद ने उनका प्रयोग अपने मध्य एशियाई युद्धों में किया और उनमें सफलता प्राप्त की। इससे इस क्षेत्र में उसके साम्राज्य का काफी विस्तार हुआ।

1.22 कला और साहित्य का संरक्षण

महमूद ने भारत से धन–रााशि का उपयोग विद्वानों, कवियों, लेखकों, तथा कलाकारों को राज्याश्रम देने में किया इससे साहित्य और कला का गजनी में काफी विकास हुआ। वह भारत में अनेक शिल्पियों, कलाकारों और कारीगरों को अपने साथ गजनी ले गया। इन भारतीय कारीगरों और शिल्पकारों ने गजनी में कला के अनेक उतकृष्ट कृतियां का निर्माण किया। इनकी कलाकृतियों ने गजनी की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिया और महमूद के सम्मान में वृद्धि की। भारत से प्राप्त धन की प्रचुरता से महमूद ने गजनी में अनेकानेक साहित्यकारों और विद्वानों को राजकीय संरक्षण दिया। उसके शासनकाल में गजनी मुस्लिम संस्कृति का महत्वपूर्ण केन्द्र हो गया।

1.23 भारत पर भावी आक्रमण के नवीन मार्ग की खोज

भारत पर आक्रमण के सन्दर्भ में महमूद ने अरब आक्रमणकारियों की गलती को नही दोहराया था। उसने सिन्ध के दुष्कर सीमान्त मार्ग के स्थान पर पश्चिमोत्तर क्षेत्रीय भाग से भारत में प्रवेश किया। यह मार्ग भारत में प्रवेश का अपेक्षाकृत सुगम मार्ग था। वास्तव में इसी मार्ग द्वारा भारत की विजय संभव थी। भविष्य में भारत में इसी मार्ग से मुसलमानों के आक्रमण हुए और उन्होने भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना की।

1.24 सारांश

भारत में तुर्कों की सफलता और राजपूत राजाओं के पराजय के कारण यहां कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक व्यवस्थाओं में नीहित थी। राजनीतिक विश्रृंखलता, सामाजिक विषमता और आर्थिक सम्पन्नता ही भारतीयों के पराजय के मुख्य कारण बनी। तुर्क कूटनीति एवं सैनिक क्षमता में राजपूतों से काफी आगे थे। वे नये धर्म, इस्लाम एवं "जिहाद" के भावना से ओत परोत होकर लड रहे थे। उन्हें विश्वास था कि विजय होने पर अकूत धन एवं वैभव की तथा मारे जाने पर स्वर्ग की प्राप्ति होगी। धार्मिक भावना एवं नवीन धर्म इस्लाम की प्रचार–प्रसार की विचारधारा ने उन्हे भारत विजय के लिए प्रेरित किया और अन्तः सफल भी हुए। तुर्कों के आगमन के परिणाम बहुत व्यापक और दूरगामी सिद्ध हुए। सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में इसका अत्याधिक व्यापक प्रभाव पड़ा। नये धर्म इस्लाम की शिक्षा से प्रभावित होकर लोगों ने इसको

अंगीकार करना प्रारम्भ कर दिया। दूसरी ओर भारतीय कला और संस्कृति को मध्य एशिया में फलने फूलते का भी अवसर प्राप्त हुआ।

1.25 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 तुर्कों के सफलता के कारणों की चर्चा कीजिये।

2 राजपूत राजाओं के सैनिक क्षमता एवं युद्ध नीति की व्याख्या कीजिये।

3 तुर्कों के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिये।

4 क्या सामाजिक विषमता एवं राजनीतिक विखण्डता भारतीयों के पराजय का प्रमुख कारण था ?

5 तुर्कों के आगमन से भारतीय समाज एवं सांस्कृति कहां तक प्रभावित हुई, विवेचना।

6 तुर्क आक्रमण के कारण एवं परिणामों की विश्लेषण कीजिये।

1.26 सन्दर्भग्रन्थ

1 बिपिन बिहारी सिन्हा : मध्यकालीन भारत

2 हरीश चन्द्र वर्मा : मध्यकालीन भारत खण्ड –1

3 जे0एल0 मेहता : मध्यकालीन भारत का वृहत इतिहास खण्ड – 1

4 ऐ0एल0 श्रीवास्तव : मध्यकालीन भारत – (1000–1707)

5 कामेश्वर प्रसाद : दिल्ली सलतनत का इतिहास

6 एल0पी0शर्मा : मध्यकालीन भारत

7 सतीश चन्द्र : मध्यकालीन भारत का इतिहास।

ममलुक सुलतान

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 कुतुबुद्दीन ऐबक
  2.3.1 ऐबक का राज्यारोहण
  2.3.2 ऐबक की समस्याएँ एवं उनका निराकरण
  2.3.3 ऐबक का शासन प्रबन्ध
  2.3.4 ऐबक का योगदान
2.4 इल्तुतमिश
  2.4.1 इल्तुतमिश की ममस्याऐं
  2.4.2 सल्तनत की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि
  2.4.3 इक्तदारी व्यवस्था की स्थापना
  2.4.4 मुद्रा में सुधार
  2.4.5 न्याय प्रशासन की व्यवस्था
  2.4.6 शिक्षा–साहित्य तथा विभिन्न कलाओं का संरक्षण
  2.4.7 इल्तुतमिश के कार्यों का मूल्याकंन
2.4.7 रूकुनुद्दीन फिरोज
2.4.8 रजिया सुलतान
  2.4.9 रजिया की समस्याएँ
  2.4.10 विद्रोहियों का दमन
  2.4.11 सुलतान की प्रतिष्ठा में वृद्धि
  2.4.12 प्रशासनिक संगठन
  2.4.13 प्रतिक्रिया एवं विद्रोह
  3.6.6 रजिया के पतन के कारण
  2.4.14 रजिया के कार्यों का मूल्याकंन
2.5 मुईजुद्दीन बहरामशाह
2.6 अलाउद्दीन मसूदशाह
2.7 नासिरूद्दीन महमूद
  2.4.15 नासिरूद्दीन महमूद का मूल्याकंन
2.5 ग्यासुद्दीन बलबन
  2.5.1 बलबन का प्रारम्भिक जीवन
  2.5.2 नायब के रूप में बलबन
  2.5.3 बलबन की समस्याएँ
  2.5.4 बलबल की कार्य
2.6 प्रथम वर्ग
  2.11.1 तुर्क सरदारों पर नियंत्रण
  2.11.2 आंतरिक विद्रोहों का दमन
  2.11.3 बंगाल में तुगरिल खां का विद्रोह
  2.11.4 मंगोल आक्रमण

2.7 द्वितीय वर्ग

2.12.1 बलबन के राजत्व सम्बंधी सिद्धान्त

2.12.2 सैनिक व्यवस्था

2.12.3 गुप्तचर विभाग का गठन

2.12.4 प्रशासनिक सुधार

2.8 कैकुबाद

2.9 खिलजी क्रान्ति

2.10 सारांश

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.12 सन्द्रर्भ ग्रंन्थ

2.1 प्रस्तावना

शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के निधन के पश्चात उसके द्वारा विजित भारतीय क्षेत्र पर उसके गुलाम एवं प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन ऐबक का अधिकार हो गया। कुतुबुद्दीन ने भारत में प्रथम संप्रभुता सम्पन्न मुस्लिम राजवंश की स्थापना की दिल्ली इस राज्य की राजधानी थी। अतः इसे दिल्ली सल्तनत कहा गया। चूंकि इस वंश की स्थापना ऐबक के द्वारा की गई थी जो स्वंय मुहम्मद गोरी का गुलाम था अतः इस वंश को गुलाम वंश क नाम से जाना जाता है। परन्तु इस वंश को ममलुक वंश के नाम से सम्बोधित करना उचित एवं न्यायसंगत है। क्योंकि इस वंश के सभी शासक गुलाम नही थे और 1206 से 1290 तक तीन अलग–अलग वंशो, कुतुबी, शमसी एवं इलबरी वंश के शासकों ने शासन किया। कुछ शासक प्रारम्भ में गुलाम अवश्य थे। परन्तु बाद में अपने स्वामियों द्वारा दासता से मुक्तकर दिए गए थे। ऐसे लोग जो प्रारम्भ में गुलाम थे परन्तु बाद में अपने स्वामियों द्वारा दासता से मुक्त कर दिये गये थे। व ऐसे लोग जो प्रारम्भ में गुलाम थे, परन्तु बाद में आजाद कर दिये जाते हैं वह ममलुक कहलाते है। इसीलिए ऐबक द्वारा स्थापित गुलाम वंश को ममलुक वंश कहना अधिक न्यायसंगत है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगें कि :–

- किस प्रकार एवं किस परिस्थिति में भारत में ममलुक वंश की स्थापना हुई।
- ऐबक की प्रमुख समस्याएँ क्या थी और कैसे उसपर नियत्रंण स्थापित की।
- इल्तुतमिश ने किस प्रकार नवस्थापित सल्तनत को स्थायित्व एवं दृढ़ता प्रदान की।
- एम मात्र महिला शासिका रजिया के सामने क्या चुनौतियां थी।
- बलबन ने किस प्रकार सुलतान की खोई हुई प्रतिष्ठा एवं गरिमा को पुनः स्थापित की।
- बलबन के राजत्व सिद्धान्त क्या थे ?

2.4 कुतुबुद्दीन ऐबक (1206–1210)

कुतुबुद्दीन का जन्म तुर्किस्तान के एक उच्च कुल में हुआ था। बाल्यकाल में ही उसे गुलाम बनाकर निशापुर के काजी फखरूद्दीन के हाथों बेच दिया गया। काजी ने उसकी उचित ढंग से देखभाल की तथा उसे धनुर्विद्या और घुड़ सवारी की शिक्षा दी। ऐबक ने कुरान पढना भी सीख लिया और इसीलिए उसे कुरानख्वां (कुरान का पाठ करने वाला) के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ। बाद में वह निशापुर से गजनी ले जाकर बेच दिया गया। उसे वहां मुहम्मद गोरी ने खरीद लिया। मुहम्मद गोरी की सेवा में आने के बाद कुतुबुद्दीन के जीवन में महान परिवर्तन आया।

अपनी प्रतिभा, लगन, ईमानदारी और स्वामिभक्ति के बल पर कुतुबुद्दीन ने गोरी का विश्वास प्राप्त कर लिया। गोरी ने उसे अमीर–ए आखूर के पर प्रोन्नत कर दिया। इस पद पर रहते हुए ऐबक ने गोर, बामियान और गजनी के युद्धों में सुलतान की सेवा की। बाद में तराइन के युद्ध में उसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उसके कार्यों से प्रसन्न होकर गोरी ने उसे क्रमशः कुहराम और समाना का प्रशासक नियुक्त किया। वस्तुतः 1192–1206 ई0 तक उसने गोरी के प्रतिनिधि के रूप में उत्तरी भारत के विजित भागों का प्रशासन संम्भाला। इसी अवधि में ऐबक ने उत्तरी भारत में तुर्की शक्ति का विस्तार भी किया। उसने अनेक राज्यों से संघर्ष किया। गहड़वालों को पाराजित किया, गुजरात, बयाना, ग्वालियर के युद्धों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा 1205 ई0 में रवोखरों के विरूद्ध मुहम्मद गोरी का हाथ बटाया। वस्तुतः गोरी की सैनिक योजनाओं को मूर्तरूप ऐबक ने ही दिया। इसीलिए भारतीय तुर्क अधिकारी उसे ही अपना प्रधान मानने लगे थे।

2.3.1 ऐबक का राज्यारोहण

1206 ई0 में गोरी ने नियमित रूप से भारत में ऐबक को अपना प्रतिनिधि (सुबेदार) नियुक्त कर उसे मलिक की उपाधि से विभूषित किया था। गोरी के मृत्यु के समय भारतीय क्षेत्रों का प्रबंध कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथों में था। गोरी की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकार का प्रश्न हल नही हुआ। गोरी का भतीजा, ग्यासुद्दीन मुहम्मद, गोर एवं गजनी का शासक बना। उसकी स्थिति अत्यन्त नाजुक थी। गोर साम्राज्य के अवशेषों पर कब्जा जमाने के लिए तीन व्यक्ति लालायित थे, ताजुद्दीन यल्दूज, नासिरूद्दीन कुबाचा तथा कुतुबुद्दीन ऐबक का अब भी भारतीय प्रदेशों पर अधिकार था। राज्य की अव्यवस्थित अवस्था को देखकर उसने भारत में स्वतंत्र राज्य की स्थापना की चेस्टा की। उसने ग्यासुद्दीन के पास यह खबर भेजी कि अगर वह ऐबक को भारत का शासक स्वीकार कर ले, तो ऐबक उसे ख्वारिज्म शाह के विरूद्ध सहायता देगा। सुलतान ने उसकी बात मानकर उसे भारत का शासक स्वीकार कर लिया। सुलतान की अनुमति प्राप्त करने के पश्चात ऐबक का राज्यभिषेक 25 जून 1206 ई0 को लाहौर में हुआ।

2.3.2 ऐबक की समस्याएँ एवं उनका निराकरण

जिस समय ऐबक सुलतान बना, उस समय उसके अधीन भारत के अनेक इलाके थे। उत्तरी–पश्चिम सीमा में मध्य भारत तक उसका राज्य विस्तृत था। पूर्वी भारत में बिहार और बंगाल भी तुर्की राज्य में शामिल था। ऐबक के प्रतिद्वंदी यल्दूज, कुबाचा और बंगाल–बिहार में बाख्तियार खिलजी अपनी शक्ति और प्रभाव बढ़ाने में लगे हुए थे। गोरी के राज्य पर अधिकार कर लेने से मुइज्जी एवं कुतुबी अमीर भी उससे नाखुश थे। राजपूत राज्य स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रयास कर रहे थे। कालिंजर और ग्वालियर स्वतंत्र हो चुके थे। प्रशासनिक व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में ऐबक ने अपना सारा ध्यान अपनी स्थिति सुदृढ़ करने की ओर लगाया। उसने साम्राज्य विस्तार के बदले विजित क्षेत्रों की सुरक्षा और प्रशासनिक गठन को अपना लक्ष्य बनाया।

2.3.3 ऐबक का शासन प्रबन्ध

ऐबक ने मात्र चार वर्षों तक भारत पर शासन किया। इस अल्प काल में वह अधिकतर युद्धों में एवं अपने प्रतिद्वद्विंयो से लोहा लेने में व्यस्त रहा। समयाभाव तथा संघर्षरत रहने के कारण वह प्रशासन की ओर

उचित एवं पर्याप्त ध्यान नही दे सका। फिर भी उसने विद्रोहों का दमन कर देश में शांति व सुव्यवस्था की स्थापना की। चोर–डाकुओं का उसके राज्य में भय नही था। कुछ इतिहासकार उसे उत्साही,उदार और न्यायप्रिय शासक मानते हैं, उसकी दानशीलता की प्रशंसा करते हुए मिनहाज–उस–सिराज ने उसे 'हातिम द्वितीय' एवं 'लाख बख्श' कहा है। परन्तु कुछ इतिहाकार यह भी मानते है कि उसके अन्दर रचनात्मक प्रतिभा की कमी थी। स्थानीय प्रशासन एवं राजस्व सम्बंधी नियम पुराने ही रहे। यद्यपि राजधानी और प्रान्तों में एक–एक काजी क नियुक्ति की गई।

2.3.4 ऐबक का योगदान

दिल्ली सल्तनत के संस्थापक ऐबक ने कला और साहित्य के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। वह कला और साहित्य का संरक्षक था। हसन निजामी और फर्रूखमुदब्बीर उसके दरबार के प्रसिद्ध विद्वान थे। उसने दो प्रसिद्व मस्जिदों का निमार्ण भी करवाया दिल्ली स्थित का 'कुवत–उल–इस्लाम और अजमेर का 'ढ़ाई दिन का झोपडा'। उसने कुतुबुमीनार बनाने का कार्य भी आरम्भ किया, परन्तु इसे पूरा नही कर सका। उसने रायपिथौडा नामक किला का भी नीव रखी। ऐबक द्वारा स्थापित नीव पर ही आगे इलतुतमिश और बलबन ने सल्तनत की भव्य इमारत खडी की। यही ऐबक की सबसे बडी उपलब्धि कही जा सकती है।

2.5 इल्तुतमिश (12010–1226)

ऐबक की मृत्यु के पश्चात तुर्क सरदारों ने आरामशाह को सुलतान घोषित कर दिया। आरामशाह एक अक्षम एवं आरामतलब व्यक्ति था। अनेक तुर्क सरदारों ने उसका विरोध किया। सामाज्य में अव्यवस्था फैल गई और वह स्थिति पर नियंत्रण करने में असमर्थ सिद्धं हो रहा था। अतः दिल्ली के तुर्क सरदारों ने बदायू के गवर्नर इल्तुतमिश, जो ऐबक का विश्वासपात्र गुलाम एवं उसका दामाद भी था, को दिल्ली आने का निमंत्रण भेजा। आरामशाह को दिल्ली के निकट युद्ध में पराजित करके मार डाला और स्वंय 1210 ई0 में सुलतान बन बैठा।

2.4.1 इल्तुतमिश की समस्याऐं

इल्तुतमिश शासक बनने के बाद बाह्रय एवं आंतरिक कठिनाइयों से घिरा हुआ पाया। इल्तुतमिश के तीन प्रमुख प्रतिद्वंद्वी थे– गजनी में ताजुद्दीन यल्दौज, सिंध में नासरूद्दीन कुबाचा तथा बंगाल में अलीमर्दानखा। राजपूत शासक पुनः दिल्ली सलतनत को चुनौती दे रहे थे। कालिंजर और ग्वालियर पहले ही तुर्को के हाथ से निकल चुके थे। नव–स्थापित राज्य को मंगोल आक्रमण का भी खतरा था। इल्तुतमिश की आंतरिक स्थिति भी चिन्ताजनक थी। तुर्की अमीरों का एक वर्ग भी इल्तुतमिश का विरोधी था। प्रशासनिक व्यवस्था पूरी तरह नष्ट हो चुकी थी। संक्षेप में नव–स्थापित तुर्की सल्तनत विनाश के कगार पर खड़ा था। इसकी सुरक्षा एक दृढनिश्चयी एवं साहसी व्यक्ति ही कर सकता था। इल्तुतमिश ने इस कार्य को पूरा किया। इसी कारण अनेक विद्वान भारत में तुर्की सल्तनत का वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश को ही मानते है।

2.4.2 सल्तनत की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि

सर्वप्रथम इल्तुतमिश ने सुलतान की शक्ति एवं प्रतिष्ठा स्थापित करने का प्रयास किया। इसलिए, विरोधी अमीरों को महत्वपूर्ण पदों से हटाकर अपने विश्वास पात्र व्यक्तियों को बहाल करने की योजना बनाई। उसने अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को लेकर 'चरगान', चहलगान अथवा चालीसा की स्थापना की। राज्य के समस्त महत्वपूर्ण पद उन्हे ही सौंपे गये। चरगान के अतिरिक्त अन्य योग्य एवं प्रशानिक दक्षतावाले व्यक्तियों को भी, योग्यतानुसार राज्य के अच्च पद सौंपे गये। इस कार्य में भारतीय और विदेशी मुसलमानों में विभेद नही किया गया उसने वंशानुगत राजतंत्र के सिद्धान्त के भी अपनाया और अपने जीवन काल में ही अपने उत्तराधिकारी रजिया का मनोनयन किया।

2.4.3 इक्तदारी व्यवस्था की स्थापना

इल्तुतमिश का एक महत्वपूर्ण योगदान इक्तदारी व्यवस्था की स्थापना करना था। उसने पूरे राज्य को छोटी–छोटी इकाइयों में विभक्त कर दिया। इन इकाइयों को इक्ता की संज्ञा दी गई। इनके अधिकारी इक्तदार कहलाए। इक्तदारों की विभिन्न श्रेणियां थी। बडे इक्तदार प्रांतीय गवर्नर के रूप में काम करते थे। उन्हे सैनिक, पुलिस और न्यायिक अधिकार प्राप्त थे। लगान वसूली का कार्य भी वे करते थे। छोटे इक्तदार केवल सैनिक कार्य करते थे। इक्तदारों को उनकी सेवा के बदले में अपने–अपने क्षेत्र से लगान वसूलने का अधिकार दिया गया जिसका कुछ भाग वे अपने खर्च के लिए रख सकते थे। इक्तदारी व्यवस्था ने पहले से प्रचलित सामंती व्यवस्था को समाप्त कर दिया।

2.4.4 मुद्रा में सुधार

इल्तुतमिश का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य था प्रचलित मुद्रा व्यवस्था (टकसाल) में परिवर्तन करना। उसने प्रचलित सिक्कों की जगह पर अरबी ढंग के 'टंक' चलवाए। ये सोना और चांदी के बनते थे, जिनका वज़न 175 ग्रेन था। टंक पर खलीफा का नाम भी खुदवाया गया। ये सिक्के केवल राजकीय टकसाल में ही ढ़ाले जा सकते थे। टंकों पर टकसाल का नाम खुदवाने की प्रथा भी इल्तुतमिश ने प्रारम्भ की। टंक के अतिरिक्त पीतल के जीतल भी जारी लिए गये । इन सिक्कों को जारी कर इल्तुतमिश ने अपनी सत्ता के सुदृढ़ीकरण का प्रमाण दिया।

2.4.5 न्याय शासन की व्यवस्था

न्याय–व्यवस्था के क्षेत्र में इल्तुतमिश की देन महत्वपूर्ण मानी जाती है। वह एक न्याय–प्रिय शासक था। जनता को समुचित न्याय प्राप्त हो सके इसके लिए उसने राजधानी के अतिरिक्त सलतनत के सभी बड़े शहरों में काजी और अमीरदाद नियुक्त किये। इनके फैसले के विरूद्ध लोग प्रधान काजी की अदालत में अपने मुकदमें पेश करते थे। अन्तिम फैसला स्वंय सुलतान करता था । इस प्रकार की न्याय–शासन में सुलतान की सर्वोच्चता थी।

2.4.6 शिक्षा–साहित्य तथा विभिन्न कलाओं का संरक्षण

यद्यपि इल्तुतमिश का जीवन अधिकतर युद्धों में ही व्यतीत हुआ, फिर भी शिक्षा साहित्य और विभिन्न कलाओं में उसने अपनी गहरी अभिरूचि का प्रदर्शन किया। सुलतान स्वंय प्रकाण्ड विद्वान नही था, पर वह विद्वानों के गुणों की सराहना करता था और उन्हे राज्याश्रय प्रदान करता था। उसके शासनकाल में मध्य एशिया में अशान्त वातावरण से क्षुब्ध होकर अनेक लेखक तथा विद्वान भागकर दिल्ली के दरबार में आ गये थे। सुलतान ने उन्हे संरक्षण प्रदान किया था। इस प्रकार उसके शासनकाल में दिल्ली का दरबार इस्लामी शिक्षा, साहित्य एवं ज्ञान–विज्ञान का महत्वपूर्ण केन्द्र हो गया।

इल्तुतमिश विभिन्न कलाओं में और विशेष रूप से स्थापत्य कलाा में गहरी अभिरूचि रखता था। कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा प्रारम्भ किया गया कुतुबुमीनार के अधूरे कार्य को पूर्ण करने का श्रेय उसी को है। इसके अलावा सुलतान ने अनेक मीनारों, मस्जिदों,मदरसे, खानकाह, तालाब, मकबरे इत्यादि बनवाए इनमें प्रमुख है । सुलतान गढ़ी, शमसी मदरसा तथा हौज–ए–शमसी इत्यादि।

2.4.7 इल्तुतमिश के कार्यों का मूल्याकंन

प्रारम्भिक तुर्क सुलतानों में इल्तुतमिश का महत्वपूर्ण स्थान है। उसने कुतुबुद्दीन ऐबक के अधूरे कार्यों को पूरा किया। तथा नवस्थापित दिल्ली सल्तनत को स्थायित्व प्रदान किया। प्रो0 ईश्वरी प्रसाद इल्तुतमिश को ही गुलाम वंश का 'वास्तविक संस्थापक' मानते हैं। इसके अलावा अनेक इतिहासकारों ने इल्तुतमिश के सैनिक, प्रशासनिक एवं व्यक्तिगत गुणों की प्रशंसा की है। प्रो0 निजामी के शब्दों में "ऐबक ने दिल्ली सल्तनत की रूपरेखा के बारे में सिर्फ दिमागी आकृति बनाई थी, इल्तुतमिश ने उसे एक व्यक्त्वि, एक पद,

एक प्रेरणाशक्ति, एक दिशा, एक शासन व्यवस्था और एक शासक वर्ग प्रदान किया" विषय परिस्थितियों से जूझते हुए उसने तुर्की राज्य को स्थायित्व प्रदान किया। वह एक कुशल सेनापति, वीर विजेता, दूरदर्शी एवं न्याय प्रिय शासक तथा कला एवं साहित्य का संरक्षक था। वास्तव में, भारत में तुर्की शासन का वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश ही था। भारत में 'मुस्लिम प्रभुसत्ता का वास्तविक श्री गणेश' इल्तुतमिश से ही होता है। उसकी सबसे बडी उपलब्धि थी। नवस्थापित तुर्की सलतनत को विघटन से बचाकर उसकी सुरक्षा एवं स्थायित्व प्रदान करना।

2.6 रूकुनुद्दीन फिरोज (1236)

इल्तुतमिश ने अपनी मृत्यु के पूर्व अपना राज्य अपनी पुत्री रजिया को सौंपने की इच्छा व्यक्त की थी। इसका कारण यह था कि उसके योग्य और बड़े पुत्र, लखनौती के शासक, नासरूद्दीन महमूद की मृत्यु हो चुकी थी तथा छोटे पुत्र रूकुनुद्दीन फिरोजशाह एक दुर्बल और अक्षम व्यक्ति था। दुर्भाग्यवश इल्तुतमिश की यह इच्छा पूरी नही हो सकी। तुर्क अमीर एक स्त्री को राज्य करते हुए देखना अपना अपमान समझते थे। अतः अनेक तुर्क अमीरों, फिरोजशाह की माता शाहतुर्कन और अनेक इक्तादारों ने पड़यंत्र कर रूकुनुद्दीन फिरोजशाह को 1236 ई0 में सुलतान घोषित कर दिया।

फिरोजशाह सुलतान तो बन गया, परन्तु वह राज्य पर नियंत्रण नही रख सका। वास्तविक सत्ता शाहतुर्कन के हाथों में चली गई। वह एक क्रूर महिला थी। उसने तुर्क अमीरों एवं राजपरिवार के सदस्यों को अपमानित एवं आतंकित करना आरम्भ कर दिया। इल्तुतमिश के छोटे पुत्र रूकनुद्दीन को अंधा करवा कर उसकी हत्या करवा दी गई। प्रशासन पर नियंत्रण ढ़ीला पड़ गया। जनता पर भी अत्याचार होने लगा। फलतः पूरे राज्य में असंतोष एवं विद्रोह छा गया। फिरोजशाह को अपने भोग–विलास से ही छुट्टी नही थी, परन्तु जब लगातार लाहौर, मुलतान हाँसी और बदायूँ का विद्रोह आरम्भ हुआ, तब फिरोजशाह को बाध्य होकर अपनी निंद्रा तोडनी पड़ी। इस बीच सारे विद्रोही अपनी सेना के साथ दिल्ली की तरफ बढ़े। वजीर जुनैदी भी अनेक अधिकारियों के साथ विद्रोहियों से मिल गया। हताश सुलतान दिल्ली छोड़कर विद्रोहियों का सामना करने के लिए आगे बढ़ा।

दिल्ली में सुलतान की अनुपस्थित का लाभ उठाकर रजिया लाल वस्त्र पहनकर जुमा की नमाज के अवसर पर जनता के सम्मुख उपस्थित हुई। उसने शाहतुर्कन के अत्याचारों एवं, राज्य में फैली अव्यवस्था का बखान किया तथा आश्वासन दिया कि शासक बनकर वह शांति एवं सुव्यवस्था स्थापित करेगी। रजिया से तुर्क अमीर और अन्य व्यक्ति प्रभावित हो उठे। क्रुद्ध जनता ने राजमहल पर आक्रमण कर शाहतुर्कन को गिरफ्तार कर लिया एवं रजिया को सुलतान घोषित कर दिया। फिरोजशाह जब विद्रोहियों से भयभीत होकर दिल्ली पहुँचा तब उसे भी कैद कर लिया गया और उसकी हत्या कर दी गई। इस प्रकार नवम्बर, 1236 ई0 में रजिया सुलतान के पद पर प्रतिष्ठित हुई।

2.7 रजिया सुलतान (1236–1240)

रजिया दिल्ली की प्रथम और अंतिम महिला सुलतान थी। फिरोजशाह को पदच्युत कर रजिया दिल्ली का सुलतान बनी। उसने केवल चार वर्षों के लिए ही शासन किया, तथापि उसके राज्यारोहण का सल्तनत के इतिहास में विशेष महत्व है। रजिया को राजगद्दी दिल्ली की जनता के समर्थन से प्राप्त हुई। जनता सदैव उसके प्रति वफादार बनी रही। इसका कारण यह था कि रजिया ने जनता को आश्वासन दिया था कि वह जनता की आकांक्षाओं की अगर पूर्ति नही कर पाएगी तो सत्ता त्याग देगी। रजिया को सुलतान बनाते समय जनता ने धर्माधिकारियों और प्रभावशाली तुर्क अधिकारियों के वर्ग की उपेक्षा की थी, अतः आरम्भ से ही रजिया अनेक समस्याओं से घिरी रही।

2.6.1 रजिया की समस्याएँ

यद्यपि जनसमर्थन और कुछ तुर्की अमीरों की सहायता से रजिया ने गद्दी प्राप्त कर ली थी, तथापि उसकी स्थिति सुदृढ नही थी। उसके समक्ष अनेक कठिनाइयां एवं चुनौतियां थी। सबसे बड़ी समस्या वैद्य उत्तराधिकार की थी। इल्तुतमिश के बचे हुए पुत्र स्वंय ही गद्दी हड़पना चाहते थे। इनमें सबसे अधिक महत्वाकांक्षी बहरामशाह था, जिसे अनेक अमीर अपना समर्थन दे रहे थे। अनेक अमीरों के स्वाभिमान को एक स्त्री के शासक बनने से ठेस पहुँची थी। फलतः, वजीर जुनैदी सहित बहुत से प्रान्तीय सुबेदार और सरदार, जिनमें प्रमुख मलिक जानी, मलिक कूची, मलिक अयाज और मलिक सलारी थे, रजिया को गद्दी से हटाने का षड़यंत्र कर रहे थे। इतना ही नही, कई राजपूत राज्यों ने भी विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया था। राज्य में सर्वत्र अराजकता एवं अव्यवस्था व्याप्त थी। अतः रजिया के लिए आवश्यक हो गया कि वह परिस्थिति पर नियंत्रण स्थापित करे।

2.6.2 विद्रोहियों का दमन

रजिया ने सर्वप्रथम विद्रोही सरदारों को नियंत्रित करने का प्रयास किया । इस उद्देश्य से उसने दिल्ली के बाहर यमुना नदी के किनारे एक सैनिक शिविर की स्थापना की। दुश्मनों की सेना दिल्ली के आस–पास घेरा डाले हुए थी। उसने कूटनीतिक चाल चलकर मलिक सलारी और अयाज को अपने पक्ष में मिला लिया। मलिक कूची अैर उसके भाई को पकड़कर हत्या करवा दी गई। मलिक जानी की भी हत्या कर दी गई। इन घटनाओं से भयभीत होकर वजीर जुनैदी सिरमूर की पहाड़ियों में भाग गया। वहीं उसकी मृत्यु हो गई। रजिया के इन कार्यों से अन्य सुबेदार और अमीर आतंकित हो गए। उन लोगों ने रजिया की सत्ता स्वीकार कर ली। मिनहाज–उस–सिराज के अनुसार अब, "लखनौती से देवल (बंगाल से गुजरात) तक समस्त मलिकों और अमीरों ने उसकी सत्ता स्वीकार कर ली"।

2.6.3 सुलतान की प्रतिष्ठा में वृद्धि

अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए रजिया ने सुलतान के पद एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि का भी प्रयास किया। उसने परदा छोड़कर पुरूष का वेश धारण किया। कुबा (कोट) और कुलाह (टोपी) पहनकर वह दरबार लगाने लगी। सुलतान की गद्दी पर बैठकर वह दरबार में फरियाद सुनती थी। उसने पुरूषों की तरह शिकार खेलना और घुड़सवारी करना भी आरम्भ कर दिया इसके इन कार्यों से जनता–प्रभावित हुई और उसे अपना सच्चा और हितैषी सुलतान समझने लगी।

2.6.4 प्रशासनिक संगठन

रजिया ने प्रशासन पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली। महत्वकांक्षी तुर्क सरदारों पर नियंत्रण रखने के लिए तथा उनकी बढ़ती शक्ति पर अंकुश रखने के लिए यह आवश्यक था। अतः उसने वफादार गैर–तुर्कों को भी राज्य के महत्वपूर्ण पदों पर बहाल किया। नायब वजीर मुहज्जबउद्दीन वजीर बनाया गया तथा जमालुद्दीन याकूत नाम का हब्शी अमीर–ए–आखूर बहाल हुआ। मलिक हसन गोरी सेनापति बना। कबीर खां अयाज को लाहौर का इक्तदार नियुक्त किया गया, परन्तु उसके विद्रोह करने के कारण उसे हटा दिया गया।

2.6.5 प्रतिक्रिया एवं विद्रोह

अपने कार्यों द्वारा रजिया ने राज्य में व्यवस्था स्थापित की तथा अपनी शक्ति सुदृढ़ की, परन्तु इसके साथ ही रजिया के विरूद्ध प्रतिक्रिया और असंतोष भी आरम्भ हुआ। रजिया की बढती शक्ति से तुर्क अमीर आंशकित हो उठे। धर्मभीरू लोगों को रजिया का पुरूष वेश में शासन करना पसन्द नही था। रजिया पर यह भी आरोप लगाया गया कि उसका याकूत से अनैतिक सम्बंध था। ग्वालियर के हाकिम जियाउद्दीन जुनैदी के 1238 ई0 में दिल्ली में विस्मयकारी ढंग से गायब हो जाने का दोष भी रजिया पर ही मढा गया।

अब तुर्क सरदारों ने विद्रोह करने की ठान ली। सबसे पहले लाहौर के सुबेदार कबीर खां आयाज ने विद्रोह किया, परन्तु यह विद्रोह दबा दिया गया। अब तुर्क सरदारों ने संगठित रूप से विद्रोह की योजना बनाईं। बदायूँ और तबरहिन्द (भटिंडा) के इक्तादारों, एतगीन और अल्तूनिया ने इस पड़यंत्र में मुख्य भूमिका निभाई; एतगीन के इशारे पर अल्तूनिया ने 1240 ई0 में विद्रोह कर दिया। विद्रोह का दमन करने के लिए रजिया भटिंडा की तरफ बढ़ी। इसी बीच एतगीन ने रजिया के प्रेमी याकूत की हत्या करवा दी तथा अल्तूनिया के सहयोग से रजिया को बन्दी बना लिया। तुर्की अमीरों ने इल्तुतमिश के पुत्र बहरामशाह को दिल्ली की गद्‌दी पर आसीन कर दिया। शासक बनने के पश्चात बहरामशाह ने अपने हाथों में शक्ति संचित करने का प्रयास किया। सबसे पहले उसने एतगीन की हत्या करवा दी। अल्तूनिया इससे आशंकित हो उठा। उसने रजिया को कैद से मुक्त कर उसके साथ विवाह कर लिया। रजिया के साथ वह अब दिल्ली पर अधिकार करने को निकला, परन्तु बहराम से पराजित होकर दोनों भाग गये। 13 अकटूबर 1240 की कैथल के निकट अल्तूनिया एवं रजिया की हत्या कर दी गई।

2.6.6 रजिया के पतन के कारण

अनेक गुणों एवं व्यक्तिगत योग्यताओं के बावजूद रजिया एक सुलतान के रूप में असफल रही। उसे आरम्भ से ही प्रतिकूल परिस्थितियां का सामना करना पडा जिसने अंततः उसे अपना राज्य और जीवन दोनों खोने पर बाध्य कर दिया।

रजिया की असफलता के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे। अनेक इतिहासकारों की मान्यता है कि रजिया की असफलता का मुख्य कारण उसका स्त्री होना था। यह मत पूर्णरूपेण सही नही है। स्त्री होते हुए भी वह पुरूषोचित गुणों से परिपूर्ण थी। उसमें स्त्री सुलभ दुर्बलता का नामोनिशान नही था। वह पुरूषों के समान वस्त्र धारण कर दरबार लगाती थी। वह विषम परिस्थितियों में भी घबराती नही थी। एक बार सत्ता खोने के बावजूद उसने पुनः सत्ता प्राप्त करने का प्रयास किया, परन्तु अपनी अकालमृत्यु के कारण वह ऐसा कर नही पाई।

रजिया की असफलता का मुख्य कारण शासक वर्ग और उलेमा वर्ग का सतत विरोध था। प्रथम वर्ग के हाथों में सैनिक एवं प्रशासनिक नियंत्रण था तो दूसरे के हाथ में लोकमत को प्रभावित करने की शक्ति। किसी भी सुलतान के लिए इन दोनों प्रभावशाली वर्गों को अपने पक्ष में मिलाए बिना शासन करना असम्भव था। तुर्की सामन्तवर्ग अत्यन्त महत्वकांक्षी था। प्रत्येक तुर्क अमीर और सरदार अधिक से अधिक सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित रखना चाहता था। इस प्रक्रिया में वे इल्तुतमिश के प्रति वफादारी भी भूल गए। रजिया ने उनकी महत्वकांक्षाओं एवं षड़यन्त्रों पर नियंत्रण स्थापित कर उनकी आशाओं पर अघात किया। तुर्क अमीर रजिया को अपने हाथों की कठपुतली बनाए रखना चाहते थे, लेकिन जब उनका यह प्रयास विफल हो गया तो उन लोगों ने आपसी कटुता भुलाकर संगठित रूप से रजिया का विरोध किया और इसमें वे सफल भी हुए। रजिया अकेले इन विद्रोहियों की सम्मलित शक्ति का सामना नही कर सकी। उलेमा वर्ग भी एक स्त्री को शासक के रूप में स्वीकार करने को तैयार नही था। उसके विरूद्ध मनगढ़ंत आरोप लगाए गए, चरित्रहीनता का लांछन लगाया गया जिससे प्रजा के बीच भी रजिया की प्रतिष्ठा गिर गई। इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि रजिया की असफलता का मुख्य कारण सामंत और उलेमा वर्ग का विरोध और प्रतिकूल परिस्थितियां थीं।

2.6.7 रजिया के कार्यों का मूंल्याकन

रजिया के कार्यों की प्रशंसा अनेक इतिहासकारों ने की है। मिनहाज–उस–सिराज का कथन है कि, "सुलतान रजिया एक महान शासक थी– बुद्धिमान, न्यायप्रिय, उदारचित, और प्रजा की शुभचिन्तक, समद्रष्टा, प्रजापालक और अपनी सेना की नेत्री। उसमें सभी बादशाही गुण विद्यमान थे– सिवाय नारीत्व के, और इसी कारण मर्दों की दृष्टि में उसके सब गुण बेकार थे"। इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों में वह सबसे

योग्य मानी जाती है। उसमें कूटनीतिक, राजनीतिक, एवं प्रशासनिक क्षमताएँ कूट–कूट कर भरी हुई थी। रजिया की राजनीतिक सूझ–बूझ का अंदाजा उसकी मंगोल नीति से लगाया जा सकता है। 1238 ई0 में मंगोलों ने ख्वारिज्म के राज्यपाल मलिक हसन कार्लिग के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। कार्लिग ने मंगोलों के विरूद्ध रजिया से सहायता मांगी और अपने पुत्र को दिल्ली भेजा। रजिया ने यद्यपि उसका उचित सम्मान किया तथा उसके खर्च के लिए बरन का लगान निश्चित कर दिया, तथापि रजिया ने मंगोलों के विरूद्ध किसी गठबंधन में सम्मिलित होने से इनकार कर दिया। इस निर्णय से रजिया ने सलतनत को मंगोलों के क्रोध से बचा लिया।

रजिया जब तक गद्दी पर बनी रही, उसने राज्य की वास्तविक शक्ति अपने हाथों मे रखी उसके पतन के साथ ही सुलतान कठपुतली मात्र बनकर रह गया। वास्तविक शक्ति चारगान के हाथों में चली गई । रजिया की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उसने सुलतान के वास्तविक सत्ता का उपयोग किया। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में रजिया द्वारा पहली बार किसी महिला को सत्ता में आने का उदाहरण मिलता है। सबसे बड़ी बात यह है कि वह जन समर्थन से शासक बनी। रजिया की एक बडी उपलब्धि भी तुर्क अमीरों की शक्ति पर कुठारधात करना एवं गैर–तुर्क शासक वर्ग की शक्ति को संगठित करना। दुर्भाग्यवश राजनीतिक दूरदर्शिता एवं योग्यता रखते हुए भी एक शासक के रूप में रजिया परिस्थितिवंश विफल रही।

2.8 मुईजुद्दीन बहरामशाह (1240–1242)

रजिया के बाद 1240 ई0 में बहरामशाह सुलतान बना, परन्तु वह कुछ वर्षो तक ही गद्दी पर रह सका। वह नाम मात्र का शासक था। राज्य की वास्तविक शक्ति का संचालन चालीस गुलामों का दल ही करता था। शासन पर अपनी पकड बनाए रखने के लिए तुर्की अमीरों ने नायब–ए–मुमलकत (संरक्षक) का पद बनाया और उसपर एतगीन को बहाल किया गया, परन्तु उसकी बढ़ती शक्ति से अशंकित होकर बहरामशाह ने उसकी हत्या करवा डाली। एतगीन की हत्या के पश्चात बदरूद्दीन सुन्कर ने नायब के अधिकार प्राप्त कर लिए। उसने बहराम की हत्या का षड़यंत्र रचा; परन्तु स्वंय ही मार डाला गया। इन हत्याओं से तुर्की अमीर भयभीत हो उठे। उन लोगों ने सुलतान को पदच्युत करने का षड़यंत्र रचा। 1241ई0 में लाहौर पर मंगोलों ने आक्रमण कर दिया। इसी समय तुर्क अमीरों ने भी बगावत कर दी और दिल्ली पर अधिकार कर अमीरों ने 13 मई 1242 ई0 को बहरामशाह की हत्या कर दी।

2.9 अलाउद्दीन मसूदशाह (1242–1246)

यह भी एक दुर्बल और अयोग्य व्यक्ति था। वह नाम मात्र का शासक था। अब मलिक कुतुबुद्दीन हसन नायब और अबूबक्र वजीर बना। बलबन को हाँसी का इक्ता प्राप्त हुआ। धीरे–धीरे बलबन ही सबसे प्रमुख व्यक्ति बन गया। मसूदशाह के समय में पुनः मंगोलों का आक्रमण हुआ। 1245 ई0 में मंगोलों ने उच्छ पर अधिकार कर लिया। बलबन ने अपनी सैनिक प्रतिभा के बल पर मंगोलों को मार भगाया एवं उच्छ पर पुनः अधिकार किया। बलबन के इस कार्य से जहां उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ी। वहीं अमीरों में सुलतान मसूदशाह की प्रति नफरत की भावना भी पैदा हुई। बलबन ने षड़यंत्र कर मसूदशाह को गद्दी से हटाकर कैद कर लिया तथा कैद खाना में ही उसकी मृत्यु हो गई।

2.10 नासिरूद्दीन महमूद (1246–1266)

जून 1240ई0 में युवा नासिरूद्दीन महमूद को मसूदशाह के पश्चात सुलतान के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। उसने तुर्की अमीरों की शक्ति का अंदाजा लागाकर सारी सत्ता 'चालीसा' के सरगना और नायब बलबन के हाथों में सौप दी। वह नाम मात्र का शासक बनकर ही संतुष्ट हो गया। फलतः तुर्की अमीरों और सुलतान के बीच चलता आ रहा सत्ता का संघर्ष समाप्त हो गया। महमूद की स्थिति का वर्णन करते हुए इतिहासकार इसामी लिखते है कि, "वह बिना उनकी (तुर्की अधिकारियों) पूर्व आज्ञा के अपनी कोई राय

व्यक्त नही करता था। वह बिना उनकी आज्ञा के हाथ–पैर तक नही हिलाता था। वह बिना उनकी जानकारी के न पानी पीता था और न सोता था"। अनेक विद्वानों ने उसे धर्मपरायण शासक माना है, जिसकी सत्ता में दिलचस्पी नही थी; परन्तु वास्तविकता ऐसी नही थी। नासिरूद्दीन ने बलबन के सहयोग और षड़यंत्र से ही गद्दी प्राप्त की थी, अतः वह बलबन के आगे असहाय था।

2.9.1 नासिरूद्दीन महमूद का मूल्यांकन

1266 ई0 में सुलतान नासिरूद्दीन महमूद की मृत्यु । उस समय उसकी आयु मात्र 37 वर्ष थी। सुलतान की मृत्यु कैसे हुई यह अनिश्चित है। इतिहासकार बरनी सुलतान की मृत्यु के प्रश्न पर मौन है। तारीख–ए–मुबारकशाही का मानना है कि सुलतान की मृत्यु अम्बी बीमारी के बाद हुई, लेकिन रेहला से विदित होता है कि बलबन ने महमूद की हत्या कर सत्ता हथिया ली। फुतुहुस–सलातीन नामक ग्रन्थ से भी इस धारणा की पुष्टि होती है। नासिरूद्दीन के शासनकाल में इल्तुतमिश के पश्चात् व्याप्त राजनीतिक अव्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास किया गाया।

सुलतान तथा तुर्की अमीरों के बीच का सत्ता संघर्ष समाप्त हुआ और सुलतान की शक्ति और प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हुई। सुलतान प्रशासन पर अपना प्रभाव बनाए रखने में सफल रहा। बलबन की सहायता से उसने आंतरिक एवं बाहरी परिस्थितियों पर नियंत्रण स्थापित किया। यद्यपि बलबन उसके समय में अत्याधिक शक्तिशील बन चुका था, तथापि सुलतान की प्रतिष्ठा पर कोई आंच नही आई। बलबन इसका सेवक ही बना रहा, स्वामी नही। महमूद एक दूरदर्शी शासक था। उसने बलबन की योग्यता एवं क्षमता का लाभ उठाकर अपना पद सुरक्षित कर लिया। सुलतान महमूद एक धर्मपरामण व्यक्ति भी था। अनेक मध्यकालीन इतिहासकारों ने उसकी प्रशंसा की है। वह सादगी–पूर्ण जीवन व्यतीत करता था। अपने स्वभाव एवं नीतियों के कारण ही वह बीस वर्षों तक शासन कर सका।

2.11 गयासुद्दीन बलबन (1266–1287)

दिल्ली के प्रारम्भिक सुलतानों में बलबन सबसे महान और योग्य शासक था। उसने सुलतान की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को नए रूप में धरातल पर स्थापित की तुर्की राज्य का विस्तार किया तथा सुदृढ प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना की। उसने सुलतान नासिरूद्दीन के नायब के रूप में राज्य की अद्भुत सेवा की और विघटन शक्तियों पर पूरा अंकुश रखा। तुर्की अमीरों एवं सुलतान के बीच टकराव को समाप्त किया और मंगोलों के आक्रमण से राज्य की रक्षा की। उसे उलुग खां की उपाधि से विभूषित किया गया। सुलतान महमूद के समय में सत्ता की बाग–डोर बलबन के हाथों में रही। 1266 ई0 में सुलतान महमूद की मृत्यु के साथ ही इल्तुतमिश के वंश का शासन समाप्त हो गया। अब परिस्थिति का लाभ उठाकर बलबन स्वंय ही सुलतान बन बैठा।

2.10.1 बलबन का प्रारंभिक जीवन

बलबन का वास्तविक नाम बहाउद्दीन था। वह अपने आप को अफरासियब वंश (ईरान का प्रसिद्ध वंश) से सम्बन्ध मानता था। परन्तु इसकी पुष्टि के लिए कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नही है। अधिकांश इतिहासकारों का मानना है कि बलबन इलबरी तुर्क जनजाति का था। उसका जन्म एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। उसके पिता या पितामह इलबरी तुर्क के एक बड़े कबीलें के मुखिया थे। दुर्भाग्यवश बलबन अपनी युवावस्था में ही मंगोलों द्वारा बंदी बना लिया गया। मंगोलों ने उसे बसरा ले जाकर दास के रूप में ख्वाजा जलालुद्दीन के हाथों बेच दिया। 1223 ई0 में बलबन की योग्यता से प्रभावित होकर इल्तुतमिश ने उसे खरीद लिया और अपने दासों के दल में साममिलित कर लिया। अपनी प्रतिभा के बल पर बलबन निरंतर प्रगति करता गया।

इल्तुतमिश में आरम्भ में उसे अपने नौकर के रूप में रखा, लेकिन शीध्र ही उसे चालीसा में शामिल कर लिया। इस समय से बलबन का तीव्र गति से उत्थान हुआ। रूकनुद्दीन का विरोध करने एवं रजिया

का पक्ष लेने के कारण उसे कुछ समय कारागार में व्यतीत करना पड़ा। रजिया ने सुलतान बनने के पश्चात बलबन को अमीर–ए–शिकार के पद पर नियुक्त किया। रजिया के समय में हुए सत्ता संघर्ष में बलबन ने बहरामशाह का पक्ष लेकर अपने लिए अमीर–ए–आखूर का पद प्राप्त कर लिया। उसे रेवाड़ी और हाँसी की जार्गार भी दी गई। सुलतान मसूदशाह के समय मे बलबन को अमीर–ए–हाजिब का पद सौपा गया। इसी समय उसने मंगोलों को पराजित कर उन पर अधिकार कर लिया। इससे बलबन की शक्ति और प्रतिष्ठा और अधिक बढ़ गई। उसने मसूदशाह को अपदस्थ कर सुलतान नासिरूद्दीन महमूद को गद्दी पर बिठाया।

2.10.2 नायब के रूप में बलबन

सुलतान नासिरूद्दीन महमूद का शासन बलबन के राजनीतिक उत्कर्ष का काल था। उसके पूरे शासनकाल में, अनेक विरोधों के बावजूद, बलबन ही शक्ति का केन्द्र बना रहा। वह नायब मुमलकत बनाया गया और उसे उलुग खां की उपाधि प्रदान की गई। इस अवधि में बलबन ने न केवल अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त कर अपनी आंतरिक शक्ति सुदृढ की, बल्कि सल्तनत की महत्वपूर्ण सेवा भी की। उसके सैनिक अभियानों से सल्तनत की सुरक्षा हुईं। उसने मंगोलों की विस्तारवादी शक्ति पर अंकुश लगा दिया। खोखरों मेवातियों, राजपूतों एवं अन्य विद्रोहियों का दमन किया। अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए बलबन ने अपनी पुत्री का विवाह सुलतान के साथ कर दिया।

2.10.3 बलबन की समस्याएँ

सुलतान बनने के समय बलबन के समक्ष अनेक कठिनाइयां थी। उनपर विजय प्राप्त किए बिना उसकी स्थिति सुदृढ़ नही हो सकती थी। इल्तुतमिश के पश्चात राजनीतिक षड़यंत्रों, अधिकारियों की मनमानी एवं निहित स्वार्थी तथा अयोग्य शासकों के शासन के दौरान सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो चुकी थी। चारों तरफ अव्यवस्था एवं अराजकता व्याप्त थी। राजदरबार षड़यंत्रों एवं गुटबाजी का अड्डा था। चालीसा की शक्ति अत्यन्त बढ़ गई थी। विभिन्न सरदारों एवं अमीरों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली थी जिन पर अंकुश नितांत आवश्यक है। सुलतान की शक्ति और गरिमा नष्ट हो चुकी थी। वह नाम मात्र का शासक था। सुलतान तुर्क अमीरों के हाथ का कठपुतली बन चुका था। उलेमा वर्ग भी राजनीति में दखल दे रहा था। राज्य की आंतरिक व्यवस्था का लाभ उठाकर राजपूत शासक पुनः तुर्को को भारत से बाहर खदेड़ने एवं अपनी राजनीतिक सर्वोच्चता स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। सिन्ध और पंजाब पर अपना प्रभाव स्थापित कर अब मंगोल दिल्ली विजय का स्वप्न देख रहे थे। संक्षेप में बलबन जैसे शक्तिशाली व्यक्ति के लिए स्थिति भयावह थी; परन्तु बलबन ने दृढता पूर्वक इस स्थिति का सामना किया। उसने सुलतान की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की, 'चालीसा' का प्रभाव समाप्त किया, आंतरिक विद्रोहों को दबाया, मंगोल से राज्य की सुरक्षा की व्यवस्था की तथा प्रशासन का पुनर्गठन किया। बलबन के इन कार्यों से सल्तनत की स्थिति पहले क अपेक्षा अधिक सुदृढ़ हुई।

2.10.4 बलबन के कार्य

बलबन के समस्त कार्यों को सुविधानुसार दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है। पहले वर्ग में ऐसे कार्य आते हैं जिनके आधार पर बलबन ने अमीरों एवं अन्य विद्रोहियों पर नियंत्रण स्थापित किया तथा बाहरी आक्रमणों से तुर्की राज्य की सुरक्षा की व्यवस्था की। दूसरे वर्ग में हम उसके ऐसे कार्यों को रख सकते हैं, जो उसने साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिए किए।

2.11 प्रथम वर्ग

2.11.1 तुर्क सरदारों पर नियंत्रण

अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए बलबन ने सर्व प्रथम इल्तुतमिश के परिवार के बचे सदस्यों को जिनसे उसे खतरा था, निर्दयतापूर्वक मरवा डाला। ततपश्चात महत्वाकांक्षी तुर्क सरदारों पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। सुलतान की सत्ता को सबसे अधिक खतरा चरगान या चालीसा के गुट से था। अतः बलबन ने इनकी शक्ति को तोड़ने का निश्चय किया। राज्य के महत्वपूर्ण पद अब चालीसा को न देकर सुलतान के विश्वासपात्र व्यक्तियों को दिए गये। सिर्फ श्रेष्ठ रक्तवाले तुर्कों को ही ऊँचे पदों पर बहाल किया गया। संदिग्ध चरित्र वाले अमीरों को अपमानित एवं दंडित किया गया। उनकी जागीरें छीन ली गई तथा उनके विशेषधिकार समाप्त कर दिए गए। यहां तक कि बलबन ने अपने चचेरे भाई शेरखां की हत्या करवा दी, बदायूँ के गवर्नर मलिक बकबक, अवध के सुबेदार हैवात खां एवं शासक अमीर खां को भी अपमानित एवं दंडित किया गया। अनेकों की सम्पत्ति जब्त कर ली गई तथा उनके कार्यों पर कठोर नियंत्रण रखा गया।

2.11.2 आंतरिक विद्रोहों का दमन

अपनी स्थिति सुदृढ का बलबन ने आंतरिक विद्रोहों को दबाने का प्रयास आरम्भ कर दिया, जिसमें वह सफल भी हुआ। कानून और व्यवस्था के दृष्टिकोण से चार प्रदेश अत्यन्त समस्याग्रस्त थे। ये क्षेत्र थे, दिल्ली के निकटवती प्रदेश जहां मेवाती उत्पात मचा रहे थे। दूसरा क्षेत्र था गंगा–यमुना दो–आब, जो सुलतान की सत्ता को निरंतर चुनौती देता था। अवध जानेवाला व्यापारी मार्ग भी असुरक्षित था। कटेहर या बुन्देलखण्ड की स्थिति भी चिन्ताजनक थी। इसलिए बलबन ने इन क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया। सबसे पहले उसने मेवातियों के आतंक को समाप्त किया। मेवातियों को निर्दयतापूर्वक कत्ल किया गया, उनकी स्त्रियों को गुलाम बनाकर बेच दिया गया तथा उनके ठिकानों को नष्ट कर दिया गया। दिल्ली के निकटवती क्षेत्रों को साफ करवा कर पुलिस चौकियां एवं सैनिक शिविर बनाए गए। इससे दिल्ली के निवासियों को मेवातियों के आतंक से निजात मिल गई।

इसी प्रकार बलबन ने दो–आब के डाकुओं का भी सफाया किया। जंगलों को कटवाकर उनके ठिकानों को नष्ट किया गया। बरनी के शब्दों में, "विद्रोहियों और लुटेरों को इतने कठोर दंड दिए गए कि सुलतान की मृत्यु के साठ वर्ष बाद तक भी सड़कों पर लूट मार करने का इस क्षेत्र के डाकुओं ने साहस नही किया और यह प्रदेश यात्रियों किसानों तथा सरकारी पदाधिकारियों के लिए पूर्णतया सुरक्षित हो गया"। इन क्षेत्रो में दुर्ग बनवाकर सैनिक बहाल किए गए। अवध का व्यापारिक मार्ग भी सुरक्षित कर दिया गया जिससे व्यापारियों को सुविधा हुई। इसी प्रकार, बलबन ने कटेहर और पंजाब में भी शांति की स्थापना की। कटेहर के विद्रोही बदायूँ तथा अमरोहा क्षेत्र में आतंक फैलाए हुए थे। वे इक्तदारों की भी अवहेलना करते थे अतः बलबन ने शाही सेना की सहायता से विद्रोहियों का दमन कर उस क्षेत्र में शांति व्यवस्था स्थापित की। उसने साल्ट रेंज के विद्रोहियों को भी दंडित किया।

2.11.3 बंगाल में तुगरिल खां का विद्रोह

बलबन के समय में सबसे भयंकर विद्रोह बंगाल में तुगरिल खां का हुआ। तुगरिल बंगाल का सुबेदार था। यद्यपि उसे यह पद स्वंय बलबन ने ही सौपां था, तथापि बलबन की अस्वस्थता का लाभ उठाकर उसने 1279 में विद्रोह कर दिया। वह लखनौती का स्वतंत्र शासक बन बैठा। उसने अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और सिक्के ढ़लवाए। इस विद्रोह की सूचना पाकर बलबन ने अवध के सुबेदार को विद्रोह के दमन के लिए भेजा, परन्तु वह असफल होकर लौट आया। क्रुद्ध होकर बलबन ने उसकी हत्या करवा दी। अन्य दो सेनापति (तिरमति और शहाबुद्दीन) भी निराश होकर बंगाल से वापस आ गए। बलबन ने अब स्वंय ही बंगाल पर आक्रमण कर दिया। तुगरिल भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ परन्तु उसे पकड़कर मार डाला गया। लखनौती में आतंक का साम्राज्य कायम कर विरोधियों का मनोबल तोड़ दिया गया।

2.11.4 मंगोल आक्रमण

भारत की उत्तरी–पश्चिमी सीमा पर सदैव ही मंगोल आक्रमणकारियों का भय बना रहता था। सुलतान बनते के पूर्व बलबन ने इस क्षेत्र में मंगोलों से लोहा लिया था। सुलतान बनते ही उसने पश्मिोत्तर सीमा की सुरक्षा के उपाय किए। पुराने दुर्गों की मरम्मत करवाई गई तथा नए दुर्ग बनवाए गये। सैनिक शिविर स्थापित किए गए। शेरखां के अधीन एक सेना सीमान्त की सुरक्षा के लिए बहाल की गई। शेरखां ने मंगोलों की बाढ़ को आगे बढने से रोके रखा 1270 ई0 में उसकी मृत्यु के पश्चात बलबन ने अपने दो पुत्रों मुहम्मद और बुगरा खां को क्रमशः मुलतान, सिन्ध, लाहौर तथा सुमन और समाना के प्रदेशों की सुरक्षा का भार सौंप दिया। इन दोनों ने सीमांत की सुरक्षा की वयवस्था की। 1285 ई0 में तैमूर खां ने आक्रमण कर लाहौर और दीपालपुर को लूट लिया। मुहम्मद मंगोलों से युद्ध करता हुआ मारा गया; परन्तु मंगोल लाहौर पर आधिकार नही कर सके। बलबन के एक अन्य पुत्र कैखुसरो ने लाहौर की सुरक्षा की। बलबन के प्रयासों से मंगोल भारत में पंजाब से आगे नही बढ पाए। यद्यपि बलबन ने सुलतान के रूप में कोई महत्वपूर्ण विजय हासिल नही की, तथापि उसके समय तक तुर्की साम्राज्य की सीमा बहुत अधिक विस्तृत हो गई।

2.12 द्वितीय वर्ग

बलबन के दूसरे वर्ग के कार्यों में प्रमुख हैं उसके राजत्व का सिद्धान्त तथा प्रशासनिक संगठन ये सारे कार्य उसने सुलतान के पद की गरिमा बनाए रखते एवं तुर्की राज्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिए किए।

2.12.1 बलबन के राजत्व–सम्बंधी सिद्धान्त

बलबन दिल्ली का पहला सुलतान था, जिसने राजत्व–सम्बंधी सिद्धान्त की स्थापना की। वह भारत के प्राचीन शासकों की ही तरह राजत्व के दैवी सिद्धान्त में विश्वास रखता था। इसके द्वारा वह सुलतान की सर्वोच्चता स्थापित करना चाहता था। उसके राजत्व–सिद्धान्त का स्वरूप फारस के राजत्व–सम्बंघी सिद्धान्त से प्रभावित था। बलबन सुलतान को पृथ्वी पर अल्लाह का प्रतिनिधि'– 'नियाबते–खुदाई' मानता था।

उसके अनुसार, सुलतान का स्थान पैगम्बर के पश्चात आता है। सुलतान जिल्ले अल्लाह, अर्थात ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। वह अल्लाह के निर्देशानुसार ही शासन करता है। बलबन यह भी मानता था कि "राजा का हृदय ईश्वर–कृपा का विशेष कोष है और समस्त मनुष्य जाति में उसके समान कोई नही है। राजत्व निरंकुशता का शारीरिक रूप है। इस प्रकार की निरंकुशता सुलतान की हत्या का खतरा उत्पन्न करती थी। अतः उसे अपनी सुरक्षा के प्रति सावधान रहना चाहिये और जनता में अपने प्रति भय की भावना जागृत करना चाहिये"। उसने अपने पुत्रों को भी इस बात की शिक्षा दी कि वे राजत्व के उच्च आदर्शों के अनुसार ही शासन करें। अपने व्यक्तिगत चरित्र को आदर्शमय बनाएँ, जिसका अनुकरण अन्य व्यक्ति कर सकें। राजा के उत्तरादायित्वों और कर्तव्यों की भी उसने एक रूप रेखा तैयार की। उसका एक मात्र उद्देश्य सुलतान के पद की गरिमा एवं उसकी शक्ति को सुरक्षित बनाए रखना था।

बलबन के राजत्व सिद्धान्त की पूरी जानकारी इतिहासकार बरनी द्वारा संकलित उसके 'वसय' से मिलती है। इसमें राजत्व के सम्बंधी में बलबन के विचारों को स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। 'वसय' में बलबन अपने पुत्रों को निम्नलिखित निर्देश देता हैः–

(1) व्यक्तियों के ऊपर शासन को एक मामूली और महत्वहीन कार्य न समझो, यह एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसे पूर्ण गम्भीरता व उत्तरदायित्व की भावना से पूरा किया जाना चाहिये।

(2) राजा का दिल ईश्वर की कीर्ति को प्रतिबिम्बित करता है। वह यदि निरंतर ईश्वरी ज्योती प्राप्त नही करता है तो शासक कभी अपने अनेक और अति महत्वपूर्ण कर्तव्यों को पूर्ण नही कर सकता। अतः राजा को अपने दिल और आत्मा की पवित्रता के लिए प्रयत्न करना चाहिये और ईश्वर की दया के लिए अनुग्रही रहना चाहिये।

(3) एक अनुग्रही राजा सदा ईश्वर के संरक्षण के छत्र से रक्षित रहता है।

(4) राजा को इस प्रकार जीवन व्यक्ति करना चाहिये कि मुसलमान उसके प्रत्येक कार्य, शब्द व क्रियाकलाप को माने और प्रशांसा करे।

(5) उसे इस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये कि उसक शब्दों, कार्यों, आदर्शों, व्यक्तिगत योग्यताओं व गुणों से लोग शरीअत के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करने के योग्य हो सकें।

अपने इन तर्कों द्वारा बलबन ने सुलतान को ईश्वर एवं निरंकुश सत्ता का प्रतीक बना दिया। दिखावटी मान–मर्यादा और प्रतिष्ठा राजत्व का आवश्यक अंग माना गया। वंशावली के महत्व पर बल दिया गया। फारसी दरबार के तौर–तरीकों को अपनाया गया। बलबन ने न्याय को राजत्व में महत्वपूर्ण स्थान दिया। बलबन ने खलीफा की राजनीतिक सत्ता भी स्वीकार की तथा सिक्कों पर खलीफा का नाम खुदवाया एवं खुतबा में उसका नाम पढ़वाया। अपने राजतंत्रो के अनुरूप ही बलबन ने अपने आपको ढ़ाल लिया।

बलबन कुरान के नियमों का कड़ाई से पालन करता था। न्याय के सम्पादन पर वह विशेष बल देता था। राजदरबार के लिए निशिचित नियम तय किए गए। फारसी परिपाटी के आधार पर उसने भी दरबार में 'सिजदा' (घुटने पर सिर झुकाना) एवं 'पैबोस' (सुलतान का पैर चूमना) की प्रथा प्रारम्भ की। दरबार में उसके अंगरक्षक नंगी तलवारें लिए खड़े रहते थे। उसके सामने बैठने (खलीफा के दो वंशजों को छोड़कर) बात करने (वजीर के अतिरिक्त), मुस्कुराने की आज्ञा किसी को नही थी। दरबारियों को एक विशेष प्रकार का वस्त्र पहनकर ही दरबार में उपस्थित होना पड़ता था। अपने इन कार्यों द्वारा बलबन ने सुलतान की विलुप्त प्रतिष्ठा एवं गरिमा को पुनः प्रभावशाली बनाया तथा सब पर भय और आतंक स्थापित कर दिया। बलबन की यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। अपने सिद्धान्तों द्वारा बलबन ने राजत्व के आधार को मजबूत किया। "उसने ईश्वर, (शासक तथा जनता के बीच त्रिपक्षीय सम्बंध के राज्य की आधार बनाने का प्रयत्न किया"। उसने जनहित को शासन का व्यवहारिक आदर्श बनाया। उसका राजत्व का सिद्धान्त शक्ति, प्रतिष्ठा और न्याय पर आधारित था।

2.12.2 सैनिक व्यवस्था

बलबन का निरंकुश राजत्व बिना सैनिक सहायता के स्थापित नही हो सकता था, इसलिए उसने सेना के पुनर्गठन पर ध्यान दिया। सेना में योग्य सैनिकों एवं अधिकारियों को नियुक्त किया गया। उनके प्रशिक्षण एवं वेतन की व्यवस्था की गई। सैनिकों के वेतन में वृद्धि कर उन्हें संतुष्ट रखने का प्रयास किया गया है। सेना के देखभाल एवं प्रशिक्षण के लिए एक अलग विभाग दीवान–ए अर्ज का गठन किया गया।

सैनिकों के वेतन में वृद्धि कर उन्हे संतुष्ट रखने का प्रयास किया गया प्रचलित सैनिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। वैसे व्यक्ति जो सैनिक सेवा के योग्य नही थे, उनकी जागीरें वापस लेकर उन्हे पेंशन दे दी गई।

2.12.3 गुप्तचर विभाग का गठन

पदाधिकारियों, राज्य की जनता एवं विरोधियों पर निगरानी रखने के लिए बलबन ने एक सशक्त गुप्तचर विभाग का संगठन किया। ये 'बरीद' (गुप्तचर) सम्पूर्ण साम्राज्य में फैले हुए थे तथा राज्य के प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना की खबर सुलतान तक पहुँचाते थे। उन्हें अनेक सुविधाएं दी गई थी, परन्तु अपने उत्तरदायित्व का ठीक से पालन नही करने पर उन्हे कठोर दण्ड दिया जाता था। बदायूँ के बरीद का वद्य कर उसकी लाश को सूली पर प्रदर्शित किया गया, क्योकि उसने अपने कर्तव्य का पालन नही किया था। गुप्तचरों की सहायता से ही बलबन समस्त राज्य पर अपनी पकड़ स्थापित कर सका।

2.12.4 प्रशासनिक सुधार

बलबन प्रशासन के प्रत्येक विभाग पर स्वंय कड़ी निगरानी रखता था। समस्त नौकरशाही पर उसका नियंत्रण था। अधिकारियों की नियुक्ति वह स्वंय करता था। सूबेदारों पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी। उन्हे सदैव सूबे की स्थिति से सुलतान को अवगत करना पडता था। उसने सैनिक एवं आर्थिक अधिकार

अलग कर दिए। वजीर से सैनिक एवं अर्थिक अधिकार वापस ले लिए गए। इसका उद्देश्य सरकारी अधिकारियों के हाथों में अधिक शक्ति केन्द्रित नही होने देना था। अधिकारियों को प्रजा के साथ उचित व्यवहार करने का निर्देश दिए गए।

बलबन ने अर्ध–नागरिक एवं अर्ध–सैनिक प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना की। उसने केन्द्रीय शक्ति के सुदृढ़ीकरण पर बल दिया एवं फूट उत्पन्न करने वाली प्रवृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित किया। इतिहासकार बरनी के अनुसार बलबन प्रशासन को संरक्षात्मक स्वरूप प्रदान करना चाहता था। जनता एवं अधिकारी दोनों से वह संतुलित व्यवहार की अपेक्षा करता था। जनता एवं अधिकारी दोनों से वह संतुलित व्यवहार की अपेक्षा करता था। वह यह भी चाहता था कि शासन अपनी नीतियों से दृढ़ हो, व्यापारियों को समृद्ध और संतुष्ट रखे, राज्य के आर्थिक साधनों का समुचित अपयोग करे और सेना को प्रसन्न तथा संतुष्ट रखे। बलबन ने इन्ही आदर्शों के अनुकूल कार्य किया तथा शांति एवं न्याय की स्थापना की।

2.13 कैकुबाद

बलबन की इच्छा अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने की थी, परन्तु बलबन के जीवन काल में ही वह मंगोलों से संघर्ष करता हुआ मारा गया। अतः बलबन ने मुहम्मद के पुत्र कैखुसरो को अपना उत्तराधिकार नियुक्त किया; परन्तु मृत शक्तिशाली सुलतान की यह इच्छा भी पूरी नही हो सकी। सुलतान के मरते ही उसके अमीर पुनः सक्रिय हो उठे। उन लोगों ने कैखुसरो को मुलतान भेज दिया एवं उसकी जगह बुगरा खां के पुत्र कैकुबाद को सुलतान मनोनित किया। कैकुबाद को सुलतान बनाने में दिल्ली के कोतवाल मलिक फखरूद्दीन ने महत्व्पूर्ण भूमिका निभाई।

बलबन ने बड़े–प्यार और कठोर अनुशासन में कैकूबाद को रखा था। उसे राजोचित शिक्षण भी दिया गया था, परन्तु सुलतान बनते ही उसपर से पाबंदियां हट गई। अन्मिंत्रित होकर वह सुरा–सुंदरी में लिप्त हो गया। फलस्वरूप, राजकार्य में उसकी रूचि समाप्त हो गई। वह सदैव चाटुकारों, नृतकमियों, भाँडों और विदूषकों से घिरा रहने लगा। दरबार का अनुशासन समाप्त हो गया। अमीर और अधिकारी व्यक्तिगत सुखों और षड़यंत्रों मे लिप्त हो गए। अनियमित व्यतीत करने से सुलतान के स्वरूप पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। तीन वर्षो के अन्दर ही उसका आधा शरीर फालिज से बेकार हो गया। राज्य की सारी सत्ता अब अमीरों और पदाधिकारियों के हाथों में केन्द्रित हो गई।

2.14 खिलजी क्रान्ति

अपने पिता बुगरा खां के सलाह मानकर निजामुद्दीन को जो सुलतान को अपने हाथों का कटपुतली बना रखा था, मुलतान जाने की आज्ञा दी, परन्तु उसने उस पर ध्यान नही दिया। फलतः कैकूबाद ने विष दिलवाकर निजामुद्दीन की हत्या करवा डाली। कैकुबाद अब शासन पर अपना प्रभाव स्थापित करने के प्रयास में लग गया उसने तुर्की अमीरों की जगह पर महत्वपूर्ण पद खिलजियों को सौंपी। उसने समाना से जलालुद्दीन फिरोज खिलजी को बुलाकर उसे शाइस्ता खां की उपाधि से विभूषित किया तथा बरन का हाकिम एवं आरिजे मुमालिक (युद्ध मंत्री) नियुक्त किया। कैकूबाद के इस कार्य से तुर्की अमीर चिढ गए। उन्होने खिलजियों की हत्या करने का षड़यंत्र किया। सुलतान इस समय पक्षाघात से पीड़ित होकर पड़ा था। तुर्की अमीरों ने कैकूबाद के नाबालिग पुत्र कैमूर्स को गद्दी पर बैठाया । जलालुद्दीन उसका संरक्षक नियुक्त हुआ। इस बीच कैकूबाद की भी हत्या कर दी गई।

तुर्की अधिकारी इल्बरी वंश की सत्ता को सुरक्षित रखकर अब खिलाजियों के दमन की योजना बनाने लगे। जलालुद्दीन को जब इसकी भनक मिली, तब वह कैमूर्स के साथ दिल्ली से बहारपुर चला गया। इससे तुर्की अमीर आशंकित हो गए। उन लोगों ने कैमूर्स के साथ जलालुद्दीन को दिल्ली आने का आदेश दिया। दिल्ली की जनता भी नन्हें सुलतान के अपहरण से जलालुद्दीन का विरोधी बन बैठी। यद्यपि जलालुद्दीन ने अनेक विरोधियों को मार डाला, तथापि जन–प्रतिरोध का ध्यान रखते हुइ उसने कैमूर्स को

गद्दी पर सुलतान के रूप में प्रतिष्ठित किया और स्वंय उसका संरक्षक बना रहा। तीन माह पश्चात कैमूर्स को बन्दी बनाकर और उसकी हत्या कर स्वंय जलालुद्दीन सुलतान बन बैठा। इस प्रकार 1290 ई0 में इल्बरी तुर्कों का शासन सदा के लिए समाप्त हो गया और उसके स्थान पर खिलजी वंश की सत्ता स्थापित हुई।

2.15 सारांश

भारत में कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा नव स्थापित, ममलुक वंश सौ वर्षों के अन्दर ही 1290 ई0 तक समाप्त हो गया। अब इसके स्थान पर एक नए वंश खिलजी वंश का उदय हुआ। ममलुक वंश में अनेक महत्वपूर्ण शासक हुए जिन्होने अपने अदभुत कार्यों के द्वारा इतिहास में विशिष्ठ स्थान प्राप्त की। सुलतान इल्तुतमिश ने साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान किया। प्रशासनिक संगठन एवं इक्तदारी व्यवस्था के द्वारा राज्य में शान्ति एवं सम्पन्नता कायम की। एक मात्र मध्यकालीन महिला शासिका रजिया, इसी वंश से सम्बन्धित थी, जो अपनी प्रतिभा और विशिष्ट गुणों के लिए प्रसिद्ध है। इसी प्रकार बलबन का मध्यकालीन समस्त सुलतानो में विशिष्ट स्थान है जिसके कार्यों एवं नीतियों से सुलतान की खोई इुई गरिमा और प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हुई। उसने प्रशासन को दृढ़ता एवं अपराध रहित बनाया। उसने प्रशासन के शिथिलता और विघटनकारी शक्तियों पर पूर्ण अंकुश रखा। मंगोल आक्रमण से साम्राज्य की सुरक्षा की। परन्तु उसकी मृत्यु के साथ ही ममलुक वंश पतन की ओर अग्रसर हो गया और अंनतः 1290 ई0 में जलालुद्दीन खिलजी द्वारा इस वंश का अंत कर दिया गया। अब इसके स्थान पर खिलजी वंश का शासन प्रारम्भ हुआ।

2.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

- कुतुबुद्दीन ऐबक के योगदानों की समीक्षा कीजिए।
- क्या इल्तुतमिश ही ममलुक वंश का वास्तविक संस्थापक था ?
- इल्तुतमिश के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।
- रजिया के विफलता के मूल कारणों का उल्लेख कीजिए।
- बलबन के राजत्व सम्बंधी नियमों का वर्णन कीजिए।
- बलबन की कार्यों एवं उपलब्यिधयों का विश्लेषण कीजिए।
- चहलगानी अथवा चालीसा के कार्यों का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
-

2.17 सन्दर्भ ग्रन्थ

जे0एल0 मेहता – मध्यकालीन भारत का वृहत् इतिहास खण्ड –1

हरिश्चन्द्र वर्मा – मध्यकालीन भारत खण्ड –1

बिपिन बिहारी सिन्हा – मध्यकालीन भारत

सतीश चन्द्र – मध्यकालीन भारत

अवधेश बिहारी पाण्डे – मध्यकालीन भारत

एल0पी0 शर्मा – मध्यकालीन भारत (1000–1761)

दिल्ली सल्तनत का विस्तार : खिलजी वंश

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 जलालुद्दीन फिरोज खिलजी

- 3.3.1 जलालुद्दीन फिरोज खिलजी का राजनीतिक उत्कर्ष
- 3.3.2 फिरोज खिलजी के विरूद्ध विद्रोह
- 3.3.3 जलालुद्दीन की अन्य समस्याएँ
- 3.3.4 जलालुद्दीन फिरोज की विदेश नीति
- 3.3.5 जलालुद्दीन फिरोज का अंत
- 3.3.6 जलालुद्दीन फिरोज खिलजी का मूल्यांकन

3.4 अलाउद्दीन खिलजी

- 3.4.1 अलाउद्दीन खिलजी का राजनीतिक उत्कर्ष
- 3.4.2 अलाउद्दीन की गृह नीति
- 3.4.3 आंतरिक विद्रोहों का दमन
- 3.4.4 अलाउद्दीन के सैनिक अभियान–विदेश नीति
- 3.4.5 अलाउद्दीन के पश्चिमोत्तर सीमा नीति
- 3.4.6 राजपूतों से सम्बन्ध
- 3.4.7 गुजरात की विजय
- 3.4.8 णथंभौर पर अधिकार
- 3.4.9 मेवाड़ पर आक्रमण
- 3.4.10 मालवा एवं अन्य राज्यों की विजय
- 3.4.11 जालौर की विजय
- 3.4.12 दक्षिण की विजय
  - 3.4.12.1 देवगिरि
  - 3.4.12.2 तेलंगाना
  - 3.4.12.3 होयसल
  - 3.4.12.4 माबर की विजय
- 3.4.13 अलाउद्दीन का साम्राज्य
- 3.4.14 अलाउद्दीन का पश्चिमोत्तर सीमांत एवं मंगोल नीति
- 3.4.15 अलाउद्दीन की दक्षिण विजय का महत्व एवं प्रभाव
- 3.4.16 अलाउद्दीन का मूल्यांकन

3.5 शहाबुद्दीन उमर

3.6 कुतुबुद्दीन मुबारक शाह

3.7 नासिरूद्दीन खुसरो शाह

3.8 सारांश

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

ममलुक वंश के पतन के पश्चात दिल्ली की सत्ता खिलजियों के हाथों में चली गई। खिलजियों ने रक्तरंजित क्रान्ति द्वारा इल्बरी तुर्कों की सत्ता समाप्त कर, कैमूर्स को बंदी बनाकर राजसत्ता हथिया ली। इस क्रान्ति का नेता जलालुद्दीन फिरोज खिलजी था। खिलजियों के शासनकाल में दिल्ली सल्तनत का चरम विकास हुआ। अब इस का सीमा क्षेत्र सुदूर दक्षिण तक फैल गया। सीमा विस्तार के साथ–साथ इसकाल में प्रशासनिक दृढ़ता एवं आर्थिक सम्पन्नता भी स्थापित हुई।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित बातें जान सकेंगें :–

- किस प्रकार खिलजी के द्वारा ममलुकों का अन्त कर खिलजी वंश की स्थापना हुई।
- खिलजी वंश का संस्थापक जलालुद्दीन फिरोज खिलजी की हत्या कर किस प्रकार अलाउद्दीन खिलजी शासक बना और उसने कौन सी नीतियां अपनाई।
- किस प्रकार अलाउद्दीन खिलजी ने सुदूर दक्षिण तक अपना साम्राज्य स्थापित की।
- अलाउद्दीन के गृह एवं विदेश नीति।
- अलाउद्दीन के बाद शासकों का मूल्यांकन और खिलजी वंश का अन्त।

3.3 जलालुद्दीन फिरोज खिलजी (1290–1296)

भारत में खिलजी वंश का संस्थापक जलालुद्दीन फिरोज था। उसने अपना जीवन एक सैनिक के रूप में आरम्भ किया था, परन्तु अपनी योग्यता के बल पर तरक्की करता हुआ वह क्रमशः सेनानायक एवं सुबेदार बन बैठा। कैकुबाद के समय से उसका राजनीतिक प्रभाव बढ़ने लगा। वह इस काल में आरिजे ममालिक बनाया गया। उसे शाइस्ता खां की उपाधि से भी विभूषित किया गया। तुर्की अमीरों के षड़यंत्रों को नाकाम एवं, कैमूर्स की हत्या कर 1290 ई0 मे उसने किलखूरी में ही स्वंय को सुलतान घोषित कर दिया।

3.3.1 जलालुद्दीन फिरोज का राजनीतिक उत्कर्ष

जलालुददीन फिरोज खिलजी के पूर्वज इल्तुतमिश के शासनकाल में भारत आए। उन लोगों ने सल्तनत मे नौकरी आरम्भ कर दी। फिरोज खिलजी ने भी एक सैनिक के रूप में नासिरूद्दीन महमूद तथा बलबन के समय में सल्तनत की सेवा आरम्भ की। उसकी सैनिक प्रतिभा से प्रभावित होकर बलबन ने उसे पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा के लिए तैनात किया एवं एक सेनांनायक का पद दिया। फिरोज ने कुशलता पूर्वक इस पद पर रहते हुए मंगोल आक्रमणों से सीमा की सुरक्षा की। सुलतान कैकुबाद ने भी फिरोज की योग्यता को पहचाना तथा उसे समाना का सुबेदार बनाया। उसे बाद में आरिजे–ममालिक (युद्ध–मंत्री) भी बहाल किया गया एवं शाइस्ता खां की उपाधि प्रदान की गई। इस पद पर आते ही फिरोज खिलजी का राजनीतिक उत्कर्ष आरम्भ हुआ। युद्ध मंत्री के रूप में उसका प्रशासन एवं तत्कालीन राजनीति पर प्रभाव बढ़ गया। सेना उसके प्रत्यक्ष नियंत्रण में आ गई। अपने पद का लाभ उठाकर फिरोज ने अपना प्रभाव बढ़ाना आरम्भ किया। उसने खिलजी सामन्तों, सरदारों, सेनानायकों एवं अन्य गैर–तुर्की महत्त्वपूर्ण सरदारों और अधिकारियों को संगठित कर अपना समर्थक बना लिया। फलतः दिल्ली दरबार में खिलजियों एवं जलालुद्दीन का व्यापक प्रभाव स्थापित हो गया।

जलालुद्दीन फिरोज खिलजी के राजनीतिक उत्कर्ष से तुर्क अमीर सशंकित हो उठे। अनमें द्वेष और ईर्ष्या की भावना प्रबल हो गई। परिणामस्वरूप दिल्ली दरबार स्पष्टतः दो दलों में विभक्त हो गया। एक का नेता फिरोज खिलजी था तो दूसरे का एतमूर सूर्खा। खिलजी शासन और राजनीति में नए तत्वों को लाना चाहते थे, परन्तु तुर्क बलबन के वंशजों के नियंत्रण में तुर्की प्रभव को ही बनाए रखना चाहते थे। इसी बीच सुलतान नासिरूद्दीन महमूद पर पक्षाघात का आक्रमण हुआ और बीमार होकर वह किलखूरी के महल में निश्चेष्ट हो गया। तुर्की अमीरों ने इस परिस्थिति का लाभ उठाकर मलिक कच्छन और सूर्खा ने नासिरूद्दीन के अल्पवयस्क पुत्र कैमूर्स को शम्सुद्दीन द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठा दिया। तुर्क अमीरों ने खिलजियों के दमन की भी योजना बनाई।

जिस समय यह षड़यंत्र हो रहा था, फिरोज खिलजी भूगल पहाडी पर शाही सेना का निरीक्षण कर रहा था। उसके विश्वासपात्र नायब–अमीर–ए–हाजिब मलिक चप ने इस षड़यंत्र, जिसमें प्रमुख खिलजी सरदारों की हत्या की जानी थी, की सूचना फिरोज को दी। फिरोज ने सुरक्षा की आवश्यक व्यवस्था की एवं षड़यंत्रकारियों से निपटने को तैयार हो गया।

3.3.2 फिरोज खिलजी के विरूद्ध विद्रोह

सुलतान की उदार नीति एवं उसकी वृद्धावस्था को देखते हुए अनेक महत्वकांक्षी सरदारों ने फिरोज को गद्दी से हटाने के लिए षड़यंत्र आरम्भ कर दिया। सुलतान बनते ही फिरोज को विद्रोहों का भी सामना करना पड़ा इन में प्रमुख थे मलिक छज्जु, ताजुद्दीन कूची, और सीदी मौला के विद्रोह।

फिरोज की उदारनीति का लाभ उठाकर 1290 ई0 में ही कारा और मानिकपुर के सूबेदार मलिक छज्जु ने विद्रोह कर दिया। उसने अवध के प्रांतपति अमीर अली हातिम खां, तुर्क अमीरों एवं हिन्दू सरदारों इत्यादि का सहयोग लेकर दिल्ली पर अधिकार करने की योजना बनाई। सुलतान की दुर्बल नीति से क्षुब्ध कुछ खिलजी भी मलिक छज्जु का साथ देने को तैयार हो गए। इससे उत्साहित होकर छज्जु ने सुलतान मुगीसुद्दीन के रूप में अपनी स्वंतंत्रता की घोषणा कर दी बदायूँ के निकट मलिक छज्जु को पराजित कर उसे बंदी बना लिया गया। मलिक छज्जु को फिरोज के सामने प्रस्तुत किया गया परन्तु सुलतान ने उसे क्षमा कर मुल्तान स्थांनानतरित कर दिया। अब उसके स्थान पर अलाउद्दीन को कारा और मानिकपुर का प्रांतपति नियुक्त किया गयझं यद्यपि फिरोज की यह नीति एक शासक के रूप में अनुकूल नही थी, लेकिन मलिक छज्जु अथवा उसके समर्थकों ने पुनः विद्रोह नही कियझं

जलालुद्दीन खिलजी के विरूद्ध एक अन्य विद्रोह का प्रयास सीदी मौला नामक एक फारसी दरवेश ने किया। वह एक अमीर दरवेश था जो भारी खानकाह चलाता था। उसके दान–पुण्य के चर्चे कैकूबाद के शासन काल से ही प्रचलित थे। सीदी मौला के प्रभाव से आकर्षित होकर अनेक अमीर और अधिकारी खानकाह में जाने लगे जहां राजनीतिक चर्चाएँ भी होती थी। इतिहासकार बरनी के अनुसार वहां पर दो हिन्दू अधिकारियों–हथियापायक और निरंजन कोतवाल ने सुलतान की हत्या करने एवं सीदी मौला को सुलतान बनाने का षड़यंत्र रचा। सुलतान को इस षड़यंत्र का पता चल गया और सारे षड़यंत्रकारी पकड़े गये। षड़यंत्रकारियों को मौत के घाट उतार दिया गया परन्तु सुलतान की नीतियों में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। अतः शीघ्र ही अली गुरशास्य (अलाउद्दीन खिलजी) के षड़यंत्रकर फिरोज खिलजी की हत्या कर दी और स्वंय सुलतान बन बैठा।

3.3.3 जलालुद्दीन की अन्य समस्याएँ

70 वर्षीय जलालुद्दीन खिलजी को जन समर्थन प्राप्त नही था। दिल्ली की जनता और तुर्क अमीर गुलाम वंश के दो निःसहाय सुलतानों की हत्या की बात नही भूले थे। जब आक्रोश के भय से वह तत्काल दिल्ली

आने का हिम्मत नही जुटा पा रहा था और किलखूरी में ही अपना राज्याभिषेक करवाया था। फिरोज एक साधारण कुल का व्यक्ति था, उसे अपने अधिकारियो एवं जनता का समर्थन व सम्मान भी प्राप्त नही था, सबसे बड़ी बात यह भी कि बलबन के बाद सुलतान की प्रतिष्ठा एवं शक्ति नष्ट हो चुकी थी, प्रशासनिक व्यवस्था अस्त–व्यस्त पड़ी हुई थी। इस स्थिति से निपटने के लिए किसी योग्य एवं दृढ़निश्चयी शासक की आवश्यकता थी। वृद्ध होते हुए भी नए सुलतान ने इन समस्याओं का दृढ़तापूर्वक सामना करने का निश्चय किया।

3.3.4 जलालुद्दीन फिरोज की विदेश नीति

फिरोज युद्ध एवं रक्तपात से घृणा करता था तथा शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहता था। इसलिए, उसकी गृहनीति के समान उसकी विदेशनीति भी शान्तिपूर्ण थी, फिर भी उसे कुछ सैनिक अभियान करने पड़े। उसका सबसे महत्वपूर्ण अभियान रणथंभौर के चौहान राजपूतों के विरूद्ध हुआ। चौहानों ने हम्मीर देव के नेतृत्व में अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। वे दिल्ली को सदैव चुनौती देते थे। फिरोज ने रणथंभौर पर आक्रमण कर दिया परन्तु राजपूतों के कठोर विरोध के कारण उसे दुर्ग का घेरा उठाकर वापस लौटना पड़ा मंदौर पर विजय प्राप्त करने में फिरोज सफल रहा।

जलालुद्दीन फिरोज के समय में मंगोल नेता हलाकू के पौत्र अब्दुल्लाह का आक्रमण 1292 ई0 में हुआ। फिरोज ने सिंधु नदी के किनारे मंगोलों को पराजित कियझं मंगोल नेता अब्दुल्लाह ने फिरोज के साथ संधी कर ली और दिल्ली में रहने की आज्ञा प्राप्त कर ली। दिल्ली में रूके मंगोलों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और वे नव–मुस्लिम कहलाने लगे। 1292 ई0 में अलाउद्दीन ने फिरोज से आज्ञा प्राप्त कर मालवा (भिलसा) पर आक्रमण कर इसे लूटा। उसने देवगिरि के राजा रामचन्द्र देव पर भी आक्रमण किया एवं बेहिसाब सम्पत्ति लूटी।

3.3.5 जलालुद्दीन का अन्त

देवगिरी अभियान के पश्चात अलाउद्दीन खिलजी फिरोज खिलजी की दुर्बलता का लाभ उठाकर गद्दी हथियाने का प्रयास करने लगा। देवगिरी से प्राप्त धन ने उसके हौसले और महत्वकांक्षाएँ बढ़ा दिए। उसने लूट के माल का हिस्सा भी सुलतान को नही भेजा। अलाउद्दीन सुलतान को धोखे में रखते हुए पत्र लिखा कि वह शत्रुओं के भय से दिल्ली नही आ सकता था, परन्तु वह सुलतान को लूट का माल देने को तैयार था। उसकी बातों पर विश्वास कर सुलतान थोडे से अंगरक्षकों के साथ अलाउद्दीन से मिलने के लिए मानिकपुर चला गया। अलाउद्दीन से गले मिलते समय ही उसके अनुचरों ने फिरोज की हत्या कर डाली। उसकी मृत्यु के साथ अलाउद्दीन खिलजी को सुलतान घोषित कर दिया गया।

3.3.6 जलालुद्दीन फिरोज खिलजी का मूल्यांकन

जलालुद्दीन खिलजी एक निष्ठावान, निष्कपट, दयालू और उदार परन्तु शाही पद हेतु अयोग्य व्यक्ति था। यद्यपि वह शासकों को फरिश्ता माना जाता था, तथापि उसकी दुर्बलता उसके पतन के कारण बनी। फिरोज खिलजी ने 'उदार–निरंकुशवाद' की स्थापना की। वह रक्तपात से आवश्यकता पडने पर भी घृणा करता था। उसकी यह नीति तत्कालीन परिस्थितियों में जान लेवा सिद्ध हुई। वह भूल गया था कि वह तलवार के बल पर सुलतान बना था और इस पद की रक्षा तलवार के बल पर ही हो सकती थी। निःसंदेह वह एक सच्चरित्र, उदार, शिक्षा–साहित्य और कला–कौशल का संरक्षक था परन्तु एक योग्य शासक के रूप में वह असफल रहा। प्रो0 हबीब और निजामी के शब्दों में, यद्यपि जलालुद्दीन का शासनकाल महत्वपूर्ण नही था, किन्तु वह ममलुकों के प्रयोगात्मक युग और अलाउद्दीन की नियोजित साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था के बीच एक पुल था।

3.4 अलाउद्दीन खिलजी (1296–1316)

खिलजी वंश के शासकों में अलाउद्दीन सबसे अधिक शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण शासक था। उसने लगभग बीस वर्षों (1296–1316) तक सफलतापूर्वक शासन किया। उसने दिल्ली का साम्राज्य की सीमा का अत्यधिक विस्तार किया। वह दिल्ली सल्तनत का पहला शासक था जिसने सदूर दक्षिण तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। इतना ही नही, उसने सुलतान के पद की गरिमा एवं शक्ति पुनः स्थापित की तथा आर्थिक एंव प्रशासनिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सुधार किए। वह अपनी बाजार नीति के लिए भी काफी प्रसिद्ध है।

3.4.1 अलाउद्दीन का राजनीतिक उत्कर्ष

अलाउद्दीन खिलजी अथवा अली गुरशास्य, सुलतान जलाउद्दीन फिरोज खिलजी का भतीजा और दामाद था। उसके पिता शहाबुद्दीन मसूद के आकस्मिक मृत्यु के पश्चात अलाउद्दीन के देखभाल की जिम्मेदारी चाचा फिरोज खिलजी ने अपने ऊपर ले ली। अलाउद्दीन की अभिरूचि शिक्षा प्राप्त करने से अधिक सैनिक कार्यों में थी। अतः उसने घुड़सवारी और तलवारबाजी में निपुणता प्राप्त कर ली। उन्मूलन उसकी सैनिक प्रतिभा से जलालुद्दीन अत्यन्त प्रभावित था। तुर्क सुलतान कैकूबाद एवं कैमूर्स के अन्मूलन और फिरोज खिलजी के राज्यारोहण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मलिक छज्जु के विद्रोह का दमन करने के पारितोषिक स्वरूप फिरोज ने अलाउद्दीन को कड़ा–मानिकपुर का प्रांतपति नियुक्त किया। बाद में उसे अमीर–ए–तुजुक का पद भी सौपा गया। कड़ा में उसने वैसे खिलजी सरदारों और अन्य वैसे लोगो को अपने पक्ष में संगठित करना आरम्भ किया जो फिरोज की उदार और कमजोर नीतियों से क्षुब्ध थे। अलाउद्दीन खिलजी ने जलालुद्दीन फिरोज खिलजी के समय में दो मुख्य सैनिक अभियान किए।

जिस समय फिरोज खिलजी राजपूताना में व्यस्त था, उसकी अनुमति से अलाउद्दीन ने मालवा प्रदेश स्थित भिलसा पर 1293 ई0 में आक्रमण किया। यहां के मंदिरों में अपार संपत्ति जमा थी। अलाउद्दीन ने वह सारा संपत्ति लूट कर अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर ली। सुलतान ने अलाउद्दीन को आरिज–ए–ममालिक नियुक्त किया तथा उसे अवध की सूबेदारी भी सौपी गई। इससे अलाउद्दीन का प्रभाव और अधिक बढ़ गया। अलाउद्दीन का दूसरा सैनिक अभियान 1295 ई0 में देवगिरि के राजा रामचन्द्र देव पर हुआ। उसका मुख्य उद्देश्य वहां से भी धन लूट कर अपनी स्थिति सुदृढ़ करना था। इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार अलाउद्दीन को देवगिरि से करीब '6000 मन सोना' 7 मन मोटी, दो मन जवाहरात, लाल, याकूत, हीरे, पन्ने, 1000 मन चाँदी, 4000 रेशमी कपड़ो के थान, तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ" प्राप्त हुई। देवगिरि से प्राप्त धन अलाउद्दीन की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर दी। उसने अब फिरोज खिलजी का तख्ता पलटने का मंसूबा बना लिया। उलाउद्दीन ने घोखे से फिरोज की हत्या करवा दी और मानिकपुर में ही 19 जुलाई 1296 को अलाउद्दीन ने अपने आपको सुलतान घोषित कर लिया। उसने मुक्तहस्त से पदों एवं धन का वितरण कर सबको अपना पक्षधर बना लिया अब उसने दिल्ली पर अधिकार करने की योजना बनाई। उसने अपने विश्वासपात्रों को अमीर बनाया और पहले के अमीरों को मलिक के पद पर प्रोन्नत किया। प्रत्येक सैनिक को 300 टंके चाँदी के दिए गये। फलतः अलाउद्दीन की शक्ति काफी बढ़ गई। अब वह मानिकपुर से तेजी से दिल्ली की ओर बढ़ा। रास्ते में भी देवगिरि से लूटे गए धन का प्रदर्शन एवं वितरण करता हुआ एवं लोगों का समर्थन प्राप्त करता हुआ बदायूँ के निकट पहुंचा। जलालुद्दीन खिलजी का छोटा पुत्र रूकनुद्दीन इब्राहीम, जिसने स्वंय को सुलतान घोषित कर दिया था, ने अलालद्दीन का मार्ग रोकने की चेष्टा की, परन्तु असफल रहा। अधिकांश अमीर और सेनापति अलाउद्दीन से मिल गए। अलाउद्दीन, इस प्रकार बिना किसी के दिल्ली पहुँच गया, जहां 21 अक्टूबर 1296 ई0 को विधिवत उसका राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ।

3.4.2 अलाउद्दीन की गृह नीति

शासक बनने के पश्चात अलाउद्दीन ने गृह और विदेश नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। गृह सम्बन्धी उसके प्रमुख कार्य थे, सुलतान के पद की पुनः स्थापना के लिए राजत्व सम्बंधी सिद्धान्तों का निर्धारण, आंतरिक विद्रोहों का दमन, शक्तिशाली अमीरों पर नियंत्रण प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना, बाजार एवं मूल्यों पर नियंत्रण स्थापित करना। उलाउद्दीन के राज्यारोहण के समय जो विसम परिस्थिति थी। उसे ध्यान में रखते हुए भी सुलतान ने अपनी गृह नीति निश्चित की।

मध्यकालीन सुलतानों की तरह अलाउद्दीन भी सुलतान को सर्वशक्तिशाली, सर्वगुणसम्पन्न और निरंकुश शासक मानता था। वस्तुतः वह राज्य और सरकार में कोई भी विभेद नही करता था। राज्य के सारे अधिकार उसी के हाथों में सुरक्षित थे। वह सुलतान के ऊपर किसी का भी अस्तित्व स्वीकार करने को तैयार नही था। वह किसी की सलाह या अनुकम्पा पर निर्भर नही रहता था। अमीर खुसरों के अनुसार, "विश्व का सुलतान, पृथ्वी के शासकों का सुलतान; युग का विजेता और जनता का चरवाहा था" उसकी शक्ति पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नही था, यहां तक कि खलीफा और उलेमा का भी नही। उसका यह भी मानना था कि सुलतान का कोई सम्बंधी नही होता। उसके राज्य में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति या तो सुलतान का सेवक होता है अथवा उसकी प्रजा। राजत्व का यह नवीन सिद्धान्त समयानुकूल था, इसलिए जनता ने इसे तत्काल स्वीकार कर लिया। अलाउद्दीन बलबन की जातीय उच्चतावादी नीति त्याग दी और योग्यता के आधार पर नियुक्तियां की। उसने धार्मिक उद्देश्य का प्रमुखता नही दी बल्कि समयनुसार व्यवहारिक नीति अपनाई। फलस्वरूप, उसकी स्थिति सुदृढ़ हो गई और उसके समर्थकों की संख्या बढ़ गई।

3.4.3 आंतरिक विद्रोहों का दमन

अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए अलाउद्दीन ने अपने विरोधियों और विद्रोहियों का दमन किया। सबसे पहले उसने एक सेना मुल्तान भेजी, जिसने फिरोज खिलजी के पुत्रों–इब्राहीम एवं अर्कली खां और उनके सम्बंधियों की हत्या की एवं उनकी सम्पत्ति लूटी तथा अनेकों को गिरफ्तार कर पुनः दिल्ली का तख्त हथियाने का सपना भंग कर दिया। 1299 ई0 में दिल्ली के नव–मुसलमानों या मंगोलों का विद्रोह हुआ, जिसे कठोरतापूर्वक दबा दिया गया अनेक मंगोलों की हत्या कर दी गई। दूसरे विद्रोह के दौरान, सुलतान के भतीजे आकत खां ने अलाउद्दीन पर आक्रमण कर दिया। सुलतान को मृत समझकर उसने स्वंय अपने आपको नया सुलतान घोषित कर दिया; परन्तु अलाउद्दीन ने आकत खां एवं उसके साथियों का वध करवाकर एवं उनकी संपत्ति जब्त कर विद्रोह पर नियंत्रण किया। बदायूँ एवं अवध के सूबेदारों, मलिक उमर एवं मंगू खां के विद्रोह भी दबा दिए गए। 1301 ई0 में एक अन्य विद्रोह हुआ। इस विद्रोह का नेता हाजी मौला था। उसने इल्तुतमिश के एक वंशज को सुलतान घोषित कर दिया एवं उसका संरक्षक बन बैठा; परन्तु यह विद्रोह भी दबा दिया गया।

अलाउद्दीन ने विद्रोहों के उन्मूलन की स्थायी समाधान हेतु चार अध्यादेश जारी किया। उसके अनुसार धनी व्यक्तियों की सम्पत्ति छीन ली गई। उपहार में दी गई भूमि वापस ले ली गई। अनेक व्यक्तियों का पेंशन बन्द कर दी गई। करमुक्त भूमि पर पुनः कर लगा दी गई। आर्थिक तंगी के कारण अमीरों एवं सरदारों का विद्रोह की ओर से उनका ध्यान हट गया। दूसरे अध्यादेश के अनुसार एक संगठित गुप्तचर विभाग की स्थापना की गई। गुप्तचरों को राज्य के सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर नियुक्त किया गया। गुप्तचरों के भय से उदण्ड अमीर भी नियंत्रित हो गये। अलाउद्दीन का तीसरा कार्य था मध–निषेध को लागू करना। सुलतान ने स्वंय शराब पीना बन्द कर दिया और लोगों के पीने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। अलाउद्दीन ने अमीरों के परस्पर मेल–मिलाप, उनकी सामाजिक–गोष्ठियों एवं समारोहों पर प्रतिबन्ध लगा

दिया गया अमीरों पर कठोर पाबंदियां लगा दी गई। उनकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वंय सुलतान बना, अमीरों के पुत्रों को सुलतान का दास माना गया तथा अमीर सुलतान की पूर्वानुमति के बिना आपस में वैवाहिक सम्बन्ध कायम नहीं कर सकते थे। इन अध्यादेशों द्वारा सुलतान ने अपनी स्थिति सुदृढ़ की एवं विद्रोही प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाया।

3.4.4 अलाउद्दीन के सैनिक अभियान–विदेश नीति

अलाउद्दीन एक वीर एवं महत्वकांक्षी शासक था। वह समस्त भारत पर अपनी सत्ता स्थापित करना चाहता था। वस्तुतः, वह सिकन्दर के समान विश्वविजेता बनना चाहता था। उसने सुलतान बनने से पूर्व भी अनेक युद्ध किए थे। उसके राज्यारोहण के समय उत्तरी और दक्षिणी भारत में अनेक स्वतंत्र राज्य थे। इन राज्यों पर विजय प्राप्त करना उसकी बड़ी महत्वाकांक्षा थी, परन्तु उसने इसके लिए केवल सैनिक शक्ति का ही सहारा नही लिया। उसने अपने शत्रुओं को मित्र बनाने और उन्हें अपने राज्य में मिलाए बिना उनसे अपनी अधीनता स्वीकार करवाने की नीति का भी पालन किया। दक्षिण भारत में उसने इसी नीति को अपनाया।

3.4.5 अलाउद्दीन की पश्चिमोत्तर सीमानीति

अपना विजय अभियान आरम्भ करने के पूर्व सुलतान ने पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा की व्यवस्था की इस सीमा से मंगोलों का निरंतर आक्रमण हो रहा था। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए मंगोल आक्रमणकारियों पर नियंत्रण रखना आवश्यक था। इसलिए, सुलतान ने सर्वप्रथम सीमा की सुरक्षा की व्यवस्था की। सीमान्त–प्रदेश में पुराने दुर्गों की सरम्मत करवाई गई तथा अनेक नए दुर्गों का निमार्ण करवाया गया। महत्वपूर्ण स्थानों पर सैनिक छावनियां स्थापित की गई। सेना की संख्या बढ़ा दी गई एवं सैनिकों को उन्नत प्रकार के अस्त्र–शस्त्र दिए गए। मंगोलों की गतिविधियों पर निगरानी रखने के लिए गुप्तचर भी बहाल लिए गए सीमावर्ती क्षेत्रों का प्रशासन योग्य, अनुभवी और विश्वासपात्र सैनिक अधिकारियों को सुपुर्द्र कर दिया गया। इन कार्यों के परिणाम स्वरूप मंगोलों के आक्रमणों का सामना करने में अलाउद्दीन को सफलता मिली। अलाउद्दीन के राज्यकाल में मंगोलों ने अनेक बार आक्रमण किए, परन्तु उन्हे सदैव पराजित होकर पीछे हटना पड़ा।

3.4.6 राजपूतों से सम्बन्ध

अलाउद्दीन के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती थी राजपूत राज्यों पर विजय प्राप्त करने की। राजपूताना में अनेक स्वतंत्र राज्य थे, जो आपसी प्रतिस्पर्द्धा में संलग्न होने के बावजूद दिल्ली के सुलतान को खुली चुनौती दे रहे थे। वे अब भी तुर्कों को विदेशी मानते थे और उनसे भारत का स्वतंत्र कराने का सपना देख रहे थे। केन्द्रीय शक्ति के कमजोर पड़ते ही वे अपनी गतिविधियां तेज कर देते थे। इसलिए अलाउद्दीन ने इन राज्यों पर नियंत्रण स्थापित करने की योजना बनाई। उन्हे करद राज्य के रूप में सुलतान ने अपनी अधीनता स्वीकार करवाई जिन राजपूत–राज्यों से अलाउद्दीन का संघर्ष हुआ, उनमें गुजरात; रणथंभौर और मेवाड़ प्रमुख है।

3.4.7 गुजराज की विजय

सिंध और मुल्तान विजय के पश्चात अलाउद्दीन ने गुजरात–विजय की योजना बनाई। गुजराज बघेला राजपूतों द्वारा शासित एक समृद्ध और शक्तिशाली राज्य था। 1297 ई0 में अलाउद्दीन ने अपने योग्य सेनापतियों उलुग खां एवं नुसरत खां की अधीनता में एक सेना भेजी, जिसने राजधानी अणहिलवाड़ा का घेरा डाल दिया। गुजरात के शासक कर्ण सिंह ने सेना का मुकाबला करने के बजाय भागना ही उचित

समझा। खिलजी सेना ने राजधानी एवं अन्य प्रांत पर अधिकार कर इसे सल्तनत का एक प्रांत के रूप में सम्मलित कर लिया।

3.4.8 रणथंभौर पर अधिकार

गुजरात एवं जैसलमेर पर अधिकार करने क पश्चात अलाउद्दीन रणयंभौर की ओर ध्यान केन्द्रित किया। वहां चौहानवंशी राजा हम्मीरदेव का शासन था। रणयंभौर पर पहले तुर्की सुलतानों ने अपना अधिपत्य स्थापित किया था, परन्तु पुनः राजपूतों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली थी। अतः अलाउद्दीन इस पर अधिकार करना चाह रहा था। इसी उद्देश्य से उसने 1301 ई0 में गुजरात के विजयी सेनानायक, उलुग खां एवं नुसरत खां को रणथंभौर पर आक्रमण करने को भेजा। राजा हम्मीरदेव ने आक्रमणकारियों का वीरता से सामना किया एवं उन्हे घेरा उठाने को बाध्य किया। इसी मध्य नुसरत खां की मृत्यु हो गई और उलुग खां भी दुर्ग पर अधिकार नही कर सका। अब स्वंय अलाउद्दीन वहां जा पहुँचां। जब लम्बे समय तक दुर्ग का घेरा डाले रहने के बावजूद सुलतान इस पर अधिकार नही कर सका तब उसने राजा हम्मीरदेव के मंत्री रणमल को अपने पक्ष में मिलाकर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। राजा सहित अनेक राजपूतों ने युद्ध में वीरगति प्राप्त की। स्त्रियों ने जौहरव्रत द्वारा अपने सम्मान की रक्षा की। रणथंभौर पर अधिकार कर सुलतान ने उलुग खां को वहां का शासक बहाल किया।

3.4.9 मेवाड़ पर आक्रमण

रणथंभौर के पश्चात मेवाड़ सुलतान की साम्राज्यवादी नीति का शिकार बना। मेवाड़ में गुहिलौत राजपूतों का शासन था। राजपूतों के राज्यों में मेवाड़ की विशिष्ट स्थिति थी अलाउद्दीन द्वारा मेवाड़ पर आक्रमण करने के कई कारण बताए जाते हैं। कहा जाता है कि अलाउद्दीन मेवाड़ के राणा रतन सिंह के अनुपम सुन्दरी पदमिनि को प्राप्त करना चाहता था एवं इसी उद्देश्य से उसने चितौड़ (मेवाड़) पर आक्रमण किया। अनेक इतिहासकार इसे कपोल–कल्पनामात्र मानते है। संभवतः अलाउद्दीन ने मेवाड़ पर इसलिए आक्रमण किया क्योंकि इस पर अभी तक किसी ने आक्रमण करने का साहस नही किया था और अलाउद्दीन इस राज्य पर अपनी सर्वश्रेष्ठता कायम करना चाहता था। 1303 ई0 में अलाउद्दीन ने चितौड़ पर आक्रमण कर अपना अधिकार स्थापित किया। खिज्र खां चितौड़ का शासक नियुक्त ह ुआ। चितौड़ का नाम बदलकर खिज्राबार रखा दिया गया; परन्तु अलाउद्दीन का चितौड़ पर स्थाई अधिकार नही हो सका। 1311 ई0 में खिज्र खां को राजपूतों के विरोध के कारण चितौड़ छोड़ना पड़ा और मालदेव नामक राजपूत सरदार को अलाउद्दीन ने वहां अपना प्रतिनिध शासक बहाल किया।

3.4.10 मालवा एवं अन्य राज्यों की विजय

राजपूताना के पश्चात आलउद्दीन ने मालवा पर आक्रमण किया। इसी समय मांडू, उज्जैन, धार एवं चंदेरी पर भी सुलतान की सेना ने विजय प्राप्त की। अलाउद्दीन ने 1308 में मारवाड़ के परमार राजा शीतलदेव को भी पराजित कर उससे अपनी अधीनता स्वीकार करवाई। मारवाड़ के कुछ प्रदेशों को दिल्ली के अमीरों को प्रदान किया गया जबकि सिवान के दुर्ग को शीतलदेव के उत्तराधिकार को सौंपा गया।

3.4.11 जालौर की विजय

1305 ई0 में जालौर के शासक कनेरदेव ने अलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार कर लिया था। किन्तु धीरे–धीरे वह आन्तरिक प्रशासन में स्वतंत्र हो गया। और सुलतान के प्रति श्रद्धा–भाव व्यक्त करना उसने कम कर दिया। अतः शीघ्र 1311 ई0 में अलाउद्दीन ने उसकी विद्रोही प्रवृत्ति के दमनार्थ जालौर पर आक्रमण किया। यद्यपि प्रारंभिक युद्धों में कनेर देव की सेना ने खिलजी सेना को परास्त किया, किन्तु अंत में कूटनीति का सहारा लेकर अलाउद्दीन ने राजा के भाई मालदेव को अपने पक्ष में मिला लिया तथा कनेर

देव को परास्त कद दिया। युद्ध में अपने अन्य सगे–सम्बंधियों तथा सहयोगियों के साथ कनेर देव वीरगति को प्राप्त हुआ। अब जालौर भी दिल्ली सल्तनत का एक अंग बन गया।

इस प्रकार 1311 ई0 तक केवल नेपाल, कश्मीर और असम को छोड़कर लगभग समस्त भारत पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया और सुलतान की साम्राज्यवादी नीति और अधिक सृदृढ़ एवं प्रसारवादी हो गई। सल्तनत की सीमा इतनी अधिक विस्तृत पहले कभी नही थी। उत्तर भारत की विजयों से मुक्त तथा प्रोत्साहित होकर अलाउद्दीन ने अब दक्षिण भारत में मुस्लिम सत्ता के विस्तार हेतु प्रयत्न शुरू किए।

3.4.12 दक्षिण की विजय

उत्तरी भारत के अतिरिक्त दक्षिणी भारत में भी अलाउद्दीन ने सैनिक अभियान किए। दक्षिण के राज्यों पर विजय प्राप्त करना सहज नही था, फिर भी अलाउद्दीन ने दक्षिण विजय की योजना बनाई। दक्षिण पर अधिकार कर वह अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा करना तो चाहता ही था, साथ ही वहां से धन भी प्राप्त करना चाहता था। दक्षिण में इस समय चार प्रमुख राज्य थे–देवगिरी, तेलंगाना, होयसल और पांड्य–राज्य। दक्षिणी राज्यों के प्रति अलाउद्दीन ने एक निश्चित नीति निर्धारित की। वह इन राज्यों को अपने साम्राज्य में मिलाना नही चाहता था; इसलिए इन राज्यों से अपनी अधीनता स्वीकार करवाकर ही वह संतुष्ट हो गया। फलस्वरूप वह उन कठिनाइयों से बच गया, जिनका सामना मुहम्मद–बिन–तुगलक को दक्षिण में सल्तनत की विस्तारवादी नीति के परिणामस्वरूप करना पड़ा।

3.4.12:1 देवगिरि

अलाउद्दीन ने सुलतान बनने के पूर्व ही देवगिरी के रामचन्द्र देव को पराजित कर उससे अपनी अधीनता कबूल करवाई थी; परन्तु कुछ समय पश्चात उसने सुलतान को वार्षिक कर देना बन्द कर दिया था। इसलिए, अलाउद्दीन उससे क्रुद्ध था। उसने गुजरात के राजा कर्ण देव एवं उसकी पुत्री देवल रानी को भी शरण दे रखी थी। अतः अलाउद्दीन ने रामचन्द्र देव को सबक सिखाने की ठान ली। 1306–07 ई0 में एक विशाल सेना मलिक काफूर एवं अलप खां के नेतृत्व में देवगिरि पर आक्रमण करने के लिए भेजी गई। इस सेना ने रामचन्द्र को पराजित कर दिया यद्यपि देवल रानी का विवाह दिल्ली लेजाकर अलाउद्दीन का बेटा खिज्र खां के साथ कर दिया गया, तथापि रामचन्द्र के साथ अलाउद्दीन ने सम्मानपूर्वक व्यवहार किया। रामचन्द्र कई महीनों तक दिल्ली में अपने परिवार के साथ रहा, जहां उसे राजसी सुविधाएं प्रदान की गई। उसे 'रायरायान' की पदवी दी गई एवं एक चंदोबा भेंट किया गया। रामचन्द्र ने सुलतान की अधीनता स्वीकार कर ली एवं वार्षिक कर देना स्वीकार किया। वह जीवनपर्यतं सुलतान का मित्र बना रहा। जब मलिक काफूर द्वारसमुद्र की विजय के लिए जा रहा था, तब रामचन्द्र ने उसे अनेक सहूलियत प्रदान की।

रामचन्द्र की मृत्यु के पश्चात अलाउद्दीन को पुनः देवगिरि पर आक्रमण करना पड़ा। इसका कारण यह था कि रामचन्द्र के पश्चात उसके पुत्र एवं नए शासक शंकर देव ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर वार्षिक कर देना बन्द कर दिया था। अतः 1313 ई0 में मलिक काफूर ने पुनः देवगिरि पर आक्रमण किया। शंकरदेव युद्ध में मारा गया। खिलजी सेना ने गुलबर्गा, चौल, और अन्य स्थानों पर अधिकार कर लिया नए राजा हरपाल देव ने सुलतान की अधीनता स्वीकार कर ली।

3.4.12:2 तेलंगाना

तेलंगाना में अलाउद्दीन के समय काकतीयवंशी राजा प्रताप रूद्रदेव शासन कर रहे थे। वह एक वीर एवं पराक्रमी शासक थे। उसकी राजधानी वारंगल थी। उसने विपक्षियों के वारंगल पर अधिकार करने के आरम्भिक अभियानों को विफल कर दिया, परन्तु 1308–09 ई0 में मलिक काफूर ने उसे पराजित कर सुलतान की अधीनता स्वीकार करने को बाध्य किया। प्रतापरूद्र देव ने वहुत अधिक धन सुलतान को भेंट

के रूप में दिया। बरनी के अनुसार मलिक काफूर को राय से एक सौ हाथी, सात हजार घोड़े, और अनेक मूल्यवान वस्तुएं मिली तथा भविष्य में भी उतना ही धन कर के रूप में देने का आश्वासन भी। सम्भवतः मलिक काफूर को कोहेनूर हीरा भी यही से मिला।

3.4.12:3 होयसल

दक्षिण का एक अन्य प्रसिद्ध राज्य होयसलों का था। उसकी राजधानी द्वारसमुद्र में स्थित थी। वहां का राजा बल्लाल तृतीय बहुत ही वीर एवं साहसी था। 1311 ई0 में जब मलिक काफूर ने उसकी राजधानी द्वारसमुद्र पर आक्रमण किया, तब बल्लाल तृतीय ने वीरतापूर्वक खिलजी सेना का सामना किया, परन्तु मलिक काफूर के समक्ष वह नहीं टिक सका। उसने सुलतान की अधीनता स्वीकार कर ली। वह कुछ दिनों तक दिल्ली दरबार में भी रहा। उसकी मित्रता एवं स्वामीभक्ति से प्रभावित होकर अलाउद्दीन ने उसे उसका राज्य वापस कर दिया, उसे सम्मानित किया एवं बहुमूल्य तोहफे दिए।

3.4.12:4 माबर की विजय

दक्षिण में मलिक काफूर ने माबर (मदुरा) या पांड्य–राज्य पर भी प्राप्त की। गृह युद्ध के कारण पांड्यों की शक्ति क्षीण पड़ गई थी। उत्तराधिकार के लिए सुन्दर पांड्य और वीर पांड्य में संघर्ष चल रहा था। सुन्दर पांड्य ने अलाउद्दीन से सहायता मांगी। सुलतान ने मलिक काफूर को मदुरा पर आक्रमण करने का निर्देश दिया। अतः काफूर ने राजधानी मदुरा पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि काफूर का मदुरा पर स्थायी रूप से अधिकार नही हो सका, तथापि मदुरा की लूट से उसे बहुत अधिक संपत्ति हाथ लगी। मलिक काफूर मदुरा से असंख्य हाथी, घोड़े, हीरे, जवाहरात, लेकर दिल्ली लौटा। यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से माबर का विजय महत्वहीन थी तथापि आर्थिक दृष्टि से इसका महत्व बहुत अधिक था।

3.4.13 अलाउद्दीन का साम्राज्य

अलाउद्दीन ने अपने अभियानों एवं विजयों के द्वारा एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर ली। दक्षिण के राज्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करके उसने समस्त भारत को कम–से कम एक राजनीतिक सूत्र में बांधा। अबतक किसी भी मुस्लिम शासक ने इतना विशाल साम्राज्य स्थापित नही किया था। पश्चिमोत्तर दिशा में सिन्धु नदी उसके साम्राज्य की सीमा थी और पंजाब तथा सिन्ध उसके साम्राज्य में मम्मिलित थे। अधिकांश राजपूताना और मध्यप्रदेश पर भी उसका नियंत्रण था। गुजरात उसके साम्राज्य का एक प्रांत था। दक्षिण में उसका राज्य मदुरा तक विस्तृत था। पूर्व में यह साम्राज्य वाराणसी आौर अवध तक था।

3.4.14 अलाउद्दीन का पश्चिमोत्तर सीमांत एवं मंगोल नीति

यद्यपि अलाउद्दीन के समान भारत वर्ष में अन्य विजेता भी हुए, किन्तु उसकी विजय का महत्व इस बात के चलते और अधिक बढ़ जाता है कि उसने मंगोल आक्रमणों से त्रस्त काल में मंगोलों का सफलतापूर्वक सामना करते हुए विजय–अभियान किये। बलबन की अपेक्षा अलाउद्दीन के शासनकाल में मंगोलों की समस्या और अधिक जटिल हो गई थी। अलाउद्दीन इसलिए प्रशंसा का पात्र है कि उसने और अच्छे ढंग से मंगोलों के आक्रमणों को विफल किया और पश्चिमोत्तर सीमा क्षेत्र को सुदृढ़ किया। इल्तुतमिश के शासनकाल से मंगोलों के आक्रमण शुरू हुए और अलाउद्दीन के शासनकाल में और अधिक तिव्रता एवं भयावहता आई। इसकाल में मंगोल आक्रमण के उद्देश्य में भी परिवर्तन आ गया। अलाउद्दीन के पूर्व मंगोल आक्रमणों का उद्देश्य था लूट–पाट परन्तु अब मंगोलों ने सीमान्त क्षेत्र पर आक्रमण करने की अपेक्षा सीधे दिल्ली पर आक्रमण करने और उस पर अधिकार करने की नीति अपनाई।

अलाउद्दीन ने दिल्ली साम्राज्य की मंगोलों से रक्षा के लिए बलबन द्वारा अपनाया गया नीति का पालन किया। उसने सीमान्त क्षेत्र में नये दुर्गों का निमार्ण करवाया तथा पुराने दुर्गों का जीर्णोद्धार किया।

मंगोल आक्रमण के मार्ग में दुर्गों की एक श्रृंखला स्थापित कर दी गई। सेना की संख्या में वृद्धि कर, नये अस्त्र–शस्त्रों से सैनिकों को सुसज्जित शक्तिशाली बनाया गया। इस क्षेत्र में यातायात की समुचित व्यवस्था की गई तथा राजमार्गों का समुन्नत बनाया गया। इस क्षेत्र में गुप्तचरों का जाल बिछा दिया गया ताकि मंगोल गतिविधियों की सूचना समय पर मिल सके। अलाउद्दीन ने मंगोलों के प्रति नृशंसता तथा बर्बर दमन की नीति अपनाई। जफर खां, उलुग खां, अल्प खां, गाजी मलिक, मलिक काफूर आदि खिलजी सेनापति ने अपनी बर्बता, नृशंसता, और क्रूरता से मंगोलों के दिल में भय उत्पन्न कर दिया। जब मंगोल घोड़े पानी नही पीते थे।, तब वे कहते थे, "क्या तूने जफर खां का मुँह देख लिया ?" ।

3.4.15 अलाउद्दीन की दक्षिण विजय का महत्व एवं प्रभाव

अलाउद्दीन पहला मुस्लिम शासक था जिसने दक्षिण विजय का प्रयास किया और सफल भी रहा। सर्वप्रथम 1296 ई0 में धन प्राप्ति के उद्देश्य से ही उसने देवगिरि पर आक्रमण किया था। उसने अनुभव किया कि जितनी सुविधा के साथ दक्षिण के राज्यों से धन मिलना सम्भव था उतना अन्यत्र कहीं से भी नहीं। वस्तुतः दक्षिण के सारे राज्य अत्यन्त समृद्ध और धनवान थे। दक्षिण के मंदिर भी सदियों से धन बटोर रहे थे। सुलतान इस तमाम एकत्रित सम्पत्ति का अपहरण करना चाहता था। इसके अतिरिक्त दक्षिण के राज्यों की राजनीतिक दुर्बलताओं और आपसी फूट ने भी सुलतान को दक्षिण पर आक्रमण करने को प्रेरित किया। इस प्रकार 1307 से 1313 ई0 के बीच अलाउद्दीन ने चार बार मलिक काफूर को दक्षिण विजय के लिए भेजा।

अलाउद्दीन की दक्षिण विजय का स्वरूप प्राचीन भारतीय सम्राटों के दिग्विजय के समान था। वह दक्षिण के राज्यों को जीतकर दिल्ली सल्तनत में मिला लेने की अथवा दक्षिण की जनता पर प्रत्यक्ष रूप से शासन करने की इच्छा नही रखता था। ऐसा सोचकर सुलतान ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। वस्तुतः दक्षिण की भौगोलिक स्थिति, यातायात के साधनों का अभाव, दिल्ली से दक्षिण की दूरी, ये सारी समस्याएँ इतनी जटिल थी कि इनके रहते दिल्ली से दक्षिण पर प्रत्यक्ष रूप से शासन करना अगर असंभव नही तो कठिन अवश्य था। सुलतान की एकमात्र इच्छा थी कि दक्षिण के राज्य उसकी अधीनता स्वीकार कर लें और नियमित रूप से उसे निर्धारित कर देते है।

अलाउद्दीन की दक्षिण विजय से भारत में काफी धन आगया और राजकोष इतना समृद्ध हो गया कि उसके उत्तराधिकारियों को भी कभी आर्थिक संकट का सामना नही करना पड़ा। इस धन से सुलतान ने अपनी निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता को सुदृढ़ बनाया तथा अनेकानेक योजनाओं को सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया। सुलतान की सफलता, प्रतिष्ठा तथा गौरव में दक्षिण की सम्पदा का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। दक्षिण के प्रायः सभी शासकों ने अलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार कर ली और उसे वार्षिक कर देने का आश्वासन दिया। दक्षिण में अशांति और विद्रोह की सम्भवना से निश्चिन्त होकर सुलतान ने उत्तर में दृढ़तापूर्वक अपनी राजसत्ता और सार्वभौमिकता का प्रतिष्ठित किया।

अलाउद्दीन की दक्षिण की सफलता शक्ति एवं कठोरता पर आधारित थी। मलिक काफूर ने दक्षिण में सैनिक आतंक, निर्मम हत्या, लूटपाट आदि के द्वारा दक्षिण के राज्यों में भय का संचार किया था और उन्हें सुलतान की अधीनता स्वीकार करने तथा वार्षिक कर देने को बाध्य किया था। सल्तनत की जड़ और सुलतान की पकड़ स्थाई एवं दृढ़ नही हो पाई। यही कारण है कि बाद में मुबारक खिलजी और मुहम्मद–बिन–तुगलक को नए सिरे से दक्षिण को विजय करनी पड़ी।

3.4.16 अलाउद्दीन का मूल्यांकन

निसंदेह खिलजी–वंश के शासकों में अलाउद्दीन सबसे महान एवं प्रतापी शासक था। वह केवल खिलजी वंश का ही नही; बल्कि दिल्ली के सुलतानों में योग्यतम शासक था। यद्यपि वह धोखे एवं मक्कारी से राज्य प्राप्त किया था, तथापि अपनी कुशलता एवं दृढ़ इच्छाशक्ति के सहारे उसने सल्तनत की आधारशिला

मजबूत की। अपने बाहुबल से उसने साम्राज्य की सीमा का विस्तार कियझं उसमें प्रशासनिक गुण भी भरे हुए थे। यद्यपि उसको प्रशासनात्मक कार्यों में दक्षता नही थी, तथापि उसने सल्तनत को ठोस प्रशासनिक व्यवस्था प्रदान की। वह दिल्ली का पहला सुलतान था, जिसने आर्थिक सुधारों में दिलचस्पी ली। एक निरंकुश एवं सर्वशक्तिशाली शासक होते हुए भी वह प्रजा पर अत्याचार नहीं करता था। उसने सुलतान की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की तथा राजनीति को धर्म से अलग कर दिया। यह सुलतान की बहुत बड़ी उपलब्धि थी। वह साहित्य एव विद्वानों का भी संरक्षक था। उसके समय का सबसे महान कवि अमीर खुसरो हैं। यद्यपि अलाउद्दीन के सुधार उसी के साथ समाप्त हो गये तथापि, जैसा कि बरनी बताता है कि इससे उसकी महत्त्ता कम नही हो जाती। डा0 आर्शिवादी लाल श्रीवास्तव उसे "प्रथम तुर्की सम्राट" मानते हैं। एक अन्य इतिहासकार, इलीफेस्टन के अनुसार, "उसका शासनकाल बड़ा ही शानदार था। अनेक अनियमितताओं और मूर्खताओं के होते हुए भी वह एक सफल शासक था तथा उसने अपनी शक्ति का उचित प्रयोग किया था, प्रो0 के0एस0 लाल के शब्दों में, "वह एक निम्न अवस्था से उठकर मध्यकालीन युग का महान शासक बना। एक शक्तिशाली तथा सुव्यवास्थित सेना की सहायता से उसने न केवल देश के छोटे–छोटे शासकों को अपना अधीनस्थ बनाया, वरन् आंतरिक विद्रोहों को भी सदैव के लिए समाप्त कर दिया। व्यवस्थित आर्थिक नियमों के द्वारा उसने बाजार के चढ़ते–उतरते भाव पर नियंत्रण किया तथा योग्य प्रशासकीय नियमों की सहायता से लगभग 20 वर्षो तक उसने बड़ी दक्षता एवं नितकुशलता से राज्य किया।

3.5 शहाबुद्दीन उमर (1316)

अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद, दक्षिण के विजेता और अलाउद्दीन के विश्वासपात्र मलिक काफूर की सहायता से अल्पव्यस्क शहाबुद्दीन उमर दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसका राज्यारोहण एक षड़यंत्र का परिणाम था, जिसका नेतृत्व स्वंय मलिक काफूर ने किया। 1314 ई0 में वृद्ध सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की बीमारी का समाचार पाकर वह देवगिरि से दिल्ली चला गया। दिल्ली आते ही उसके राजनीतिक मनसूबे बढ़ गए। उसने पहले सुलतान पर प्रभाव डालकर विद्रोहियों को अपने मार्ग से हटवाया। उसके प्रभाव में आकर अलाउद्दीन ने खिज्र खां को राजगद्दी से वंचित कर दिया एवं शहाबुद्दीन उमर को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया तत्पश्चात उसने वृद्ध सुलतान को भी जहर देकर मार डाला। उसकी मृत्यु के पश्चात जनवरी, 1316 ई0 में उमर नया सुलतान बना तथा मलिक काफूर उसका संरक्षक। मलिक काफूर ने खिज्र खां और शादी खां अंधा कर ग्वालियर के किले में कैद कर दिया। अलाउद्दीन के तीसरे पुत्र मुबारक खां को भी गिरफ्तार कर लिया गया। अपने विरूद्ध बढ़ते असंतोष से घबराकर मलिक काफूर ने मुबारक खां को भी अंधा बनाने की योजना बनाई। उसने अपने सैनिकों को मुबारक खां की ऑखें फोड़ने के लिए भेजा; परन्तु उसने इन सैनिकों को अपने पक्ष में मिलाकर मलिक काफूर की हत्या करवा दी। मलिक काफूर की हत्या के पश्चात अलाउद्दीन के विश्वासपात्रों ने मुबारक खां को ही अल्पव्यस्क सुलतान का संरक्षक नियुक्त किया।

3.6 कुतुबुद्दीन मुबारक शाह (1316–1320)

मुबारक खां लगभग दो महिनों तक शहाबुद्दीन उमर का संरक्षक बना रहा। इस अवधि में उसने खिलजी अमीरों का विश्वास प्राप्त किया एवं अपनी स्थिति सुदृढ़ की। अ बवह स्वंय सुलतान बनने की योजना बनाने लगा। उसने अपने प्रभाव का उपयोग कर उमर को गद्दी से उतारकर गिरफ्तार कर लिया। उमर ग्वालियर भेज दिया गया, जहां बाद में उसे अंधा बना दिया गया। 1316 ई0 में स्वंय मुबारक खां कुतुबुद्दीन मुबारक शाह सल्तनत का मालिक बन बैठा।

कुतुबुद्दीन मुबारकशाह ने राज्य में शांति–व्यवस्था स्थापित करने और अपनी लोकप्रियता बढ़ाने का प्रयास किया। उसके उदार नीति अपनाने के कारण प्रशासनिक व्यवस्था ढीली पड़ गई। सुलतान का भय

और आतंक समाप्त हो गया। सुलतान के विरूद्ध पुनः षड़यंत्र आरम्भ हो गए। सबसे पहला विद्रोह गुजरात में 1316 में हुआ। मुबारकशाह ने गुजरात के विद्रोह को दबाने के लिए एक सेना भेजी, जिसने विद्रोहियों पर काबू पा लिया। सुलतान ने अपने श्वसुर–जफर खां को वहां का सूबेदार बहाल किया। इसके बाद भी वहां पूर्णशांति स्थापित नही हो सकी। जफर खां की भी हत्या हो गई। उसके पश्चात क्रमशः हिसामुद्दीन और वहीदुद्दीन कुरैशी गुजरात के प्रांतपति बनाए गए। गुजरात के अतिरिक्त देवगिरि में भी विद्रोह हुआ। वहां के शासक हरपाल देव ने अपनी स्वंतंत्रता की घोषणा कर दी। 1319 ई0 में सुलतान ने हरपालदेव को युद्ध में पराजित कर हत्या कर दी। देवगिरि के पश्चात खुसरो को तेलंगाना की ओर भेजा गया, जहां से उसने बहुत अधिक धन प्राप्त किया। राजस्थान के राजपूत–शासकों पर अपना प्रभाव बनाए रखने के लिए सुलतान ने वहां सेना बहाल की। इस प्रकार, मुबारक शाह कुछ सीमा तक साम्राज्य पर अपना प्रभाव जमाए रखने में सफल हुआ।

3.7 नासिरूद्दीन खुसरों खां (अप्रैल–सितम्बर–1320)

मुबारक खिलजी के शासककाल में सर्वत्र असंतोष एवं अशांति फैलती जा रही थी, तो दूसरी ओर खुसरो का सुलतान पर प्रभाव बढ़ता जा रहा था, जो उससे अनुचित कार्य कारवाया था। संपूर्ण राजमहल पर उसका नियंत्रण स्थापित हो गया। 4 अप्रैल, 1320 की राात्रि में खुसरो ने अपने सैनिकों के साथ राजमहल में प्रवेश कर सुलतान की हत्या कर दी तथा स्वंय सुलतान बन गया। सुसरो खां ने अपने जाति–बटवारियों के सहयोग एवं षड़यंत्र से खिलजियों का अंत कर अपना शासन प्रारम्भ किया था परन्तु उनमें प्रशासनिक क्षमता का अभाव था। बरनी के अनुसार, "बटवारियों ने मुसलमान स्त्रियों से विवाह कर लिया तथा अमीरों की सम्पत्ति लूट ली। महल में मूर्ति पूजा आरम्भ हो गई। इसलिए खुसरो खां के विरूद्ध प्रतिक्रिया हुई"। खुसरों खां के विरूद्ध विद्रोह का नेतृत्व दीपालपुर के प्रांतपति गाजी मलिक तुगलक ने किया। गाजी मलिक ने युद्ध में खसरो को पराजित कर मार डाला और स्वंय गद्दी पर बैठ गया। इस प्रकार खिलजियों का शासन समाप्त हुआ और तुगलकों का शासन प्रारम्भ हुआ।

3.8 सारांश

जलालुद्दीन खिलजी ने जिस राजवंश की स्थापना की थी वह मात्र 30 वर्षों में ही समाप्त हो गई। इस वंश के शासन काल में विशेषकर अलाउद्दीन खिलजी के समय में दिल्ली सल्तनत का काफी विस्तार हुआ। अब सुलतान का साम्राज्य सदूर दक्षिण तक फैल गया। यह पहला अवसर था जब दिल्ली सल्तनत के अधीन इतना विशाल साम्राज्य स्थापित हुआ। निश्चित से अलाउद्दीन के साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी नीति ने एक विशाल साम्राज्य बनाने में अहम भूमिका निभाई। इस विस्तारवादी नीति एवं सैनिक क्षमता के कारण मंगोल आक्रमण पर अंकुश लगाया जा सका। निरंतर मंगोल आक्रमण से साम्राज्य की रक्षा एक बड़ी चुनौती थी और खिलजियों ने इसे बखूबी निभाया। साम्राज्य विस्तार के साथ साथ अलाउद्दीन ने आर्थिक सुधार एवं राजस्व नीति के बढ़ावा दिया जिससे दिल्ली सल्तनत सुदृढ़ और सम्पन्न हो गया।

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

– जलालुद्दीन फिरोज खिलजी के राजनीतिक उत्कर्ष की विवेचना कीजिये।
– जलालुद्दीन फिरोज खिलजी के विरूद्ध विद्रोहों का वर्णन कीजिये।
– अलाउद्दीन खिलजी के जीवन एवं उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिये।
– अलाउद्दीन की गृह नीति का परीक्षण कीजिये।
– खिलजियों के समय दिल्ली सल्तनत का विस्तार का विश्लेषण कीजिये।
– अलाउद्दीन खिलजी के दक्षिण अभियान पर एक लेख लिखिये।

– अलाउद्दीन खिलजी साम्राज्य निर्माता के साथ–साथ आर्थिक सुधारक भी था विश्लेषण कीजिये।

– कुतुबुद्दीन मुबारक शाह पर एक टिप्पणी लिखिये।

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1 बिपिन बिहारी सिन्हा – मध्यकालीन भारत

2 जे0एल0 मेहता – मध्यकालीन भारत का वृहत् इतिहास–खण्ड–1

3 सतीश चन्द्र – मध्यकालीन भारत

4 एल0पी0 शर्मा – मध्यकालीन भारत

5 हरिश चन्द्र वर्मा – मध्यकालीन भारत

6 आर्शिवादी लाल श्रीवास्तव – भारत का इतिहास (1000–1707)

7 कामेश्वर प्रसाद – भारत का इतिहास

दिल्ली सल्तनत की पराकाष्ठा : तुगलक वंश

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 गियासुद्दीन तुगलक़

1.3.1 गाज़ी मलिक अर्थात् गियासुद्दीन तुगलक़ का दिल्ली के सुल्तानों की सेवा में प्रवेश

1.3.2 गियासुद्दीन तुगलक़ का सुल्तान के रूप में राज्यारोहण

1.3.3 सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक़ द्वारा सल्तनत में व्याप्त राजनीतिक अस्थिरता को समाप्त कर शान्ति एवं व्यवस्था की स्थापना तथा साम्राज्य-विस्तार

1.3.4 एक शासक के रूप में गियासुद्दीन तुगलक़ का आकलन

1.4 सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक़

1.4.1 मुहम्मद बिन तुगलक़ के राज्यारोहण के समय दिल्ली सल्तनत की स्थिति और उसकी उसकी व्यक्तिगत योग्यता

1.4.2 मुहम्मद बिन तुगलक़ की अव्यावहारिक योजनाएं

1.4.2.1 दोआब में कर-वृद्धि

1.4.2.2 कृषि-सुधार की योजना

1.4.2.3 राजधानी-परिवर्तन

1.4.2.4 सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन

1.4.2.5 खुरासान तथा कराचिल विजय हेतु अभियान

1.4.3 मुहम्मद बिन तुगलक़ के शासनकाल में विद्रोह

1.4.4 मुहम्मद बिन तुगलक़ का शासक के रूप में आकलन

1.5 फ़िरोज़ शाह तुगलक़

1.5. 1 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ को विरासत में मिला साम्राज्य

1.5.2 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ के सैनिक अभियान

1.5.3 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ का राजस्व प्रशासन

1.5.4 महान भवन एवं नगर-निर्माता

1.5.5 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ के जन-कल्याणकारी कार्य

1.5.6 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ द्वारा दिल्ली सल्तनत को कमज़ोर बनाने वाले कार्य

1.6 तैमूर का भारत-आक्रमण

1.6.1 तैमूर के भारत-आक्रमण के कारण तथा उसके उद्देश्य

1.6.2 तैमूर का भारत-आक्रमण

1.6.3 तैमूर के आक्रमण के परिणाम

1.6.3.1 दिल्ली की लूट और क़त्ल-ए-आम

1.6.3.2 दिल्ली सल्तनत का विघटन

1.6.3.3 हिन्दू शक्तियों का उदय

1.7 तुगलक़ राज्यवंश का पतन
1.8 सारांश
1.9 पारिभाषिक शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

साम्राज्य-विस्तार की दृष्टि से तुगलक़ साम्राज्य, दिल्ली सल्तनत के इतिहास में सबसे विशाल था और विडम्बना यह है कि इसी तुगलक़ राज्यवंश के एक सुल्तान के काल में दिल्ली सल्तनत – दिल्ली से पालम तक सिमट गयी थी अर्थात् केवल साम्राज्य-विस्तार की दृष्टि से तुगलक़ काल दिल्ली सल्तनत की पराकाष्ठा नहीं थी, अपितु साम्राज्य के सिकुड़ने की दृष्टि से और राजनीतिक -सैनिक ह्रास की दृष्टि से भी यह दिल्ली सल्तनत की पराकाष्ठा थी. दिल्ली सल्तनत के इतिहास में मुहम्मद बिन तुगलक़ से अधिक विद्वान, उदार विचारक और प्रतिभा का धनी कोई और सुल्तान नहीं हुआ किन्तु इस अभूतपूर्व प्रतिभा का सदुपयोग न करके अपनी अव्यावहारिक योजनाओं से उसने दिल्ली सल्तनत की शक्ति का जिस प्रकार ह्रास किया उसे इतिहास में अव्यावहारिकता की पराकाष्ठा कहा जा सकता है.इसी काल में उत्तर-पश्चिम से दिल्ली सल्तनत पूर्णतया असुरक्षित हो गयी थी. इसी राज्यवंश के पतन के तुरंत बाद पंजाब, तैमूर के साम्राज्य का अंग बन गया था जिसके कि आधार पर तैमूर के वंशज, बाबर ने इब्राहीम लोदी से पंजाब को अपने अधिकार में दिए जाने की मांग की थी.

तुगलक़ राज्यवंश साम्राज्य-विस्तार की दृष्टि से तो दिल्ली सल्तनत की पराकाष्ठा का द्योतक था ही किन्तु इसके साथ ही यह राज्यवंश दिल्ली सल्तनत के राजनीतिक पराभव की भी पराकाष्ठा था. यही वह राज्यवंश था जिसमें कि एक ही समय में दो सुल्तान – एक दिल्ली में और दूसरा आठ मील दूर पालम में तख़्त-नशीन थे. यही वह राज्यवंश जिसके समय में सूबेदारों और अमीरों के सबसे अधिक विद्रोह हुए और सबसे अधिक स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ था अर्थात् दिल्ली सल्तनत के इतिहास में तुगलक़ राज्यवंश, साम्राज्य-विघटन की दृष्टि से भी पराकाष्ठा का युग था.

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य – दिल्ली सल्तनत के इतिहास में तुगलक़कालीन साम्राज्य-विस्तार की पराकाष्ठा और साथ ही साम्राज्य-विघटन की पराकाष्ठा से आपको अवगत कराना है. इसके साथ ही साथ आपको तुगलक़ राज्यवंश के तीन प्रमुख शासकों की प्रमुख उपलब्धियों तथा उनकी असफलताओं की भी आपको जांनकारी उपलब्ध करानी है. इस इकाई में तैमूर के आक्रमण के बाद दिल्ली सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया से और फिर तुगलक़ राज्यवंश के पतन के बाद सैयद राज्यवंश के उदय से भी आपको परिचित करना है. इस इकाई का अध्ययन कर आप –

1. खिलजी राज्यवंश के पतन के बाद गाज़ी मलिक द्वारा गियासुद्दीन तुगलक़ के रूप में तुगलक़ राज्यवंश की स्थापना की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
2. एक शासक के रूप में गियासुद्दीन तुगलक़ की उपलब्धियों से तथा उसकी दुखद मृत्यु के कारणों से अवगत हो सकेंगे.

3. मुहम्मद बिन तुगलक़ की अव्यावहारिक योजनाओं से दिल्ली सल्तनत को पहुँची हानि का आकलन कर सकेंगे और उसके शासन काल में दिल्ली सल्तनत के विघटन की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
4. एक शासक के रूप में फ़िरोज़ शाह तुगलक़ की प्रशासनिक उपलब्धियों, उसकी असफल नीतियों तथा उसकी सैनिक दुर्बलता की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
5. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ के अयोग्य उत्तराधिकारियों के शासनकाल में स्वतंत्र राज्यों के उदय तथा दिल्ली सल्तनत में फैली राजनीतिक अराजकता के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
6. तैमूर के भारत-आक्रमण के विनाशकारी प्रभाव की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
7. तुगलक़ राज्यवंश के पतन और उसके बाद सैयद राज्यवंश के उदय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.

1.3 गियासुद्दीन तुगलक़

1.3.1 गाज़ी मलिक अर्थात् गियासुद्दीन तुगलक़ का दिल्ली के सुल्तानों की सेवा में प्रवेश

इब्न बतूता के अनुसार तुगलक़, करुना तुर्क थे जो कि तुर्किस्तान तथा सिंध के मध्य पहाड़ी क्षेत्र में रहते थे जब कि फ़रिश्ता के अनुसार तुगलक़ सुल्तान बलबन का एक गुलाम था जिसकी कि माँ एक भारतीय जाट थी.
गाज़ी मलिक, अर्थात् गियासुद्दीन तुगलक़, अपने भाइयों रज्जब और अबू बकर के साथ अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में खुरसंदुरिंग से भारत आया था. वह जलालुद्दीन खिलजी के शाही रक्षक के रूप में नियुक्त हुआ था. अलाउद्दीन खिलजी ने गियासुद्दीन तुगलक़ को 10000 के सैनिक टुकड़ी के साथ चगताई मंगोलों से युद्ध करने के लिए दीपलपुर भेजा था. अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर गाज़ी मलिक ने मुल्तान, उच तथा सिंध पर अधिकार कर लिया.

1.3.2 गियासुद्दीन तुगलक़ का सुल्तान के रूप में राज्यारोहण

अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र, सुल्तान कुतबुद्दीन मुबारक शाह को खुसरो खान ने अपदस्थ कर दिया था. गाज़ी मलिक तथा उसके पुत्र फ़ख्र मलिक ने सिंध तथा मुल्तान से सैनिक अभियान के द्वारा खुसरो खान को अपदस्थ कर दिया. और इस प्रकार 1320 में गाज़ी मलिक, गियासुद्दीन तुगलक़ के नाम से दिल्ली का सुल्तान बना और उसके पुत्र फ़ख्र मलिक को मुहम्मद शाह तुगलक़ का नाम दिया गया.

1.3.3 सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक़ द्वारा सल्तनत में व्याप्त राजनीतिक अस्थिरता को समाप्त कर शान्ति एवं व्यवस्था की स्थापना तथा साम्राज्य-विस्तार

मंगोलों के आक्रमण से दिल्ली की रक्षा करने के लिए गियासुद्दीन तुगलक़ ने तुगलकाबाद का निर्माण करवाया. इस दुर्ग जैसे नगर में उसने अपने विश्वस्त अमीरों के निवास की व्यवस्था की. सुल्तान ने मंगोलों के आक्रमणों को विफल किया. 1324 में उसने मंगोलों को पराजित कर उन्हें खदेड़कर राज्य की सीमा से बाहर कर दिया. अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के बाद के चार वर्ष, राजनीतिक अराजकता और आर्थिक संकट में बीते थे. गियासुद्दीन तुगलक़ ने अपने साम्राज्य में शांति-व्यस्था स्थापित की और कृषि, उद्योग एवं व्यापार को बढ़ावा देने के लिए राज्य की ओर से प्रोत्साहन दिया. गियासुद्दीन पहला सुल्तान था जिसने किसानों ने कृषि-आपदा की स्थिति में किसानों को लगान में राहत दिए जाने की व्यवस्था की थी. अलाउद्दीन खिलजी के समय की भूमि की पैमाइश के आधार पर लगान निर्धारण की नीति का परित्याग कर उसने किसानों में लोकप्रिय 'नस्क' अथवा 'बटाई' की प्रणाली को लागू किया. सुल्तान ने भू-राजस्व में वृद्धि के लिए कृषि-योग्य भूमि का विस्तार किया.

आर्थिक संकट दूर करने के लिए दरबार में सादगी और मितव्यता को प्राथमिकता दी गयी. सुल्तान ने सैनिक अधिकारियों तथा सैनिकों को नकद वेतन के स्थान पर भूमि प्रदान की जिसका राजस्व एकत्र करने का अधिकार उन्हें दिया. गियासुद्दीन तुगलक़ को दक्षिण भारत में दिल्ली सल्तनत के विस्तार का श्रेय जाता है. 1321 में उसने अपने बड़े बेटे उलुग खान (बाद में मुहम्मद बिन तुगलक़) को वारंगल और तेलंगाना के हिन्दू शासकों के दमन के लिए भेजा. उलुग खान को ककातीय राज्यवंश के वारंगल राज्य पर विजय प्राप्त करने में सफलता मिली. 1.3.4 गियासुद्दीन तुगलक़ की अस्वाभाविक मृत्यु

गियासुद्दीन तुगलक़ अपने बेटे जूना खान की शीघ्राति-शीघ्र सुल्तान बनने की महत्वाकांक्षा से चिंतित था. शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया का वरद हस्त शहज़ादे के सर पर था. लखनौती (बंगाल) में फ़िरोज़ शाह के दमन के लिए स्वयं सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक़ ने अपने बेटे महमूद खान के साथ प्रस्थान किया. लखनौती में उसे फ़िरोज़ शाह का दमन करने में सफलता मिली. किन्तु वह दिल्ली वापस जीवित नहीं लौट पाया. इब्नबतूता के अनुसार दिल्ली पहुँचने से पहले ही अपने बड़े बेटे उलुग खान (जूना खान और बाद में मुहम्मद बिन तुगलक़) द्वारा रची गयी साज़िश के तहत वह अपने बेटे महमूद खान के साथ मारा गया.

1.3.4 एक शासक के रूप में गियासुद्दीन तुगलक़ का आकलन

गियासुद्दीन तुगलक़ का 5 वर्ष का अल्पकालीन शासन कुल मिलकर सफल कहा जा सकता है. उसने न केवल पिछले चार वर्ष से व्याप्त राजनीतिक अराजकता को दूर कर शांति-व्यवस्था स्थापित की अपितु राज्य के आर्थिक संकट को भी दूर किया. कृषि योग भूमि के विस्तार की तथा आपदा की स्थिति में किसानों को राहत देने की उसकी नीति राज्य तथा किसानों, दोनों के लिए ही हितकारी सिद्ध हुई. उसकी सैनिक उपलब्धियां भी महत्वपूर्ण थीं. उसने उत्तर-पश्चिम से हो रहे मंगोलों के आक्रमणों को विफल किया और बंगाल तथा वारंगल को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया. गियासुद्दीन तुगलक़ का बनवाया हुआ अपना मक़बरा स्थापत्य-कला की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है. इब्नबतूता और अमीर खुसरो की दृष्टि में वह एक सफल सुल्तान था.

1.4 सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक़

1.4.1 मुहम्मद बिन तुगलक़ के राज्यारोहण के समय दिल्ली सल्तनत की स्थिति और उसकी उसकी व्यक्तिगत योग्यता

1325 में अपने पिता सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक़ की संदेहास्पद स्थिति में मृत्यु के उपरांत उलुग खान उर्फ़ जूना खान अर्थात् मुहम्मद बिन तुगलक़ दिल्ली का सुल्तान बना. दिल्ली सल्तनत के इतिहास में मुहम्मद बिन तुगलक़ सबसे विद्वान सुल्तान था. किन्तु अपनी अव्यावहारिक योजनाओं, अपने अनियंत्रित क्रोध के कारण अनावश्यक रक्तपात करने की प्रवृत्ति, अपनी ज़िद्दी प्रकृति तथा अपनी प्रजा के कष्टों के प्रति पूर्ण उदासीनता के कारण उसे दिवा-स्वप्नदर्शी, रक्त-पिपासु, सनकी, पागल अथवा बुद्धिमान मूर्ख कहा जाता है. इस्लाम की धार्मिक-सामाजिक मान्यताओं की अवज्ञा करने के कारण उसे ज़ियाउद्दीन बर्नी, यहिया बिन अहमद सरहिंदी, निजामुद्दीन अहमद, बदायुनी और फ़रिश्ता जैसे इतिहासकारों ने उसे धर्म-विमुख कहा है. विदेशी यात्री इब्न बतूता ने उसकी रक्त-पिपासु प्रवृत्ति का उल्लेख किया है.

मुहम्मद बिन तुगलक़ के सिंहासनारूढ़ होते समय दिल्ली सल्तनत का सर्वाधिक विस्तार हो चुका था. दिल्ली सल्तनत में तब कुल 23 प्रान्त थे. दिल्ली, लाहौर, मुल्तान, सर्मूली, गुजरात, मालवा, अवध, कन्नौज, बिहार, जाज

नगर (उड़ीसा), लखनौती (बंगाल), देवगिरि, द्वार समुद्र के अतिरिक्त कश्मीर तथा बलूचिस्तान भी तब दिल्ली सल्तनत का अंग थे.

मुहम्मद बिन तुगलक़ अलाउद्दीन खिलजी की भाँति ही राजनीति में धर्म की मिलावट किए जाने के विरुद्ध था. अलाउद्दीन खिलजी की ही तरह उसने सिंहासनारूढ़ होते समय खलीफ़ा का अनुमोदन प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया और न ही शासन में उलेमाओं को किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की अनुमति प्रदान की. उसने धर्म-निरपेक्ष न्याय-व्यवस्था की स्थापना हेतु अनिवार्य रूप से केवल उलेमाओं की न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति की परंपरा का भी निर्वाह नहीं किया. सुल्तान ने प्रशासकीय पदों पर योग्यता के आधार पर नियुक्ति की स्वस्थ परम्परा की नीव डाली. अब नस्ल, वर्ग, जाति अथवा धर्म विशेष के व्यक्तियों का उच्च पदों पर नियुक्ति का एकाधिकार नहीं रहा.
इस प्रकार के स्वस्थ एवं प्रगतिशील फ़ैसले लेकर मुहम्मद बिन तुगलक़, भारत जैसे विभिन्न धर्म, जाति और संस्कृतियों के देश में सभी वर्गों का विश्वास और सहयोग प्राप्त करके अपने शासन को लोकप्रिय तथा सुदृढ़ बना सकता था किन्तु उसकी असफल योजनाओं ने ऐसी किसी भी सम्भावना को समाप्त कर दिया.

1.4.2 मुहम्मद बिन तुगलक़ की अव्यावहारिक योजनाएं

1.4.2.1 दोआब में कर-वृद्धि

मुहम्मद बिन तुगलक़ की पहली अव्यावहारिक योजना - दोआब क्षेत्र में लगभग 50% कर-वृद्धि थी. संयोग की बात यह थी कि कर-वृद्धि के निर्णय के तुरंत बाद दोआब में भयंकर अकाल पड़ गया किन्तु सुल्तान ने अथवा उसके राजस्व अधिकारियों ने बढ़े हुए कर को वसूलने में किसानों किसी प्रकार की कोई छूट नहीं दी. इस संकट के समय जबरन बढ़े हुए कर की वसूली के विरुद्ध किसानों ने विद्रोह कर दिया. भयंकर रक्तपात के बाद इस विद्रोह का दमन तो कर दिया गया किन्तु सुल्तान को अपने इस निर्णय से कोई आर्थिक लाभ होना तो दूर, पुरानी व्यवस्था के अंतर्गत मिलने वाला राजस्व भी प्राप्त नहीं हो सका और प्रजा के मध्य वह एक अत्याचारी शासक के रूप में कुख्यात भी हो गया.

1.4.2.2 कृषि-सुधार की योजना

मुहम्मद बिन तुगलक़ ने 'दीवान-ए-कोही' विभाग का गठन कर कृषि-सुधार की महत्वाकांक्षी योजना बनाई थी किन्तु यह भी भू-राजस्व अधिकारियों तथा किसानों की उदासीनता के कारण निष्फल हो गयी.

1.4.2.3 राजधानी-परिवर्तन

मुहम्मद बिन तुगलक़ ने साम्राज्य के लगभग मध्य में स्थित दौलताबाद को दिल्ली की जगह राजधानी बनाने का निर्णय इसलिए लिया था कि वह अपने पूरे साम्राज्य पर सुचारू रूप से नियंत्रण स्थापित कर सके और इसके अलावा नव-विजित दक्षिण पर अपनी पकड़ मज़बूत बना सके. इसके अतिरिक्त दौलताबाद में रहकर उसके लिए दक्षिण भारत की अथाह संपत्ति का दोहन भी आसान हो सकता था. पश्चिमोत्तर प्रदेश से दिल्ली पर निरंतर हो रहे आक्रमणों से भी नई राजधानी सुरक्षित रह सकती थी.

सुल्तान ने राजधानी-परिवर्तन के लाभ पर तो विचार किया किन्तु उस से होने वाले नुक्सान का उसने कोई आकलन नहीं किया और इस बात की भी चिंता नहीं की कि उसके इस निर्णय से राज्य पर कितना आर्थिक बोझ आएगा और जनसँख्या-विस्थापन से दिल्लीवासियों को कितना कष्ट होगा. इस मूर्खतापूर्ण निर्णय का परिणाम विनाशकारी सिद्ध हुआ. अथाह आर्थिक हानि और हज़ारों लोगों की रास्ते में ही जान जाने के बाद 1335 में ही सुल्तान को अपना निर्णय वापस लेना पड़ा. इस अव्यावहारिक निर्णय का कुपरिणाम यह हुआ कि कि सुल्तान की

दक्षिण भारत पर पकड़ पहले से कमज़ोर हो गयी. 1336 में विजयनगर राज्य की स्थापना और 1347 में बहमनी राज्य की स्थापना इसका प्रमाण हैं.

1.4.2.4 सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन

सांकेतिक मुद्रा का प्रथम चलन चीन में हुआ था जिसमें कि कागज़ की सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन किया गया था. मुहम्मद बिन तुगलक़ ने राजकोष में चांदी की कमी के कारण चांदी के टंके के मूल्य के बराबर के ताम्बे के सिक्कों को सांकेतिक मुद्रा के रूप में प्रचलित करने का मौलिक किन्तु नितांत अव्यावहारिक प्रयोग किया था. इस सांकेतिक मुद्रा के ढालने में ऐसी कोई सावधानी नहीं बरती गयी जिस से कि घर-घर जाली सांकेतिक मुद्रा न ढाली जा सके. इस प्रयोग के असफल होने के बाद भी सुल्तान ने अपना निर्णय वापस ले लिया किन्तु जाली सांकेतिक मुद्रा के बदले में असली चांदी का भुगतान करते-करते राजकोष लगभग पूरी तरह से खाली हो गया.

1.4.2.5 खुरासान तथा कराचिल विजय हेतु अभियान

मंगोल तर्माशिरीन की मृत्यु के बाद औक्सश पर्वत के पार के क्षेत्र की अराजक स्थिति का लाभ उठाकर मुहम्मद तुगलक़ खुरासान और कराचिल को जीतना चाहता था. किन्तु उसका यह अभियान नितांत अव्यावहारिक था. पहाड़ के दुर्गम क्षेत्रों से पूर्णतया अपरिचित और पहाड़ में युद्ध करने की पूर्णतया अनभ्यस्त सेना किस प्रकार पहाड़ी राज्यों को जीत सकती थी, इस पर सुल्तान ने कोई विचार ही नहीं किया. खुसरो मालिक के नेतृत्व में 350000 की सेना रास्ता भटकते हुए, मुश्किलों से जूझते हुए असफल होकर जब वापस लौटी तो उस विशाल सेना में से केवल मुट्ठी भर सैनिक ज़िन्दा बचे थे.

1.4.3 मुहम्मद बिन तुगलक़ के शासनकाल में विद्रोह

मुहम्मद बिन तुगलक़ के शासनकाल में अनेक असफल और सफल विद्रोह हुए. इनमें से कुछ तो महत्वाकांक्षी अमीरों द्वारा किए गए थे, कुछ उसकी दमनकारी नीतियों के विरोध में हुए थे और कुछ राज्य पर उसके नियंत्रण के शिथिल हो जाने के कारण हुए थे. इन में से कुछ विद्रोह अपने उद्देश्य में सफल हुए थे जिसका परिणाम दिल्ली सल्तनत से अलग होकर किंचित स्वतंत्र राज्यों का गठन था. इन स्वतंत्र राज्यों के गठन ने ही तुगलक़ साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया को गतिशील बना दिया था.1326 में कर्नाटक प्रान्त के सागर नमक क्षेत्र में बहाउद्दीन गुरशप के विद्रोह को मुहम्मद बिन तुगलक़ ने सफलतापूर्वक कुचल दिया. यही परिणाम उच, सिंध तथा मुल्तान के सूबेदार बहराम ऐबा के विद्रोह का हुआ. किन्तु लखनौती (बंगाल) के विद्रोह को कुचलने में मुहम्मद बिन तुगलक़ सफल नहीं हुआ. 1327-28 में लखनौती में पहले वहां के संयुक्त सूबेदार गियासुद्दीन बहादुर ने विद्रोह किया जिसे दूसरे संयुक्त सूबेदार बहराम खान ने कुचल दिया किन्तु अली मुबारक ने 1340-41 में लखनौती में अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की.

मालाबार के सूबेदार सैयद एहसान शाह ने 1334-35 में ख़ुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया. मुहम्मद तुगलक़ विद्रोह को कुचलने लिए आगे बढ़ा पर उसे लाहौर में विद्रोह के समाचार के कारण वापस लौटना पड़ा और मालाबार एक स्वतंत्र राज्य बन गया. इसी समय तेलंगाना और कांची में स्वतंत्र हिन्दू राज्यों के स्थापना हुई. 1336 में हरिहर तथा बुक्का ने महान विजयनगर साम्राज्य की नीव रखी. गुजरात में विदेशी मूल के अमीरों के विद्रोह ने मालवा, बरार तथा दौलताबाद में भी विद्रोहों को भड़का दिया. मुहम्मद बिन तुगलक़ अधिकांश विद्रोहों को कुचलने में सफल रहा किन्तु उसके शासनकाल का उत्तरार्ध ऐसे विद्रोहों की घटनाओं से भरा पड़ा था.सुनाम, समाना, कड़ा, बीदर, गुलबर्गा और

मुल्तान में भी विद्रोह हुए जिनको सुल्तान ने कुचल तो दिया किन्तु इस से यह स्पष्ट था कि अब सुल्तान का अपने राज्य पर नियंत्रण नाम मात्र का रह गया है.

मुहम्मद बिन तुगलक़ के शासन काल के अधिकांश विद्रोह दक्षिण भारत में हुए. 1347 में मुहम्मद बिन तुगलक के अमीरों (अमीरन-ए-सादाह) ने दकन में विद्रोह कर दिया और दौलताबाद के किले पर अधिकार कर इस्माइल अफ़गान को 'नासिरुद्दीन शाह' को दकन का सुल्तान घोषित कर दिया किन्तु बूढ़ा और अयोग्य नासिरुद्दीन शाह अधिक दिनों तक सुल्तान नहीं रहा और उसका स्थान 'ज़फ़र खान' उपाधि धारी हसन गंगू ने ले लिया. हसन गंगू 'अलाउद्दीन हसन बहमन शाह' के नाम से अगस्त, 1347 को बहमनी साम्राज्य की स्थापना की. 1350 में गुजरात में तार्गी ने विद्रोह कर दिया. सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक़ इस विद्रोह को कुचलने के लिए अपनी सेना के साथ निकला तो अवश्य किन्तु विद्रोह को कुचलने से पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी.

1.4.4 मुहम्मद बिन तुगलक़ का शासक के रूप में आकलन

इतिहासकार बर्नी मुहम्मद बिन तुगलक़ की मृत्यु पर कहता है –

'सुल्तान को अपनी प्रजा से और प्रजा को अपने सुल्तान से मुक्ति मिल गयी.'

एक शासक के रूप में मुहम्मद बिन तुगलक़ का आकलन करते समय किसी भी इतिहासकार ने उसे सफल नहीं बताया है. इसामी उसे इस्लाम का शत्रु बताता है तो विदेशी यात्री इब्न बतूता उसे रक्त-पिपासु कहता है. उसकी हर असफल योजना ने उसको पागल और सनकी समझने वालों की संख्या में वृद्धि की. उसकी बुद्धिमत्ता, उसकी मौलिकता, दोनों ही, उसकी अव्यावहारिकता के बोझ तले दबकर रह गईं. सुल्तान को बार-बार अपने अव्यावहारिक निर्णय बदलने पड़ते थे. उसने अपने शासनकाल के प्रारंभ में अपनी सत्ता की प्रतिष्ठा के लिए खलीफ़ा की मान्यता को कोई महत्ता नहीं दी थी. उसने कठमुल्लों को राज्य के मामलों में हस्तक्षेप करने से रोका था और नियुक्तियों में धर्म को आधार बनाने के स्थान पर योग्यता के आधार पर क्या मुसलमान और क्या हिन्दू, सबको नियुक्त किया था किन्तु बाद में उलेमाओं का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से उसने अपनी छवि एक निष्ठावान मुस्लिम शासक की बनाने की कोशिश की थी और उसने ख़ुद को सुल्तान के रूप में खलीफ़ा की मान्यता प्राप्त करने के लिए उसके प्रतिनिधि का भव्य स्वागत भी किया था. जल्दबाजी में लागू की गयी अपनी प्रत्येक योजना के असफल होने पर उसे वापस लेना और फिर अपनी खीज निरीह प्रजा पर उतारने की उसकी प्रवृत्ति ने भी उसकी छवि बिगाड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी.

सुल्तान को दिल्ली सल्तनत के इतिहास का सबसे बड़ा साम्राज्य उत्तराधिकार में मिला था और राज्यारोहण के समय उसके साम्राज्य में शांति भी स्थापित थी और शाही खज़ाना भी खाली नहीं था किन्तु उसने अपने उत्तराधिकारी फ़िरोज़ तुगलक़ के लिए अपेक्षाकृत सिमटा हुआ, विद्रोहों से भरा हुआ और खाली खज़ाने वाला साम्राज्य छोड़ा था. मिली हुई विरासत और छोडी हुई विरासत के मापदंड के आधार पर मुहम्मद बिन तुगलक़ नितांत असफल शासक सिद्ध होता है.

1.5 फ़िरोज़ शाह तुगलक़

1.5. 1 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ को विरासत में मिला साम्राज्य

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ को राजनीतिक दृष्टि से अस्थिर, अमीरों और प्रजा के मध्य एक समान अप्रिय, आर्थिक दृष्टि से खोखला और चारों ओर से दुश्मनों से घिरा हुआ साम्राज्य मिला था. किन्तु उसे इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि अपने 37 वर्ष के लम्बे शासन काल में अपने साम्राज्य की डूबती कश्ती को यथासंभव डूबने अथवा

डगमगाने नहीं दिया.फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने अपने अमीरों की निष्ठा प्राप्त की और अपनी प्रजा की दृष्टि में उसकी छवि एक प्रजा-पालक सुल्तान के रूप में स्थापित हुई. उसके शासन काल में राज्य की आर्थिक स्थिति सुधरी.

1.5.2 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ के सैनिक अभियान

फ़िरोज़ तुगलक़ सैनिक प्रतिभा से सर्वथा हीन सुल्तान था. उसने मुहम्मद बिन तुगलक़ के काल में दिल्ली सल्तनत से स्वतंत्र हुए राज्यों को फिर से जीतने का प्रयास किया. बंगाल में स्वतंत्र शासक बन-बैठे शमसुद्दीन इलियास शाह के विरुद्ध उसने 1353 में अभियान किया किन्तु 2 वर्ष के अथक प्रयास के बाद भी वह बंगाल को जीतने में सफल नहीं हुआ और असफल होकर वापस लौट आया. शमसुद्दीन इलियास शाह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र सिकंदर शाह के सिंहासनारूढ़ होने पर उसने एक बार फिर बंगाल को जीतने का प्रयास किया पर इस बार भी वह असफल होकर दिल्ली लौट आया. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ को 1360 में जाजनगर (उड़ीसा) पर आक्रमण कर भानुदेव तृतीय को पराजित करने में सफलता मिली. उसने अपनी धर्मान्धता का परिचय देते हुए जगन्नाथ पूरी के मंदिर को लूटा और उसे ध्वस्त किया.

1361 में नगरकोट पर आक्रमण करते के बाद उसकी सेना 6 महीनों तक रन के रेगिस्तान में फँसी रही किन्तु अंततः नगरकोट के जाम्बबनियों ने कर देने की शर्त मानते हुए सुल्तान की आधीनता स्वीकार कर ली. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने अपने शासनकाल के आगामी वर्षों में साम्राज्य-विस्तार के लिए या अपने पूर्ववर्ती शासक के काल में खोए हुए क्षेत्रों को जीतने का कोई प्रयास नहीं किया.

1.5.3 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ का राजस्व प्रशासन

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने अपने पूर्ववर्ती शासक मुहम्मद बिन तुगलक़ की प्रजा-विरोधी राजस्व-नीति में आमूल परिवर्तन कर दिया. उसने नए सिंचाई कर को छोड़कर मुहम्मद बिन तुगलक़ के काल में लिए जाने वाले 24 करों को समाप्त कर दिया और केवल चार शास्त्र-सम्मत कर – 'खिराज', 'जज़िया', 'खम्स', 'ज़कात' पर अपना राजस्व आधारित किया.

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने किसानों को सिंचाई की सुविधा देने के लिए राज्य की ओर से नहरों के निर्माण में अत्यधिक धन का निवेश किया था. उसने यमुना, घग्घर और सतलज पर 5 बड़ी नहरों का निर्माण कर साम्राज्य के एक बड़े कृषि-भूमि क्षेत्र को सिंचाई की सुविधाओं से समृद्ध किया था और उलेमाओं की सहमति से उसने 'हक़्-ए-शर्ब' (सिंचाई कर) के रूप में किसानों से कुल उपज का 10% भाग प्राप्त क्या था. उसके शासनकाल में खिराज (भूमि-कर) की दर कुल उपज के 1/3 भाग से लेकर 1/5 भाग थी. किसानों को राहत देने के लिए उसने मुहम्मद बिन तुगलक़ के काल में उनको दिया गया ऋण – 'सोंधर' माफ़ कर दिया था. राज्य की आय बढ़ाने के लिए उसने 1200 फलों के बाग लगवाए थे. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ यह मानता था कि निर्बाध-व्यापार राज्य की आय बढ़ाता है. उसने आतंरिक व्यापार के मार्ग की अनेक बाधाओं को दूर किया और उसकी प्रगति में बाधक अनेक करों को हटा दिया.

1.5.4 महान भवन एवं नगर-निर्माता

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ महान निर्माता था. सार्वजनिक निर्माण-कार्य तथा नगर-निर्माण में उसकी गहन अभिरुचि थी. उसने अपने नाम पर - हिसार फ़िरोज़ा, फ़िरोज़ शाह कोटला (दिल्ली में), फ़िरोज़पुर तथा फ़िरोज़ाबाद की स्थापना की और पूर्व-सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक़ के वास्तविक नाम 'जूना खान' पर 'जौनपुर' की स्थापना की. उसने खिज्राबाद तथा मेरठ से दो अशोक स्तम्भ उखाड़कर उन्हें दिल्ली में स्थापित किया. उसने 'दार-उल-शफ़ा' (चिकित्सालय) का निर्माण करवाया.

1.5.5 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ के जन-कल्याणकारी कार्य

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ द्वारा बनवाए गए 'दार-उल-शफ़ा' में गरीबों का निःशुल्क इलाज होता था. मुस्लिम अनाथ बच्चों, विधवाओं और बेसहारा स्त्रियों को आश्रय देने के लिए उसने 'दीवान-ए-खैरात' की स्थापना की. किन्तु उसके जन-कल्याणकारी कार्य केवल मुस्लिम समाज तक ही सीमित थे. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने शिक्षा के विकास के लिए अनेक मदरसों का निर्माण करवाया. इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बर्नी ने उसके संरक्षण में – 'तारीख़-ए-फ़िरोज़ शाही' तथा 'फ़तवा-ए-जहांदारी' की रचना की. शम्स-ए-सिराज अफ़ीफ़ ने भी – 'तारीख़-ए-फ़िरोज़शाही' शीर्षक, इतिहास-ग्रन्थ लिखा. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने आयुर्वेद के अनेक संस्कृत ग्रंथों का फ़ारसी भाषा में अनुवाद करवाया जिनको कि 'दलायत-ए- फ़िरोज़शाही' के नाम से प्रकाशित किया गया. उसकी आत्मकथा – 'फ़ुतुहात-ए-फ़िरोज़शाही' भी उसके काल की एक प्रमुख रचना है.

1.5.6 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ द्वारा दिल्ली सल्तनत को कमज़ोर बनाने वाले कार्य

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने दास प्रथा को बहुत बढ़ावा दिया. उसके दासों की संख्या 180,000 थी. उसने गुलामों की देखभाल के लिए 'दीवान-ए-बन्दगान' की स्थापना की. दीवानों की बढ़ती संख्या शाही खज़ाने पर एक बोझ थी और साम्राज्य में दासों के बढ़ते हुए प्रभाव से पुराना अमीर वर्ग बहुत नाराज़ था. अपने कर्मचारियों के प्रति अनावश्यक उदारता के कारण फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने उनमें शासक के प्रति 'भय और श्रद्धा' की भावना स्थापित करने की सर्वथा उपेक्षा की. उसने प्रशासन में घूसखोरी को अनदेखा किया और प्रशासन व सेना में योग्यता के आधार पर नियुक्ति तथा पदोन्नति के स्थान पर उसने पुश्तैनी पदों की परंपरा को बढ़ावा दिया. जागीरदारी व्यवस्था को पुनर्प्रचलित करना भी उसकी बहुत बड़ी भूल थी. फ़िरोज़ शाह की सैनिक दुर्बलता ने तुगलक़ राज्यवंश के पतन का मार्ग प्रशस्त किया.

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ एक धर्मांध कट्टर मुस्लिम शासक था. वह पहला सुल्तान था जिसने कि ब्राह्मणों पर भी 'जज़िया' लगाया था. उसमे गैर-मुसलमानों को अपने धर्म-पालन की पूर्ण स्वतंत्रता नहीं दी थी और उनमें से बहुतों को लालच देकर अथवा तलवार का भय दिखाकर इस्लाम में दीक्षित होने के या तो प्रेरित किया था या बाध्य किया था. उसने अनेक मंदिरों को ध्वस्त किया था जिसमें कि पुरी का जगन्नाथ मंदिर प्रमुख था. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ के जन-कल्याणकारी कार्य केवल मुस्लिम समाज तक सीमित थे. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने अपने 37 वर्ष के लम्बे शासन में अपने उत्तराधिकारियों को समुचित प्रशासनिक तथा सैनिक प्रशिक्षण नहीं दिलाया. एक प्रकार से यह निश्चित हो गया था कि बूढ़े सुल्तान की मृत्यु होते ही तुगलक़ साम्राज्य में अराजकता व्याप्त हो जाएगी. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ की मृत्यु के 10 साल बाद ही दिल्ली सल्तनत के इतिहास की सबसे बड़ी त्रासदी - तैमूर का आक्रमण, घटित हो गयी.

1.6 तैमूर का भारत-आक्रमण

1.6.1 तैमूर के भारत-आक्रमण के कारण तथा उसके उद्देश्य

एशिया का अपने समय का सबसे बड़ा विजेता तैमूर समरकंद तथा बुखारा का शासक था. वह मेसोपोटामिया, फ़ारस और अफ़गानिस्तान पर अधिकार करने के बाद भारत की राजनीतिक अराजकता का लाभ उठकर वहां की अथाह संपत्ति को लूटने की महत्वाकांक्षा भी रखता था. उसका भारत पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने का कोई इरादा नहीं था.तैमूर के साथी, भारत में पड़ने वाली भीषण गर्मी से बहुत आतंकित थे. इसलिए उन्हें तैमूर के भारत अभियान में सम्मिलित होने में संकोच था. तैमूर ने उन्हें आश्वस्त किया कि उसका भारत में स्थाई तौर पर रहने का कोई इरादा नहीं है और वह वहां लूटपाट करके गर्मी के मौसम से पहले ही लौट आएगा.

तैमूर ने अपनी आत्मकथा में भारत पर आक्रमण करने का अपना उद्देश्य - भारत में मुस्लिम समाज तथा इस्लाम में आई हुई विकृतियों को दूर कर उसके शुद्ध स्वरुप को पुनर्स्थापित करना तथा विधर्मियों को पराजित कर, वहां उनके पूजा-स्थलों को ध्वस्त कर और विधर्मियों को मुसलमान बनाकर, इस्लाम की पताका फहराना बताया है. वह अपने द्वारा जीते हुए क्षेत्र में विधर्मियों का दमन कर 'गाज़ी' की उपाधि धारण करना चाहता था. तैमूर, अपने प्रेरणा-श्रोत चंगेज़ खान के भारत-आक्रमण के अधूरे सपने को साकार करना चाहता था. किन्तु वास्तव में उसका मुख्य उद्देश्य – कम से कम समय में भारत का अधिक से अधिक धन लूटकर अपने साथ ले जाना था.

1.6.2 तैमूर का भारत-आक्रमण

अगस्त, 1398 को तैमूर ने काबुल से अपना भारत-अभियान आरंभ किया. तैमूर के पोते पीर मुहम्मद ने उच्च तथा मुल्तान को जीतकर अपने पितामह के दिल्ली अभियान का मार्ग सुगम कर दिया और फिर वह उसके अभियान में सम्मिलित हो गया. पानीपत तक पहुँचने के रास्ते में तैमूर ने पाटन, दीपलपुर, भटनेर, सिरसा, कैथल आदि क्षेत्रों को लूटा और वहां भयंकर रक्तपात तथा आगज़नी की.

17 दिसंबर, 1398 को पानीपत के निकट तुगलक़ सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद अपनी सेना के साथ उसका सामना करने के लिए खड़ा हो गया. सुल्तान को अपनी विशाल हस्ति-सेना की विनाशकारी शक्ति पर बहुत भरोसा था किन्तु तैमूर ने अपने ऊंटों की पीठ पर लकड़ियों का ढेर बाँध कर और फिर उनमें आग लगाकर उन्हें हाथियों के सामने दौड़ा दिया. दौड़ती आग से भयभीत हाथी पलट कर अपनी सेना को ही रौंदते हुए भाग खड़े हुए. कुछ ही समय में तैमूर की सेना की तुगलक़ सेना के विरुद्ध निर्णायक विजय हुई और सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद तथा उसके वज़ीर ने रणभूमि से भागकर अपने प्राण बचाए.

1.6.3 तैमूर के आक्रमण के परिणाम

1.6.3.1 दिल्ली की लूट और क़त्ल-ए-आम

तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश किया किन्तु स्थानीय जनता ने तीन दिन तक उसका प्रतिरोध किया अंततः वह जन-विरोध को कुचलने में सफल रहा और प्रतिशोध स्वरुप उसने दिल्ली को न केवल लूटा अपितु क़त्ल-ए-आम का हुक्म भी दे दिया. दिल्ली के तीन नगर – सीरी, पुरानी दिल्ली और जहाँ-पनाह को उसने खंडहरों के ढेरों में परिवर्तित कर दिया. 15 दिन तक क़त्ल-ए-आम और लूट के बाद उसने लूटे हुए हीरों, लाल, मोती, सोने और चांदी के अम्बारों को सैकड़ों ऊंटों, छकड़ों आदि पर लादकर अपने मुल्क की ओर प्रस्थान किया. भारत के इतिहास की यह सबसे बड़ी लूट थी.

दिल्ली से लौटते में तैमूर ने मेरठ, फ़िरोज़ाबाद, हरद्वार, कांगड़ा और जम्मू में भी विनाश-लीला की.तैमूर ने रास्ते में पड़ने वाले खेतों में लगी फसलों को ही नहीं, अपितु अनाज से भरे गोदामों को भी नष्ट किया. भयंकर रक्तपात से जगह-जगह महामारी फैल गयी. नदियों का पानी तक प्रदूषित हो गया. तैमूर अपने साथ लाखों स्त्री-पुरुषों को गुलाम बनाकर ले गया. दिल्ली से वह अपने साथ अनेक कारीगरों को भी साथ ले गया जिन्होंने कि समरकंद के सौन्दर्यीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया. तैमूर के आक्रमण से दिल्ली सल्तनत की ही नहीं, अपितु समस्त भारत की सैनिक दुर्बलता दुनिया के सामने आ गयी. तैमूर ने अपने नरसंहार में आम तौर पर गैर-मुस्लिमों पर अधिक अत्याचार किए और उनके पूजा-स्थलों को ध्वस्त किया. इसके कारण हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य और अधिक बढ़ गया. आक्रमणकारियों की कुदृष्टि सबसे अधिक कुमारी बालिकाओं पर पड़ती थी इसलिए अब हिन्दू समाज में बाल-विवाह का प्रचलन अधिक हो गया.

1.6.3.2 दिल्ली सल्तनत का विघटन

तैमूर के आक्रमण ने पहले से लड़खड़ाती दिल्ली सल्तनत पर एक और ज़बरदस्त प्रहार किया. नाम का तुगलक़ सुल्तान का अब दिल्ली के आसपास के क्षेत्र पर भी अधिकार नहीं रह गया. एक समय तो ऐसा भी आया कि दिल्ली से आठ मील दूर पालम में एक और प्रतिद्वंदी सुल्तान उठ खड़ा हुआ. इस समय एक व्यंग्योक्ति प्रसिद्द हुई – 'शहंशाह-ए-आलम की सल्तनत केवल दिल्ली से पालम तक की है.' दिल्ली सल्तनत से टूटकर अनेक स्वतंत्र प्रांतीय राज्यों का उदय हुआ. तैमूर जाते-जाते खिज्र खान सैयद को मुल्तान, लाहौर और दीपलपुर का सूबेदार बना गया. इस प्रकार व्यावहारिक दृष्टि से पंजाब दिल्ली सल्तनत का हिस्सा नहीं बल्कि अब तैमूर के साम्राज्य का हिस्सा हो गया. बाद में तैमूर के वंशज बाबर ने इसी आधार पर इब्राहीम लोदी से पंजाब को उसके साम्राज्य को सौंपे जाने की मांग की थी.

दिल्ली सल्तनत की दुर्बलता का लाभ उठाकर अनेक सूबेदारों ने अपने-अपने सूबों में अपनी-अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी. जौनपुर के सूबेदार मलिक सरवर ने शर्की राज्यवंश की स्थापना की. गुजरात के सूबेदार जफ़र शाह ने भी अपने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी. मालवा के सूबेदार दिलावर खान गौर ने भी एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ की मृत्यु के बाद खानदेश के सूबेदार मलिक फ़ारूकी ने व्यावहारिक दृष्टि से स्वयं को एक स्वतंत्र शासक के रूप में स्थापित किया था जिसे कि उसके पुत्र मलिक नसीर ने 1399 में पूर्ण स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया था.

1.6.3.3 हिन्दू शक्तियों का उदय

तैमूर के आक्रमण के बाद राजस्थान में मेवाड़ राज्यवंश उत्तर भारत की सबसे प्रमुख शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया था. राणा कुम्भा से लेकर राणा सांगा तक मेवाड़ का दबदबा पूरे उत्तर भारत में ही नहीं अपितु मालवा, गुजरात्त तक व्याप्त हो गया था. तैमूर के आक्रमण के बाद जोधा के नेतृत्व में मारवाड़ भी उत्तर भारत की एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरा था और मारवाड़ राज्य,16 वीं शताब्दी के प्रतापी शासक मालदेव के काल तक राजपूत शक्ति के पुनरुत्थान का एक प्रमुख केंद्र बना रहा. तैमूर के आक्रमण के बाद ग्वालियर के तोमरों ने भी दिल्ली सल्तनत से ख़ुद को स्वतंत्र करा लिया था.

1.7 तुगलक़ राज्यवंश का पतन

तुगलक़ साम्राज्य का विघटन होना तो 1335 में ही प्रारंभ हो गया था किन्तु इसका पूर्ण पतन 77 साल बाद अर्थात् 1414 में हुआ. तुगलक़ राज्यवंश के पतन के लिए मुख्यतः मुहम्मद बिन तुगलक़ की अव्यावहारिक योजनाएं, राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर महत्वकांक्षी अमीरों के सफल विद्रोह, प्रांतीय शक्तियों का उदय, हिन्दू-प्रतिरोध, फ़िरोज़ शाह तुगलक़ की सैनिक दुर्बलता, उसकी धर्मान्धता, उसके द्वारा जागीरदारी व्यवस्था को पुनर्जीवित करना, सैनिक तथा प्रशासनिक पदों को पुश्तैनी बनाना, घूसखोरी को अनदेखा करना, फ़िरोज़ शाह तुगलक़ के उत्तराधिकारियों का योग्य होना, तैमूर के आक्रमण से साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया का तीव्र होना और अंततः खिज्र खान सैयद द्वारा 1414 में दिल्ली पर अधिकार कर सैयद राज्यवंश की स्थापना उत्तरदायी हैं.

1.8 सारांश

साम्राज्य-विस्तार की दृष्टि से तुगलक़ साम्राज्य, दिल्ली सल्तनत के इतिहास में सबसे विशाल था किन्तु साम्राज्य के सिकुड़ने की दृष्टि से और राजनीतिक-सैनिक ह्रास की दृष्टि से भी यह दिल्ली सल्तनत की पराकाष्ठा थी.

इसी काल में उत्तर-पश्चिम से दिल्ली सल्तनत पूर्णतया असुरक्षित हो गयी थी. इसी राज्यवंश में तैमूर का भारत-आक्रमण हुआ जिसमें कि उत्तर भारत में अभूतपूर्व लूट मची और नर-संहार हुआ. इसके पश्चात् पंजाब, तैमूर के साम्राज्य का अंग बन गया था जिसके कि आधार पर तैमूर के वंशज, बाबर ने इब्राहीम लोदी से पंजाब को अपने अधिकार में दिए जाने की मांग की थी. खिलजी साम्राज्य के मुल्तान, उच तथा सिंध पर अधिकार कर चुके गाज़ी मलिक ने दिल्ली की राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर, वहां 1320 में, खिलजी राज्यवंश के पतन के बाद गियासुद्दीन तुगलक़ के रूप में तुगलक़ राज्यवंश की स्थापना की.

सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक़ ने दिल्ली सल्तनत में व्याप्त राजनीतिक अस्थिरता को समाप्त कर शान्ति एवं व्यवस्था की स्थापना की. उसने कृषि, उद्योग एवं व्यापार को बढ़ावा देने के लिए राज्य की ओर से प्रोत्साहन दिया. उसने साम्राज्य-विस्तार की नीति अपनाई और वारंगल तथा बंगाल को अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया. उसने उत्तर-पश्चिम से निरंतर हो रहे मंगोलों के आक्रमणों को विफल किया. मितव्यता की नीति अपनाकर उसने राज्य के आर्थिक संकट को भी दूर किया. बंगाल में फ़िरोज़ शाह का दमन करने के बाद दिल्ली पहुँचने से पहले ही एक दुर्घटना में गियासुद्दीन तुगलक़ की मृत्यु हो गयी. इस दुर्घटना के पीछे उसके बड़े पुत्र जूना खान का हाथ था.

1325 में अपने पिता की मृत्यु के बाद जूना खान अर्थात् मुहम्मद बिन तुगलक़ सुल्तान बना. दिल्ली सल्तनत के इतिहास में मुहम्मद बिन तुगलक़ सबसे विद्वान सुल्तान था. किन्तु अपनी अव्यावहारिक योजनाओं, अपने अनियंत्रित क्रोध के कारण अनावश्यक रक्तपात करने की प्रवृत्ति, अपनी ज़िद्दी प्रकृति तथा अपनी प्रजा के कष्टों के प्रति पूर्ण उदासीनता के कारण उसे दिवा-स्वप्नदर्शी, रक्त-पिपासु, सनकी, पागल अथवा बुद्धिमान मूर्ख कहा जाता है. ज़ियाउद्दीन बर्नी, यहिया बिन अहमद सरहिंदी, निजामुद्दीन अहमद, बदायुनी और फ़रिश्ता जैसे इतिहासकारों ने उसे धर्म-विमुख कहा है. विदेशी यात्री इब्न बतूता ने उसकी रक्त-पिपासु प्रवृत्ति का उल्लेख किया है. मुहम्मद बिन तुगलक़ ने सुल्तान बनते ही अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दिया और धर्मान्धता की नीति का परित्याग किया किन्तु उसकी असफल योजनाओं ने उसके साम्राज्य को खोखला कर दिया.

मुहम्मद बिन तुगलक़ की पहली अव्यावहारिक योजना - दोआब क्षेत्र में लगभग 50% कर-वृद्धि थी. सुल्तान को अपने इस निर्णय से कोई आर्थिक लाभ होना तो दूर, पुरानी व्यवस्था के अंतर्गत मिलने वाला राजस्व भी प्राप्त नहीं हो सका. मुहम्मद बिन तुगलक़ ने 'दीवान-ए-कोही' विभाग का गठन कर कृषि-सुधार की महत्वाकांक्षी योजना बनाई थी किन्तु यह भी भू-राजस्व अधिकारियों तथा किसानों की उदासीनता के कारण निष्फल हो गयी.मुहम्मद बिन तुगलक़ द्वारा दिल्ली के स्थान पर दक्षिण में स्थित दौलताबाद को राजधानी बनाने का निर्णय मंगोलों के आक्रमणों से राजधानी को बचाने, दक्षिण भारत पर अपनी पकड़ मज़बूत बनाने के लिए लिया गया था किन्तु अपार जन-धन की हानि के बाद सुल्तान को 1335 में अपने इस निर्णय को रद्द करना पड़ा था. सुल्तान की दक्षिण भारत पर पकड़ पहले से कमज़ोर हो गयी. 1336 में विजयनगर राज्य की स्थापना और 1347 में बहमनी राज्य की स्थापना इसका प्रमाण हैं.

मुहम्मद बिन तुगलक़ ने राजकोष में चांदी की कमी के कारण चांदी के टंके के मूल्य के बराबर के ताम्बे के सिक्कों को सांकेतिक मुद्रा के रूप में प्रचलित करने का मौलिक किन्तु नितांत अव्यावहारिक प्रयोग किया था. इस सांकेतिक मुद्रा के ढालने में ऐसी कोई सावधानी नहीं बरती गयी. इस प्रयोग के असफल होने के बाद सुल्तान ने अपना निर्णय वापस ले लिया किन्तु जाली सांकेतिक मुद्रा के बदले में असली चांदी का भुगतान करते-करते राजकोष लगभग पूरी तरह से खाली हो गया.

मंगोल तर्माशिरीन की मृत्यु के बाद औक्सश पर्वत के पार के क्षेत्र की अराजक स्थिति का लाभ उठाकर मुहम्मद तुगलक़ खुरासान और कराचिल को जीतना चाहता था. किन्तु उसका यह अभियान नितांत अव्यावहारिक था.

खुसरो मलिक के नेतृत्व में 350000 की सेना रास्ता भटकते हुए, मुश्किलों से जूझते हुए असफल होकर जब वापस लौटी तो उस विशाल सेना में से केवल मुट्ठी भर सैनिक ज़िन्दा बचे थे. मुहम्मद बिन तुगलक़ के शासनकाल में सागर, मुल्तान, सुनाम, कड़ा, बीदर और गुलबर्गा में असफल विद्रोह हुए. किन्तु बंगाल, मालाबार, तेलंगाना, कांची में सफल विद्रोह हुए. दक्षिण में 1336 में विजयनगर और 1347 में बहमनी साम्राज्य की स्थापना हुई.

एक शासक के रूप में मुहम्मद बिन तुगलक़ का आकलन करते समय किसी भी इतिहासकार ने उसे सफल नहीं बताया है. उसकी हर असफल योजना ने उसको पागल और सनकी समझने वालों की संख्या में वृद्धि की. सुल्तान फ़िरोज़ शाह तुगलक़ को राजनीतिक दृष्टि से अस्थिर, अमीरों और प्रजा के मध्य एक समान अप्रिय, आर्थिक दृष्टि से खोखला और चारों ओर से दुश्मनों से घिरा हुआ साम्राज्य मिला था. उसने अपने अमीरों की निष्ठा प्राप्त की और अपनी प्रजा की दृष्टि में उसकी छवि एक प्रजा-पालक सुल्तान के रूप में स्थापित हुई. उसके शासन काल में राज्य की आर्थिक स्थिति सुधरी. किन्तु उसकी धर्मान्धता के कारण बहु-संख्यक हिन्दू प्रजा दुखी थी.

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने यमुना, घग्घर और सतलज पर 5 बड़ी नहरों का निर्माण कराया. राज्य की आय बढ़ाने के लिए उसने 1200 फलों के बाग लगवाए थे. उसने आतंरिक व्यापार के मार्ग की अनेक बाधाओं को दूर किया. वह एक महान निर्माता था. सार्वजनिक निर्माण-कार्य तथा नगर-निर्माण में उसकी गहन अभिरुचि थी. उसने अनेक नगरों की स्थापना की. उसने चिकित्सालयों, अनाथालयों, विधवाश्रमों तथा मदरसों की स्थापना की किन्तु इनका लाभ केवल मुस्लिम समाज तक सीमित रहा. वह साहित्यकारों और इतिहासकारों का संरक्षक था

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ द्वारा अपने 180,000 निजी दासों की नियुक्ति, जागीरदारी व्यवस्था को पुनर्जीवित करना और सैनिक तथा प्रशासनिक पदों को पुश्तैनी बनाना तथा घूसखोरी को अनदेखा करना ऐसे कार्य थे जिन से कि सल्तनत कमज़ोर हुई. उसकी धार्मिक कट्टरता की नीति भी उसके साम्राज्य के लिए हानिकारक सिद्ध हुई. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ की मृत्यु के तुरंत बाद तुगलक़ राज्यवंश का पतन प्रारंभ हो गया. एशिया में अपने समय के सबसे बड़े बड़ा विजेता तैमूर का भारत आक्रमण भारत के लिए और तुगलक़ साम्राज्य के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ. तैमूर मुख्य रूप से भारत को लूटने के लिए ही आया था पर उसका एक उद्देश्य गैर-मुस्लिमों के पूजा-स्थलों को ध्वस्त करना भी था.

तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश किया. उसने दिल्ली को न केवल लूटा अपितु क़त्ल-ए-आम का हुक्म भी दे दिया. भारत के इतिहास की यह सबसे बड़ी लूट थी और सबसे बड़ा नर-संहार था. तैमूर के आक्रमण ने पहले से लड़खड़ाती दिल्ली सल्तनत पर एक और ज़बरदस्त प्रहार किया. नाम के तुगलक़ सुल्तान का अब दिल्ली के आसपास के क्षेत्र पर भी अधिकार नहीं रह गया. दिल्ली सल्तनत से टूटकर अनेक स्वतंत्र प्रांतीय राज्यों का उदय हुआ. तैमूर के आक्रमण के बाद राजस्थान में मेवाड़ राज्यवंश तथा मारवाड़ राज्यवंश प्रभावशाली हो गए.तुगलक़ राज्यवंश के पतन के लिए मुख्यतः मुहम्मद बिन तुगलक़ की अव्यावहारिक योजनाएं, फ़िरोज़ शाह तुगलक़ की सैनिक दुर्बलता, उसकी धर्मान्धता की नीति, उसके उत्तराधिकारियों की अयोग्यता और तैमूर का आक्रमण उत्तरदायी थे. हिन्दू-प्रतिरोध तथा अमीरों की महत्वाकांक्षायें भी इसके लिए काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार थी. 1414 में तैमूर के कृपापात्र, सिंध, मुल्तान तथा लाहौर के सूबेदार खिज्र खान सैयद ने दिल्ली पर अधिकार कर सैयद राज्यवंश की स्थापना की जिस कारण तुगलक़ राज्यवंश की समाप्ति हो गयी.

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

जूना खान – सुल्तान बनने से पूर्व मुहम्मद बिन तुगलक़ का नाम

दीवान-ए-कोही – मुहम्मद बिन तुगलक़ द्वारा स्थापित इस विभाग का मुख्य कार्य भू-राजस्व की व्यवस्था करना तथा अधिक से अधिक भूमि को कृषि-योग्य बनाना था.

मेसोपोटामिया – ईराक़

गाज़ी – विधर्मियों का नाश करने वाला

क़त्ल-ए-आम – नर-संहार

अभ्यास प्रश्न

निम्न लिखित पर चर्चा कीजिए

1. एक शासक के रूप में गियासुद्दीन तुगलक़ का आकलन
2. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ के प्रशन के गुण एवं दोष
3. तैमूर के भारत-आक्रमण के परिणाम

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 1.3.5 एक शासक के रूप में गियासुद्दीन तुगलक़ का आकलन

2. देखिए 1.5.3 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ का राजस्व प्रशासन तथा 1.5.5 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ के जन-कल्याणकारी कार्य एवं 1.5.6 फ़िरोज़ शाह तुगलक़ द्वारा दिल्ली सल्तनत को कमज़ोर बनाने वाले कार्य

3. देखिए 1.6.3.1 दिल्ली की लूट और क़त्ल-ए-आम तथा 1.6.3.2 दिल्ली सल्तनत का विघटन एवं 1.6.3.3 हिन्दू शक्तियों का उदय

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

मेजर, आर. एच - 'इंडिया इन दि फ़िफ्टीन्थ सेंचुरी, लन्दन, 1857

इलियट, एच. एम., डाउसन, जे – 'हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया एज़ टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियंस', 8 भागों में, लन्दन, 1867

मजूमदार, आर. सी. (संपादक) – 'दि डेल्ही सल्तनत' बॉम्बे, 1980

सैयद, एम. एच. – 'हिस्ट्री ऑफ़ डेल्ही सल्तनत' नई दिल्ली, 2005

चंद्रा, सतीश – 'हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवल इंडिया', हैदराबाद, 2007

ईश्वरी प्रसाद – 'ए हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवल इंडिया' दिल्ली, 2018

रिजवी, एस. ए. ए. – 'तुगलक़कालीन भारत, भाग 1 तथा भाग 2, अलीगढ़, 1956

हुसेन. ए. एम. – 'दि तुगलक़ डायनेस्टी' कलकत्ता, 1963

इब्न बतूता – 'दि रहला' (अंग्रेज़ी अनुवाद – हुसेन, एम) बड़ौदा, 1953

हबीब, इरफ़ान – 'दि इकनोमिक हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवल इंडिया, 1200-1500' लन्दन, 2011

जैक्सन, पीटर – 'दि डेल्ही सल्तनत: पॉलिटिकल एंड मिलिट्री हिस्ट्री' केम्ब्रिज, 2003

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

मुहम्मद बिन तुगलक़ की योजनाओं के परिप्रेक्ष्य में उसके चरित्र का आकलन कीजिए.

दिल्ली सल्तनत का पतन: सैयद तथा लोदी वंश

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 सैयद राज्यवंश

- 2.3.1 खिज्र खान सैयद (1414-1421)
- 2.3.2 मुबारक शाह सैयद (1421-1434)
- 2.3.3 मुहम्मद शाह (1434-1445)
- 2.3.4 अलाउद्दीन शाह (1445-1451)

2.4 लोदी राज्यवंश 1451-1526

- 2.4.1 बहलोल लोदी (1451-1489)
- 2.4.2 सिकंदर लोदी (1489-1517)
- 2.4.3 इब्राहीम लोदी (1517-1526)

2.5 अफगान राजत्व का सिद्धांत

- 2.5.1 बहलोल लोदी द्वारा पोषित राजत्व का सिद्धांत
- 2.5.2 सिकंदर लोदी द्वारा राजत्व के दैविक सिद्धांत की स्थापना
- 2.5.3 राजत्व के दैविक सिद्धांत को स्थापित करने में इब्राहीम लोदी की असफलता

2.6 दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण

- 2.6.1 हिन्दू प्रतिरोध
- 2.6.2 किसी भी राज्यवंश में निरंतर योग्य शासकों का न होना तथा शासन का स्वरुप ढीला-ढाला होना
- 2.6.3 राजनीतिक अस्थिरता और आर्थिक संकट
- 2.6.4 दिल्ली सल्तनत के अमीरों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ
- 2.6.5 तैमूर के भारत-आक्रमणके कारण दिल्ली सल्तनत का विघटन
- **2.6.6 दिल्ली सल्तनत के पतन का मुख्य कारण – पानीपत का प्रथम युद्ध**
  - **2.6.6.1 पानीपत के प्रथम युद्ध से पूर्व भारत पर बाबर के चार आक्रमण**
  - **2.6.6.2 बाबर का भारत पर पांचवां आक्रमण और पानीपत का प्रथम युद्ध**
  - **2.6.6.4 पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर की सफलता के कारण**
  - **2.6.6.5 पानीपत के प्रथम युद्ध के परिणाम**

2.7 सारांश

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.9 पारिभाषिक शब्दावली

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

तैमूर के आक्रमण ने पहले से लड़खड़ाती दिल्ली सल्तनत पर एक और ज़बरदस्त प्रहार किया. नाम के तुगलक़ सुल्तान का अब दिल्ली के आसपास के क्षेत्र पर भी अधिकार नहीं रह गया. एक समय तो ऐसा भी आया कि दिल्ली से आठ मील दूर पालम में एक और प्रतिद्वंदी सुल्तान उठ खड़ा हुआ. इस समय एक व्यंग्योक्ति प्रसिद्द हुई – 'शहंशाह-ए-आलम की सल्तनत केवल दिल्ली से पालम तक की है.'

मुल्तान और तदन्तर सिंध तथा लाहौर पर तैमूर का कृपापात्र खिज्र खान अधिकार कर चुका था और 1414 तक स्थिति यह आ गयी कि खिज्र खान को दिल्ली पर भी अधिकार करने से रोकने के लिए तुगलक़ राज्यवंश का कोई भी व्यक्ति आगे नहीं आया और दिल्ली में खिज्र खान द्वारा बिना किसी विरोध के, सैयद राज्यवंश की स्थापना कर दी गयी.

सैयद राज्यवंश ने तैमूर राज्यवंश की आधीनता स्वीकार करते हुए 37 वर्ष तक दिल्ली सल्तनत पर शासन किया और इस प्रकार उसने दिल्ली सल्तनत के स्वतंत्र अस्तित्व को ही तैमूर राज्यवंश के पास गिरवी रख दिया. ऐसी परिस्थिति में दिल्ली सल्तनत का पतन तो अवश्यम्भावी था.

सैयद राज्यवंश के शासक जो ख़ुद को सुल्तान कहने का साहस भी नहीं कर सकते थे, उनकी प्रजा के हृदय में उनके प्रति न तो श्रद्धा की भवन थी और न ही उनसे उसे किसी प्रकार का भय लगता था. प्रांतीय सूबेदार और जागीरदार की तो बात ही क्या, दिल्ली के आस-पास के ज़मींदार तक उन्हें लगान, नज़राना और पेशकश देने को तैयार नहीं होते थे और शासक को हर वर्ष लगान वसूलने तक के लिए सैनिक अभियान करने पड़ते थे.

सैयद राज्यवंश के शासनकाल में प्रांतीय शक्तियों का उदय हुआ और सैयद राज्यवंश के अंतिम दो शासक – मुहम्मद शाह और अलाउद्दीन शाह तो नाम-मात्र के शासक रह गए. अंततः 1451 में अलाउद्दीन शाह ने दिल्ली का तख़्त बहलोल लोदी के लिए छोड़कर ख़ुद बदायूं के लिए प्रस्थान कर दिया.

1451 में बहलोल लोदी दिल्ली का सुल्तान बना किन्तु उसने अफ़गान राजत्व के लोकतांत्रिक सिद्धांत को अपनाकर अपने अफ़गान अमीरों को राज्य में हिस्सेदार माना न कि अपना अधीनस्थ अधिकारी. इस व्यावहारिक नीति को अपनाकर उसने अपने साम्राज्य को स्थायित्व तो दिया किन्तु इस से सुल्तान पद की गरिमा को अवश्य ठेस पहुँची. बहलोल लोदी ने साम्राज्य का विस्तार पंजाब से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश तक हो गया. जौनपुर पर विजय उसकी सबसे बड़ी सैनिक उपलब्धि थी.

बहलोल लोदी के उत्तराधिकारी, सिकंदर लोदी ने, बलबन और अलाउद्दीन खिलजी की भांति अपनी तलवार के ज़ोर पर अपने अमीरों को राजत्व के दैविक सिद्धांत को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया. किन्तु उसके द्वारा राजत्व के दैविक सिद्धांत को प्रतिष्ठित किए जाने के प्रयास को उसके अफगान अमीरों ने कभी दिल से नहीं अपनाया.

सिकंदर लोदी ने ग्वालियर, जौनपुर और बिहार को जीत कर साम्राज्य-विस्तार भी किया और प्रशासनिक सुधार भी किए किन्तु अपनी धर्मान्धता के कारण वह अपनी बहु-संख्यक हिन्दू प्रजा की निष्ठा प्राप्त नहीं कर सका.

सिकंदर लोदी का उत्तराधिकारी इब्राहीम लोदी न तो अपने पितामह बहलोल लोदी जैसा व्यावहारिक था और न अपने पिता सिकंदर लोदी जैसा सफल विजेता. फिर भी राजत्व के दैविक सिद्धांत को प्रतिष्ठित करने में उसने अपने पिता का ही अनुकरण किया. उसको अपने अमीरों के विद्रोहों को कुचलने के लिए कठोरता की नीति अपनानी पड़ी पर इस से आलम खान लोदी जैसे उसके अपने सम्बन्धी तक उसके विरुद्ध खड़े हो गए.

इब्राहीम लोदी के शासनकाल में बाबर के भारत पर आक्रमण हुए किन्तु आतंरिक विद्रोहों को कुचलने में व्यस्त इब्राहीम लोदी उत्तर-पश्चिम से होने वाले आक्रमणों के प्रति असावधान ही रहा. अंततः बाबर पंजाब को जीतते हुए दिल्ली के पास पानीपत तक बढ़ आया.

21 अप्रैल, 1526 को बाबर और इब्राहीम लोदी के सेनाओं के मध्य पानीपत का प्रथम युद्ध हुआ जिसमें कि तुलुगमा रणनीति का प्रयोग कर बाबर ने इब्राहीम लोदी पर निर्णायक विजय प्राप्त की. इब्राहीम लोदी रणक्षेत्र में मारा गया और दिल्ली व आगरा पर अधिकार कर के बाबर ने उत्तर भारत में मुग़ल साम्राज्य की स्थापना की.

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको तैमूर के आक्रमण के बाद दिल्ली सल्तनत के विघटन और तुगलक़ राज्यवंश के पतन के परिप्रेक्ष्य में सैयद राज्यवंश तथा लोदी राज्यवंश के काल में दिल्ली सल्तनत की समाप्ति और मुग़ल राज्यवंश की स्थापना से आपको अवगत कराना है. इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- तैमूर के भारत आक्रमण से दिल्ली सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया तेज़ हो जाने के कारण नए स्वतंत्र राज्यों के उदय के विषय में.
2- सैयद राज्यवंश की राजनीतिक एवं सैनिक दुर्बलता के के विषय में
3- लोदी राज्यवंश के परिप्रेक्ष्य में अफ़गान राजत्व के सिद्धांत की उपयोगिता के विषय में
4- सिकंदर लोदी तथा इब्राहीम लोदी द्वारा राजत्व के दैविक सिद्धांत को स्थापित करने से लोदी साम्राज्य के बिखरने के विषय में
5- बाबर के भारत पर किए गए आक्रमणों के विषय में
6- पानीपत के प्रथम युद्ध में विजय के उपरांत भारत में बाबर द्वारा मुग़ल साम्राज्य की स्थापना के विषय में
7- दिल्ली सल्तनत के पतन के प्रमुख कारणों के विषय में

2.3 सैयद राज्यवंश

2.3.1 खिज्र खान सैयद (1414-1421)

दिल्ली सल्तनत से टूटकर अनेक स्वतंत्र प्रांतीय राज्यों का उदय हुआ. 1414 में दिल्ली की सत्ता उस शासक के अधिकार में आई जिसको कि स्वयं को सुल्तान कहलाने में कोई रूचि नहीं थी. 37 वर्षों तक सैयद राज्यवंश (1414-1451) का उत्तर भारत पर नाम मात्र का शासन रहा. इस समय दिल्ली सल्तनत पूरी तरह विघटित हो चुकी थी.

सैयद राज्यवंश दिल्ली सल्तनत के इतिहास का एक प्रभावहीन तथा दुर्बल राज्यवंश था. सैयदों को स्वयं को सुल्तान कहलाने का अधिकार भी प्राप्त नहीं हुआ था. तैमूर ने पंजाब, दिल्ली आदि पर आक्रमण करने के बाद अपने वतन लौटते समय खिज्र खान सैयद को मुल्तान का सूबेदार नियुक्त किया था. तुगलक़ वंश के पतन के बाद खिज्र खान ने सिंध और लाहौर पर भी अधिकार कर लिया और 1414 में उसने दिल्ली की अराजकतापूर्ण स्थिति का लाभ उठाकरउस पर भी अधिकार कर लिया किन्तु उसकी वैधानिक स्थिति तैमूर के - 'रैयत-ए-आला' (जागीरदार) की ही रही, सुल्तान की नहीं.

दिल्ली पर अधिकार करने के बाद खिज्र खान सैयद ने अपने नाम पर नहीं, अपितु तैमूर के उत्तराधिकारी शाहरुख मिर्ज़ा के नाम पर ख़ुतबा पढ़वाया. उसके शासनकाल में ढाले गए सिक्कों पर उसका नाम नहीं, अपितु पूर्व तुगलक़ शासकों का ही नाम अंकित किया गया. खिज्र खान सैयद ने दिल्ली सल्तनत से स्वतंत्र हुए क्षेत्रों को फिर से जीतने का प्रयास किया किन्तु इटावा, कन्नौज और कम्पिल को फिर से दिल्ली सल्तनत में मिलाने के उसके प्रयास विफल हुए. कटेहर के राजा हरसिंह के विद्रोह को कुचलने के लिए खिज्र खान के वज़ीर मलिक-उस-शर्क (उपाधि – 'ताज-उल-मुल्क') ने उसे 1415 में पराजित कर खिज्र खान की आधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया. हरसिंह ने एक बार फिर विद्रोह किया और एक बार फिर उसे ताज-उल-मुल्क ने ही परास्त किया.

बयाना और ग्वालियर पर छापे मारकर किसानों से लगान वसूला गया किन्तु इन में से किसी भी क्षेत्र पर दिल्ली सल्तनत का स्थायी प्रभुत्व स्थापित नहीं हो सका.दिल्ली सल्तनत को उत्तर-पश्चिम से खोखरों से ख़तरा था तो पूर्व में जौनपुर के शर्की उसके लिए ख़तरा बने हुए थे. इधर राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर सल्तनत के अमीर भी आए दिन विद्रोह का झंडा बुलंद कर देते थे. तुर्क अमीरों के विद्रोहों का दमन करने में जब खिज्र खान सैयद को सफलता नहीं मिली तो उसने विद्रोही अमीरों से समझौता करने की नीति अपनाली. सैयद राज्यवंश के शासनकाल में राजस्व वसूल करने के लिए भी सैनिक अभियान करने पड़ते थे. खिज्र खान सैयद के वज़ीर, ताज-उल-मुल्क ने इस अराजकतापूर्ण स्थिति को सुधारने का प्रयास किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली. खिज्र खान सैयद को इस बात का श्रेय अवश्य दिया जा सकता है कि उसने पंजाब को दिल्ली सल्तनत से एक बार फिर जोड़ने में सफलता प्राप्त की.

2.3.2 मुबारक शाह सैयद (1421-1434)

मुबारक शाह अपने पिता से अधिक महत्वकांक्षी था. यद्यपि उसने अपने पिता के समान ही तैमूर के राज्यवंश के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की किन्तु अपने नाम के सिक्के चलवा कर और अपने नाम का खुतबा पढ़वा कर उसने अपनी स्वतंत्र शक्ति का प्रदर्शन भी कर दिया. मुबारक शाह सैयद को तख्तनशीन होने के बाद अपने पिता खिज्र खान सैयद की ही भांति अपने अधीनस्थ अधिकारियों एवं अमीरों के विद्रोहों का सामना करना पड़ा. उसको भी राजस्व

वसूल करने के लिए सैनिक अभियानों का आश्रय लेना पड़ा. भटिंडा में हुए विद्रोह का उसने सफलतापूर्वक दमन किया और दोआब में हुए विद्रोह को भी उसने कुचल दिया. किन्तु वह दिल्ली पर अधिकार करने के प्रयास में असफल हो चुके जसरथ खोखर को दण्डित नहीं कर सका. दिल्ली सल्तनत के खोए हुए क्षेत्रों को फिर से जीतने में भी वह विफल रहा. दोआब में पुलाद तुर्कबच्चा के विद्रोह ने मुबारक शाह को बहुत परेशां किया अंततः अक्टूबर, 1433 में तबर्हिंदा के किले को जीत लिया गया और पुलाद तुगरबच्चा को मार डाला गया.

अपने वज़ीर सरवर-उल-मुल्क द्वारा रचे गए षड्यंत्र में मुबारक शाह की 1434 में हत्या कर दी गयी.मुबारक शाह के शासनकाल के अध्ययन के लिए यहिया बिन अहमद सरहिंदी का ग्रन्थ 'तारीख-ए-मुबारकशाही' सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है. मुबारक शाह ने यमुना नदी के किनारे मुबारकपुर शहर बसाया किन्तु अब उसके चिह्न तक उपलब्ध नहीं हैं. उसका मक़बरा जिस स्थान पर है, उसे उसके नाम पर कोटला मुबारकपुर कहते हैं.

2.3.3 मुहम्मद शाह (1434-1445)

मुहम्मद शाह का शासनकाल षड्यंत्रों और कुचक्रों का काल है. अपनी सेना की दुर्बलता के कारण मुहम्मद शाह ने पूर्व में जौनपुर के शर्कियों के हाथों कई परगने खो दिए. लाहौर और सरहिंद में बहलोल लोदी की शक्ति बहुत बढ़ गयी थी.

2.3.4 अलाउद्दीन शाह (1445-1451)

मुहम्मद शाह के बाद उसका पुत्र अलाउद्दीन शाह तो नाम–मात्र का शासक रहा. सैयद वंश के शासनकाल के अंतिम चरण में अफगान शक्ति का उत्कर्ष हो चुका था और दिल्ली सल्तनत के अनेक प्रान्त उनके कब्ज़े में थे. सैयद राज्यवंश के काल में दिल्ली के पड़ौस के क्षेत्र मेवात और संभल पर अहमद खान एक स्वतंत्र शासक बना हुआ था और रूहेलखंड से लेकर दिल्ली की सीमा तक दरिया खान लोदी का प्रभुत्व थाइसी प्रकार एटा और फर्रुखाबाद पर . मालवा और गुजरात तो पूरी तरह उनके हाथ से निकल ,बंगाल ,जौनपुर ,पंजाब .भी सैयदों का प्रभुत्व नहीं रह गया था इन परिस्थितियों में अलाउद्दीन शाह ने 1451 में स्वेच्छा से दिल्ली का तख़्त बहलोल लोदी को सौंप कर स्वयं बदायूं के लिए प्रस्थान किया.

2.4 लोदी राज्यवंश 1451-1526

2.4.1 बहलोल लोदी (1451-1489)

पंजाब का सूबेदार बहलोल लोदी 1451 तक मुल्तान, लाहौर, दीपालपुर समाना, सरहिंद, सुनाम, हिसार फिरोज़ा आदि क्षेत्रों पर अधिकार कर चुका था. 1451 में सुल्तान बनने पर बहलोल लोदी को सबसे अधिक कठिनाई पूर्व में जौनपुर के शर्की शासकों की आक्रामक नीति से निपटने में हुई थी. मुल्तान में और मालवा में बहलोल लोदी के अभियान असफल रहे थे फिर भी उसके शासनकाल दिल्ली सल्तनत का विस्तार दिल्ली, पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के एक सीमित भाग तक विस्तृत हो गया था. उसकी सबसे बड़ी सैनिक सफलता जौनपुर के शर्की शासक को परास्त करने में थी. पूर्व में उसके साम्राज्य का विस्तार उत्तर प्रदेश –बिहार की सीमा तक हो गया था. सुल्तान बनने के बाद बहलोल लोदी की अभिरुचि युद्धों में अधिक नहीं रह गयी थी, वह साम्राज्य-विस्तार से अधिक महत्व अपने

राज्य को संगठित करने को तथा जन-कल्याण को देता था. उसकी व्यावहारिक अफ़गान राजत्व के सिद्धांत की नीति ने स्वतंत्रता-प्रिय अफ़गान अमीरों को अपने नेतृत्व में संगठित करने में सफलता प्राप्त की थी.

2.4.2 सिकंदर लोदी (1489-1517)

सिकंदर लोदी की साम्राज्य-विस्तार की नीति अत्यंत सफल रही थी. उसने अपनी पिता से विरासत में मिले साम्राज्य में बयाना, धौलपुर, मंदरैल, अर्वतगढ़, शिवपुर, नारवार, चंदेरी, नागर, बिहार, तिरहुत आदि पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपने साम्राज्य में मिला लिया था. उसने जौनपुर के शर्कियों की शक्ति लगभग पूर्णतया कुचल दी थी, उसने ग्वालियर के राज्य को बहुत क्षीर्ण कर दिया था और मालवा के राज्य को भी अत्यंत दुर्बल कर दिया था किन्तु वह न तो अपने पिता के समान एक कुशल प्रशासक था और न ही अपने अमीरों तथा अपनी प्रजा में उसकी भांति लोकप्रिय. उसकी धार्मिक नीति भी कट्टर थी.

सिकंदर लोदी ने दिल्ली सल्तनत का विस्तार किया. उसने ग्वालियर पर विजय प्राप्त की और पूर्व में अपने साम्राज्य का बिहार तक विस्तार किया. बंगाल के शासक अलाउद्दीन हुसेन शाह से संधि कर पूर्व में शांति की स्थापना की. सिकंदर लोदी ने स्वतंत्र प्रकृति के अपने अफ़गान अमीरों को नियंत्रण में रखने में सफलता प्राप्त की हालांकि इस नियंत्रण में स्थायित्व नहीं था. सिकंदर लोदी ने व्यापार को बढ़ावा दिया और चूंकि व्यापार के विस्तार के लिए शांति और व्यवस्था की स्थापना आवश्यक होती है, सिकंदर लोदी ने अपने साम्राज्य में उसे स्थापित किया और व्यापार के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न कीं. 1503 में उसने आगरा शहर की नींव रक्खी.

सिकंदर लोदी अपनी धर्मान्धता के लिए कुख्यात है. जन-श्रुतियों में प्रसिद्द है की उसने कबीरदास जैसे उदार विचारक के दमन का भरसक प्रयास किया था और बोधन नामक एक ब्राह्मण को केवल इसलिए प्राण-दंड दिया था कि वह इस्लाम की भांति अन्य धर्मों में भी सत्य के दर्शन करता था. उसने नगरकोट के ज्वालामुखी मंदिर को ध्वस्त किया था और उसके पवित्र मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े करवा कर उन्हें कसाइयों को बाँट के रूप में प्रयुक्त करने के लिए दे दिया था. सिकंदर लोदी ने सैनिक अभियानों में लूटे गए धन – 'खम्स' में राज्य का हिस्सा समाप्त कर दिया.उसने भू-राजस्व के निर्धारण के लिए भूमि की नाप-जोख की प्रणाली को पुनर्जीवित किया. नाप के लिए उसके द्वारा प्रचलित 'गज़' को 'गज़-ए-सिकंदरी' कहा गया. सिकंदर लोदी ने अपने निष्पक्ष न्याय-कर्ता के रूप में प्रसिद्द मियां भुआ को 'क़ाज़ी-उल-क़ज़ात' के पद पर नियुक्त किया.

फ़िरोज़ तुगलक़ के शासनकाल के बाद सिकंदर लोदी के शासनकाल में भी खाद्य पदार्थों के दामों में कमी आई क्योंकि उसने अनाज पर से चुंगी हटा दी थी और उस पर लिया जाने वाला 'ज़कात' भी हटा दिया. उसने गड़े हुए खज़ाने में से राज्य द्वारा लिया जाने वाला हिस्सा भी समाप्त कर दिया. व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए उसने अनेक व्यापारिक करों को हटा दिया. साम्राज्य पर नियंत्रण रखने के लिए और विद्रोह की संभावनाओं को रोकने के लिए उसने अपने गुप्तचर विभाग को सक्षम बनाया.

स्थापत्य कला की दृष्टि से लोदी काल में तुगलक़कालीन खान-ए-जहाँ तेलंगनी के मकबरे के अष्टकोणिक कक्ष की शैली को अपनाया गया. इस काल में अलंकरण के लिए रंगीन टाइल्स का प्रयोग किया गया. लोदी काल की इमारतों में भवन-निर्माण कला के अभिन्न अंग के रूप में उद्यान-योजना को शामिल किया गया. इसका सबसे उत्कृष्ट

उदाहरण लोदी गार्डन्स में मिलता है. सिकंदर लोदी के मक़बरे का प्रभाव मुग़ल इमारतों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है. सिकंदर लोदी के वज़ीर द्वारा बनवाई गयी मोठ की मस्जिद को उसकी ज्यामितीय समरूपता तथा लाल पत्थर और सफ़ेद संगमरमर के सुन्दर सम्मिश्रण के कारण जॉन मार्शल लोदी काल की सबसे सुन्दर इमारत मानता है.

बलबन और अलाउद्दीन खिलजी के बाद सिकंदर लोदी ही वह सुल्तान था जिसने कि राजत्व के दैविक सिद्धांत को अपने राज्य में सफलतापूर्वक स्थापित किया था. किन्तु अफ़गान राजत्व के लोकतान्त्रिक सिद्धांत के स्थान पर राजत्व के दैविक सिद्धांत को स्वतंत्रता-प्रिय अफ़गान अमीरों ने कभी दिल से स्वीकार नहीं किया. सुल्तान की मृत्यु पर अवसर मिलते ही उन्होंने नए सुल्तान इब्राहीम लोदी के लिए कठिनाइयाँ खड़ी कर दीं. इस प्रकार सिकंदर लोदी ने अपने उत्तराधिकारी इब्राहीम लोदी को विरासत में अफ़गान अमीरों की बगावत दी थी.

2.4.3 इब्राहीम लोदी (1517-1526)

इब्राहीम लोदी को सुल्तान बनने के लिए अपनी पिता के राज्य को अपने भाई जलाल खान लोदी के साथ बांटना पड़ा किन्तु सुल्तान बनने के एक वर्ष बाद ही 1518 में उसने जलाल खान को मौत के घाट उतार कर उसके हिस्से के राज्य पर भी अपना अधिकार कर लिया.इब्राहीम लोदी भी साम्राज्य-विस्तार के विषय में अपने पिता की भांति महत्वाकांक्षी था. उसने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया और एक सीमा तक सबसे प्रतापी राजपूत शासक राणा सांगा की गतिविधियों पर भी अंकुश लगाया किन्तु वह अपने अमीरों की विद्रोही प्रकृति पर अंकुश लगाने में असफल रहा. उत्तर-पश्चिम से लगातार होने वाले आक्रमणों को रोकने में भी वह असफल रहा. पानीपत के प्रथम युद्ध से पहले बाबर, भारत पर चार आक्रमण और भी कर चुका था किन्तु इब्राहीम लोदी की ओर से उसको रोकने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया था.

2.5 अफगान राजत्व का सिद्धांत

2.5.1 बहलोल लोदी द्वारा पोषित राजत्व का सिद्धांत

अफगान जाति प्राचीन काल से आजतक क़बीलाई व्यवस्था पर विश्वास करती आई है और इसके लिए कुनबा तथा बिरादरी का महत्त्व राज्य तथा शासक दोनों से ही अधिक महत्वपूर्ण रहा है. इसके अतिरिक्त अफगान प्रकृति से ही उग्र, स्वतंत्रता-प्रिय तथा स्वाभिमानी होते हैं. उन्हें किसी के आधीन होकर जीवन बिताना स्वीकार्य नहीं है, इसकी तुलना में अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए उन्हें लड़ते-लड़ते मर जाना स्वीकार्य होता है. दूसरी जाति की आधीनता की तो बात ही क्या, उन्हें तो अपनी बिरादरी के भी किसी व्यक्ति की आधीनता स्वीकार्य नहीं होती है. इस परिप्रेक्ष्य में हम समझ सकते हैं कि अफगानों को राजत्व का दैविक सिद्धांत कभी मान्य नहीं हो सकता. अफगान अमीर सुल्तान को न तो पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि मान सकते थे और न ही उसकी आज्ञा को ईश्वर का आदेश मान सकते थे. सुल्तान को ईश्वर का प्रिनिधि मानना तो दूर वो तो उसे अपना स्वामी मानने को भी तैयार नहीं हो सकते थे. इस प्रकार अफगानों को सुल्तान बलबन तथा अलाउद्दीन खिलजी द्वारा पोषित राजत्व का दैविक सिद्धांत किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं था. अफगान राजत्व का सिद्धांत पूर्णतया लोकतान्त्रिक था. सुल्तान की नियुक्ति अमीरों के द्वारा चुने जाने पर निर्भर निर्भर करती थी. और इस दृष्टि से सुल्तान अमीरों के प्रति उत्तरदायी था.

अफगान राजत्व का सिद्धांत – ट्राइबल कांसेप्ट ऑफ़ किंगशिप’ अर्थात् राजत्व की क़बीलाई अवधारणा थी. इसमें सुल्तान अमीरों का मुखिया होता था. उसे हम अमीरों का अमीर अथवा ‘अमीर-उल-उमरा’ कह सकते थे. अफगान अपने सुल्तान को ‘मसनद-ए-आली’ भी कहते थे जो कि अमीरों के मध्य से ही चुना जाता था. सुल्तान और अमीरों, सभी के लिए कबीला और बिरादरी महत्वपूर्ण होता था. अमीरों का अस्तित्व सुल्तान पर निर्भर नहीं होता था. अमीर तो कबीला बनाता था और अमीर अपने से ही एक अमीर को अपना मुखिया अथवा अपना सुल्तान बनाते थे. इस प्रकार अमीर-सुल्तान सम्बन्ध में पलड़ा अमीरों की ओर ही झुकता था अर्थात् कोई भी निर्णय लेने में उनकी राय का महत्त्व सुल्तान की राय से अधिक हुआ करता था.

फ़रिश्ता के अनुसार बहलोल लोदी के लिए इतना ही पर्याप्त था कि सल्तनत के साथ उसका अपना नाम जुड़ जाता. उसे अपने साथियों पर हुकूमत करने की कोई इच्छा नहीं थी. बहलोल लोदी ने जब दिल्ली के तख़्त पर अधिकार करने का प्रयास किया तो उसे अफगान अमीरों के सहयोग की आवश्यकता पड़ी. दिल्ली सल्तनत के अब तक के सभी सुल्तान तुर्क थे और भारत में तुर्कों की संख्या अफगानों की संख्या से कई गुनी थी. बहलोल लोदी को उसके इस प्रयास में विदेशों में रह रहे अफगान अमीर तभी सहयोग दे सकते थे जब वो उसकी सल्तनत में उसके अधीनस्थ कर्मचारी नहीं, अपितु उसकी सल्तनत में उसके हिस्सेदार हों. पूर्वी अफगानिस्तान में स्थित रोह के अफगानों को अपने अभियान में सम्मिलित होने का आमंत्रण देते हुए बहलोल लोदी ने उन्हें लिखा था –

‘प्रभुसत्ता नाम-मात्र को मुझमें अवश्य निहित रहेगी किन्तु हम जो भी क्षेत्र जीतेंगे उनमें हम भाइयों की बराबर की हिस्सेदारी रहेगी.’

बहलोल लोदी का यह कथन, अफगान राजत्व के सिद्धांत को पूर्ण-रूपेण स्पष्ट कर देता है. बहलोल लोदी आजीवन अपने अमीरों के सरदार, उनके मुखिया और उनके बड़े भाई की भूमिका निभाता रहा. उसने उनका मालिक, उनका आक़ा बनने की कभी कोशिश नहीं की. वह अपने अमीरों के सामने शाही तख़्त पर भी नहीं बैठता था. वह अमीरों के साथ उठता-बैठता, खाता-पीता था, दोस्तों की तरह उनके घर मिलने जाया करता था. उसने जागीरों और संपत्ति के वितरण में भी उन्हें हिस्सेदार ही समझा. वह शक्ति के विकेंद्रीकरण में विश्वास करता था और राज्य की समस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित करने का उसने कभी प्रयास नहीं किया. उसके अमीरों को अपनी-अपनी जागीरों में लगभग स्वतंत्र शासकों के रूप में शासन करने का अधिकार था. बहलोल लोदी के शासनकाल दिल्ली सल्तनत एक राज्य-संघ के समान थी.

निष्ठापूर्वक अफगान राजत्व के सिद्धांत का पालन करते हुए भी और शक्ति के विकेंद्रीकरण की नीति अपनाते हुए भी बहलोल लोदी को अपने अमीरों के विद्रोहों का सामना करना पड़ा लेकिन उसे उनका दमन करने में सफलता मिली. दिल्ली सल्तनत के इतिहास में बहलोल लोदी का शासनकाल (1451-1488) सबसे लम्बा रहा और वो भी तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता तथा राजपूत एवं तुर्क प्रतिरोध के मध्य. बहलोल लोदी के इस दीर्घकालीन शासनकाल का बहुत कुछ श्रेय उसके द्वारा अफगान राजत्व के सिद्धांत के अपनाने को दिया जा सकता है. अफगान राजत्व का सिद्धांत अफगानिस्तान के लिए तो उपयुक्त था किन्तु भारत जैसे देश में जहाँ अनेक जातियां थीं और जहाँ

राजत्व के दैविक सिद्धांत की परंपरा थी, उसकी उपयुक्तता संदेहास्पद थी. इसीलिए बल्होल लोदी के उत्तराधिकारी सिकंदर लोदी और उसके उत्तराधिकारी इब्राहीम लोदी ने अफगान राजत्व के सिद्धांत का अनुगमन नहीं किया.

2.5.2 सिकंदर लोदी द्वारा राजत्व के दैविक सिद्धांत की स्थापना

सिकंदर लोदी (1489-1517) को राज्यारोहण के समय अमीरों के प्रतिरोध के कारण बहुत कठिनाई हुई थी. सुल्तान के रूप में एक सुनार माँ का बेटा (अर्थात् सिकंदर लोदी) बहलोल लोदी के चचेरे भाई ईसा खान को स्वीकार्य नहीं था. सिकंदर लोदी अपनी योग्यता के बल पर सुल्तान बन गया और सुल्तान बनते ही उसने यह निश्चय कर लिया कि वह अपने अफगान अमीरों की स्वच्छंदता तथा उद्दंडता को नियंत्रित करेगा. उसने राजत्व के सिद्धांत का स्वरुप बदलकर उसे तुर्क राजत्व के सिद्धांत के समान बना दिया. अब सुल्तान अमीरों का अमीर नहीं, अपितु उनका स्वामी था. सिकंदर लोदी ने बलबन तथा अलाउद्दीन खिलजी से प्रेरणा प्राप्त कर अपने पिता के समय में सुल्तान के पद की खोई हुई गरिमा तथा प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित किया और दरबार में सुल्तान के समक्ष कोर्निश जैसा अभिवादन आवश्यक कर दिया. अब सुल्तान के समक्ष सबको खड़ा रहना पड़ता था और अमीरों को शाही फ़रमान का सम्मान करते हुए उसे मीलों पैदल चलकर ग्रहण करना पड़ता था. सिकंदर लोदी ने अमीरों की महत्वाकांक्षा कुचलने के लिए उनके आर्थिक साधनों को सीमित कर दिया तथा उनकी गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए अपने गुप्तचर नियुक्त कर दिए. उसने शक्ति के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ की और इस प्रकार अमीरों की राज्य में हिस्सेदारी की परंपरा को समाप्त कर दिया. इस से यह प्रतीत होने लगा था कि सिकंदर लोदी ने अपने अमीरों की स्वच्छंद प्रकृति पर नियंत्रण स्थापित कर लिया है. किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं था. सिकंदर की शक्ति से भयभीत होकर अफगान अमीरों ने ऊपरी तौर पर उसके द्वारा राजत्व के सिद्धांत में परिवर्तन को स्वीकार कर लिया था किन्तु वो पुनः अफगान राजत्व के सिद्धांत को प्रतिष्ठित करने का अवसर देख रहे थे.

2.5.3 राजत्व के दैविक सिद्धांत को स्थापित करने में इब्राहीम लोदी की असफलता

1489 में सिकंदर लोदी की मृत्यु होते ही अफगान अमीर अफगान राजत्व के सिद्धांत को पुनर्प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील हो गए. किन्तु इब्राहीम लोदी ने भी अपने पिता सिकंदर लोदी की ही भांति अमीरों के दमन की नीति अपनाई और उसने भी राजत्व के सिद्धांत को तुर्कों तथा हिन्दुओं के राजत्व के दैविक सिद्धांत के अनुरूप ढालना चाहा. वह पूर्ण निरंकुश शासक बनने के लिए कटिबद्ध था. इब्राहीम लोदी ने सुल्तान बलबन की भांति यह घोषित किया कि सुल्तान का कोई सम्बन्धी नहीं होता. उसने अफगानी परंपरा को समाप्त कर अपने अमीरों को दरबार में हाथ बांधकर और सर झुककर खड़े रहने के लिए बाध्य किया. बहलोली अमीरों के और सिकंदरी अमीरों ने नवयुवक सुल्तान की दमनकारी नीतियों का विरोध किया.

इब्राहीम लोदी ने आज़म हुमायूँ शेरवानी को इसलिए क़ैद करवाया क्योंकि उसने सिकंदर लोदी की मृत्यु के उपरांत उठे उत्तराधिकार के विवाद पर जलाल खान का पक्ष लिया था. जेल में ही आज़म हुमायूँ शेरवानी की मृत्यु हो गयी थी. आज़म हुमायूँ शेरवानी के पुत्र इस्लाम खान ने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया जिसने कि युद्ध का रूप ले लिया. इब्राहीम लोदी ने इस्लाम खान के विद्रोह का दमन तो कर दिया किन्तु इस से वह स्वातंत्र्यप्रिय अफगान अमीरों की निष्ठा तथा स्वामिभक्ति प्राप्त नहीं कर सका.

बिहार के सूबेदार, मियां हुसेन फ़र्मूली, मियां मुआर (सिकंदर लोदी का वजीर), पंजाब के सूबेदार दौलत खान लोदी तथा उसके पुत्र दिलावर खान के साथ इब्राहीम लोदी ने अत्यंत कठोर व्यवहार किया. सुल्तान अमीरों के दिल में अपने कोप का भय स्थापित कर उनकी विद्रोह करने हिम्मत तोड़ना चाहता था. लेकिन ज्यों-ज्यों सुल्तान ने शक्ति के केन्द्रीकरण के प्रयासों को गति प्रदान की और ज्यों-ज्यों उसने अफगान अमीरों की स्वच्छंदता का दमन करने का प्रयास किया, उसकी पकड़ अपनी सल्तनत पर से तथा अपने अमीरों पर से कमज़ोर होती चली गयी.

वास्तव में लोदियों के अधीन दिल्ली सल्तनत, विभिन्न जागीरों और प्रान्तों के ढीले-ढाले, काम चलाऊ संघ से अधिक कुछ नहीं थी. बढ़ते हुए राजपूत प्रतिरोध तथा उत्तर पश्चिम से निरंतर हो रहे आक्रमणों के वातावरण में अफगान राजत्व के सिद्धांत में आमूल परिवर्तन करने का प्रयास नितांत अव्यवहारिक था.इब्राहीम लोदी को अपनी अव्यवहारिक नीति का मूल्य चुकाना पड़ा. उसका राज्य विघटित होने लगा. अनेक अमीर उसके विरुद्ध हो गए. इब्राहीम लोदी से कुपित पंजाब के सूबेदार दौलत खान लोदी ने तो बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित भी कर दिया.

इस प्रकार सिकंदर लोदी तथा इब्राहीम लोदी ने अफगान राजत्व के सिद्धांत में परिवर्तन करने के प्रयास में लोदी राज्य वंश के पतन के द्वार खोल दिए. जो अफगान अमीर, बिरादरी, क़बीले और कुनबे की खातिर बहलोल लोदी का साथ देने आए थे उन्होंने और उनके परवर्ती अमीरों ने सिकंदर लोदी तथा इब्राहीम लोदी की अफगान राजत्व के सिद्धांत को आमूल रूप से परिवर्तित करने के प्रयास के विरुद्ध विद्रोह कर दिया.

2.6 दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण

2.6.1 हिन्दू प्रतिरोध

दिल्ली सल्तनत तलवार के बल पर और इस्लाम की फ़तेह के रूप में स्थापित हुई थी और उसी के बल पर उसका अस्तित्व निर्भर करता था. दिल्ली के सुल्तानों ने अपनी नीतियों से कभी अपनी बहुसंख्यक गैर-मुस्लिम प्रजा का दिल जीतने की कोशिश नहीं की. उनकी धार्मिक तथा प्रशासनिक नीतियां बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा के लिए हानिकारक थीं. दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य फल-फूल रहा था. मेवाड़ और मारवाड़ में राजपूत शक्तियां अपने शक्ति-विस्तार के प्रयास में सफल हो रही थीं. ग्वालियर में तोमरों ने भी अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी थी.

2.6.2 किसी भी राज्यवंश में निरंतर योग्य शासकों का न होना तथा शासन का स्वरुप ढीला-ढाला होना

दिल्ली सल्तनत के एक भी राज्यवंश में लगातार योग्य शासक नहीं हुए और प्रायः एक योग्य शासक के बाद कोई एक अथवा कई अयोग्य शासक तख़्तनशीन हुए. दिल्ली सल्तनत के सुल्तान निरंकुश तो थे ही, उनके शासन का स्वरुप भी ढीला-ढाला और कामचलाऊ था.

2.6.3 राजनीतिक अस्थिरता और आर्थिक संकट

मुहम्मद बिन तुगलक़ के अव्यावहारिक एवं मूर्खतापूर्ण फ़ैसलों से दिल्ली सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया तेज़ हो गयी थी और राज्य में अराजकता फैलने के साथ-साथ उसकी आर्थिक स्थिति भी संकटपूर्ण हो गयी थी.

2.6.4 दिल्ली सल्तनत के अमीरों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ

दिल्ली के सुल्तानों को कभी भी अपने अमीरों का पूर्ण समर्थन प्राप्त नहीं हुआ. तलवार के बल पर अमीरों से प्राप्त किया हुआ समर्थन और उनकी निष्ठा सुल्तानों के अयोग्य उत्तराधिकारियों के समय में स्वतः अंतर्ध्यान हो जाता था और महत्वाकांक्षी अमीर स्वयं तख़्त पर अधिकार करने का स्वप्न देखने लगते थे अथवा अपने लिए दिल्ली सल्तनत के किसी भाग पर स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का प्रयास प्रारंभ कर देते थे.

दक्षिण में बहमनी राज्य की स्थापना ने दक्षिण भारत को दिल्ली सल्तनत से अलग कर दिया था. मालवा, गुजरात, बंगाल स्वतंत्र हो चुके थे और जौनपुर में शर्की दिल्ली सुल्तान के लिए सरदर्द बने हुए थे. पंजाब, सिंध और मुल्तान पर भी दिल्ली सुल्तान का नियंत्रण कर पाना कठिन हो गया था.

2.6.5 तैमूर के भारत-आक्रमणके कारण दिल्ली सल्तनत का विघटन

तैमूर के आक्रमण ने पहले से लड़खड़ाती दिल्ली सल्तनत पर एक और ज़बरदस्त प्रहार किया. नाम का तुगलक़ सुल्तान का अब दिल्ली के आसपास के क्षेत्र पर भी अधिकार नहीं रह गया. तैमूर के आक्रमण के बाद दिल्ली सल्तनत की प्रतिष्ठा में बहुत कमी आई थी और केन्द्रीय शक्ति के अभाव में अनेक स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आ गए थे.

2.6.6 दिल्ली सल्तनत के पतन का मुख्य कारण – पानीपत का प्रथम युद्ध

2.6.6.1 पानीपत के प्रथम युद्ध से पूर्व भारत पर बाबर के चार आक्रमण

भारत पर बाबर का पहला आक्रमण 1519 में हुआ था. इसी वर्ष युसुफ़ज़ाइयों का दमन करने के लिए वह पेशावर तक पहुँच गया था. इसको बाबर का भारत पर दूसरा आक्रमण कहा जा सकता है. 1520 में अपने तीसरे आक्रमण में वह रावलपिंडी होते हुए, झेलम नदी पार कर सईदपुर तक पहुंचा और वहां लूटमार की किन्तु काबुल पर आक्रमण की खबर सुनकर उसे वहां से लौटना पड़ा. भारत पर अपने तीसरे आक्रमण के बाद बाबर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि भारत पर उसका आक्रमण तभी सफल हो सकता है जब कि वह कांधार पर अधिकार कर वहां से अपना अभियान संचालित करे. इसलिए अगले दो-तीन साल उसने गजनी से लेकर खुरासान तक के क्षेत्र पर अपना अधिकार करने के प्रयास में व्यतीत किए. इन क्षेत्रों पर अधिकार करने के बाद वह भारत पर एक बड़ा आक्रमण करने के लिए सक्षम हो गया.

इस बीच उसे अलाउद्दीन लोदी और लाहौर के दौलत खान लोदी द्वारा भारत पर आक्रमण करने के निमंत्रण मिले. अपने चौथे भारत आक्रमण में बाबर सिन्धु नदी, झेलम और चिनाब नदियों को पार करता हुआ लाहौर से दस मील दूरी तक पहुँच गया और उसने वहां लोदी सेना को पराजित किया और वह लाहौर पहुंचा. वहां से वह दीपालपुर पहुंचा जहाँ दौलत खान लोदी अपने पुत्र और अपनी सेना सहित उस से जा मिला किन्तु दोनों पक्षों में जीत के संभावित क्षेत्रों के बटवारे को लेकर मतभेद हो गए. बाबर ने अपना अभियान स्थगित कर दिया और वह काबुल लौट गया. लेकिन बाबर लौटकर जैसे ही सिन्धु नदी को पार किया था कि पंजाब के हालात फिर से एक और आक्रमण के लिए अनुकूल हो गए. अलाउद्दीन लोदी ने उसे फिर से भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण दिया. बाबर उस समय बल्ख में उज़बेगों के साथ युद्ध में उलझा हुआ था. उसने अलाउद्दीन लोदी को सैनिक सहायत दी किन्तु अलाउद्दीन का अभियान विफल रहा और वह दिल्ली भाग गया.

2.6.6.2 बाबर का भारत पर पांचवां आक्रमण और पानीपत का प्रथम युद्ध

अब तक बाबर ने भारत पर अगले आक्रमण की तैयारियां पूरी कर ली थीं. वह खैबर दर्रे को पार करता हुआ पेशावर पहुंचा फिर उसने सिन्धु नदी पार की. फिर रावी और व्यास नदी पार करता वह मिलवात के किले पर पहुंचा और उसने उस पर अधिकार कर लिया. उसने सतलज नदी को पार कर रूपर पर अधिकार कर लिया. फिर वह अम्बाला होता हुआ सिरसवा के निकट यमुना के तट तक पहुँच गया. दो और पड़ावों के बाद वह 12 अप्रैल, 1526 को दिल्ली के 53 मील उत्तर-पश्चिम पानीपत के मैदान तक पहुँच गया. इधर इब्राहीम लोदी भी अपने सेना लेकर बाबर का सामना करने के लिए पानीपत पहुँच गया था.

21 अप्रैल, 1526 को बाबर और इब्राहीम लोदी की सेनाओं के मध्य पानीपत का प्रथम युद्ध हुआ जिसमें इब्राहीम लोदी पराजित हुआ और रणक्षेत्र में ही मारा गया. विजयी बाबर ने 24 अप्रैल को दिल्ली पर तथा 4 मई को आगरा पर अधिकार कर लिया.

2.6.6.4 पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर की सफलता के कारण

बाबर के पिछले चार आक्रमणों ने यह स्पष्ट रूप से दिखा दिया था कि उत्तर-पश्चिम से होने वाले आक्रमण को दिल्ली से बहुत पहले ही रोक पाने की क्षमता इब्राहीम लोदी में नहीं है. इब्राहीम लोदी से पहले के भी और उसके बाद के भी, दिल्ली के शासकों ने, उत्तर-पश्चिम से आने वाले आक्रमणकारियों को दिल्ली की सीमा तक आने दिया था और तराइन के 1191 के प्रथम युद्ध को छोड़कर (इसमें पृथ्वीराज तृतीय ने मुहम्मद गौरी को पराजित किया था) शेष सभी में मुहम्मद गौरी से लेकर अहमद शाह अब्दाली तक, उत्तर-पश्चिम से आने वाला आक्रमणकारी ही दिल्ली के शासक से जीता था.

उत्तर-पश्चिम से आने वाला आक्रमणकारी यदि दिल्ली से मात्र 50-60 मील पहले तक पहुँच जाता है तो इसका मतलब होता है कि वह पूरा पंजाब पार कर चुका है और पंजाब के संसाधनों पर अब उसका अधिकार है और उसे भारतीय परिवेश में युद्ध लड़ने का अभ्यास भी हो चुका है. इब्राहीम लोदी, बाबर के भारत पर चार आक्रमणों के बाद भी सचेत नहीं हुआ और उसके पांचवें आक्रमण के समय भी वह मुख्य रूप से अपने विद्रोही अमीरों के दमन के प्रयास में ही उलझा हुआ था. उसने इस संकट के समय आपसी मतभेद भुलाकर दुश्मन के सामने सबको एकजुट करने का कोई प्रयास नहीं किया. बाबर पानीपत के युद्ध के लिए पूरी तैयारी के साथ आया था. अपने दुश्मनों. उज़बेगों से सीखी हुई, तोपखाने और घुड़सवार सेना के संयुक्त आक्रमण की तुलगमा रणनीति, उसके लिए ब्रह्मास्त्र थी. भारत में इस से पहले इस रणनीति का प्रयोग कभी नहीं हुआ था.

तुलुगमा रणनीति में दाईं और बाईं, दोनों ओर से, घुड़सवारों की टुकडियां, शत्रु-सेना के पीछे जाकर उसे इतना खदेड़ती थीं कि वह मुगलों की, सामने रक्खी तोपों की मारक-सीमा के अन्दर आ जाए. और जब शत्रु-सेना, मुग़ल तोपों की मार के अन्दर आने के लिए विवश होती थी तो उस पर तोपों से गोले बरसाए जाते थे.बाबर के साथ उसके दो अचूक निशाने बाज़ - उस्ताद अली और मुस्तफ़ा मुग़ल सेना को और भी सशक्त बना रहे थे. रशब्रुक विलियम्स ने बाबर की रणनीति का विस्तार से वर्णन किया है. बाबर ने अपने सैनिकों को अपनी सुरक्षा के लिए कवच, शिरस्त्राण,

जूते आदि उपलब्ध कराए थे जब कि भारतीय सैनिक बिना कवच, बिना शिरस्त्राण और बिना जूतों के ही लड़ने के लिए विवश थे.बाबर के सैनिक प्रशिक्षित थे और उन्हें युद्ध का अभ्यास था जब कि सुल्तान इब्राहीम लोदी की सेना में अधिकांश सैनिक युद्ध-कौशल से सर्वथा हीन थे.

बाबर के सैनिकों के पास सुल्तान के सैनिकों की तुलना में बेहतर हथियार थे और उसके सैनिक अपने हथियारों का उपयोग भी अच्छी तरह से करना जानते थे. उसकी सेना में योग्य तोपची, निशाने बाज़ बंदूकची, कुशल तीरंदाज़ और अनुभवी तलवारबाज़ थे. बाबर की घुड़सवार सेना के मुक़ाबले में इब्राहीम लोदी की घुड़सवार सेना नितांत अक्षम थी.

बाबर एक महान सेनानायक था और उसे अपनी सेना को एकजुट कर लड़ाना आता था जब कि इब्राहीम लोदी न तो एक योग्य सेनानायक था और न ही अपनी सेना की निष्ठा प्राप्त कर पाने में सक्षम था. बाबर के सैनिकों के सामने – 'ग्रीड ऑफ़ गोल्ड एंड लस्ट फ़ॉर ग्लोरी' (धन का लालच और यश-प्राप्ति की आकांक्षा) का लक्ष्य था जब कि इब्राहीम लोदी के सैनिक भाड़े पर लिए गए सैनिक थे.

पिछले 75 वर्षों से दिल्ली पर लोदी राज्यवंश का शासन था किन्तु अभी भी भारतीय प्रजा के दिल में इस राज्यवंश के प्रति न तो कोई प्रेम था और न कोई उनके प्रति श्रद्धा थी. इब्राहीम लोदी इस युद्ध में बिना जन-समर्थन के लड़ रहा था.

इब्राहीम लोदी को ख़ुद अपने घर के भेदियों से भयंकर कठिनाई हो रही थी. उसके अफ़गान अमीर, उसके पिता और उसके द्वारा अफ़गान राजत्व के कबीलाई सिद्धांत को बदलकर राजत्व के दैविक सिद्धांत को लागू किए जाने के सख्त खिलाफ़ थे. इस युद्ध में इब्राहीम लोदी को ख़ुद अपने ही अमीरों का पूर्ण सहयोग नहीं मिल रहा था.

इब्राहीम लोदी को किसी भी प्रमुख भारतीय शक्ति का समर्थन नहीं मिल रहा था. राजपूत संघ का प्रमुख, मेवाड़ का राणा संग्राम सिंह तो उसका प्रबल शत्रु था, उसने खतौली के युद्ध में इब्राहीम लोदी को पराजित किया था और चंदेरी पर अधिकार कर लिया था. जब बाबर ने हिंदुस्तान पर अपना पांचवां आक्रमण किया था तो राणा सांगा ने तो उसके आक्रमण का स्वागत ही किया था.सबसे अलग-थलग पड़ा हुआ, वाह्य तथा आतंरिक शत्रुओं से चारों ओर से घिरा हुआ, एक सेनानायक के रूप में पूर्णतया विफल इब्राहीम लोदी अपने समय के उस प्रतिष्ठित सेनानायक से युद्ध करने जा रहा था जो कि इस युद्ध की कई साल तैयारी कर के भारत आया था और जिसको कि ख़ुद इब्राहीम लोदी के एक प्रमुख अमीर का सहयोग प्राप्त था. इन परिस्थितियों में युद्ध का परिणाम तो युद्ध के होने से पहले ही निश्चित हो चुका था.

'बाबरनामा' में बाबर अपने सैनकों की संख्या 12000 बताता है और इब्राहीम लोदी के सैनिकों की संख्या 100000. बाबर के सेना के पास तोपें थीं और बंदूकें भी थीं जब कि इब्राहीम लोदी के सैनिकों के पास भाले, तलवार और तीर-कमान ही मुख्य हथियार थे. बाबर ने अपनी और अपने सैनिकों की सुरक्षा का समुचित प्रबंध किया था किन्तु इब्राहीम लोदी ने न तो अपनी सुरक्षा की कोई व्यवस्था की और न ही अपने सैनिकों के सुरक्षा की कोई चिंता की थी. इब्राहीम लोदी की वीरता में किसी को संदेह नहीं था किन्तु वह लड़ते-लड़ते मरना जानता था, लड़कर जीतना नहीं.

2.6.6.5 पानीपत के प्रथम युद्ध के परिणाम

युद्ध का परिणाम कुछ ही घंटों में सामने आ गया. पानीपत के इस प्रथम युद्द में इब्राहीम लोदी की निर्णायक हार हुई और वह युद्ध भूमि में ही मारा गया. इब्राहीम लोदी दिल्ली सल्तनत का एकमात्र सुल्तान था जो कि रणभूमि में मारा गया था. इब्राहीम लोदी की पराजय होते ही दिल्ली सल्तनत पर लोदी राज्यवंश का प्रभुत्व समाप्त हो गया. बाबर ने दिल्ली पर और तदन्तर आगरा पर अधिकार कर लिया. उसने अपने पूर्वज तैमूर की तरह भारत को लूटकर वहां से वापस जाने पर विचार नहीं किया, बल्कि उसने भारत में स्थायी रूप से बसने का निश्चय किया और फिर उत्तर भारत में बाबर द्वारा मुग़ल राज्यवंश का शासन स्थापित हुआ.

2.7 सारांश

तैमूर के आक्रमण ने पहले से लड़खड़ाती दिल्ली सल्तनत पर एक और ज़बरदस्त प्रहार किया. नाम के तुगलक़ सुल्तान का अब दिल्ली के आसपास के क्षेत्र पर भी अधिकार नहीं रह गया. मुल्तान और तदन्तर सिंध तथा लाहौर पर तैमूर का कृपापात्र खिज्र खान अधिकार कर चुका था और 1414 में दिल्ली में खिज्र खान द्वारा बिना किसी विरोध के, सैयद राज्यवंश की स्थापना कर दी गयी.

सैयद राज्यवंश ने तैमूर राज्यवंश की आधीनता स्वीकार करते हुए 37 वर्ष तक दिल्ली सल्तनत पर शासन किया और इस प्रकार उसने दिल्ली सल्तनत के स्वतंत्र अस्तित्व को ही तैमूर राज्यवंश के पास गिरवी रख दिया. सैयद राज्यवंश के शासक जो ख़ुद को सुल्तान कहने का साहस भी नहीं कर सकते थे, उनकी प्रजा के हृदय में उनके प्रति न तो श्रद्धा की भावना थी और न ही उनसे उसे किसी प्रकार का भय लगता था. प्रांतीय सूबेदार और जागीरदार की तो बात ही क्या, दिल्ली के आस-पास के ज़मींदार तक उन्हें लगान, नज़राना और पेशकश देने को तैयार नहीं होते थे और शासक को हर वर्ष लगान वसूलने तक के लिए सैनिक अभियान करने पड़ते थे. खिज्र खान सैयद ने दिल्ली सल्तनत से स्वतंत्र हुए क्षेत्रों को फिर से जीतने का प्रयास किया किन्तु इटावा, कन्नौज और कम्पिल को फिर से दिल्ली सल्तनत में मिलाने के उसके प्रयास विफल हुए.

मुबारक शाह अपने पिता से अधिक महत्वकांक्षी था. उसने अपने नाम के सिक्के चलवा कर और अपने नाम का खुतबा पढ़वा कर अपनी स्वतंत्र शक्ति का प्रदर्शन किया. मुबारक शाह सैयद को तख्तनशीन होने के बाद अपने पिता खिज्र खान सैयद की ही भांति अपने अधीनस्थ अधिकारियों एवं अमीरों के विद्रोहों का सामना करना पड़ा. उसको भी राजस्व वसूल करने के लिए सैनिक अभियानों का आश्रय लेना पड़ा. भटिंडा और दोआब में हुए विद्रोहों को उसने कुचलने में सफलता प्राप्त की किन्तु वह खोखरों का दमन करने में असफल रहा. 1434 में उसकी हत्या के बाद सैयद राज्यवंश की सत्ता नाम-मात्र की रह गयी.

सैयद राज्यवंश के शासनकाल में प्रांतीय शक्तियों का उदय हुआ और सैयद राज्यवंश के अंतिम दो शासक – मुहम्मद शाह और अलाउद्दीन शाह तो नाम-मात्र के शासक रह गए. अंततः 1451 में लाहौर, मुल्तान, सरहिंद, दीपलपुर आदि पर अधिकार कर चुके बहलोल लोदी ने दिल्ली पर अधिकार कर लोदी राज्यवंश की स्थापना की.बहलोल लोदी ने अफ़गान राजत्व के सिद्धांत का अनुगमन करते हुए अपने अफ़गान अमीरों को राज्य का हिस्सेदार बनाया. बहलोल लोदी की सबसे बड़ी सैनिक सफलता जौनपुर के शर्की शासक को पराजित करने में थी.

सिकंदर लोदी एक महान विजेता था उसने लोदी साम्राज्य का विस्तार किया. उसने ग्वालियर पर विजय प्राप्त की और जौनपुर को करारी शिक़स्त दी. सिकंदर लोदी ने राजत्व के दैविक सिद्धांत को पुनर्स्थापित किया और अपनी तलवार के बल पर अफ़गान अमीरों को अपने सामने पूरी तरह से झुकने के लिए विवश किया. सिकंदर लोदी एक कुशल प्रशासक था. उसने आगरा शहर की स्थापना की. उसने व्यापार की उन्नति के लिए अनेक सुधार किए.उसकी धर्मान्धता के कारण उसकी बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा उस से असंतुष्ट थी.

अपने पिता के समान योग्य और शक्तिशाली न होते हुए भी इब्राहीम लोदी ने राजत्व के दैविक सिद्धांत को प्रतिष्ठित कर अपने अमीरों को असंतुष्ट कर दिया. उसके शासनकाल में आलम खान लोदी, अलाउद्दीन लोदी और दौलत खान लोदी के विरोध से अपने साम्राज्य पर उसकी पकड़ बहुत कमज़ोर हो गयी. वह उत्तर-पश्चिम से हो रहे बाबर के आक्रमणों को रोकने में विफल रहा. अफ़गान अमीर ख़ुद को राज्य का हिस्सेदार मानते थे और सुल्तान को वो केवल अपना मुखिया मानते थे न कि अपना स्वामी. सिकंदर लोदी तथा इब्राहीम लोदी द्वारा अफ़गान राजत्व के सिद्धांत स्थान पर राजत्व के दैविक सिद्धांत को स्थापित करना लोदी राज्यवंश के पतन का एक प्रमुख कारण था. इब्राहीम लोदी ने अमीरों के दमन की नीति अपना कर उन्हें विद्रोह करने के लिए विवश कर दिया.

दिल्ली सल्तनत के पतन के कारणों में हिन्दू प्रतिरोध एक प्रमुख कारण थादिल्ली सल्तनत का प्रशासन . भी उसके पतन का ढाला होना और प्रत्येक राज्यवंश के अधिकांश परवर्ती सुल्तानों का अयोग्य होना-ढीला एक कारण थामुहम्मद बिन तुगलक़ की अव्यावहारिक योजनाओं ने दिल्ली सल्तनत की आर्थिक स्थिति को इतना . दिल्ली के सुल्तानों की सैनिक दुर्बलता एक ओर .कमज़ोर कर दिया था कि इस से वह कभी उबर ही नहीं पाई थी तैमूर और बाबर ज विद्रोहों को कुचलने में असफल रही तो दूसरी ओर वहैसे आक्रमणकारियों को रोकने में विफल रहीतैमूर के आक्रमण ने .दिल्ली सल्तनत के अमीरों की महत्वाकांक्षाओं के कारण दिल्ली सल्तनत का विघटन हुआ , .दिल्ली सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया को और तेज़ कर दिया

दिल्ली सल्तनत के पतन का मुख्य कारण पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर की इब्राहीम लोदी पर निर्णायक विजय थी. अपनी श्रेष्ठ सेना, तुलुगमा रणनीति तथा अपने कुशल नेतृत्व के कारण इस युद्ध में बाबर की निर्णायक विजय हुई.बाबर ने इस विजय के उपरांत भारत में ही रहने का निर्णय लिया और फिर भारत में उसने मुग़ल साम्राज्य की स्थापना की.

अभ्यास प्रश्न

निम्न लिखित पर चर्चा कीजिए

1. खिज्र खान सैयद
2. शासक के रूप में सिकंदर लोदी
3. अफ़गान राजत्व का सिद्धांत

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 2.3.1 खिज्र खान सैयद (1414-1421)
2. देखिए 2.4.2 सिकंदर लोदी (1489-1517)

3. देखिए 2.5 अफगान राजत्व का सिद्धांत

2.9 पारिभाषिक शब्दावली

शहंशाह-ए-आलम – दुनिया भर का बादशाह

रैयत-ए-आला – शासक की विशिष्ट प्रजा (जागीरदार)

क़ाज़ी-उल-क़ज़ात – मुख्य न्यायाधीश

ज़कात – मुसलमानों से लिया जाने वाला धार्मिक कर

कुनबा – परिवार, खानदान

खम्स – सैनिक अभियान में लूटे गए धन में से राज्य का हिस्सा

बहलोली अमीर – बहलोल लोदी के शासनकाल में बनाए गए अमीर

सिकंदरी अमीर – सिकंदर लोदी के शासनकाल में बनाए गए अमीर

तुलुगमा रणनीति – तोपखाने और घुड़सवार सेना का अप्रत्याशित और संयुक्त आक्रमण

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

मेजर, आर. एच - 'इंडिया इन दि फ़िफ्टीन्थ सेंचुरी, लन्दन, 1857

इलियट, एच. एम., डाउसन, जे – 'हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया एज़ टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियंस', 8 भागों में, लन्दन, 1867

लाल, के. एस. – 'ट्वाईलाईट ऑफ़ दि डेल्ही सल्तनत, दिल्ली, 1980

मजूमदार, आर. सी. (संपादक) – 'दि डेल्ही सल्तनत' बॉम्बे, 1980

सैयद, एम. एच. – 'हिस्ट्री ऑफ़ डेल्ही सल्तनत' नई दिल्ली, 2005

चंद्रा, सतीश – 'हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवल इंडिया', हैदराबाद, 2007

ईश्वरी प्रसाद – 'ए हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवल इंडिया' दिल्ली, 2018

बाबर, ज़हीरुद्दीन – 'बाबरनामा' (अंग्रेज़ी अनुवाद – बेवेरिज, ए. एस.), दिल्ली, रिप्रिंट – 1999

थॉमस, एडवर्ड – 'दि क्रोनिकिल्स ऑफ़ दि पठान किंग्स ऑफ़ डेल्ही' दिल्ली, रिप्रिंट, 1976

हबीब, इरफ़ान – 'दि इकनोमिक हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवल इंडिया, 1200-1500' लन्दन, 2011

जैक्सन, पीटर – 'दि डेल्ही सल्तनत: पॉलिटिकल एंड मिलिट्री हिस्ट्री' केम्ब्रिज, 2003

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. दिल्ली सल्तनत के पतन के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए.

विजयनगर साम्राज्य, बहमनी साम्राज्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 विजयनगर साम्राज्य

3.3.1 विजयनगर साम्राज्य के चार राज्यवंश

3.3.1.1 संगम राज्यवंश (1336-1485)

3.3.1.2 सालुव राज्यवंश (1485-1505)

3.3.1.3 तुलुव राज्यवंश (1505-1570)

3.3.1.4 अरविदु राज्यवंश (1570-1652)

3.3.2 विदेशी यात्रियों के वृतांतों में विजयनगर साम्राज्य

3.3.2.1 इब्न बतूता

3.3.2.2 निकोलो डी कोंटी

3.3.2.3 अब्दुर्रज्जाक

3.3.2.4 दुआर्तो बारबोसा

3.3.2.5 फर्नाओ नुनीज़

3.3.2.6 डोमिंगो पेइस

3.3.3 विजयनगर के शासकों का प्रशासन

3.3.3.1 भू-राजस्व प्रशासन

3.3.3.2 राज्य की ओर से कृषि को प्रोत्साहन

3.3.3.3 अन्य कर

3.3.3.4 व्यापार

3.3.3.5 सिक्के

3.3.3.6 विजयनगर की अर्थ-व्यवस्था में मंदिरों की भूमिका

3.3.3.7 उद्योग एवं व्यवसाय

3.3.3. 8 अमीर और गरीब के मध्य खाई

3.3.3.9 न्याय-व्यवस्था

3.3.4 विजयनगर का महानतम शासक कृष्णदेव राय (1509-1529)

3.3.4.1 सैनिक उपलब्धियां

3.3.4.2 महान निर्माता

3.3.4.3 कला तथा साहित्य का संरक्षक

3.3.4.4 धार्मिक सहिष्णुता की नीति

3.3.4.5 एक शासक के रूप में कृष्णदेव राय का आकलन

3.3.4.6 हम्पी

3.3 बहमनी साम्राज्य

3.4.1 अलाउद्दीन हसन बहमन शाह

3.4.2 ताज-उद-दीन फ़िरोज़ शाह (1397-1422)

3.4.2.1 विद्वानों का संरक्षक

3.4.2.2 एक कुशल प्रशासक

3.4.2.3 फ़िरोज़ शाह के सैनिक अभियान

3.4.3 अहमद शाह प्रथम

3.4.4 महमूद गावां

3.4.4.1 बहमनी साम्राज्य की सेवा में प्रवेश

3.4.4.2 आतंरिक सुधार

3.4.4.3 आतंरिक तथा विदेश व्यापार को बढ़ावा

3.4.4.4 एक सेनानायक के रूप में महमूद गावां की उपलब्धियां

3.4.4.5 साहित्य, कला तथा शिक्षा का संरक्षक

3.4.4.6 महमूद गावां का पतन

3.4.5 विजयनगर साम्राज्य तथा बहमनी साम्राज्य तथा उसके उत्तराधिकारी राज्यों के मध्य संघर्ष

3.4.5.1 14 वीं तथा 15 वीं शताब्दी में विजयनगर-बहमनी संघर्ष

3.4.5.2 कृष्णदेव राय द्वारा बहमनी राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों पर विजय

3.4.5.3 तालीकोटा का युद्ध

3.4.6 बहमनी साम्राज्य की सांस्कृतिक उपलब्धियां

3.4.6.1 स्थापत्य कला

बीदर की मीनाकारी 3.4.6.2

3.4.6.3 साहित्य का विकास

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

दिल्ली सल्तनत के पराभव-काल में दक्षिण भारत पर लगभग 200 वर्षों तक विजयनगर साम्राज्य तथा बहमनी साम्राज्य का प्रभुत्व रहा. इस काल में दक्षिण भारत में न केवल शांति-व्यवस्था स्थापित रही, अपितु उद्योग एवं व्यापार का अभूतपूर्व विकास हुआ. कला की हर विधा को प्रोत्साहन दिया गया, भाषा और साहित्य का विकास हुआ और सुन्दर तथा भव्य नगरों का निर्माण हुआ. विजयनगर साम्राज्य के सबसे प्रतापी शासक कृष्णदेव राय की गणना भारत के महानतम शासकों में की जाती है. बहमनी साम्राज्य के इतिहास में सुल्तान फ़िरोज़ शाह सफलतम शासक था. बहमनी साम्राज्य के वज़ीर महमूद गावां ने बहमनी साम्राज्य को उसके वैभव तथा उसकी शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया था. किन्तु 16 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से परिस्थितियां बदलने लगीं. समुद्र के रास्ते यूरोपीय शक्तियों के भारत में स्थापित हो जाने से और उत्तर भारत में मुग़ल शासन स्थापित हो जाने से इन दोनों ही दक्षिण भारतीय शक्तियों को हानि हुई.

पंद्रहवीं शताब्दी के अंत में आपसी कलह तथा बहमनी शासकों की व्यक्तिगत दुर्बलता के कारण बहमनी साम्राज्य का विघटन हुआ और वह बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर, बीदर और बरार, इन 5 स्वतंत्र राज्यों में विभक्त हो गया. दूसरी ओर 1565 में बहमनी साम्राज्य से निकले मुस्लिम राज्यों की संयुक्त सेना ने तालीकोटा के युद्ध में विजयनगर के राम राय की सेना को पराजित कर मध्यकाल के सबसे शक्तिशाली तथा समृद्ध हिन्दू राज्य को लगभग नष्ट कर दिया.

अब भारत में भूमि पर आधारित एशियाई शक्तियों और समुद्र पर प्रभुत्व रखने वाली यूरोपीय शक्तियों के मध्य सत्ता हेतु संघर्ष प्रारंभ हो गया. अब विजयनगर तथा बहमनी साम्राज्य जैसी स्थानीय शक्तियां इस सत्ता के संघर्ष में पृष्ठभूमि में चली गईं.

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य – दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य तथा बहमनी साम्राज्य के उदय से लेकर उनके उत्कर्ष और फिर उनके पतन तक के इतिहास से आपको परिचित कराना है. इस इकाई का अध्ययन कर आप –

1. 14 वीं शताब्दी में मुहम्मद बिन तुगलक़ के साम्राज्य के दक्षिणी भाग में विघटन की प्रक्रिया के रूप में विजयनगर साम्राज्य तथा बहमनी साम्राज्य के उदय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
2. विजयनगर साम्राज्य के चारों राज्यवंशों के प्रमुख शासकों की प्रशासनिक, आर्थिक, सांस्कृतिक उपलब्धियों तथा उनकी दुर्बलताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
3. विजयनगर साम्राज्य तथा बहमनी साम्राज्य के मध्य हुए संघर्ष की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
4. समकालीन विदेशी यात्रियों के वृतांत में विजयनगर साम्राज्य के राजनीतिक, सैनिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
5. विजयनगर साम्राज्य के पतन के कारणों से परिचित हो सकेंगे.
6. बहमनी साम्राज्य के शासकों की प्रशासनिक, आर्थिक, सैनिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
7. बहमनी साम्राज्य के विघटन के कारणों से परिचित हो सकेंगे.

3.3 विजयनगर साम्राज्य

3.3.1 विजयनगर साम्राज्य के चार राज्यवंश

विजयनगर को मध्यकाल का प्रथम और महानतम हिन्दू साम्राज्य माना जाता है. इस साम्राज्य की नीव हरिहर तथा बुक्का ने 1336 में, मुहम्मद बिन तुगलक़ के शासनकाल में रखी थी. विजयनगर साम्राज्य पर चार राज्यवंशों ने शासन किया.

3.3.4.6 संगम राज्यवंश (1336-1485)

- संगम राज्यवंश के संस्थापक वारंगल तथा काकातीय राज्य में सामंत रह चुके हरिहर तथा बुक्का थे. दक्षिण भारत की अराजकतापूर्ण स्थिति का लाभ उठाकर इन दोनों भाइयों ने 1336 में तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी किनारे पर विजयनगर की स्थापना की थी और अपने पिता 'संगम' के नाम पर 'संगम राज्यवंश' स्थापित किया. हरिहर प्रथम ने विजयनगर का निर्माण करवाया और प्राचीन नगर बादामी की किलेबंदी करवाई. उसने होयसल राज्य को जीत लिया.

बुक्का प्रथम (1356-1377) ने मदुराई के सुल्तान को पराजित किया था. उसने 1374 में बहमनी साम्राज्य की सेना को भी परास्त किया था. उसके साम्राज्य में तुंगभद्रा-कृष्णा नदी का दोआब, गोवा तथा उड़ीसा सम्मिलित थे. दक्षिण में उसके साम्राज्य का विस्तार सेतुबंध रामेश्वरम तक हो गया. उसने मालाबार के शासक को और जाफ़ना (श्री लंका) के शासक को भेंट देने के लिए विवश किया था.बुक्का राय ने चीन के शासक के पास अपना शिष्ट-मंडल भेजा था. बुक्का राय के उत्तराधिकारी हरिहर द्वितीय ने पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तट तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया और समुद्र के मार्ग से होने वाले विदेश-व्यापार से लाभ उठाया.

इसी राज्यवंश के देवराय प्रथम (1406-1422) ने तुंगभद्रा नदी पर तथा हरिद्रा नदी पर बाँध बनवाए. उसने तुंगभद्रा से विजयनगर तक एक जल-प्रणाली का निर्माण कराया जिस से विजयनगर में जल का कोई अभाव नहीं रहा. 'हर विलासम' के रचयिता तेलगु कवि श्री नाथ को देवराय का संरक्षण प्राप्त था. निकोलो कोंटी नामक इतालवी यात्री, देवराय प्रथम के शासनकाल में ही आया था.देवराय द्वितीय (1446-1422)ने अपने सेना में घुड़सवारी तथा तीरंदाज़ी में निष्णात मुस्लिम सैनिकों को भर्ती किय 2000ा ताकि विजयनगर की सेनाबहमनी सेना के बेहतर घुड़सवारों तथा , .तीरंदाज़ों का मुक़ाबला कर सकेवह आन्ध्र तथा उड़ीसा में अपने साम्राज्य का विस्तार करने में सफल रहादेवराय . .द्वितीय के शासनकाल में कला और साहित्य का विकास हुआसंगम राज्यवंश ने साम्राज्य-विस्तार कर अपने साम्राज्य में तमिल प्रदेश और चेरों (केरल) कर लिया था. रामेश्वरम सहित लगभग पूरा दक्षिण भारत इसके अधिकार में आ चुका था.संगम राज्यवंश का अंतिम शासक विरूपाक्ष द्वितीय (1485-1465)था.

3.3.4.7 सालुव राज्यवंश (1485-1505)

संगम राज्यवंश के एक मंत्री नरसिंह सालुव ने 1485 में सालुव राज्यवंश की स्थापना की. इस राज्यवंश के नरसा नायक के शासनकाल में वास्कोडिगामा कालीकट के तट पर उतरा था. इम्मादि नरसिंह इस राज्यवंश का अंतिम शासक था.

3.3.4.8 तुलुव राज्यवंश (1505-1570)

तुलुव राज्यवंश की स्थापना वीर नरसिंह देव ने की थी.

महान शासक कृष्णदेव राय, वीर नरसिंह देव का उत्तराधिकारी था. कृष्णदेव राय के शासनकाल की चर्चा अन्यत्र की जाएगी.

3.3.1.4 अरविदु राज्यवंश (1570-1652)

अरविदु राज्यवंश विजयनगर साम्राज्य के पराभव का प्रतीक था और विजयनगर साम्राज्य का अंतिम राज्यवंश था. राज्यवंश का संस्थापक राम राय का भाई तिरुमल था. सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते विजयनगर साम्राज्य पूर्णतया विनष्ट हो गया.

3.3.2 विदेशी यात्रियों के वृतांतों में विजयनगर साम्राज्य

3.3.2.1 इब्न बतूता

मोरक्को का निवासी, इब्नबतूता 14 वीं शताब्दी के प्रथमार्ध में दीर्घ काल तक भारत में रहा था. इब्नबतूता ने अपनी पुस्तक – 'रहला' में हरिहर प्रथम के शासनकाल का वर्णन किया है.

3.3.2.2 निकोलो डी कोंटी

निकोलो कोंटी नामक इतालवी यात्री देवराय प्रथम के शासनकाल में ही आया था. उसकी पुस्तक – 'ट्रेवल्स ऑफ़ निकोलो कोंटी' में विजयनगर के वैभव तथा उसकी समृद्धि का वर्णन किया गया है. निकोलो कोंटी विजयनगर साम्राज्य की नौ-सैनिक शक्ति का उल्लेख करता है. उसके अनुसार क्विलन, श्री लंका, पूलीकट, पेगू तथा तेन्सिरिम के शासक देरी द्वितीय को कर देते थे. देवराय द्वितीय ने श्री लंका पर तो कई बार आक्रमण किए थे और निकोलो कोंटी की इस बात पर विश्वास किया जा सकता है कि श्री लंका का शासक देवराय का करद (कर देने वाला) था.

निकोलो कोंटी ने विजयनगर का कुल घेरा 60 मील (96 किलोमीटर) का, और उसकी प्राचीर का विस्तार पर्वत श्रृंखला तक बताया है. वह नगर में सैनिकों की तथा सैनिक कार्य में निपुण व्यक्तियों का कुल योग 90 हज़ार बताता है. उसकी दृष्टि में विजयनगर का शासक, भारत का सबसे शक्तिशाली शासक था.

3.3.2.3 अब्दुर्रज्जाक

तैमूर राज्यवंश के, ईरान के शासक, शाहरुख़ के राजदूत के रूप में अब्दुर्रज्जाक, देवराय द्वितीय (1422-1446) के शासनकाल में विजयनगर आया था. वह विजयनगर साम्राज्य की समृद्धि देखकर आश्चर्यचकित रह गया था. अपने ग्रन्थ – 'सदाइन वा मजमा-उल-बहरैन' में वह लिखता है –

'विजयनगर के शाही कोषागार में फ़र्श में गड्ढे करके उनमें पिघला सोना भरा जाता है.'

अनेक देशों में भ्रमण कर चुके अब्दुर्रज्जाक को भव्यता और समृद्धि की दृष्टि से विजयनगर शहर, विश्व के शीर्षस्थ नगरों में से एक लगा था. अब्दुर्रज्जाक ने विजयनगर के विदेश व्यापार, आयात-निर्यात आदि के विषय में विस्तार से लिखा है. कालीकट का बंदरगाह विजयनगर का सबसे समृद्ध बंदरगाह था. अब्दुर्रज्जाक बताता है कि विजय नगर साम्राज्य में कुल 300 बंदरगाह थे. अब्दुर्रज्जाक तो विजयनगर साम्राज्य के सैनिकों की कुल संख्या लाख बताता 11 .अनुसार विजयनगर की सुरक्षा के लिए कुल सात विशाल किलों का घेरा बनाया गया था उसके .है

अब्दुर्रज्जाक विजयनगर के बाजारों को हेरात के बाजारों से भी भव्य बताता है. वह महलों तथा बाज़ारों की स्थापत्यकला और उनकी स्वच्छता से भी बहुत प्रभावित हुआ था. विजयनगर साम्राज्य के विस्तार का वर्णन करते हुए अब्दुर्रज्जाक कहता है इसका पूरा भ्रमण करने में कुल तीन महीनों का समय लग जाता है.

3.3.2.4 दुआर्तो बारबोसा

पुर्तगाली लेखक तथा अन्वेषक दुआर्तो बारबोसा ने अपनी पुस्तक – 'एन अकाउंट ऑफ़ कंट्रीज बॉर्डरिंग दि इंडियन ओशेन एंड देयर इन्हैबीटेंट्स' में कृष्णदेव राय के शासनकाल में विजयनगर साम्राज्य के वैभव का उल्लेख किया है. बारबोसा के अनुसार विजयनगर के व्यापारिक जहाजों का निर्माण मालद्वीप में होता था.

3.3.2.5 फर्नाओ नुनीज़

फर्नाओ नुनीज़ एक पुर्तगाली व्यापारी तथा इतिहासकार था. वह अच्युत राय के शासनकाल में विजयनगर में तीन साल रहा था. उसने विजय नगर साम्राज्य के पहले तीन राज्यवंशों के इतिहास पर प्रकाश डाला है. विजयनगर साम्राज्य के प्रमुख नगरों के विषय में वह उपयोगी जानकारी उपलब्ध कराता है. विजयनगर साम्राज्य के सांस्कृतिक पहलुओं पर वह रोचक सामग्री देता है. महिलाओं की वेशभूषा और विजयनगर के शासकों की महिला-अंगरक्षकों तथा उनकी परिचारिकाओं के बारे में भी वह बताता है.

फर्नाओ नुनीज़ ने अपने वृतांत में विजयनगर के शासकों के, बहमनी साम्राज्य के साथ हुए युद्धों का विवरण दिया है और विजयनगर के शासकों के उड़ीसा के शासकों से हुए युद्धों का भी उल्लेख किया है.

3.3.2.6 डोमिंगो पेइस

डोमिंगो पेइस एक पुर्तगाली व्यापारी था जो कि एक लेखक तथा अन्वेषक भी था. डोमिंगो पेइस ने अपने यात्रा-वृतांत में कृष्णदेव राय के समय हम्पी नगर का विस्तार से वर्णन किया है. पेइस कतार-बद्ध भव्य भवनों, वृक्षों, उद्यानों तथा झीलों से सुसज्जित हम्पी नगर को रोम जितना विशाल और भव्य बताता है. पेइस कहता है कि किसी एक जगह पर खड़े होकर इस विशाल नगर का विहंगम दृश्य देखा ही नहीं जा सकता है.पेइस ने विजयनगर के बाज़ार की भव्यता और उसमें उपलब्ध सामग्री का भी विस्तार से उल्लेख किया है.पेइस ने बीजापुर के आदिलशाह तथा कृष्णदेव राय के मध्य रायचूर में हुए युद्ध का विशद वर्णन किया है और कृष्णदेव राय के पैदल सैनिकों, घुड़सवार सैनिकों तथा उसके लड़ाकू हाथियों की संख्या का उल्लेख भी किया है. कृष्णदेव राय के व्यक्तित्व, उसके दैनिक जीवन तथा उसके राज-काज की शैली पर भी पेइस ने विस्तार से चर्चा की है. कृष्णदेव राय की प्रमुख रानियों का भी वह उल्लेख करता है. पेइस, कृष्णदेव राय की न्याय-प्रियता की प्रशंसा करता है किन्तु उसके आकस्मिक क्रोध की वह आलोचना करता है.

विदेशी अतिथियों का स्वागत-सत्कार करने के लिए पेइस, कृष्णदेव राय की प्रशंसा करता है.

3.3.3 विजयनगर के शासकों का प्रशासन

3.3.3.1 भू-राजस्व प्रशासन

विजयनगर साम्राज्य में भूमि-कर नकदी और उपज के अंश, दोनों ही रूप में लिया जाता था. भू-राजस्व को 'शिष्ट' तथा नकदी द्वारा प्राप्त भू-राजस्व को 'सिद्ध-दाय' कहा जाता था. राजस्व निर्धारण हेतु भूमि को कई किस्मों में विभाजित किया जाता था.

न्यूनतम भू-राजस्व – उपज का 1/6 भाग तथा अधिकतम - उपज का 1/3 भाग होता था किन्तु ब्राह्मणों से भू-राजस्व उपज का मात्र 1/20 और मंदिरों के स्वामित्व वाली खेती योग्य भूमि से उपज का मात्र 1/30 भाग लिया जाता था.

3.3.3.2 राज्य की ओर से कृषि को प्रोत्साहन

विजयनगर साम्राज्य में राज्य की ओर से कृषि-प्रोत्साहन की नीति अपनाई जाती थी. खेती की उन्नति तथा सिंचाई के साधनों में वृद्धि के लिए राज्य की ओर से पूंजी-निवेश किया जाता था. विजयनगर के शासकों की यह दूरगामी नीति थी क्यों कि वो जानते थे कि कृषि-विकास तथा सिंचाई के साधनों में वृद्धि से कृषि-उत्पादन में वृद्धि होगी और स्वाभाविक रूप से इस से भू-राजस्व में वृद्धि होगी.

देवराय प्रथम ने तुंगभद्रा नदी पर एक बाँध बनवाया और उस से नहर निकाल कर विजयनगर की जल-आपूर्ति की तथा आस-पास के क्षेत्रों की कृषि-योग्य भूमि की सिंचाई की व्यवस्था की. इस से सिंचाई-कर के रूप में राज्य को 350,000 पेर्दाओं की अतिरिक्त आय हुई.

कृष्णदेव राय ने कृषि-विकास हेतु अनेक तालाबों तथा नहरों का निर्माण करवाया और जंगल साफ़ करवा कर कृषि-योग्य भूमि का विस्तार किया. इन के परिणाम स्वरुप भू-राजस्व में उल्लेखनीय वृद्धि हुई.

3.3.3.3 अन्य कर

भू-राजस्व की भाँति व्यवसायों तथा क्रय-विक्रय पर भी कर लगाए जाते थे.

नगरों में रहने वालों के मकानों पर भी कर लगाया जाता था. वेश्याओं को भी अपनी आय पर कर देना पड़ता था. अब्दुर्रज्जाक बताता है कि चुंगी के अधिकारियों द्वारा बिके हुए सामान की कुल कीमत का चालीसवां हिस्सा चुंगी के रूप में लिया जाता था. संपत्ति-कर, व्यवसाय-कर, युद्ध के समय सैन्य-कर, विवाह-कर आदि से भी राज्य को आय होती थी. कृष्णदेव राय ने विवाह-कर को समाप्त कर दिया था.

3.3.3.4 व्यापार

विजयनगर साम्राज्य में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार फलफूल रहा था. बर्मा, चीन, ईरान, ईराक, अरब देश, अफ्रीका में अबीसीनिया और यूरोप में पुर्तगाल से व्यापार होता था.

अब्दुर्रज्जाक ने विजयनगर के विदेश व्यापार, आयात-निर्यात आदि के विषय में विस्तार से लिखा है. कालीकट का बंदरगाह विजयनगर का सबसे समृद्ध बंदरगाह था. अब्दुर्रज्जाक बताता है कि विजय नगर साम्राज्य में कुल 300 बंदरगाह थे. निर्यात होने वाली वस्तुओं में कपडा, चावल, शोर, लोहा, चीनी एवं मशालें थीं और आयात की जाने वाली वस्तुओं में घोड़े, मोती, ताम्बा, मूंगा, पारा, मखमल, चीन की रेशम आदि प्रमुख थीं.

बारबोसा के अनुसार विजयनगर के व्यापारिक जहाजों का निर्माण मालद्वीप में होता था. विजयनगर साम्राज्य का मलक्का के साथ काली मिर्च का व्यापार होता था.

इतालवी यात्री बार्थेमा (1505) के अनुसार कैम्बे के निकट सूती कपड़ों का प्रचुर मात्रा में उत्पादन होता था और प्रति वर्ष विजयनगर के बंदरगाहों से सूती कपड़े और रेशम से लदे अनेक जहाज विदेशी बाज़ारों में बिक्री के लिए भेजे जाते थे.

3.3.3.5 सिक्के

विजयनगर साम्राज्य में सोने, चांदी और ताम्बे के सिक्के ढाले जाते थे. सोने के सिक्के - 'बराह' और 'पेर्दा' कहलाते थे. सोने-चांदी की मिश्रित धातु से बना - 'परतब' 'बराह' के आधे मूल्य के बराबर होता था और इसी मिश्रित धातु से बना - 'फनम' उसके चौथे भाग के मूल्य का होता था. चांदी का सिक्का – 'तार' कहलाता था और ताम्बे का सिक्का – 'दिजतेल' होता था.

बहुमूल्य वस्तुओं की खरीद-फ़रोख्त के लिए शासन द्वारा प्रमाणित मात्रा की (सील-बंद थैलियों में भरी) 'स्वर्ण-धूलि' का उपयोग भी किया जाता था. तटीय क्षेत्रों में व्यापार विनिमय के लिए विदेशी मुद्राएँ – पुर्तगाली – 'कुज्रेदो', ईरानी – 'दीनार' तथा इतालवी – 'फ्लोरीन' और 'दुकत' भी उपयोग में लाई जाती थीं.

3.3.3.6 विजयनगर की अर्थ-व्यवस्था में मंदिरों की भूमिका

मंदिरों के पास अथाह संपत्ति होती थी और उस संपत्ति को बढ़ाने के लिए कृषि, उद्योग तथा व्यापार में उसका निवेश भी किया जाता था. मंदिरों की ओर से वस्त्र-उद्योग में प्रचुर मात्रा में धन-निवेश किया जाता था.

3.3.3.7 उद्योग एवं व्यवसाय

विजयनगर में वस्त्र-उद्योग का सर्वाधिक महत्व था. खानों से धातु तथा रत्न निकालना, धातु-शोधन तथा इत्र-निर्माण भी प्रमुख उद्योग थे. शिल्पियों तथा व्यापारियों के अलग-अलग संघ थे.

3.3.3. 8 अमीर और गरीब के मध्य खाई

विदेशी यात्रियों के वृतांतों से यह पता चलता है कि विजयनगर का आभिजात्य वर्ग वैभव और विलासिता का जीवन व्यतीत करता था जब कि आम प्रजा जीवन-यापन के लिए नित्य संघर्षरत रहती थी. प्रजा पर करों का बोझ बहुत अधिक था और अधीनस्थ शासकों तथा राज्य के अधिकारियों द्वारा करों की वसूली बहुत कठोरता के साथ की जाती थी.

3.3.3.9 न्याय-व्यवस्था

विजयनगर साम्राज्य में चार प्रकार के न्यायलय होते थे –

1. तिस्थिता 2. चल 3. मुद्रिता 4. शास्त्रिता

न्याय के सम्बन्ध में 'याज्ञवल्क्य स्मृति', 'पाराशर स्मृति' तथा माधव की न्याय संबंधी टीका में दी गयी व्यवस्थाओं को महत्त्व दिया जाता था. प्राण-दंड, दंड के रूप में अंग-भंग (हाथ अथवा पैर का काटा जाना) का प्रचलन था.

3.3.4 विजयनगर का महानतम शासक कृष्णदेव राय (1509-1529)

3.3.4.1 सैनिक उपलब्धियां

कृष्णदेव राय विजयनगर साम्राज्य का सबसे शक्तिशाली शासक था. सिंहासनारूढ़ होते समय उसे बहमनी साम्राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों, उड़ीसा-राज्य तथा पुर्तगालियों के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा.पुर्तगालियों की श्रेष्ठ नौ-सैनिक शक्ति को ध्यान में रखकर कृष्णदेव राय ने उनसे प्रायः मधुर सम्बन्ध रखे. उन्हीं के माध्यम से वह अरबी घोड़ों का

आयात करता था.सात साल के अनवरत संघर्ष के बाद कृष्णदेव राय ने उड़ीसा के गजपति नरेश से कृष्णा नदी तक के सभी क्षेत्र वापस जीत लिए. 1520 में कृष्णदेव राय ने बहमनी साम्राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों – बीजापुर, गोलकुंडा, बरार, बीदर की संयुक्त सेनाओं को पराजित किया.
शिव समुद्र के युद्ध में उसने कावेरी नदी के प्रवाह को बदलकर अजेय समझे जाने वाले जल-दुर्ग को जीता था.कृष्णदेव राय की सेना में 10 लाख सैनिक थे. वह अपनी घुड़सवार सेना के लिए पुर्तगाली व्यापारियों के माध्यम से अरबी घोड़े आयात करता था. उसकी हस्ती-सेना भी अत्यंत शक्तिशाली थी जिसमें 651 लड़ाकू हाथी थे.अपने जीवन में उसने किसी भी युद्ध में पराजय का मुख नहीं देखा. मदुरै से लेकर कटक तक उसका प्रभुत्व था.कृष्णदेव राय पराजित शासकों के साथ मानवीयता तथा उदारतापूर्ण व्यव्हार करता था.

3.3.4.2 महान निर्माता

कृष्णदेव राय ने विजयनगर के निकट नागलपुर की स्थापना की थी. उसने वहां सहस्त्र स्तंभों वाला मंडपम बनवाया था और अनेक गोपुरम भी बनवाए थे. उसके द्वारा बनवाया गया विठ्ठलस्वामी मंदिर कलाविदों द्वारा स्थापत्य कला की दृष्टि से अद्वितीय है. रामा स्वामी मंदिर का अलंकरण अत्यंत उत्कृष्ट है और इसमें रामायण की कथा का चित्रण भी है.

3.3.4.3 कला तथा साहित्य का संरक्षक

कृष्णदेव राय स्वयं महान लेखक तथा कवि था. उसका तेलगु महाकाव्य 'अमुक्त माल्यद' तेलगु साहित्य की अमूल्य निधि है. कृष्णदेव राय ने संस्कृत, कन्नड़ तथा तमिल के साहित्यकारों को भी अपना संरक्षण प्रदान किया था.

3.3.4.4 धार्मिक सहिष्णुता की नीति

स्वयं वैष्णव होते हुए भी कृष्णदेव राय ने अपने शासन में सभी धर्मावलम्बियों को अपने-अपने धर्म का पालन करने का अधिकार दे रखा था. जैन, बौद्ध, शैव तथा लिंगायत ही नहीं, मुसलमान, ईसाई और यहूदी भी अपना-अपना धर्म तथा अपनी-अपनी परम्पराओं का निर्वाह करने को स्वतंत्र थे. कृष्णदेव राय के साम्राज्य में व्यापार की दृष्टि से भी सभी धर्मावलम्बियों के साथ एक समान व्यवहार किया जाता था. उसकी सेना में घुड़सवारी में तथा तीरंदाज़ी में निष्णात, मुस्लिम सैनिकों की बड़ी संख्या में भर्ती की जाती थी.

3.3.4.5 एक शासक के रूप में कृष्णदेव राय का आकलन

कठिन परिस्थियों में सिंहासनारूढ़ होने के बावजूद उसने अपने साम्राज्य में आतंरिक शांति स्थापित की और उसे वाह्य-आक्रमणों से सुरक्षित रखा. बहमनी साम्राज्य के उत्तराधिकारी मुस्लिम राज्यों को पराजित कर वह मध्य-काल के सबसे शक्तिशाली हिन्दू शासक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ. बहमनी सुल्तान महमूद शाह को कारगर से मुक्त करा उसने उसे सिंहासनारूढ़ किया जिसके कारण उसे 'यवनराज्य-स्थापनाचार्य' कहा गया.पुर्तगाली यात्री डोमिंगो पेइस ने कृष्णदेव राय के काल में हम्पी के वैभव, विजयनगर साम्राज्य में व्यापार के विकास, कृष्णदेव राय की सैनिक शक्ति आदि का विस्तार से उल्लेख किया है. कला और साहित्य के संरक्षक के रूप में कृष्णदेव राय की चर्चा पहले ही की जा चुकी है. उसके राज्य में 'अष्ट-दिग्गज' के रूप में आठ तेलगु विद्वान प्रतिष्ठित थे. 'आमुक्त माल्यद' में स्वयं उसके राजनीतिक तथा प्रशासकीय विचार संग्रहीत हैं. संस्कृत तथा तेलगु के महा-विद्वान पेड्दन को उसने 'आंध्र-पितामह' की उपाधि से विभूषित किया था. कृष्णदेव राय ने विजयनगर साम्राज्य की समृद्धि तथा उसके गौरव को केवल इतिहास के पन्नों में ही नहीं, अपितु जन-श्रुतियों और लोकगाथाओंके माध्यम से आज भी जीवित रखा है.कृष्णदेव राय के शासन की स्पष्ट

छाप अकबर के शासन पर देखी जा सकती है. कृष्णदेव राय और तेनाली रामा के रोचक प्रसंगों की छाप अकबर-बीरबल के किस्सों पर देखी जा सकती है.

3.3.4.6 हम्पी

तुंगभद्रा नदी के निकट स्थित हम्पी, मध्यकाल में बीजिंग के बाद विश्व का सबसे बड़ा था और भारत का सबसे समृद्ध नगर था. आज इसके 40 वर्ग किलोमीटर से भी अधिक क्षेत्रफल में फैले - मंदिरों, मठों, मंडपों, स्मारकों, महलों, बांधों आदि के 1600 से भी अधिक भग्नावशेष इसकी भव्यता और इसके सौन्दर्य की गाथा कहते हैं.

विरूपाक्ष मंदिर हम्पी का सबसे पुराना मंदिर है. विजयनगर को आदर्श हिन्दू राज्य के रूप में विकसित करने के पीछे कृष्णदेव राय के गुरु संत विद्यारण्य स्वामी का विशेष योगदान था. उनकी स्मृति में विरूपाक्ष मंदिर में उनकी भव्य मूर्ति स्थापित की गयी. हम्पी में ऐहोल-पट्टडकल स्थापत्य शैली के भवनों का प्राचुर्य है किन्तु इसके कमल महल, सार्वजनिक स्नान-गृह तथा हाथी खाने में इंडो-इस्लामिक स्थापत्य कला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है.

3.4 बहमनी साम्राज्य

3.4.1 अलाउद्दीन हसन बहमन शाह

1347 में मुहम्मद बिन तुगलक के अमीरों (अमीरन-ए-सादाह) ने दकन में विद्रोह कर दिया और दौलताबाद के किले पर अधिकार कर इस्माइल अफ़गान को 'नासिरुद्दीन शाह' को दकन का सुल्तान घोषित कर दिया किन्तु बूढ़ा और अयोग्य नासिरुद्दीन शाह अधिक दिनों तक सुल्तान नहीं रहा और उसका स्थान 'ज़फ़र खान' उपाधि धारी हसन गंगू ने ले लिया. हसन गंगू 'अलाउद्दीन हसन बहमन शाह' के नाम से अगस्त, 1347 को बहमनी साम्राज्य की स्थापना की. अलाउद्दीन हसन बहमन शाह ने गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया उसने अपने साम्राज्य को चार प्रान्तों – गुलबर्गा, दौलताबाद, बरार तथा बीदर में विभाजित किया.

3.4.2 ताज-उद-दीन फ़िरोज़ शाह (1397-1422)

3.4.2.1 विद्वानों का संरक्षक

फ़िरोज़ शाह को धर्म-शास्त्र की व्याख्याओं, कुरान की शिक्षाओं तथा न्यायशास्त्र में पारंगत था. वह एक श्रेष्ठ कवि तथा एक कुशल खुश-ख़तवीस (सुलेख में पारंगत) था. वह वनस्पति-विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान, गणित तथा तर्कशास्त्र में भी रूचि रखता था. फिरोजशाह बहमनी साम्राज्य को दकन का सांस्कृतिक केंद्र बनाने के लिए कटिबद्ध था. दिल्ली सल्तनत के विघटन के बाद दिल्ली दरबार के अनेक विद्वान दकन में आकर बस गए थे. सुल्तान ने इन विद्वानों को राज्याश्रय प्रदान किया. इन में ईरानी और तूरानी विद्वान भी सम्मिलित थे. वह स्वयं अरबी, फ़ारसी, तुर्की, तेलगु, कन्नड़ और मराठी में निष्णात था. फ़िरोज शाह सभी धर्मों का आदर करता था. फ़िरोज़ शाह दक्षिण को भारत की सांस्कृतिक राजधानी बनाने के लिए प्रयत्नशील रहा.फ़िरोज़ शाह ने पश्चिम-एशियाई देशों – ईरान, ईराक़ तथा अरब देशों के योग्य निवासियों को अपने अमीरों में सम्मिलित किया. इन विदेशी अमीरों को 'अफ़ाक़ी' कहा गया. आगे चलकर स्थानीय दक्कनी अमीरों और अफ़ाक़ी' अमीरों के मध्य राजनीतिक प्रभुत्व की लड़ाई होती रही जो कि बहमनी साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण बना.

3.4.2.2 एक कुशल प्रशासक

प्रशासनिक दृष्टि से फ़िरोज शाह दक्कनी ब्राहमणों की योग्यता को बहुत अधिकसम्मान देता था. उसने भू-राजस्व प्रशासन में उनके ज्ञान तथा उनके अनुभव का लाभ उठाने के लिए अपने भू-राजस्व प्रशासन का दायित्व लगभग पूरी

तरह उनको ही सौंप दिया था.दकनी हिन्दुओं के व्यापार के क्षेत्र में अनुभव का भी उसने लाभ उठाया था और अपने साम्राज्य में व्यापार के विकास तथा उसके विस्तार के लिए भी उसने उनकी सेवाएँ प्राप्त की थीं. उसने चौल तथा दाभोल के बंदरगाहों को विकसित करने का विशेष प्रयास किया था क्योंकि यही वो बंदरगाह थे जहाँ से कि फ़ारस की खाड़ी तथा लाल सागर जैसे सुदूर क्षेत्रों से व्यापारिक जहाजों के माध्यम से व्यापार होता था.

3.4.2.3 फ़िरोज़ शाह के सैनिक अभियान

फ़िरोज़ शाह ने विजयनगर के विरुद्ध तीन अभियान – 1398, 1406 तथा 1417 में किए थे. उसने अपने पहले अभियान में विजयनगर को घेरा तो था किन्तु इस अभियान में उसे कोई निर्णायक सफलता नहीं मिली थी. यद्यपि इतिहासकार फ़रिश्ता उसके इस अभियान को अत्यंत सफल बताता है. बरार पर आक्रमण करने वाले खेरला के गोंड राजा नरसिंह राय को उसने आत्म-समर्पण करने के लिए और अपनी बेटी का विवाह उसके साथ करने के लिए विवश किया. नरसिंह राय को अपना अमीर बनाने के बाद उसने खेरला उसे वापस लौटा दिया. तेलंगाना में प्रारंभिक सफलता मिलने के बावजूद वह अंत में वहां असफल रहा. कात्या वैमा के सेनापति अल्लादा रेड्डी ने बहमनी सेनापति अली खान को पराजित कर फ़िरोज़ शाह के तेलंगाना के अभियान को विफल कर दिया. फ़िरोज़ शाह का दूसरा विजयनगर अभियान सफल रहा और पराजित देवराय प्रथम को अपनी पुत्री का विवाह फ़िरोज़ शाह से करने के लिए विवश होना पड़ा. फ़िरोज़ शाह का तीसरा विजयनगर अभियान उसके लिए अत्यंत हानिकारक सिद्ध हुआ. विजयनगर की सेना ने बहमनी सेना को करारी शिकस्त दी. ख़ुद फ़िरोज़ शाह को अपनी जान बचाने के लिए भागना पड़ा. विजयनगर की सेना ने उसके राज्य में घुसकर लूटमार और आगज़नी की. अंत में विजयनगर की शर्तों पर फ़िरोज़ शाह को संधि करनी पड़ी. फ़िरोज़ शाह को अपने साम्राज्य के पूर्वी तथा दक्षिणी जिले विजयनगर साम्राज्य को सौंपने पड़े.

इस पराजय से फ़िरोज़ शाह अत्यंत हतोत्साहित हो गया. उसके शासन के अंतिम दो वर्ष एक फ़कीर की तरह गुज़रे. अंत में 1422 में उसने अपने अमीरों के दबाव में आकर अपने भाई अहमद शाह के हक़ में अपना तख़्त छोड़ दिया.

3.4.3 अहमद शाह प्रथम

प्रसिद्द सूफ़ी संत गेसू दराज़ के शागिर्द अहमद शाह प्रथम ने सुल्तान बनते ही दक्षिण भारत के पूर्वी तट पर बहमनी साम्राज्य का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए प्रयास किया. उसने वारंगल पर चढ़ाई कर वहां के शासक को पराजित किया और उसकी हत्या कर वारंगल के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया और दक्षिण पर बेहतर नियंत्रण के उद्देश्य से अपनी राजधानी गुलबर्गा से बीदर को स्थानांतरित कर दी. इसके बाद उसने साम्राज्य-विस्तार के लिए मालवा, गोंडवाना तथा कोंकण की ओर अपने अभियान किए.

3.4.5 महमूद गावां

3.4.4.1 बहमनी साम्राज्य की सेवा में प्रवेश

ख्वाजा महमूद जिलानी, ईरान के गावां का रहने वाला था. वह इस्लाम के धर्म-शास्त्र, फ़ारसी भाषा और गणित का विद्वान था. वह एक प्रतिष्ठित कवि और लेखक भी था. वह बहमनी सुल्तान महमूद शाह तृतीय (1463-1482) का वज़ीर था. अपनी बुद्धिमत्ता और अपने प्रशासनिक कौशल से उसने बहमनी सुल्तानों, बहमनी सल्तनत की प्रजा का विश्वास तो प्राप्त किया ही, विदेशी राज्यों में उसका अत्यधिक सम्मान था. उसने बहमनी साम्राज्य के ईरान, ईराक़, मिस्र, तथा जीलान के शासकों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया था. वह एक सफल सेनानायक,

कुशल प्रशासक, विद्वान तथा साहित्य व कला का संरक्षक था. बहमनी सुल्तान से महमूद गावां का प्रथम परिचय एक ईरानी व्यापारी के रूप में हुआ थाबहमनी सुल्तान ने अपने साम्राज्य में व्यापार का विकास करने में उसकी सेवाओं . .का लाभ उठायाएक सेनानायक के रूप में उसकी योग्यता से प्रभावित होकर सुल्तान हुमायूँ शाह ने अपने सेवा में लिया थावयस्क शासक निज़ाम शाह का संरक्षक बना और सत्ता की -हुमायूँ शाह की मृत्यु के बाद वह अल्प . वर्ष का बालक मुहम्मद शाह तृतीय 9 में मृत्यु के बाद 1463 निज़ाम शाह की .वास्तविक बागडोर उसके हाथ में रही .सुल्तान बना जिसका वज़ीर महमूद गावां बनाया गयारूसी यात्री अथनासियस निकितिन ने बीदर की यात्रा के अपने वर्णन में महमूद गावां के राजनीतिक प्रभाव तथा उसके वैभव का उल्लेख किया हैवह बताता है कि उसके महल की . .मशालची नियुक्त थे 10 बंद सैनिक तथा-हथियार 100 रक्षा करने के लिए

3.4.4.2 आतंरिक सुधार

महमूद गावां एक कुशल प्रशासक था. उसने बहमनी साम्राज्य को आठ प्रान्तों में विभाजित किया. प्रत्येक प्रान्त (‘तरफ़’) के प्रशासक को ‘तरफ़दार’ कहा जाता था उसको घुड़सवार सेना रखने के लिए अलग से धन दिया जाता था और उसका अपना वेतन नकदी व जागीर उसे दोनों ही रूपों में दिया जाता था. प्रान्त-पतियों अर्थात् तरफ़दारों द्वारा विद्रोह की सम्भावना को रोकने के लिए उसने उनकी शक्ति को कम किया और प्रान्तों के किलेदारों की नियुक्ति का अधिकार केन्द्रीय-शक्ति के पास ही रक्खा गया. सुल्तान के स्वामित्व की भूमि को ‘खालसा’ कहा जाता जाता था.लगान-निर्धारण के लिए महमूद गावां ने भूमि की नाप-जोख की व्यवस्था को पुनर्प्रचलित किया. महमूद गावां के भू-राजस्व संबंधी सुधारों की छाप हमको राजा टोडरमल के भू-राजस्व विषयक सुधारों में दिखाई देती है.

3.4.4.3 आतंरिक तथा विदेश व्यापार को बढ़ावा

महमूद गावां व्यापार और वाणिज्य के विकास को सल्तनत के स्थायित्व के लिए आवश्यक समझता था. उसने ईरान, ईराक़, मिस्र आदि देशों से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर उन से बहमनी साम्राज्य के लिए व्यापारिक सम्बन्ध भी बनाए. उसने चौल तथा दभोल के बंदरगाहों को विकसित कर वहां से फ़ारस की खाड़ी और लाल सागर से आने वाले और वहां जाने वाले व्यापारिक जहाजों के निर्बाध आवागमन की सुविधा उपलब्ध कर व्यापारिक साम्राज्य में गतिविधियों को बढ़ावा दिया.विजयनगर साम्राज्य से गोवा छीनकर उसने वहां से अरब देशों से होने वाले व्यापार का लाभ भी बहमनी साम्राज्य को उपलब्ध कराया.

3.4.4.4 एक सेनानायक के रूप में महमूद गावां की उपलब्धियां

बहमनी सल्तनत के लिए खेलना के राजा राव राणा शंकर राव सुर्वे तथा संगामेश्वर के राजा राव राणा नीलकांत राव सुर्वे बहुत बड़े सरदर्द बन गए थे. उनके जहाजी बेड़े, मक्का जाने वाले तीर्थ-यात्रियों तथा व्यापारियों को लूटते थे. महमूद गावां ने उनका दमन किया.महमूद गावां ने विजयनगर साम्राज्य से गोवा छीन लिया. विजयनगर के विरुद्ध अभियान के दौरान उसने कांची पर अधिकार कर लिया. उसने कोंकन, संगामेश्वर, उड़ीसा तथा विजयनगर के विरुद्ध सफल अभियानों का नेतृत्व किया. पश्चिमी समुद्र तट पर अधिकार करने के बाद बहमनी साम्राज्य के विदेश-व्यापार को विस्तार करने की अपरिमित संभावनाएं प्राप्त हुईं. कृष्णा-गोदावरी क्षेत्र पर भी बहमनी साम्राज्य का अधिकार कराने में महमूद गावां का ही योगदान था. इस से बहमनी साम्राज्य का विस्तार पूर्व में भी समुद्र तट तक हो गया. महमूद गावां ने गुजरात के शासक के साथ मिलकर मालवा के शासक द्वारा बरार को अपने अधिकार में करने के प्रयास को विफल

कर दिया.महमूद गावां ने बहमनी साम्राज्य के लिए बीदर और दौलताबाद जैसे उपजाऊ क्षेत्रों पर अधिकार कर साम्राज्य के राजस्व में वृद्धि की.उड़ीसा और विजयनगर के मध्य आपसी संघर्ष का भी महमूद गावां ने बहमनी साम्राज्य के लिए लाभ उठाया.

3.4.4.5 साहित्य, कला तथा शिक्षा का संरक्षक

महमूद गावां के पत्रों का संग्रह – 'रियाजुल-इंशा' का साहित्यिक तथा राजनीतिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्व है. उसने फ़ारसी उच्चारण पर – 'मनाज़िर-उल-इंशा' शीर्षक ग्रन्थ की रचना की थी. महमूद गावां ने बीदर में एक भव्य मदरसा स्थापित किया जिसे 'महमूद गावां मदरसा' के नाम से जाना जाता है. मेडो टेलर ने इस मदरसे को बहमनी साम्राज्य की सबसे भव्य इमारत कहा है. यह मदरसा बहमनी स्थापत्य कला के उत्कर्ष को दर्शाता है. 242 फ़ुट लम्बे, 222 फ़ुट चौड़े और 56 फ़ुट ऊंचे इस तीन-मंज़िला भवन के चारों कोनों में स्थित 100-100 फ़ुट की मीनारें, इसका भव्य प्रवेश द्वार, इसका विशाल सभा-कक्ष, इसके नीले टाइल्स और इसके खूबसूरत गुम्बद, और मदरसे से लगी हुई जामा मस्जिद, समरकंद की इमारतों की याद दिलाते हैं. महमूद गावां के इस मदरसे में वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और धर्म-विशेषज्ञों को उस्ताद के रूप में नियुक्त किया गया था. इस मदरसे में 1000 शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के रहने की व्यवस्था थी. इस मदरसे में शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के रहने, खाने-पीने की, तथा वस्त्र आदि की व्यवस्था, राज्य की ओर से की जाती थी.अपने समय की इस महान शिक्षण संस्था के पुस्तकालय में 3000 पांडुलिपियाँ संग्रहीत थीं. महमूद गावां के निमंत्रण पर इस मदरसे में ईरान तथा ईराक़ से आए अनेक विद्वान उस्ताद नियुक्त किए गए थे.

3.4.4.6 महमूद गावां का पतन

महमूद गावां 'अफ़ाक़ी' अमीर था अर्थात् वह एक विदेशी मूल का अमीर था. बहमनी साम्राज्य के स्थानीय अर्थात् दक्कनी अमीर, साम्राज्य में 'अफ़ाक़ी' अमीरों को घुसपैठिया मानते थे और उनके बढ़ते हुए राजनीतिक प्रभाव से बहुत नाराज़ रहते थे. बहमनी साम्राज्य में अमीरों के इन दो वर्गों में एक-दूसरे पर हावी होने के लिए निरंतर संघर्ष चलता रहता था.अहमदशाह प्रथम के शासनकाल में बहमनी साम्राज्य को गुजरात-राज्य से तीन बार हार का सामना करना पड़ा था. महमूद गावां इन पराजयों के लिए दक्कनी अमीरों की कायरता और उनके विश्वासघात को ज़िम्मेदार मानता था जब कि दक्कनी अमीर इन पराजयों के लिए महमूद गावां को ज़िम्मेदार ठहराते थे. अंततः महमूद गावां को दक्कनी अमीरों के असंतोष और उनके कोप का भाजन बनना पड़ा. महमूद गावां की उपलब्धियों से ईर्ष्या रखने वाले अमीरों ने उसके विरुद्ध साज़िश रची. इस षड्यंत्र में ज़रीफ़ुल-मुल्क दक्किनी तथा मिफ्ताह हबाशी मुख्य थे. उन्होंने महमूद गावां की ओर से सुल्तान के विरुद्ध एक जाली दस्तावेज़ तैयार करवाया और उसे सुल्तान के सामने पेश कर दिया. नशे की हालत में क्रुद्ध सुल्तान ने महमूद गावां के प्राण-दंड का आदेश दे दिया अपने प्राण-दंड का आदेश सुनकर महमूद गावां विचलित नहीं हुआ उसका निम्न कथन उसकी चारित्रिक दृढ़ता और बहमनी साम्राज्य के प्रति उसकी निष्ठा को व्यक्त करता है – 'मैं बूढ़ा हूँ और मुझे अपनी मृत्यु की कोई चिंता नहीं है, मौत तो एक न एक दिन आनी ही है, यह हमारी नियति है. मैं ख़ुदा का शुक्रगुज़ार हूँ कि उसने मुझे इस राज्यवंश की सेवा में अपना जीवन अर्पित करने का अवसर प्रदान किया.'

और इस प्रकार 5 अप्रैल, 1481 में निर्दोष महमूद गावां की दुखद मृत्यु हुई. सुल्तान को बाद में अपनी गलती का एहसास हुआ. उसने अपने वज़ीर को सम्पूर्ण शाही सम्मान के साथ दफ़नाये जाने की व्यवस्था की किन्तु इस से बहमनी

सल्तनत के विघटन को तो नहीं रोका जा सकता था. महमूद गावां की मृत्यु के साथ ही बहमनी सल्तनत में दलगत संघर्ष उग्र हो गया और साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी और शीघ्र ही बहमनी साम्राज्य 5 स्वतंत्र राज्यों – गोलकुंडा, बीजापुर, अहमदनगर, बरार तथा बीदर में विभाजित हो गया.

3.4.5 विजयनगर साम्राज्य तथा बहमनी साम्राज्य तथा उसके उत्तराधिकारी राज्यों के मध्य संघर्ष

3.4.5.1 14 वीं तथा 15 वीं शताब्दी में विजयनगर-बहमनी संघर्ष

तुंगभद्रा-कृष्णा के दोआब, कृष्णा-कावेरी घाटी तथा मराठवाड़ा पर प्रभुत्व स्थापित करने की होड़ में विजयनगर साम्राज्य तथा बहमनी साम्राज्य के मध्य आए दिन युद्ध होते रहते थे. इन क्षेत्रों का समुद्र-व्यापार तथा कृषि-उत्पादन की दृष्टि से अत्यंत महत्व था. 1367 में तुंगभद्रा-कृष्णा दोआब पर अधिकार करने के उद्देश्य से बुक्का प्रथम ने मुदकल के किले पर आक्रमण कर दिया. इसके जवाब में बहमनी सुल्तान ने विजयनगर पर आक्रमण कर बुक्का प्रथम को पराजित किया किन्तु दोनों पक्षों के मध्य युद्ध जारी रहा. दोनों पक्षों में युद्ध हुआ जिसमें पहली बार दोनों पक्षों द्वारा तोपों का प्रयोग हुआ. अपनी बेहतर घुड़सवार सेना और अधिक सक्षम तोपखाने के कारण बहमनी सेना की जीत हुई किन्तु यह निर्णायक सिद्ध नहीं हुई. अंत में दोनों पक्ष एक संधि के बाद तुंगभद्रा-कृष्णा दोआब को आपस में बांटने को तैयार हो गए.

हरिहर द्वितीय ने पूर्व में साम्राज्य-विस्तार की नीति अपनाई. सैनिक दृष्टि से उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि बहमनी साम्राज्य के अधिकार वाले गोवा तथा बेलगाँव को उनसे छीनकर उन पर अधिकार करना था. देवराय प्रथम (1406-1422) को बहमनी शासक फ़िरोज़ शाह ने तुंगभद्रा दोआब पर अधिकार करने के विवाद से हुए युद्ध में पराजित किया था उसे अपनी बेटी का उस से विवाह करने के लिए विवश किया. दोनों पक्षों में संधि हुई किन्तु वह स्थायी नहीं रही और अंततः देवराय प्रथम ने कृष्णा नदी के मुहाने तक के क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया.

3.4.5.2 कृष्णदेव राय द्वारा बहमनी राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों पर विजय

कृष्णदेव राय के काल तक बहमनी साम्राज्य का 5 स्वतंत्र राज्यों – गोलकुंडा, बीजापुर, बीदर, बरार और अहमदनगर में विभाजन हो गया था. जब कृष्णदेव राय उड़ीसा के गजपति से युद्ध में उलझा हुआ था तो गोलकुंडा के शासक कुली क़ुतुब शाह ने पंगल तथा गुंटूर पर अधिकार कर लिया. उसने उड़ीसा के गजपति को कृष्णा तथा गोदावरी के मध्य का क्षेत्र भी उसे सौंपने के लिए विवश किया और विजयनगर के कई क्षेत्रों पर अधिकार करने की उसने चेष्टा की. किन्तु कृष्णदेव राय द्वारा सलुव तिम्मा के नेत्रित्व में भेजी गयी सेना ने उसे पराजित किया.कृष्णदेव राय ने 1512 में बीजापुर के इस्माइल आदिल खान को पराजित कर रायचूर के किले पर अधिकार कर लिया. 1520 में एक निर्णायक युद्ध में विजयनगर ने बीजापुर को पुनः परास्त किया और कृष्णदेव राय ने इस्माइल आदिल खान द्वारा गुलबर्गा के किले में क़ैद महमूद शाह द्वितीय को सिंहासनारूढ़ किया. कृष्णदेव राय को 'यवनराज्य-स्थापनाचार्य' की उपाधि दी गयी.

3.4.5.3 तालीकोटा का युद्ध

1565 का तालीकोटा का युद्ध विजयनगर साम्राज्य के लिए काल बनकर आया था. बहमनी साम्राज्य के उत्तराधिकारी मुस्लिम राज्यों – बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर, बीदर और बरार की संयुक्त सेना ने राम राय के नेतृत्व में विजयनगर की सेना को पराजित किया और राम राय को पकड़कर उसे मार डाला. विजयी सेना ने हम्पी में प्रवेश किया और फिर 5 महीनों तक लूटमार, आगज़नी और विनाश की लीला चलती रही. वो हम्पी जो कि सारे विश्व में अपनी भव्यता, अपने महलों, अपने मंदिरों, अपनी झीलों, अपने उद्यानों और अपने किलों के लिए प्रसिद्द था, आज वहां हमको केवल खंडहर ही देखने को मिलते हैं.

3.4.6 बहमनी साम्राज्य की सांस्कृतिक उपलब्धियां

3.4.6.1 स्थापत्य कला

बहमनी साम्राज्य की इमारतें मध्य कालीन स्थापत्य कला के उत्कर्ष को दर्शाती हैं.बहमनी सुल्तानों तथा उनके अधीनस्थ अधिकारियों ने अनेक भवनों का निर्माण करवाया था. इन में गुलबर्गा तथा बीदर के शाही महल, गुलबर्गा की जामी मस्जिद, सूफ़ी संत गेसू दराज़ की मज़ार, चार प्रवेश द्वारों वाला फ़िरोज़ शाह का महल, मुहम्मद आदिल शाह का मक़बरा, दौलताबाद की चाँद मीनार, बीजापुर का गोल-गुम्बद, गोलकुंडा का किला तथा दौलताबाद का किला उल्लेखनीय हैं. बीजापुर का गोल गुम्बद तो मध्यकालीन स्थापत्य कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों में गिना जाता है. बहमनी स्थापत्य कला में तुर्की, ईरानी, तूरानी, अरबी तथा हिन्दू स्थापत्य कला सुन्दर समन्वय है. मुग़ल काल की अनेक इमारतों में बहमनी स्थापत्य कला का प्रभाव देखा जा सकता है. सिकंदरा में स्थित अकबर के मकबरे के प्रवेश द्वार में बहमनी काल में बने हुए प्रवेश द्वारों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है.

3.4.6.2 बीदर की मीनाकारी

बीदर की मीनाकारी विश्व-प्रसिद्ध है. ताम्बे और चांदी पर पच्चीकारी की कला का नाम ही 'बीदरी कला' पड़ गया.

3.4.6.3 साहित्य का विकास

बहमनी साम्राज्य में साहित्य का उल्लेखनीय विकास हुआ. बहमनी शासक साहित्यकारों के पोषक थे और अनेक सुल्तान तो स्वयं साहित्यकार थे. इसी प्रकार बहमनी साम्राज्य के इतिहास का सबसे योग्य व्यक्ति महमूद गावां भी स्वयं साहित्यकार था और साहित्यकारों का पोषक भी था. प्रसिद्द सूफ़ी संत गेसू दराज़ बन्दानवाज़ ने 'किताब-उल-आशिकीन' की रचना की थी. गेसू दराज़ एक प्रतिष्ठित शायर भी थे और उनका दीवान भी काव्यात्मक दृष्टि से उच्च कोटि का है.शाहबुद्दीन अहमद दौलताबादी रचित – 'बहरे-मारवाज़' और मुल्ला दाउद बीदरी का इतिहास ग्रन्थ – तुह्फ़त-उस-सलातीन भी उल्लेखनीय हैं. बहमनी शासकों ने फ़ारसी साहित्य को भी प्रोत्साहन दिया. दक्किनी उर्दू के विकास में उनका योगदान अमूल्य है. महमूद गावां स्वयं फ़ारसी का लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार था. उसने 'रियाजुल-इंशा' तथा 'मनासिर-उल-इंशा' की रचना की थी. बहमनी साम्राज्य के पतन के कारण

1. अधिकांश बहमनी सुल्तान विलासी थे और शासक के कर्तव्यों के प्रति प्रायः उदासीन रहते थे.
2. विजयनगर साम्राज्य से निरंतर युद्द की स्थिति ने बहमनी साम्राज्य और विजयनगर साम्राज्य, दोनों को ही सामान रूप से हानि पहुंचाई. इस युद्ध की स्थिति के कारण बहमनी सुल्तान अपने राज्य का समुचित प्रबंध करने में प्रायः असफल रहे.

3. बहमनी सुल्तान स्वयं को ईरानी मूल का कहलाने में गर्व करते थे. उन्होंने अपने राज्य में विदेशी मूल के अमीरों को उच्च पदों पर नियुक्त किया था जो कि स्थानीय दक्किनी अमीरों को स्वीकार्य नहीं था. जब भी कोई दुर्बल सुल्तान तख़्त पर बैठता था तब यह विदेशी-दक्किनी अमीरों का संघर्ष और मुखर हो जाता था. ईरानी अमीर महमूद गावां का पतन इसी विदेशी और दक्किनी अमीरों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का परिणाम था.
4. बहमनी सुल्तानों ने हिन्दू प्रजा के प्रति सहिष्णुता की नीति नहीं अपनाई थी. बहमनी साम्राज्य के पतन के लिए हिन्दू प्रतिरोध भी एक मुख्य कारण था.
5. महमूद गावां की मृत्यु के बाद केन्द्रीय शक्ति का स्थानीय शक्तियों पर से नियंत्रण उठ गया.
6. उत्तराधिकार के नियमों का स्पष्ट न होना भी बहमनी साम्राज्य के पतन का एक कारण था. शहज़ादों को सैनिक प्रशिक्षण तथा प्रशासनिक प्रशिक्षण दिए जाने की समुचित व्यवस्था नहीं थी इसलिए प्रायः नया सुल्तान प्रशासनिक और सैनिक मामलों में एक नौसिखिया ही होता था और अक्सर वह शक्तिशाली अमीरों के हाथों की कठपुतली बन कर रह जाता था.

3.5 सारांश

विजयनगर को मध्यकाल का प्रथम और महानतम हिन्दू साम्राज्य माना जाता है. इस साम्राज्य की नीव हरिहर तथा बुक्का ने 1336 में, मुहम्मद बिन तुगलक़ के शासनकाल में रखी थी. विजयनगर साम्राज्य पर चार राज्यवंशों ने शासन किया.

1. संगम राज्यवंश (1336-1485)
2. सालुव राज्यवंश (1485-1505)
3. तुलुव राज्यवंश (1505-1570)
4. अरविदु राज्यवंश (1570-1652)

बुक्का प्रथम संगम राज्यवंश का एक महान शासक था. उसके साम्राज्य में तुंगभद्रा-कृष्णा नदी का दोआब, गोवा तथा उड़ीसा सम्मिलित थे. हरिहर द्वितीय ने पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तट तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया. इसी राज्यवंश के देवराय प्रथम (1406-1422) ने तुंगभद्रा नदी पर बाँध बनवाया था. देवराय द्वितीय के शासनकाल में कला और साहित्य का विकास हुआ.संगम राज्यवंश ने साम्राज्य-विस्तार कर अपने साम्राज्य में तमिल प्रदेश और चेरों (केरल) कर लिया था.

सालुव राज्यवंश के नरसा नायक के शासनकाल में वास्कोडिगामा कालीकट के तट पर उतरा था. तुलुव राज्यवंश का कृष्णदेव राय, एक महान शासक, सफल प्रशासक, विजेता, विद्वान लेखक, महान नगर एवं भवन निर्माता, कला और साहित्य का संरक्षक था. उसके शासनकाल में विजयनगर साम्राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर पहुंचा था.1565 में तालीकोटा के युद्ध में विजयनगर के राम राय को बहमनी साम्राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों की संयुक्त सेना ने पराजित किया. इसके बाद विजयनगर साम्राज्य का पतन हो गया.

अरविदु राज्यवंश विजयनगर साम्राज्य का अंतिम राज्यवंश था. सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते विजयनगर साम्राज्य पूर्णतया विनष्ट हो गया. विदेशी यात्रियों के वृतांतों में विजयनगर साम्राज्य के वैभव का विस्तार से वर्णन मिलता है. इब्नबतूता, निकोलो कोंटी, अब्दुर्रज्जाक, दुआर्तो बारबोसा, फर्नाओ नुनीज़ और डोमिंगो पेइस ने विभिन्न

शासकों के काल में विजयनगर साम्राज्य के कुशल प्रशासन, उसकी विशाल सेना, उसके वैभव, उसके नगरों, उसके शासकों की धार्मिक सहिष्णुता की नीति, उसके उन्नत व्यापार तथा उसकी कलात्मक उपलब्धियों की विस्तार से चर्चा की है. विजयनगर साम्राज्य में भूमि-कर नकदी और उपज के अंश, दोनों ही रूप में लिया जाता था. न्यूनतम भू-राजस्व – उपज का 1/6 भाग तथा अधिकतम - उपज का 1/3 भाग होता था.विजयनगर साम्राज्य में राज्य की ओर से कृषि-प्रोत्साहन की नीति अपनाई जाती थी. खेती की उन्नति तथा सिंचाई के साधनों में वृद्धि के लिए राज्य की ओर से पूंजी-निवेश किया जाता था. देवराय प्रथम ने तुंगभद्रा नदी तथा हरिद्रा नदी पर बाँध बनवाए. कृष्णदेव राय ने कृषिविकास - हेतुअनेक तालाबों तथा नहरों का निर्माण करवाया और जंगल साफ़ करवा कर कृषि .विस्तार किया योग्य भूमि का-

भू-राजस्व की भाँति व्यवसायों तथा क्रय-विक्रय पर भी कर लगाए जाते थे.विजयनगर साम्राज्य में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार फल-फूल रहा था. कालीकट का बंदरगाह विजयनगर का सबसे समृद्ध बंदरगाह था. विजयनगर में वस्त्र-उद्योग का सर्वाधिक महत्व था.तुंगभद्रा नदी के निकट स्थित हम्पीमध्यकाल में बीजिंग के बाद विश्व का सबसे बड़ा , नगर था और भारत का सबसे समृद्ध नगर था .हम्पी के भग्नावशेष उसकी उत्कृष्ट कला के सजीव प्रमाण हैं .

1347 में हसन गंगू ने 'अलाउद्दीन हसन बहमन शाह' के नाम से अगस्त, 1347 को बहमनी साम्राज्य की स्थापना की. उसने गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया और अपने साम्राज्य को चार प्रान्तों – गुलबर्गा, दौलताबाद, बरार तथा बीदर में विभाजित किया. फ़िरोज़ शाह बहमनी साम्राज्य का सबसे महान शासक था. वह एक कुशल प्रशासक तथा महान विजेता था. उसने चौल तथा दाभोल के बंदरगाहों को विकसित करने का विशेष प्रयास किया था. फ़िरोज़ शाह बहमनी साम्राज्य को दकन का सांस्कृतिक केंद्र बनाने के लिए कटिबद्ध था. फ़िरोज शाह सभी धर्मों का आदर करता था. ईरान से आया हुआ एक व्यापारी ख्वाजा महमूद गावां बहमनी सुल्तान महमूद शाह तृतीय (1463-1482) का वज़ीर था. वह एक सफल सेनानायक, कुशल प्रशासक, विद्वान तथा साहित्य व कला का संरक्षक था. महमूद गावां एक कुशल प्रशासक था. उसके भू-राजस्व संबंधी सुधारों की छाप हमको राजा टोडरमल के भू-राजस्व विषयक सुधारों में दिखाई देती है. महमूद गावां व्यापार और वाणिज्य के विकास को सल्तनत के स्थायित्व के लिए आवश्यक समझता था. उसने चौल तथा दभोल के बंदरगाहों को विकसित कर वहां से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा दिया.

महमूद गावां ने विजयनगर साम्राज्य से गोवा छीनकर उसने वहां से अरब देशों से होने वाले व्यापार का लाभ भी बहमनी साम्राज्य को उपलब्ध कराया. कृष्णा-गोदावरी क्षेत्र पर भी बहमनी साम्राज्य का अधिकार कराने में महमूद गावां का ही योगदान था. महमूद गावां के पत्रों का संग्रह –'रियाज़ुल-इंशा' का साहित्यिक तथा राजनीतिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्व हैयह मदरसा बहमनी स्थापत्य कला के .महमूद गावां ने बीदर में एक भव्य मदरसा स्थापित किया . पांडुलिपियाँ संग्रहीत थी 3000 अपने समय की इस महान शिक्षण संस्था के पुस्तकालय में .उत्कर्ष को दर्शाता है ं . महमूद गावां अमीरों 'अफ़ाक़ी' साम्राज्य में ,बहमनी साम्राज्य के स्थानीय अर्थात् दक्कनी अमीर .अमीर था 'अफ़ाक़ी' महमूद गावां की मृत्यु के साथ ही .दक्कनी अमीरों की साज़िश के तहत उसका पतन हुआ .को घुसपैठिया मानते थे बहमनी सल्तनत में दलगत संघर्ष उग्र हो गया और साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी .

तुंगभद्रा-कृष्णा के दोआब, कृष्णा-कावेरी घाटी तथा मराठवाड़ा पर प्रभुत्व स्थापित करने की होड़ में विजयनगर साम्राज्य तथा बहमनी साम्राज्य के मध्य आए दिन युद्ध होते रहते थे.हरिहर द्वितीय ने बहमनी साम्राज्य के अधिकार वाले गोवा तथा बेलगाँव को उनसे छीनकर उन पर अधिकार कर लिया.देवराय प्रथम (1406-1422) को बहमनी

शासक फ़िरोज़ शाह ने तुंगभद्रा दोआब पर अधिकार करने के विवाद से हुए युद्ध में पराजित किया था. कृष्णदेव राय के काल तक बहमनी साम्राज्य का 5 स्वतंत्र राज्यों – गोलकुंडा, बीजापुर, बीदर, बरार और अहमदनगर में विभाजन हो गया था. 1520 में एक निर्णायक युद्ध में विजयनगर ने बीजापुर को परास्त किया और कृष्णदेव राय ने इस्माइल आदिल खान द्वारा गुलबर्गा के किले में क़ैद महमूद शाह द्वितीय को सिंहासनारूढ़ किया. का तालीकोटा का 1565 – बहमनी साम्राज्य के उत्तराधिकारी मुस्लिम राज्यों .काल बनकर आया था युद्ध विजयनगर साम्राज्य के लिए बीदर और बरार की संयुक्त सेना ने राम राय के नेतृत्व में विजयनगर की सेना को ,अहमदनगर ,गोलकुंडा ,बीजापुर .पराजित किया

बहमनी सुल्तानों तथा उनके अधीनस्थ अधिकारियों ने अनेक भवनों का निर्माण करवाया था. इन में गुलबर्गा तथा बीदर के शाही महल, गुलबर्गा की जामी मस्जिद, सूफी संत गेसू दराज़ की मज़ार, चार प्रवेश द्वारों वाला फ़िरोज़ शाह का महल, मुहम्मद आदिल शाह का मक़बरा, दौलताबाद की चाँद मीनार, बीजापुर का गोल-गुम्बद, गोलकुंडा का किला तथा दौलताबाद का किला उल्लेखनीय हैं. बीजापुर का गोल गुम्बद तो मध्यकालीन स्थापत्य कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों में गिना जाता है.बीदर की मीनाकारी विश्व-प्रसिद्ध है. बहमनी शासक साहित्यकारों के पोषक थे और अनेक सुल्तान तो स्वयं साहित्यकार थे. इसी प्रकार बहमनी साम्राज्य के इतिहास का सबसे योग्य व्यक्ति महमूद गावां भी स्वयं साहित्यकार था और साहित्यकारों का पोषक भी था. शाहबुद्दीन अहमद दौलताबादी रचित – 'बहरे-मारवाज़' और मुल्ला दाउद बीदरी का इतिहास ग्रन्थ – तुह्फ़त-उस-सलातीन भी उल्लेखनीय हैं. महमूद गावां स्वयं फ़ारसी का लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार था. उसने 'रियाजुल-इंशा' तथा 'मनासिर-उल-इंशा' की रचना की थी.

बहमनी साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण अधिकांश बहमनी सुल्तानों का विलासी होना था. विजयनगर साम्राज्य से निरंतर युद्द की स्थिति ने बहमनी साम्राज्य और विजयनगर साम्राज्य, दोनों को ही सामान रूप से हानि पहुंचाई. इस युद्ध की स्थिति के कारण बहमनी सुल्तान अपने राज्य का समुचित प्रबंध करने में प्रायः असफल रहे. उत्तराधिकार के नियमों का स्पष्ट न होना भी बहमनी साम्राज्य के पतन का एक कारण था. शहज़ादों को सैनिक प्रशिक्षण तथा प्रशासनिक प्रशिक्षण दिए जाने की समुचित व्यवस्था नहीं थी. विदेशी और दक्कनी अमीरों का आपसी संघर्ष बहमनी साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण था. बहमनी सुल्तानों ने हिन्दू प्रजा के प्रति सहिष्णुता की नीति नहीं अपनाई थी. महमूद गावां की हत्या बहमनी साम्राज्य के विघटन का मुख्य कारण था.

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

हेरात – ईरान का प्रसिद्द नगर

सिद्धदाय – विजयनगर साम्राज्य में नगदी के के रूप में प्राप्त राजस्व

'बराह' तथा 'पोर्दा' – विजयनगर साम्राज्य में प्रचलित सोने के सिक्के

अफ़ाक़ी अमीर – ईरान तथा ईराक़ आए देशों से बहमनी साम्राज्य में नियुक्त अमीर

दक्कनी अमीर – बहमनी साम्राज्य में नियुक्त दक्षिण भारतीय अमीर

खालसा – सुल्तान के स्वामित्व वाली भूमि

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए

1. विदेशी यात्रियों द्वारा विजयनगर साम्राज्य का वृतांत
2. महमूद गावां का बहमनी साम्राज्य के उत्थान में योगदान
3. विजयनगर और बहमनी साम्राज्य के मध्य संघर्ष

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 3.3.2 विदेशी यात्रियों के वृतांतों में विजयनगर साम्राज्य
2. देखिए 3.4.4 महमूद गावां
3. देखिए 3.4.5 विजयनगर साम्राज्य तथा बहमनी साम्राज्य तथा उसके उत्तराधिकारी राज्यों के मध्य संघर्ष

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

मेजर, आर. एच - 'इंडिया इन दि फ़िफ्टीन्थ सेंचुरी, लन्दन, 1857

सेवेल, आर. – 'ए फॉरगॉटन एम्पायर (विजयनगर), लन्दन, 1900

इलियट, एच. एम., डाउसन, जे – 'हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया एज़ टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियंस', 8 भागों में, लन्दन, 1867

रिज़वी, ए. ए. एस. – 'आदि तुर्क कालीन भारत' अलीगढ़, 1956

मजूमदार, आर. सी. (संपादक) – 'दि डेल्ही सल्तनत' बॉम्बे, 1980

शेरवानी, एच. के. – 'दि ग्रेट वज़ीर महमूद गावां' बॉम्बे, 1942

शेरवानी, एच. के. – 'दि बहमनी किंगडम' बॉम्बे, 1947

महालिंगम, टी. वी. – 'एडमिनिस्ट्रेशन एंड सोशल लाइफ़ अंडर विजयनगर एम्पायर', मद्रास, 1951

महालिंगम, टी. वी. – 'इकनोमिक लाइफ़ इन दि विजयनगर एम्पायर', मद्रास, 1951

कामथ, एस. यू. – 'कृष्णदेव राय एंड हिज़ टाइम्स' बैंगलोर, 2009

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

शासक के रूप में कृष्णदेव राय का आकलन कीजिए

सल्तनत काल में राज्य तथा संप्रभुता

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 दिल्ली सल्तनत में धर्म, ख़लीफ़ा, सुल्तान की शक्तियां और राज्य का स्वरुप

1.3.1 मुस्लिम राज्य में सुल्तान के पद का सृजन

1.3.2 इस्लाम में शासक की शक्ति पर प्रतिबन्ध की व्यवस्था

1.3.3 मुस्लिम राज्यों का धर्म-तंत्रात्मक एवं सैनिक स्वरुप

1.3.4 दिल्ली सल्तनत एक मुस्लिम राज्य

1.3.5 एक सैनिक राज्य के रूप में दिल्ली सल्तनत

1.3.6 दिल्ली के सुल्तान और खिलाफ़त (खलीफ़ा का साम्राज्य)

1.3.7 धर्मतन्त्रात्मक राज्य और उलेमा

1.3.8 सर्वोच्च शासक के रूप में सुल्तान

1.4 दिल्ली के विभिन्न सुल्तानों द्वारा पोषित राजत्व का सिद्धांत

1.4.1 बलबन का राजत्व का सिद्धांत

1.4.2 अलाउद्दीन का राजत्व का सिद्धांत

1.4.3 मुहम्मद बिन तुगलक़ का राजत्व का सिद्धांत

1.4.4 सैयद राज्यवंश में राजत्व के सिद्धांत का लुप्त हो जाना

1.4.5 अफगान राजत्व का सिद्धांत

1.4.5.1 बहलोल लोदी द्वारा पोषित राजत्व का सिद्धांत

1.4.5.2 सिकंदर लोदी द्वारा राजत्व के दैविक सिद्धांत की स्थापना

1.4.5.3 राजत्व के दैविक सिद्धांत को स्थापित करने में इब्राहीम लोदी की असफलता

1.5 सुल्तान और बादशाह (पादशाह) में अंतर

1.6 सारांश

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मुस्लिम राज्य मुख्यतः शरा के क़ानून के अनुसार संचालित होता है. और उसमें न्याय-वितरण तथा शांति-व्यवस्था की स्थापना शरा के मुताबिक़ ही की जाती है. 622 ईसवी में हज़रत मुहम्मद द्वारा प्रथम मुस्लिम-राज्य की स्थापना की गयी थी. यह 'मुस्लिम उम्मा' की राजनीतिक एकता का प्रतिनिधित्व करता था. हज़रत मुहम्मद के बाद उनके 'राशिदुन' शागिर्दों द्वारा 632 ईसवी में ख़िलाफ़त की स्थापना की गयी.हज़रत मुहम्मद स्वयं शुरा के सदस्यों के निर्णय का सम्मान करते थे. उनका यह विचार था कि बहुमत का निर्णय किसी एक अकेले व्यक्ति द्वारा लिए गए निर्णय से श्रेष्ठ होता है.

इस्लाम में शासक को कभी भी पूर्ण संप्रभुता प्राप्त शासक के अनियंत्रित अधिकार नहीं दिए गए हैं. मुस्लिम शासक को क़ुरान शरीफ़ की शिक्षाओं के विरुद्ध जाकर कुछ भी करने का अधिकार नहीं है. दिल्ली सल्तनत का स्वरुप धर्मतन्त्रात्मक होने के साथ-साथ एक सैनिक-राज्य का भी था. इसके स्वरुप में धर्मतन्त्रात्मक राज्य और सैनिक राज्य दोनों का ही समावेश था. सैनिक-राज्य के रूप में भी इसकी प्रेरणा का श्रोत धर्म ही था. इसकी राजनीतिक तथा प्रशासनिक संस्थाएं सैद्धांतिक रूप से क़ुरान शरीफ़ की शिक्षाओं पर आधारित शरियत पर आधारित थीं और दिल्ली के सुल्तान, धार्मिक तथा राजनीतिक दृष्टि से, विश्व भर के मुसलमानों के आध्यात्मिक गुरु एवं राजनीतिक प्रभु - खलीफ़ा का, स्वयं को प्रतिनिधि मात्र मानते थे, न कि पूर्ण संप्रभुता प्राप्त शासक. दिल्ली के सुल्तान उसके प्रति अपनी निष्ठा तो व्यक्त करते ही थे, साथ ही साथ उसके द्वारा स्वयं को उसके नायब के रूप औपचारिक मान्यता प्रदान किए जाने के लिए भी सतत प्रयत्नशील रहते थे. खलीफ़ा से शासक के रूप में मान्यता प्राप्त करना तो एक औपचारिकता मात्र थी किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से दिल्ली के सुल्तान पूर्ण स्वतंत्र शासक के रूप में शासन करने में सक्षम थे.

सुल्तान पद की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने के लिए बलबन ने ईरान और प्राचीन भारत में प्रचलित राजत्व के दैविक सिद्धांत को अपने ढंग से विकसित किया. राजत्व के दैविक सिद्धांत के अनुसार शासक का आदेश, ईश्वरीय आदेश की प्रतिध्वनि होता था.अलाउद्दीन खिलजी यह मानता था कि सुल्तान का पद ईश्वरीय कृति है और सुल्तान पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है. वह यह भी कहता था कि सुल्तान की सत्ता को कोई चुनौती नहीं दे सकता और सुल्तान का वचन ही क़ानून है.मुहम्मद बिन तुगलक़ ने स्वयं को उलेमाओं के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रखा था और ख़लीफ़ा की आधीनता स्वीकार करने की कोई औपचारिकता नहीं निभाई थी किन्तु बाद में अपना जनाधार सशक्त बनाने के लिए उसने ख़लीफ़ा से मान्यता प्राप्त करने की औपचारिकता निभाई थी.

बहलोल लोदी ने अफ़गान राजत्व के सिद्धांत का पोषण कर अपने अमीरों को सल्तनत में हिस्सेदार बनाया था किन्तु उसके पुत्र सिकंदर लोदी और उसके पौत्र इब्राहीम लोदी ने एक बार फिर से राजत्व के दैविक सिद्धांत को लागू कर अपने अमीरों को असंतुष्ट कर दिया था जो कि अंततः लोदी राज्यवंश के पतन का एक मुख्य कारण बना. बाबर द्वारा मुग़ल साम्राज्य की स्थापना से भारत में शताब्दियों के बाद 'पादशाह' अथवा 'बादशाह' के रूप में पूर्ण संप्रभुता प्राप्त शासक अस्तित्व में आया. सुल्तान जहाँ सैद्धांतिक रूप से ख़लीफ़ा नायब था, वहां बादशाह एक पूर्ण संप्रभुता प्राप्त शासक था.

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य – दिल्ली सल्तनतकाल में राज्य के स्वरुप तथा उसके शासक- सुल्तान, की संप्रभुता पर चर्चा करना है. इसके लिए इस्लाम के उदय के समय हज़रत मुहम्मद की धर्म गुरु के साथ एक शासक के रूप में प्रतिष्ठा से लेकर ख़िलाफ़त और विभिन्न सल्तनत की स्थापना से भी आपको अवगत कराया जाएगा. इस इकाई का अध्ययन कर आप –

1. दिल्ली सल्तनत के धर्म-तंत्रात्मक स्वरुप से परिचित हो सकेंगे.
2. दिल्ली सल्तनत के एक सैनिक राज्य के रूप से भी आप परिचित हो सकेंगे. 3. सुल्तान के अधिकार और उस पर शरियत के नियमों का पालन करते हुए अपने कर्तव्यों के निर्वाहन से अवगत हो सकेंगे.

4. दिल्ली सल्तनत के विभिन्न सुल्तानों द्वारा ख़लीफ़ा से सुल्तान के रूप में मान्यता प्राप्त करने के प्रयासों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.

5. बलबन, अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद बिन तुगलक़ द्वारा पोषित राजत्व के सिद्धांत के अतिरिक्त अफ़गान राजत्व के सिद्धांत से परिचित हो सकेंगे.

6. बाबर द्वारा मुग़ल साम्राज्य की स्थापना से शासक के पूर्ण संप्रभुता प्राप्त 'पादशाह' के रूप में प्रतिष्ठित होने की जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ 'पादशाह' और 'सुल्तान' के मध्य अंतर को समझने में सक्षम हो सकेंगे.

1.3 दिल्ली सल्तनत में धर्म, ख़लीफ़ा, सुल्तान की शक्तियां और राज्य का स्वरुप

1.3.1 मुस्लिम राज्य में सुल्तान के पद का सृजन

मध्यकालीन सामंतवादी यूरोप के राज्यों की तुलना में मुस्लिम राज्यों में धर्म और राज्य आपस में, अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे. 'उलेमाओं' को मुस्लिम समुदाय (उम्मा) के नेता खलीफ़ा को सलाह देने का दायित्व सौंपा गया था. 9 वीं शताब्दी तक खलीफ़ा ही मुसलमानों का धर्म-गुरु और शासक था और बाद में 'अमीर' अथवा 'सुल्तान' कहा जाने वाला सेनानायक राजनीतिक तथा सैनिक दृष्टि से मुसलमानों का शासक बन गया किन्तु खलीफ़ा अब भी मुसलमानों का आध्यात्मिक गुरु बना रहा.

मुस्लिम राजनीतिक सिद्धांत मूलतः क़ुरान शरीफ़ की शिक्षाओं, हज़रत मुहम्मद द्वारा स्थापित राजनीतिक व्यवस्था की परंपरा और यूनानी राजनीतिक विचारधारा पर आधारित था. मुस्लिम धर्म-विज्ञानियों ने मुस्लिम राजनीतिक सिद्धांत का विकास किया जिसका कि मुस्लिम विधि-वेत्ताओं ने विस्तार किया और राज्य के वैधानिक आधार को परिभाषित किया. यूनानी दार्शनिकों को इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने राज्य के औचित्य को जिस प्रकार स्थापित किया था, उसे मुसलमानों ने राज्य की अवधारणा के विषय में लगभग वैसा का वैसा ही अपना लिया था.

1.3.2 इस्लाम में शासक की शक्ति पर प्रतिबन्ध की व्यवस्था

इस्लाम में शासक को कभी भी पूर्ण संप्रभुता प्राप्त शासक के अनियंत्रित अधिकार नहीं दिए गए हैं. मुस्लिम शासक को क़ुरान शरीफ़ की शिक्षाओं के विरुद्ध जाकर कुछ भी करने का अधिकार नहीं है.

हज़रत मुहम्मद इस्लाम के पैगम्बर होने के साथ-साथ अपने अनुयायियों के शासक भी बन गए थे अतः किंचित ऐसी संस्थाओं का विकास किया गया जिनमें धर्म के निर्वहन और राज्य के सञ्चालन दोनों का समावेश हो. हज़रत मुहम्मद प्रत्येक धार्मिक, प्रशासनिक अथवा कैसी भी समस्या के समाधान के लिए अपने विश्वस्त एवं योग्य अनुयायियों से विचार-विमर्श अवश्य करते थे. अतः मुस्लिम राज्यों के गठन के बाद यह व्यवस्था की गयी कि इस्लाम की शिक्षाओं के अनुरूप राज्य-सञ्चालन में शासक को सलाह देने के लिए धर्म और न्याय के जानकारों की नियुक्ति की जाए.

1.3.3 मुस्लिम राज्यों का धर्म-तंत्रात्मक एवं सैनिक स्वरुप

धर्मतन्त्रात्मक राज्य वह होता है जिसकी कि समस्त कार्य-प्रणाली धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित होती है और सैनिक-राज्य वह होता है जो कि अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए मुख्यतः अपनी सैनिक-शक्ति पर निर्भर रहता है.

दिल्ली सल्तनत का स्वरुप धर्मतन्त्रात्मक होने के साथ-साथ एक सैनिक-राज्य का भी था. इसके स्वरुप में धर्मतन्त्रात्मक राज्य और सैनिक राज्य दोनों का ही समावेश था. सैनिक-राज्य के रूप में भी इसकी प्रेरणा का श्रोत धर्म ही था. इसकी राजनीतिक तथा प्रशासनिक संस्थाएं सैद्धांतिक रूप से क़ुरान शरीफ़ की शिक्षाओं पर और शरियत पर आधारित थीं और दिल्ली के सुल्तान, धार्मिक तथा राजनीतिक दृष्टि से, विश्व भर के मुसलमानों के आध्यात्मिक गुरु एवं राजनीतिक प्रभु - खलीफ़ा का, स्वयं को प्रतिनिधि मात्र मानते थे, न कि पूर्ण संप्रभुता प्राप्त शासक.

प्रत्येक मुस्लिम राज्य, खलीफ़ा की संप्रभुता को स्वीकार करता था, और उसका शासक खलीफ़ा के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करता था और उसके नायब के रूप में उस राज्य पर शासन करने का अधिकार, उस से (खलीफ़ा से) प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता था.

1.3.4 दिल्ली सल्तनत एक मुस्लिम राज्य

दिल्ली सल्तनत में इस्लाम राज्य-धर्म था और राज्य का यह प्रथम कर्तव्य था कि वह इस्लाम का प्रचार-प्रसार करे. धार्मिक क़ानून, नागरिक क़ानून से ऊपर थे. और चूंकि उलेमा सामान्यतः मुस्लिम क़ानून की व्याख्या करते थे इसलिए राज्य में उनका प्रभाव, उनका दबदबा, बहुत अधिक था.

दिल्ली सल्तनत की स्थापना तुर्कों ने की थी और अधिकांश समय तक तुर्क ही दिल्ली के सुल्तान रहे थे किन्तु तुर्कों ने दिल्ली सल्तनत में तुर्की सभ्यता से अधिक विकसित और परिष्कृत ईरानी सभ्यता को अपनाया था. दिल्ली के सुल्तानों ने अपने राज्य को ईरान के बादशाहों के राज्य के अनुरूप बनाने का हर संभव प्रयास किया था.

दिल्ली सल्तनत में राजभाषा के रूप में फ़ारसी को मान्यता दी गयी और साहित्य के क्षेत्र में भी फ़ारसी साहित्य को प्रोत्साहन व संरक्षण प्रदान किया गया. अधिकांश इतिहास-ग्रन्थ भी फ़ारसी भाषा में ही लिखे गए. दरबार में ईरानी दरबार के अदब-क़ायदे लागू किए गए और दरबार को भव्य बनाने के लिए भी ईरान के शासकों के दरबारों से प्रेरणा ली गयी. दिल्ली सल्तनत की स्थापत्य-कला में और अन्य ललित कलाओं में भी ईरानी प्रभाव देखा जा सकता है.

सैद्धांतिक रूप से सुल्तान से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह शरियत के नियमों का पालन करेगा और राज्य में कर भी वही लगाएगा जो कि शरियत द्वारा संस्तुत होंगे. किन्तु व्यवहार में ऐसा होता नहीं था. दिल्ली सल्तनत में शरियत के नियमों में किंचित बदलाव किए गए थे. दिल्ली सल्तनत की बहु-संख्यक प्रजा गैर-मुस्लिम थी और भारत की राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति भी उन मुस्लिम राज्यों से भिन्न थी जहाँ के लिए मुस्लिम विधि-वेत्ताओं ने शरियत पर आधारित नियम बनाए थे. दिल्ली सल्तनत में पूरी तरह से शरियत के नियमों को लागू कर पाना संभव ही नहीं था. शरियत के नियमों में परिवर्तन किया जाना सुल्तान के व्यक्तित्व, उसकी प्रतिभा, उसके व्यक्तिगत निर्णय, उसकी शक्ति और तत्कालीन - राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सैनिक परिस्थितियों पर निर्भर करता था.

भारत के पूर्व विदेशी आक्रमणकारियों – कुषाण, शक और हूण भारत में अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से नहीं आए थे किन्तु मुस्लिम आक्रमणकारियों का भारत पर आक्रमण करने का एक प्रमुख उद्देश्य इस्लाम का प्रसार करना था, 'दार-उल-हर्ब' को 'दार-उल-इस्लाम' में परिवर्तित करना था और इसके लिए उन्होंने अपनी सैनिक शक्ति के बल पर भारतीय शासकों को पराजित किया, फिर अपनी सत्ता स्थापित की और इस्लाम को अपना राज्य-धर्म घोषित किया. उनका प्रशासन, उनकी न्याय-व्यवस्था आदि के नियम इस्लाम की शिक्षाओं पर आधारित थे किन्तु अपने शासन को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए, आतंरिक विद्रोहों का दमन करने के लिए तथा अपने साम्राज्य का विस्तार कर इस्लाम की पताका को और भी बड़े क्षेत्र में फहराने के लिए उन्हें अपने सैन्य-बल का ही आश्रय लेना होता था.

1.3.5 एक सैनिक राज्य के रूप में दिल्ली सल्तनत

सल्तनत काल में सेनायकों को ही सूबेदार, इक्तेदार आदि बनाया जाता था. राज्य की आय का मुख्य भाग सेना के रख-रखाव पर खर्च किया जाता था और राजस्व-नीति को तत्कालीन सैनिक व्यय की आवश्यकता के अनुसार निर्धारित किया जाता था.

सुल्तान स्वयं सेना का प्रमुख होता था और एक शासक के रूप में उसका सफल अथवा असफल होना मुख्यतः उसकी सैनिक प्रतिभा पर निर्भर करता था. बलबन और अलाउद्दीन जैसे सुल्तानों ने सैनिक-संगठन पर बहुत अधिक ध्यान दिया. उन्होंने उसमें आवश्यक सुधार किए जिसके कारण वे एक ओर आतंरिक विद्रोहों का दमन करने में सफल रहे तो दूसरी ओर अपने राज्य को वाह्य-आक्रमणों से सुरक्षित रखने में भी सफल रहे.

1.3.6 दिल्ली के सुल्तान और खिलाफ़त (खलीफ़ा का साम्राज्य)

सैद्धांतिक दृष्टि से खलीफ़ा, समस्त विश्व के मुसलमानों का लौकिक तथा आध्यात्मिक प्रमुख होता था. किसी भी मुस्लिम राज्य का शासक, चाहे उसका राज्य कहीं भी स्थित हो, वह पूर्ण संप्रभुता प्राप्त शासक नहीं होता था अपितु वह केवल खलीफ़ा का नायब होता था. खलीफ़ा की शक्ति और उसके प्रभाव में पहले की अपेक्षा बहुत कमी आने के बावजूद दिल्ली के सुल्तान उसके प्रति अपनी निष्ठा तो व्यक्त करते ही थे, साथ ही साथ उसके द्वारा स्वयं को उसके नायब के रूप में औपचारिक मान्यता प्रदान किए जाने के लिए भी सतत प्रयत्नरत रहते थे.

दिल्ली के सुल्तानों में इल्तुतमिश प्रथम था जिसको कि खलीफ़ा से सुल्तान के रूप में मान्यता प्राप्त हुई थी. उसने अपने सिक्कों पर स्वयं को खलीफ़ा के नायब के रूप में अंकित करवाया था. अलाउद्दीन खिलजी ने ख़ुद को सुल्तान के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए खलीफ़ा से किसी औपचारिक मान्यता प्राप्त करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया. उसके पुत्र मुबारक खिलजी ने न तो खलीफ़ा से अपने पद की औपचारिक मान्यता प्राप्त करने का प्रयास किया और न ही उसके प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की. इसके विपरीत उसने स्वयं ही 'खलीफ़ा' की उपाधि धारण कर ली.

इल्तुतमिश के बाद आमतौर पर दिल्ली के सुल्तानों ने अपने पद के लिए ख़लीफ़ा से मान्यता प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया किन्तु जब कोई राजनीतिक संकट आता था और सुल्तान की अपनी प्रतिष्ठा में कमी आती थी तो वह ख़लीफ़ा से मान्यता प्राप्त कर अपनी मुस्लिम प्रजा में फिर से सम्मान प्राप्त करने का प्रयास करता था. वह मुहम्मद बिन तुगलक़ जिसने अपने राज्यारोहण के समय ख़लीफ़ा की सत्ता के प्रति कोई भी निष्ठा व्यक्त नहीं की थी, उसने अपने विरुद्ध हो रहे अनवरत विद्रोहों को शांत करने के लिए और अपनी मुस्लिम प्रजा में अपनी खोई हुई साख को पुनर्स्थापित करने के लिए शक्तिहीन ख़लीफ़ा से ख़ुद को सुल्तान के रूप में मान्यता दिए जाने के लिए प्रमाणपत्र निर्गत किए जाने की प्रार्थना की थी.

'तारीख़-ए-फ़िरोज़शाही' में जियाउद्दीन बर्नी ने ख़लीफ़ा द्वारा मुहम्मद बिन तुगलक़ को प्रमाणपत्र दिए जाने का विस्तार से उल्लेख किया है. जब ख़लीफ़ा का राजदूत हाजी सैद सैसे उसकी ओर से सुल्तान के लिए प्रमाणपत्र, ख़िलअत आदि लेकर आया तो सुल्तान, उसके उमरा, उलेमा, सूफ़ी दरवेशों आदि ने उसका भव्य स्वागत किया. सुल्तान तो उसका स्वागत करने के लिए नंगे पैर चलकर गया. जुम्मे की नमाज़ में ख़लीफ़ा का नाम ख़ुतबे में पढ़ा गया और ख़लीफ़ा के नाम के अंकित टंके भीड़ में लुटाए गए.

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने भी ख़लीफ़ा से सुल्तान के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए, उसके पास अपना राजदूत भेजा था. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ पर यह आरोप था कि उसने मुहम्मद बिन तुगलक़ की मृत्यु के बाद अनैतिक तरीके से उसके वास्तविक उत्तराधिकारी को हटाकर, तख़्त पर अधिकार कर लिया था. इस कलंक से उबरने के लिए उसे सुल्तान के रूप में ख़लीफ़ा द्वारा मान्यता दिया जाना उसके लिए बहुत उपयोगी हो सकता था.

किन्तु फ़िरोज़ शाह तुगलक़ के बाद दिल्ली के किसी और सुल्तान ने अपने पद की प्रतिष्ठा हेतु खलीफ़ा से औपचारिक मान्यता प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया. उल्लेखनीय बात यह है कि स्वयं को खलीफ़ा का नायब कहलाने से एक शासक के रूप में दिल्ली के सुल्तानों की शक्ति में कोई कमी नहीं आती थी, खलीफ़ा से शासक के रूप में मान्यता प्राप्त करना तो एक औपचारिकता मात्र थी और व्यावहारिक दृष्टि से वो पूर्ण स्वतंत्र शासक के रूप में शासन करने में सक्षम थे.

1.3.7 धर्मतन्त्रात्मक राज्य और उलेमा

इस्लाम के धर्म-शास्त्र के ज्ञाता, उलेमा कहलाते थे और इस्लाम के अनुसार नियमों तथा क़ानून की व्याख्या करने का और उनके विषय में फ़तवा निर्गत करने अधिकार केवल उन्हें ही प्राप्त था. सुल्तान शरियत के नियमों की

व्याख्या किए जाने के लिए तो उनसे परामर्श करता ही था, इसके अतिरिक्त वह राज्य की अन्य नीतियों के निर्माण व उनके सञ्चालन हेतु भी उनके परामर्श और उनके मार्ग-दर्शन को महत्व देता था. उलेमा स्वयं को अत्यधिक प्रभावशाली समझते थे और यह मानते थे कि राज्य के प्रत्येक विषय में, चाहे वह धर्म से सम्बंधित हो अथवा अन्य विषयों से सम्बंधित, सुल्तान उनसे परामर्श किए बिना कोई कार्य नहीं करगा और न ही कोई निर्णय लेगा.

दिल्ली के किंचित साहसी सुल्तान ऐसे थे जिन्होंने राज्य के प्रत्येक विषय में उलेमाओं के हस्तक्षेप किए जाने का प्रतिरोध किया और प्रत्येक विषय में, विशेषकर धर्म से इतर विषयों में उनसे परामर्श करना आवश्यक नहीं समझा. अलाउद्दीन खिलजी ने सफलतापूर्वक उलेमाओं की निर्बाध शक्ति का प्रतिरोध किया और प्रायः उनसे परामर्श करना भी आवश्यक नहीं समझा. मुहम्मद बिन तुगलक़ दूसरा ऐसा सुल्तान था जिसने कि उलेमाओं द्वारा संचालित होने से इंकार करने का साहस दिखाया था और उनकी कट्टर नीतियों से प्रभावित होकर राज्य-कार्य करना आवश्यक नहीं समझा था. इसका परिणाम यह हुआ कि उसे अपने शासन काल में उलेमाओं के असहयोग तथा विरोध का सामना करना पड़ा.

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने उलेमाओं को राज्य के प्रत्येक विषय में हस्तक्षेप करने की छूट दे दी थी. उलेमाओं ने फ़िरोज़ शाह को कट्टर नीतियां अपनाने के लिए प्रेरित किया था. फ़िरोज़ शाह की गैर-मुस्लिमों के प्रति असहिष्णुता की नीति, उनके पूजा-स्थलों का विध्वंस, ब्राह्मणों पर जज़िया लगाया जाना आदि के लिए उसके शासनकाल में उलेमाओं के बढ़ते हुए प्रभाव को ज़िम्मेदार माना जा सकता है. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ के जन-कल्याणकारी कार्य केवल मुस्लिम समुदाय तक सीमित थे. उसने मुसलमानों की तुलना में गैर-मुस्लिमों पर करों का बोझ भी अधिक डाला था और तलवार के बल पर तथा लालच देकर अन्य धर्मावलम्बियों को इस्लाम में दीक्षित होने के लिए बाध्य अथवा प्रेरित भी किया था. उलेमाओं की इस संकीर्ण विचारधारा का अनुपालन करने का राज्य पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था.

1.3.8 सर्वोच्च शासक के रूप में सुल्तान

मुस्लिम धर्म-तंत्र के अनुसार किसी भी मुस्लिम राज्य में सर्वोच्च शक्ति शरियत के क़ानून में निहित होती थी. सामान्यतया शरियत के नियमों का पालन करते हुए राज्य के प्रमुख के रूप में सुल्तान की शक्ति अपरिमित होती थी. उसमे सभी वैधानिक, प्रशासनिक तथा न्याय सम्बन्धी शक्तियां निहित होती थीं. राज्य में उसका आदेश ही क़ानून होता था. वह अपनी सेना का सर्वोच्च सेनानायक होता था. वह अपने सभी मंत्रियों, अमीरों तथा अन्य अधिकारियों की नियुक्ति करता था. किन्तु उसकी निरंकुश शक्ति पर अंकुश केवल मुस्लिम क़ानून लगा सकते थे क्योंकि सुल्तान चाहते हुए भी शरा के नियमों की अवहेलना नहीं कर सकता था. सैद्धांतिक दृष्टि से सुल्तान सहारा के नियमों के अनुसार ही राज्य-सञ्चालन के लिए बाध्य था किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से अनेक शक्तिशाली सुल्तान क़ानून की व्याख्या के लिए उलेमाओं पर निर्भर रहने के स्थान पर स्वयं उनकी व्याख्या करते थे.

दिल्ली सल्तनत में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था. यह आवश्यक नहीं था कि सुल्तान का सबसे बड़ा बेटा या उसकी पुत्री ही उसकी उत्तराधिकारी हो. हांलाकि एक प्रकार से यह परंपरा बन गयी थी कि सुल्तान के बाद उसका बड़ा बेटा ही उसका उत्तराधिकारी बने. वैसे सुल्तान को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने का अधिकार

था किन्तु राज्य के प्रभावशाली अमीर उसके निर्णय को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं थे. इस्लाम की परंपरा के अनुसार कोई भी बौद्धिक एवं शारीरिक रूप से सक्षम मुसलमान शासक-पद के लिए अपनी दावेदारी प्रस्तुत कर सकता था. उत्तराधिकार की इस अस्पष्ट व्यवस्था के कारण सुल्तान की मृत्यु के उपरांत सिंहासन प्राप्त करने के लिए उत्तराधिकार के युद्ध और भयंकर रक्तपात होना एक आम बात हो गयी थी. राज्य में अमीरों की प्रभावशाली उपस्थिति भी सुल्तान की निरंकुशता पर नियंत्रण लगाने में काफी हद तक सफल रहती थी. दिल्ली सल्नत काल में सुल्तान के व्यक्तिगत चरित्र, उसकी योग्यता और उसकी शक्ति पर ही उसकी प्रतिष्ठा निर्भर करती थी.

1.4 दिल्ली के विभिन्न सुल्तानों द्वारा पोषित राजत्व का सिद्धांत

1.4.1 बलबन का राजत्व का सिद्धांत

दिल्ली सल्तनत के विभिन्न सुल्तानों ने अपनी शक्ति के अनुसार परंपरागत राजत्व के सिद्धांत में परिवर्तन और संशोधन किए थे. गियासुद्दीन बलबन पहला सुल्तान था जिसने कि राजत्व के क़बीलाई सिद्धांत में आमूल परिवर्तन किया था. बलबन स्वयं एक शम्सी अमीर (शमसुद्दीन इल्तुतमिश द्वारा नियुक्त अमीर) और चहलगानी (इल्तुतमिश के चालीस अमीरों का दल) का एक प्रमुख सदस्य था. उसने इल्तुतमिश, रुकनुद्दीन फ़िरोज़, रज़िया, बहराम शाह और नासिरुद्दीन महमूद के काल में सल्तनत में चहलगानी के प्रभाव का स्वयं अनुभव किया था. सुल्तान बनते ही उसने सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा में अत्यंत वृद्धि की. बलबन अमीरों की अवसरवादिता और उनकी महत्वाकांक्षा से भलीभांति अवगत था. मिन्हाज-उद-दीन सिराज के अनुसार नासिरुद्दीन महमूद के शासनकाल के अंतिम दिनों में सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा और गरिमा इतनी कम हो गयी थी कि क्या अमीर और क्या प्रजा, किसी के भी दिल में न तो सुल्तान का कोई खौफ़ था और न ही उसके लिए कोई इज़्ज़त. अनेक अमीर अपने लिए स्वतंत्र राज्यों की स्थापना में प्रयत्नरत थे और कुछ तो अपने दिल में सुल्तान बनने की महत्वाकांक्षा भी पाल रहे थे. दूसरी ओर राजपूत प्रतिरोध और उत्तर-पश्चिम से मंगोल आक्रमण भी सल्तनत की कठिनाइयाँ बढ़ा रहे थे.

सुल्तान पद की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने के लिए बलबन ने ईरान और प्राचीन भारत में प्रचलित राजत्व के दैविक सिद्धांत को अपने ढंग से विकसित किया. राजत्व के दैविक सिद्धांत के अनुसार शासक का आदेश, ईश्वरीय आदेश की प्रतिध्वनि होता था.लखनौती में तुगरिल के विद्रोह का दमन कर विद्रोहियों को ज़िन्दा खूंटियों में टंगवाकर उसने अपने पुत्र बुगरा खान से कहा था – 'सुल्तान का न तो कोई समकक्ष हो सकता है और न ही कोई उसका मित्र अथवा सम्बन्धी हो सकता है. सुल्तान रिश्तों और दोस्ती से बहुत ऊपर होता है.'

बलबन का राजत्व का सिद्धांत इस्लाम के राजत्व की कबीलाई अवधारणा से भिन्न था. बलबन ने राजद्रोह को धर्म-द्रोह की संज्ञा दी थी. बलबन ने प्रजा और अमीरों में सुल्तान के प्रति श्रद्धा और भय, दोनों का ही भाव एक साथ उत्पन्न करने के लिए अपने दरबार को भव्य बनाया, दरबार में शिष्टाचार और गरिमा के नए मापदंड स्थापित किए. उसने सुल्तान के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए 'सिजदा' और 'पैबोस' जैसे अभिवादन अनिवार्य कर दिए. उसने आम लोगों से मिलना-जुलना छोड़कर 'शानदार पृथक्कीकरण' (स्प्लेंडिड आइसोलेशन) की नीति अपनाई थी.

बलबन ने राजत्व के दैविक सिद्धांत को विकसित करते समय केवल सुल्तान के अपरिमित अधिकारों की ही व्यवस्था नहीं की थी, इसके साथ उसने सुल्तान के लिए भी उच्च आदर्श, पवित्र आचरण और अपने कर्तव्यों के प्रति समर्पण की भावना भी सम्मिलित की थी. यह वह सुल्तान था जिसने दरबार में अपने बड़े बेटे के शहीद होने का समाचार बिना कोई आंसू बहाए सुना था. सुल्तान को एक आम इन्सान की तमाम कमज़ोरियों से रहित एक महामानव के रूप में प्रस्तुत करने के लिए उसने हर संभव प्रयास किया था. वह अपने आचरण से ख़ुद को 'नियाबते ख़ुदाई' (पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि) और 'ज़िल्ले अल्लाह' (ईश्वर का प्रतिबिम्ब) के रूप में प्रतिष्ठित करने में सफल रहा था. बलबन का राजत्व का सिद्धांत पूर्ववर्ती कौटिल्य और परवर्ती मेकियावेली द्वारा पोषित राजत्व के सिद्धांत से मिलता-जुलता है.

बलबन का राजत्व का सिद्धांत यद्यपि इस्लाम के परंपरागत राजत्व के सिद्धांत से भिन्न था किन्तु उसने कभी भी इस्लाम की शिक्षाओं के विरुद्ध कार्य नहीं किया और ख़ुद को खलीफ़ा के प्रतिनिधि के रूप में प्रतिष्ठित करने में कभी सकोच नहीं किया. बलबन देश-विदेश में इस्लाम के संरक्षक के रूप में विख्यात था.बलबन अपने राजत्व के सिद्धांत के माध्यम से आम प्रजा से लेकर ख़ास अमीरों के मध्य सुल्तान के प्रति श्रद्धा और भय की भावना का संचार करने में सफल रहा था.

1.4.2 अलाउद्दीन का राजत्व का सिद्धांत

जलालुद्दीन खिलजी ने अपने पूर्व-स्वामी सुल्तान बलबन के प्रति अपना सम्मान व्यक्त करते हुए, सुल्तान बनने के बाद भी उसके द्वारा बनवाए गए लाल महल में प्रवेश नहीं किया था. यह विनम्रता उसके लिए घातक सिद्ध हुई क्योंकि अलाउद्दीन खिलजी जैसे उसके अमीरों ने इसके लिए उसे सुल्तान के पद की गरिमा को कम करने का दोषी माना था.

अलाउद्दीन खिलजी की दृष्टि में सुल्तान, पृथ्वी पर ख़ुदा का प्रतिनिधि था. के. एम. अशरफ़ अलाउद्दीन के राजत्व के सिद्धांत की व्याख्या इन शब्दों में करते हैं – 'दिल्ली का सुल्तान सैद्धांतिक रूप से असीमित शक्ति का निरंकुश शासक था, वह किसी क़ानून को मानने के लिए बाध्य नहीं था, स्वयं उसके अतिरिक्त, उसके कार्यों को न तो नियंत्रित करने का, और न ही उसका मार्ग-दर्शन करने का, किसी अन्य को अधिकार था.'

अलाउद्दीन कहा करता था – 'मैं नहीं जानता कि अमुक कार्य विधि-सम्मत है अथवा गैर-कानूनी है. मैं तो वही करता हूँ जो मुझे राज्य के भले के लिए उचित लगता है या संकट के निवारण के लिए उपयुक्त लगता है. मैं नहीं जानता कि क़यामत के दिन मेरा क्या हशर होगा.'

अलाउद्दीन के राजत्व के सिद्धांत के मुख्य बिंदु निम्न हैं -

1. सुल्तान का पद ईश्वरीय कृति है.
2. सुल्तान पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है.
3. सुल्तान की सत्ता को कोई चुनौती नहीं दे सकता.
4. सुल्तान का वचन ही क़ानून है.

5. सुल्तान किसी से भी सलाह लेने के लिए बाध्य नहीं है.
6. धार्मिक विषय में सुल्तान का निर्णय ही सर्वोपरि है. उलेमाओं को उसे धार्मिक विषयों के निष्पादन में उसका मार्ग-दर्शन करने का कोई अधिकार नहीं है.
7. सुल्तान को अपनी प्रजा के कल्याण के प्रति समर्पित होना चाहिए.

अलाउद्दीन स्वयं में सर्वोच्च सेनानायक, सर्वोच्च प्रशासक, सर्वोच्च न्यायाधीश और शासक था. अलाउद्दीन खिलजी एक नए धर्म का प्रवर्तक बनना चाहता था किन्तु फिर उसने स्वयं को उलेमाओं के प्रभाव से सर्वथा मुक्त कर स्वतंत्र रूप से कार्य करना प्रारंभ कर दिया. अलाउद्दीन का यह विचार था कि राज्य में स्थायित्व तथा उसे संगठित करने के लिए शासक का निरंकुश होना आवश्यक है. उसने अमीरों की महत्वाकांक्षा और उनकी स्वातंत्र्य-प्रियता को कुचलने के लिए कठोर क़दम उठाए. उसने बहुत से अमीरों की संपतियां ज़ब्त कर लीं, उनके आने-जाने, आपस में मिलने-जुलने, शराब की महफ़िलें सजाने पर पाबंदियां लगा दीं और उनकी गतिविधियों पर दृष्टि रखने के लिए गुप्तचर नियुक्त कर दिए. एक शासक के रूप में उसने मुस्लिम क़ानून से हटकर अपने अत्यधिक कठोर क़ानून बनाए और उसने उलेमाओं से राज्य के मामले में हस्तक्षेप करने के सभी अधिकार छीन लिए. अलाउद्दीन ने अपने कार्यों से यह जतला दिया कि उसे राज्य-सञ्चालन हेतु अथवा शासक बने रहने के लिए उलेमाओं के सहयोग तथा उनके समर्थन के कोई आवश्यकता नहीं है.

1.4.3 मुहम्मद बिन तुगलक़ का राजत्व का सिद्धांत

मुहम्मद बिन तुगलक़ अलाउद्दीन खिलजी की भाँति ही राजनीति में धर्म की मिलावट किए जाने के विरुद्ध था. अलाउद्दीन खिलजी की ही तरह उसने सिंहासनारूढ़ होते समय खलीफ़ा का अनुमोदन प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया और न ही शासन में उलेमाओं को किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की अनुमति प्रदान की. उसने धर्म-निरपेक्ष न्याय-व्यवस्था की स्थापना हेतु अनिवार्य रूप से केवल उलेमाओं की न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति की परंपरा का भी निर्वाह नहीं किया. सुल्तान ने अपने शासनकाल के प्रारंभ में अपनी सत्ता की प्रतिष्ठा के लिए खलीफ़ा की मान्यता को कोई महत्ता नहीं दी थी. उसने कठमुल्लों को राज्य के मामलों में हस्तक्षेप करने से रोका था और नियुक्तियों में धर्म को आधार बनाने के स्थान पर योग्यता के आधार पर क्या मुसलमान और क्या हिन्दू, सबको नियुक्त किया था किन्तु बाद में उलेमाओं का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से उसने अपनी छवि एक निष्ठावान मुस्लिम शासक की बनाने की कोशिश की थी और उसने ख़ुद को सुल्तान के रूप में खलीफ़ा की मान्यता प्राप्त करने के लिए उसके प्रतिनिधि का भव्य स्वागत भी किया था.

1.4.4 सैयद राज्यवंश में राजत्व के सिद्धांत का लुप्त हो जाना

1414 में दिल्ली की सत्ता खिज्र खान सैयद के अधिकार में आई. उसको स्वयं को सुल्तान कहलाने में कोई रूचि नहीं थी. 37 वर्षों तक सैयद राज्यवंश (1414-1451) का उत्तर भारत पर नाम मात्र का शासन रहा. इस समय दिल्ली सल्तनत पूरी तरह विघटित हो चुकी थी. सैयद राज्यवंश दिल्ली सल्तनत के इतिहास का एक प्रभावहीन तथा दुर्बल राज्यवंश था. सैयदों को स्वयं को सुल्तान कहलाने का अधिकार भी प्राप्त नहीं हुआ था. तैमूर ने पंजाब, दिल्ली

आदि पर आक्रमण करने के बाद अपने वतन लौटते समय खिज्र खान सैयद को मुल्तान का सूबेदार नियुक्त किया था. तुगलक़ वंश के पतन के बाद खिज्र खान ने सिंध और लाहौर पर भी अधिकारकर लिया और 1414 में उसने दिल्ली की अराजकतापूर्ण स्थिति का लाभ उठाकर उस पर भी अधिकार कर लिया किन्तु उसकी वैधानिक स्थिति तैमूर के - 'रैयत-ए-आला' की ही रही, सुल्तान की नहीं. दिल्ली पर अधिकार करने के बाद खिज्र खान सैयद ने अपने नाम पर नहीं, अपितु तैमूर के उत्तराधिकारी शाहरुख मिर्ज़ा के नाम पर ख़ुतबा पढ़वाया. उसके शासनकाल में ढाले गए सिक्कों पर उसका नाम नहीं, अपितु पूर्व तुगलक़ शासकों का ही नाम अंकित किया गया.

1.4.5 अफगान राजत्व का सिद्धांत

1.4.5.1 बहलोल लोदी द्वारा पोषित राजत्व का सिद्धांत

अफगान जाति प्राचीन काल से आजतक क़बीलाई व्यवस्था पर विश्वास करती आई है और इसके लिए कुनबा तथा बिरादरी का महत्त्व राज्य तथा शासक दोनों से ही अधिक महत्वपूर्ण रहा है. इसके अतिरिक्त अफगान प्रकृति से ही उग्र, स्वतंत्रता-प्रिय तथा स्वाभिमानी होते हैं. उन्हें किसी के आधीन होकर जीवन बिताना स्वीकार्य नहीं है, इसकी तुलना में अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए उन्हें लड़ते-लड़ते मर जाना स्वीकार्य होता है. दूसरी जाति की आधीनता की तो बात ही क्या, उन्हें तो अपनी बिरादरी के भी किसी व्यक्ति की आधीनता स्वीकार्य नहीं होती है. इस परिप्रेक्ष्य में हम समझ सकते हैं कि अफगानों को राजत्व का दैविक सिद्धांत कभी मान्य नहीं हो सकता. अफगान अमीर सुल्तान को न तो पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि मान सकते थे और न ही उसकी आज्ञा को ईश्वर का आदेश मान सकते थे. सुल्तान को ईश्वर का प्रिनिधि मानना तो दूर वो तो उसे अपना स्वामी मानने को भी तैयार नहीं हो सकते थे. अफगान राजत्व का सिद्धांत पूर्णतया लोकतान्त्रिक था. सुल्तान की नियुक्ति अमीरों के द्वारा चुने जाने पर निर्भर निर्भर करती थी. और इस दृष्टि से सुल्तान अमीरों के प्रति उत्तरदायी था.

अफगान राजत्व का सिद्धांत – ट्राइबल कांसेप्ट ऑफ़ किंगशिप' अर्थात् राजत्व की क़बीलाई अवधारणा थी. इसमें सुल्तान अमीरों का मुखिया होता था. उसे हम अमीरों का अमीर अथवा 'अमीर-उल-उमरा' कह सकते थे. अफगान अपने सुल्तान को 'मसनद-ए-आली' भी कहते थे जो कि अमीरों के मध्य से ही चुना जाता था. सुल्तान और अमीरों, सभी के लिए कबीला और बिरादरी महत्वपूर्ण होता था. अमीरों का अस्तित्व सुल्तान पर निर्भर नहीं होता था. अमीर तो कबीला बनाता था और अमीर अपने से ही एक अमीर को अपना मुखिया अथवा अपना सुल्तान बनाते थे. इस प्रकार अमीर-सुल्तान सम्बन्ध में पलड़ा अमीरों की ओर ही झुकता था अर्थात् कोई भी निर्णय लेने में उनकी राय का महत्त्व सुल्तान की राय से अधिक हुआ करता था.

फ़रिश्ता के अनुसार बहलोल लोदी के लिए इतना ही पर्याप्त था कि सल्तनत के साथ उसका अपना नाम जुड़ जाता. उसे अपने साथियों पर हुकूमत करने की कोई इच्छा नहीं थी. बहलोल लोदी ने जब दिल्ली के तख़्त पर अधिकार करने का प्रयास किया तो उसे अफगान अमीरों के सहयोग की आवश्यकता पड़ी. पूर्वी अफगानिस्तान में स्थित रोह के अफगानों को अपने अभियान में सम्मिलित होने का आमंत्रण देते हुए बहलोल लोदी ने उन्हें लिखा था –

‘प्रभुसत्ता नाम-मात्र को मुझमें अवश्य निहित रहेगी किन्तु हम जो भी क्षेत्र जीतेंगे उनमें हम भाइयों की बराबर की हिस्सेदारी रहेगी.’ बहलोल लोदी आजीवन अपने अमीरों के सरदार, उनके मुखिया और उनके बड़े भाई की भूमिका निभाता रहा. उसने उनका मालिक, उनका आक़ा बनने की कभी कोशिश नहीं की. वह अपने अमीरों के सामने शाही तख़्त पर भी नहीं बैठता था. उसने जागीरों और संपत्ति के वितरण में भी उन्हें हिस्सेदार ही समझा. वह शक्ति के विकेंद्रीकरण में विश्वास करता था.अफगान राजत्व का सिद्धांत अफगानिस्तान के लिए तो उपयुक्त था किन्तु भारत जैसे देश में जहाँ अनेक जातियां थीं और जहाँ राजत्व के दैविक सिद्धांत की परंपरा थी, उसकी उपयुक्तता संदेहास्पद थी. इसीलिए बहलोल लोदी के उत्तराधिकारी सिकंदर लोदी और उसके उत्तराधिकारी इब्राहीम लोदी ने अफगान राजत्व के सिद्धांत का अनुगमन नहीं किया.

1.4.5.2 सिकंदर लोदी द्वारा राजत्व के दैविक सिद्धांत की स्थापना

सिकंदर लोदी को राज्यारोहण के समय अमीरों के प्रतिरोध के कारण बहुत कठिनाई हुई थी. सुल्तान बनते ही उसने यह निश्चय कर लिया कि वह अपने अफगान अमीरों की स्वच्छंदता तथा उद्दंडता को नियंत्रित करेगा. उसने राजत्व के सिद्धांत का स्वरुप बदलकर उसे तुर्क राजत्व के सिद्धांत के समान बना दिया. अब सुल्तान अमीरों का अमीर नहीं, अपितु उनका स्वामी था. सिकंदर लोदी ने अपने पिता के समय में सुल्तान के पद की खोई हुई गरिमा तथा प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित किया और दरबार में सुल्तान के समक्ष कोर्निश जैसा अभिवादन आवश्यक कर दिया. अब सुल्तान के समक्ष सबको खड़ा रहना पड़ता था और अमीरों को शाही फ़रमान का सम्मान करते हुए उसे मीलों पैदल चलकर ग्रहण करना पड़ता था. सिकंदर लोदी ने अमीरों की महत्वाकांक्षा कुचलने के लिए उनके आर्थिक साधनों को सीमित कर दिया तथा उनकी गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए अपने गुप्तचर नियुक्त कर दिए. उसने शक्ति के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ की और इस प्रकार अमीरों की राज्य में हिस्सेदारी की परंपरा को समाप्त कर दिया. इस से यह प्रतीत होने लगा था कि सिकंदर लोदी ने अपने अमीरों की स्वच्छंद प्रकृति पर नियंत्रण स्थापित कर लिया है. किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं था. सिकंदर की शक्ति से भयभीत होकर अफगान अमीरों ने ऊपरी तौर पर उसके द्वारा राजत्व के सिद्धांत में परिवर्तन को स्वीकार कर लिया था किन्तु वो पुनः अफगान राजत्व के सिद्धांत को प्रतिष्ठित करने का अवसर देख रहे थे.

1.4.5.3 राजत्व के दैविक सिद्धांत को स्थापित करने में इब्राहीम लोदी की असफलता

सिकंदर लोदी की मृत्यु होते ही अफगान अमीर अफगान राजत्व के सिद्धांत को पुनर्प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील हो गए. किन्तु इब्राहीम लोदी ने भी अपने पिता सिकंदर लोदी की ही भांति अमीरों के दमन की नीति अपनाई और उसने भी राजत्व के सिद्धांत को तुर्कों तथा हिन्दुओं के राजत्व के दैविक सिद्धांत के अनुरूप ढालना चाहा. वह पूर्ण निरंकुश शासक बनने के लिए कटिबद्ध था. उसने अफगानी परंपरा को समाप्त कर अपने अमीरों को दरबार में हाथ बांधकर और सर झुककर खड़े रहने के लिए बाध्य किया. बहलोली अमीरों के और सिकंदरी अमीरों ने नवयुवक सुल्तान की दमनकारी नीतियों का विरोध किया. सुल्तान अमीरों के दिल में अपने कोप का भय स्थापित कर उनकी विद्रोह करने हिम्मत तोड़ना चाहता था. लेकिन ज्यों-ज्यों सुल्तान ने शक्ति के केन्द्रीकरण के प्रयासों को गति

प्रदान की और ज्यों-ज्यों उसने अफगान अमीरों की स्वच्छंदता का दमन करने का प्रयास किया, उसकी पकड़ अपनी सल्तनत पर से तथा अपने अमीरों पर से कमज़ोर होती चली गयी.

इब्राहीम लोदी को अपनी अव्यवहारिक नीति का मूल्य चुकाना पड़ा. उसका राज्य विघटित होने लगा. अनेक अमीर उसके विरुद्ध हो गए. इब्राहीम लोदी से कुपित पंजाब के सूबेदार दौलत खान लोदी ने तो बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित भी कर दिया. इस प्रकार सिकंदर लोदी तथा इब्राहीम लोदी ने अफगान राजत्व के सिद्धांत में परिवर्तन करने के प्रयास में लोदी राज्य वंश के पतन के द्वार खोल दिए.

1.5 सुल्तान और बादशाह (पादशाह) में अंतर

1526 में पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी को पराजित कर, ज़हीरुद्दीन बाबर ने हिंदुस्तान में मुग़ल साम्राज्य की स्थापना की. उसने स्वयं को 'पादशाह' (बादशाह) के रूप में प्रतिष्ठित किया. 'पादशाह' अथवा 'बादशाह' व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक, दोनों ही रूप से – पूर्ण संप्रभुता-प्राप्त शासक था. यह प्राचीन भारतीय इतिहास के 'सम्राट' के समरूप था. दिल्ली के सुल्तान को तो ख़लीफ़ा की नाम-मात्र की आधीनता स्वीकार कर उसके प्रतिनिधि अथवा उसके नायब के रूप में सल्तनत पर शासन करना होता था, इसके लिए कुछ सुल्तानों ने ख़लीफ़ा से अपने पद हेतु मान्यता भी प्राप्त की थी किन्तु 'पादशाह' अथवा 'बादशाह' को अपने पद को वैधानिकता प्रदान करने के लिए ख़लीफ़ा से किसी प्रकार की मान्यता प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं थी. इस प्रकार दिल्ली सल्तनत के पतन के साथ ही भारत में कई शताब्दियों बाद मुग़ल शासकों के रूप में एक बार फिर से पूर्ण संप्रभुता प्राप्त शासकों का उदय हुआ.

1.6 सारांश

622 ईसवी में हज़रत मुहम्मद द्वारा प्रथम मुस्लिम-राज्य की स्थापना की गयी थी. यह मुस्लिम उम्मा (राष्ट्र) की राजनीतिक एकता का प्रतिनिधित्व करता था. हज़रत मुहम्मद के बाद उनके 'राशिदुन' शागिर्दों द्वारा 632 ईसवी में ख़िलाफ़त की स्थापना की गयी.मुस्लिम राजनीतिक सिद्धांत मूलतः क़ुरान शरीफ़ की शिक्षाओं, हज़रत मुहम्मद द्वारा स्थापित राजनीतिक व्यवस्था की परंपरा और यूनानी राजनीतिक विचारधारा पर आधारित था.इस्लाम में शासक को कभी भी पूर्ण संप्रभुता प्राप्त शासक के अनियंत्रित अधिकार नहीं दिए गए हैं. मुस्लिम शासक को क़ुरान शरीफ़ की शिक्षाओं के विरुद्ध जाकर कुछ भी करने का अधिकार नहीं है.

दिल्ली सल्तनत के स्वरुप में धर्मतन्त्रात्मक राज्य और सैनिक राज्य दोनों का ही समावेश था. सैनिक-राज्य के रूप में भी इसकी प्रेरणा का श्रोत धर्म ही था. इसकी राजनीतिक तथा प्रशासनिक संस्थाएं सैद्धांतिक रूप से क़ुरान शरीफ़ की शिक्षाओं पर आधारित शरियत पर आधारित थीं और दिल्ली के सुल्तान, धार्मिक तथा राजनीतिक दृष्टि से, विश्व भर के मुसलमानों के आध्यात्मिक गुरु एवं राजनीतिक प्रभु - खलीफ़ा का, स्वयं को प्रतिनिधि मात्र मानते थे, न कि पूर्ण संप्रभुता प्राप्त शासक.दिल्ली सल्तनत में इस्लाम राज्यधर्म था और राज्य का यह प्रथम कर्तव्य था कि वह - और चूंकि उलेमा सामान्यतः मुस्लिम क़ानून .नागरिक क़ानून से ऊपर थे ,धार्मिक क़ानून .प्रसार करे-इस्लाम का प्रचार बहुत अधिक थ ,उनका दबदबा ,की व्याख्या करते थे इसलिए राज्य में उनका प्रभावा .

सैद्धांतिक रूप से सुल्तान से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह शरियत के नियमों का पालन करेगा और राज्य में कर भी वही लगाएगा जो कि शरियत द्वारा संस्तुत होंगे. किन्तु व्यवहार में ऐसा होता नहीं था. बहु-संख्यक गैर-मुस्लिम प्रजा वाली दिल्ली सल्तनत में पूरी तरह से शरियत के नियमों को लागू कर पाना संभव ही नहीं था. शरियत के नियमों में परिवर्तन किया जाना सुल्तान के व्यक्तित्व, उसकी प्रतिभा, उसके व्यक्तिगत निर्णय, उसकी शक्ति और तत्कालीन - राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सैनिक परिस्थितियों पर निर्भर करता था.सुल्तान स्वयं सेना का प्रमुख होता था और एक शासक के रूप में उसका सफल अथवा असफल होना मुख्यतः उसकी सैनिक प्रतिभा पर निर्भर करता था.

दिल्ली के सुल्तानों में इल्तुतमिश प्रथम था जिसको कि खलीफ़ा से सुल्तान के रूप में मान्यता प्राप्त हुई थी. अलाउद्दीन खिलजी ने ख़ुद को सुल्तान के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए खलीफ़ा से किसी औपचारिक मान्यता प्राप्त करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया.**मुहम्मद बिन तुगलक़ ने भी अपने शासनकाल के अंतिम चरण में ख़लीफ़ा से ख़ुद को सुल्तान के रूप में मान्यता दिए जाने के लिए प्रमाणपत्र निर्गत किए जाने की प्रार्थना की थी.फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने भी ख़लीफ़ा से सुल्तान के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए, उसके पास अपना राजदूत भेजा था.**

उल्लेखनीय बात यह है कि स्वयं को खलीफ़ा का नायब कहलाने से एक शासक के रूप में दिल्ली के सुल्तानों की शक्ति में कोई कमी नहीं आती थी.इस्लाम के धर्म-शास्त्र के ज्ञाता, उलेमा कहलाते थे. सुल्तान शरियत के नियमों की व्याख्या किए जाने के लिए तो उनसे परामर्श करता ही था, इसके अतिरिक्त वह राज्य की अन्य नीतियों के निर्माण व उनके सञ्चालन हेतु भी उनके परामर्श और उनके मार्ग-दर्शन को महत्व देता था.

अलाउद्दीन खिलजी ने सफलतापूर्वक उलेमाओं की निर्बाध शक्ति का प्रतिरोध किया. मुहम्मद बिन तुगलक़ ने भी उलेमाओं द्वारा संचालित होने से इंकार करने का साहस दिखाया था. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने उलेमाओं को राज्य के प्रत्येक विषय में हस्तक्षेप करने की छूट दे दी थी. दिल्ली सल्तनत में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था. इस्लाम की परंपरा के अनुसार कोई भी बौद्धिक एवं शारीरिक रूप से सक्षम मुसलमान शासक-पद के लिए अपनी दावेदारी प्रस्तुत कर सकता था. राज्य में अमीरों की प्रभावशाली उपस्थिति सुल्तान की निरंकुशता पर नियंत्रण लगाने में काफी हद तक सफल रहती थी. सुल्तान बलबन ने अमीरों की शक्ति को नियंत्रित किया. और राजत्व के दैविक सिद्धांत की स्थापना की. अलाउद्दीन खिल्जी की दृष्टि में सुल्तान, पृथ्वी पर ख़ुदा का प्रतिनिधि था. वह मानता था कि **सुल्तान की सत्ता को कोई चुनौती नहीं दे सकता और सुल्तान का वचन ही क़ानून है.**

सैयदों को स्वयं को सुल्तान कहलाने का अधिकार भी प्राप्त नहीं हुआ था. खिज्र खान सैयद की वैधानिक स्थिति तैमूर के - 'रैयत-ए-आला' की ही रही, सुल्तान की नहीं. अफगान राजत्व का सिद्धांत – ट्राइबल कांसेप्ट ऑफ़ किंगशिप' अर्थात् राजत्व की क़बीलाई अवधारणा थी. इसमें सुल्तान अमीरों का मुखिया होता था. बहलोल लोदी आजीवन अपने अमीरों के सरदार, उनके मुखिया और उनके बड़े भाई की भूमिका निभाता रहा. उसने उनका मालिक, उनका आक़ा बनने की कभी कोशिश नहीं की. सिकंदर लोदी ने राजत्व के सिद्धांत का स्वरुप बदलकर उसे तुर्क राजत्व के सिद्धांत के समान बना दिया. अब सुल्तान अमीरों का अमीर नहीं, अपितु उनका स्वामी था. उसने अमीरों

की महत्वाकांक्षा कुचलने के लिए उनके आर्थिक साधनों को सीमित कर दिया तथा उनकी गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए अपने गुप्तचर नियुक्त कर दिए. उसने शक्ति के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ की और इस प्रकार अमीरों की राज्य में हिस्सेदारी की परंपरा को समाप्त कर दिया.

इब्राहीम लोदी ने भी अपने पिता सिकंदर लोदी की ही भांति अमीरों के दमन की नीति अपनाई और उसने भी राजत्व के सिद्धांत को तुर्कों तथा हिन्दुओं के राजत्व के दैविक सिद्धांत के अनुरूप ढालना चाहा. ज्यों-ज्यों सुल्तान ने शक्ति के केन्द्रीकरण के प्रयासों को गति प्रदान की और ज्यों-ज्यों उसने अफगान अमीरों की स्वच्छंदता का दमन करने का प्रयास किया, उसकी पकड़ अपनी सल्तनत पर से तथा अपने अमीरों पर से कमज़ोर होती चली गयी. इस प्रकार सिकंदर लोदी तथा इब्राहीम लोदी ने अफगान राजत्व के सिद्धांत में परिवर्तन करने के प्रयास में लोदी राज्य वंश के पतन के द्वार खोल दिए. 1526 में पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी को पराजित कर, बाबर ने हिंदुस्तान में मुग़ल साम्राज्य की स्थापना की. उसने स्वयं को 'पादशाह' के रूप में प्रतिष्ठित किया. 'पादशाह' व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक, दोनों ही रूप से – पूर्ण संप्रभुता-प्राप्त शासक था. दिल्ली के सुल्तान को तो ख़लीफ़ा की नाम-मात्र की आधीनता स्वीकार कर उसके प्रतिनिधि अथवा उसके नायब के रूप में सल्तनत पर शासन करना होता था किन्तु 'पादशाह' को अपने पद को वैधानिकता प्रदान करने के लिए ख़लीफ़ा से किसी प्रकार की मान्यता प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं थी.

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए

1. दिल्ली सुल्तानों द्वारा ख़लीफ़ा से मान्यता प्राप्त करने के प्रयास
2. बलबन का राजत्व का सिद्धांत
3. अफ़गान राजत्व का सिद्धांत

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 2.3.6 दिल्ली के सुल्तान और खिलाफ़त
2. देखिए 2.4.1 बलबन का राजत्व का सिद्धांत
3. देखिए 2.4.5 अफगान राजत्व का सिद्धांत

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

मुस्लिम उम्मा – मुस्लिम समुदाय

'राशिदुन' – जिनका कि उचित मार्ग-दर्शन किया गया हो

शुरा – विभिन्न विषयों पर निर्णय लेने के लिए धर्म और क़ानून के जानकारों की गठित सभा

शरियत – मुस्लिम क़ानून

ख़िलाफ़त – ख़लीफ़ा का साम्राज्य

उलेमा - शरिया क़ानून का जानकार

दार-उल-हर्ब – विधर्मियों का देश

ख़िलअत – औपचारिक वेशभूषा

दार-उल-इस्लाम – आस्तिकों अर्थात् मुसलमानों का देश

सिज्दा – साष्टांग प्रणाम

पैबोस – चरण चूमना

रैयत-ए-आला – जागीरदार, प्रजाजन में विशिष्ट

बहलोली अमीर – बहलोल लोदी द्वारा नियुक्त अमीर

सिकंदरी अमीर – सिकंदर लोदी द्वारा नियुक्त अमीर

पादशाह – बादशाह

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

इलियट, एच. एम., डाउसन, जे – 'हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया एज़ टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियंस', 8 भागों में, लन्दन, 1867

मजूमदार, आर. सी. (संपादक) – 'दि डेल्ही सल्तनत' बॉम्बे, 1980

सैयद, एम. एच. – 'हिस्ट्री ऑफ़ डेल्ही सल्तनत' नई दिल्ली, 2005

चंद्रा, सतीश – 'हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवल इंडिया', हैदराबाद, 2007

ईश्वरी प्रसाद – 'ए हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवल इंडिया' दिल्ली, 2018

रिजवी, एस. ए. ए. – 'तुगलक़कालीन भारत, भाग 1 तथा भाग 2,
अलीगढ़, 1956

रिजवी, एस. ए. ए. – 'खलजीकालीन भारत', नई दिल्ली, 2016

हुसेन. ए. एम. – 'दि तुगलक़ डायनेस्टी' कलकत्ता, 1963

इब्न बतूता – 'दि रहला' (अंग्रेज़ी अनुवाद – हुसेन, एम) बड़ौदा, 1953

जैक्सन, पीटर – 'दि डेल्ही सल्तनत: पॉलिटिकल एंड मिलिट्री हिस्ट्री' केम्ब्रिज, 2003

कुरैशी, आई. एच. – दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ दि डेल्ही सल्तनत' नई दिल्ली, 1996

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. दिल्ली सल्तनत में धर्म की महत्ता और उसके गुण-दोष की विवेचना कीजिए.

सल्तनतकालीन सैनिक तथा प्रशासनिक प्रणाली

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 सल्तनतकालीन सैन्य-प्रणाली

2.3.1 दिल्ली सल्तनत की सेना

2.3.2 सैनिकों की भर्ती

2.3.3 सेना के प्रमुख अंग

2.3.4 किले

2.3.5 अस्त्र-शस्त्र बनाने के कारखाने

2.3.6 अस्त्र-शस्त्र के निर्माण में तथा रणनीति में सुधार की उपेक्षा

2.4 दिल्ली सल्तनत की प्रशासनिक प्रणाली

2.4.1 ख़लीफ़ा की सर्वोच्चता

2.4.2 सुल्तान – दिल्ली सल्तनत का सर्वोच्च प्रशासक

2.4.3 दिल्ली सल्तनत के सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप में सुल्तान

2,4.4 सर्वोच्च सेनानायक के रूप में सुल्तान

2.4.5 दिल्ली सल्तनत का केन्द्रीय प्रशासन

2.4.5.1 शक्ति का केन्द्रीकरण

2.4.5.2 सुल्तान का मंत्रिमंडल

2.4.5.3 मजलिस-ए-खल्वत

2.4.6 कर प्रणाली

2.4.6.1 खराज

2.4.6.1.1 लगान व्यवस्था

2.4.6.1.2 मसाहत (भूमि का मापन)

2.4.6.1.3 नहरों का निर्माण और सिंचाई कर

2.4.6.2 खम्स

2.4.6.3 जज़िया

2.4.6.4 ज़कात

2.4.6.5 अन्य कर

2.4.7 न्याय-व्यवस्था

2.4.7.1 न्याय-व्यवस्था का आधार

2.4.7.2 न्याय-वितरण

2.4.8 व्यापार

2.4.9 दिल्ली सल्तनत का प्रांतीय प्रशासन

2.4.9.1 इक्ता तथा इक्तेदार

2.4.9.2 शिक, परगना तथा ग्राम का प्रशासन
2.5 सारांश
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 पारिभाषिक शब्दावली
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

दिल्ली सल्तनत एक मुस्लिम राज्य था और उसका सुल्तान सैद्धांतिक रूप से ख़लीफ़ा के प्रतिनिधि अथवा नायब के रूप में सल्तनत पर शासन करता था किन्तु वास्तव में वह असीमित शक्तियों को धारण करने वाला एक निरंकुश शासक था. सुल्तान सल्तनत का सर्वोच्च प्रशासक, सर्वोच्च सेनानायक और सर्वोच्च न्यायाधीश था.
दिल्ली सल्तनत में विभिन्न जातियों, राष्ट्रीयताओं तथा धर्मों के सैनिक थे जिनमें कि एकता और संगठन का अभाव था. आम तौर पर सेना में अधिकांश सैनिक अस्थायी होते थे और उन्हें वेतन के स्थान पर लूट में हिस्सा मिलता था. गैर-मुस्लिम शक्तियों के विरुद्ध सैनिक अभियानों को 'जिहाद' का नाम दिया जाता था. सेना के तीन प्रमुख अंग थे – पैदल सैनिक, घुड़सवार और हस्ति-सेना, दिल्ली सल्तनत में तोपखाना नहीं होता था किन्तु अन्य प्रकार के आग्नेय अस्त्र अवश्य होते थे. एशिया और यूरोप के अनेक देशों में युद्ध में तोपों का प्रचुर मात्रा में उपयोग होने लगा था. किन्तु दिल्ली सल्तनत में युद्ध में तोपों का प्रयोग अब तक नहीं किया जा रहा था. पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर की इब्राहीम लोदी पर विजय का एक बड़ा कारण उसका सक्षम तोपखाना था.
शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए के सुल्तान निम्न मंत्री नियुक्त करता था.– वज़ीर, दीवान-ए-आरिज़, दीवान-ए-इंशा, दीवान-ए-रिसालत, सद्र-उस-सुदूर तथा क़ाज़ी-उल-क़ज़ात. सुल्तान के विशिष्ट परामर्शदाताओं को 'मजलिस-ए-खल्वत' के नाम से जाना जाता था. सल्तनत के प्रमुख अधिकारी, वज़ीर से लेकर अन्य मंत्रियों के काम में उनका हाथ बटाते थे.
राजस्व एकत्र करने के लिए मुख्य चार कर थे – खराज,खराज, खम्स, जज़िया और ज़कात. खानों से मिलने वाले खनिज तथा गड़े हुए धन के मिलने पर भी कर लगाया जाता था.राज्य की आय का मुख्य श्रोत भू-राजस्व था. खराज, खम्स, जज़िया और ज़कात. किन्तु इनके अतिरिक्त सिंचाई कर, चारागाह कर, व्यापार कर, चुंगी, न्याय-व्यवस्था - क़ुरान, शरियत, हदीस, न्याय-व्यवस्था क़ुरान, शरियत, हदीस, इज्मा और क़यास पर आधारित थी. किन्तु बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा को निष्पक्ष न्याय प्राप्त नहीं होता था.

सल्तनत काल में उद्योग तथा व्यापार उन्नत दशा में था और व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में होने के कारण भारत की समृद्धि निरंतर बढ़ रही थी. दिल्ली सल्तनत का स्थानीय शासन इक्तों, शिकों, दिल्ली सल्तनत के प्रांतीय प्रशासन के अंतर्गत – इक्तों, शिकों, परगनों और ग्रामों का प्रशासन आता था. इनमें इक्तों, शिकों और परगनों के प्रशासन का स्वरुप लगभग केन्द्रीय शासन के समान ही होता था किन्तु ग्राम-प्रशासन स्वायत्त शासित था. इनमें न्याय का दायित्व ग्राम-पंचायतों का होता था. किन्तु इनमें कानूनगो, पटवारी और कारकुन की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी.

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य – दिल्ली सल्तनतकाल की सैन्य-प्रणाली तथा प्रशासनिक प्रणाली के प्रमुख तत्वों की चर्चा तथ उनके गुण-दोषों की विवेचना करना है. इस इकाई का अध्ययन कर आप –

1. सैद्धांतिक रूप से ख़लीफ़ा के नायब होने के बावजूद दिल्ली सल्तनत में सुल्तान की अपरिमित शक्ति से परिचित हो सकेंगे तथा सर्वोच्च प्रशासक, सर्वोच्च सेनानायक तथा सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप में उसके अधिकारों से अवगत हो सकेंगे.
2. एक सैनिक राज्य के रूप में दिल्ली सल्तनत के स्वरुप से परिचित हो सकेंगे.
3. दिल्ली सल्तनत के सैनिक संगठन और उसके मुख्य अंगों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
4. दिल्ली सल्तनत की सैन्य प्रणाली की दुर्बलताओं और उसके कारण दिल्ली सल्तनत के पतन के कारणों से अवगत हो सकेंगे.
5. सुल्तान को दिल्ली सल्तनत के सर्वोच्च प्रशासक के रूप में उसका हाथ बटाने के लिए उसके मंत्रिमंडल और प्रमुख अधिकारियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
6. दिल्ली सल्तनत की कर-प्रणाली की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
7. दिल्ली सल्तनत न्याय-व्यवस्था से अवगत हो सकेंगे.
8. इक्तों के प्रशासन अर्थात् प्रांतीय प्रशासन तथा उसके अंग – शिकों, परगनों तथा ग्राम-प्रशासन के मुख्य बिन्दुओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.

2.3 सल्तनतकालीन सैन्य-प्रणाली

2.3.1 दिल्ली सल्तनत की सेना

दिल्ली सल्तनत में यद्यपि सैद्धांतिक रूप से सुल्तान ही सर्वोच्च सेनानायक तथा सैन्य-विभाग का प्रमुख होता था किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से 'आरिज़-ए-मुमालिक' मुख्य सैन्य-प्रशासक होता था.नव-विजित क्षेत्र में, चारों ओर से शत्रु-राज्यों से घिरे रहने के कारण सल्तनत काल में सेना का अत्यधिक महत्व था. सुल्तान को अपने संसाधनों का एक बड़ा भाग एक विशाल सेना के रख-रखाव में व्यय करना पड़ता था. अलाउद्दीन खिलजी जैसे महान विजेता सुल्तान के काल में उसके सैनिकों की संख्या लगभग 5 लाख थी.

सेना में तुर्क, ईरानी, अफ़ग़ान, मंगोल, भारतीय मुस्लिम और हिन्दू भी होते थे किन्तु बहुसंख्यक सैनिक मुसलमान ही होते थे जो कि 'जिहाद' के नाम पर हिन्दुओं के विरुद्ध सैनिक-अभियानों में उत्साह के साथ भाग लेते थे. दिल्ली सल्तनत के सैनिकों में जातीय भिन्नता, सांस्कृतिक भिन्नता, भाषागत भिन्नता और धार्मिक भिन्नता भी इतनी अधिक थी कि उनमें एकता और संगठन का सर्वथा अभाव था. फिर दिल्ली सल्तनत का हिन्दू सैनिक, 'जिहाद' के नाम पर किए जाने वाले सैनिक-अभियानों के दौरान हिन्दुओं का रक्तपात और मंदिरों का विध्वंस किस प्रकार सहन कर सकता था?

दिल्ली सल्तनत के अधिकांश सैनिक भाड़े के टट्टू होते थे जिनकी भर्ती पूर्णरूपेण अस्थायी होती थी. इनको वेतन के रूप में नक़द कुछ भी नहीं, बल्कि लूट का एक हिस्सा मिलता था. अब यदि सैनिक-अभियान असफल रहता था तो कुछ लूटने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था और सैनिक अपनी जान हथेली पर लेकर लड़ने के बाद अगर जीवित बचा तो खाली हाथ लौट आता था. युद्ध पर आधारित राज्य (क्रीग स्टेट) में कभी स्थायित्व नहीं हो सकता. शिवाजी का क्रीग स्टैट तो एक सीमा तक सफल रहा था किन्तु पेशवा बाजी राव प्रथम के बाद मराठों के क्रीग स्टैट को भी उन्हीं असफलताओं के दौर से गुज़रना पड़ा था जैसा कि दिल्ली सल्तनत को गुज़रना पड़ा था.

सल्तनत काल में गैर-मुस्लिम शक्तियों के विरुद्ध सैनिक-अभियानों को 'जिहाद' का नाम दे दिया जाता था. प्रारंभिक दौर में 'जिहाद' के नाम पर अनेक हिन्दू शक्तियों को पराजित करने में सुल्तानों को सफलता भी मिली किन्तु बाद में हिन्दू-प्रतिरोध इतना सशक्त हो गया कि 'जिहाद' के नाम पर हिन्दू शक्तियों को पराजित करना बहुत कठिन हो गया. दक्षिण में विजयनगर साम्राज्य का उदय और उत्तर में राजपूत शक्ति का पुनरुत्थान अब 'जिहाद' के नाम पर किए जाने वाले सैनिक अभियानों का प्रतिरोध करने में सफल हो रहा था.

2.3.2 सैनिकों की भर्ती

आम तौर पर इक्तेदार और अमीर अपने-अपने लिए सैनिकों की भर्ती किया करते थे. सभी इक्तेदारों का और अमीरों का, यह कर्तव्य था कि आवश्यकता पड़ने पर वो अपनी सैनिक टुकड़ियाँ सुल्तान की सेवा में प्रस्तुत करें. अनेक सैनिकों की भर्ती केवल सैनिक अभियानों, वाह्य-आक्रमणों और आतंरिक विद्रोहों के समय की जाती थी. यह अलाउद्दीन खिलजी ही था जिसने मंगोल आक्रमणों को रोकने के लिए और उत्तर तथा दक्षिण भारत में साम्राज्य-विस्तार के लिए एक स्थायी सेना का गठन किया था जिसे 'खासखेल' कहा जाता था. आम तौर पर सैनिक अभियानों के लिए भर्ती किए गए सैनिकों को वेतन के स्थान पर लूटे गए माल का एक हिस्सा मिलता था.

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने सेना में अपने गुलामों की भर्ती भी की थी. सल्तनत काल में सैनिकों के लिए सैन्य-प्रशिक्षण का कोई प्रबंध नहीं था. किन्तु सजग और शक्तिशाली सुल्तानों के शासनकाल में सेना का नियमित निरीक्षण होता था किन्तु फ़िरोज़ शाह तुगलक़ जैसे सुल्तानों ने सैनिक अनुशासन में ढील देकर सैनिकों के निरीक्षण की सर्वथा उपेक्षा की थी.

2.3.3 सेना के प्रमुख अंग

सेना के तीन प्रमुख अंग थे –

1. पैदल सैनिक – इनको ‘पायक’ कहा जाता था. इनके मुख्य अस्त्र-शस्त्र थे – तलवार, भाला और तीर-कमान.

2. घुड़सवार – घुड़सवार सेना दिल्ली सल्तनत की सेना का प्रमुख अंग थी. ‘सवार’ के पास एक घोड़ा होता था और ‘दो-अस्पा’ सवार के पास दो घोड़े होते थे. चूंकि भारत में अच्छी नस्ल के घोड़े उपलब्ध नहीं थे इसलिए उन्हें अरब देशों से ऊंची कीमत पर आयात किया जा सकता था. 10 घुड़सवारों के सरदार को ‘सरखेल’, 10 ‘सरखेलों’ के सरदार को ‘सिपहसालार’, 10 ‘सिपहसालारों’ के सरदार को ‘मलिक’ और 10 ‘मलिकों’ के सरदार को ‘खान’ कहा जाता था. ‘अमीर-ए-आखुर’ अश्व-शाला का अध्यक्ष होता था. अलाउद्दीन खिलजी ने अपने घुड़सवार सैनिकों का वेतन 234 टंके वार्षिक निर्धारित किया था जिसमें घोड़े के रख-रखाव का खर्चा भी शामिल था. घुड़सवार सैनिक इतने वेतन में अपना गुज़ारा और अपने घोड़े का खर्च आसानी से चला सकें इसके लिए ही अलाउद्दीन खिलजी ने बाज़ार-नियंत्रण की नीति अपनाई थी.

3. हस्ति-सेना – हस्ति-सेना रखने का अधिकार केवल सुल्तान को था. हाथियों को युद्ध के लिए प्रशिक्षित किया जाता था. उन्हें दुश्मन के किले की दीवारों और किले के फाटकों को तोड़ने के लिए और शत्रु-सेना को कुचलने के लिए प्रशिक्षित किया जाता था. सैनिक अभियानों के समय अस्त्र-शस्त्र और खाद्य सामग्री तथा अन्य आवश्यक सामग्री ढोकर ले जाने में भी उनकी सेवाएँ ली जाती थीं. ‘शहना-ए-पील’ हस्ति-शाला का अध्यक्ष होता था. दिल्ली सल्तनत में तोपखाना तो नहीं होता था किन्तु अन्य प्रकार के आग्नेय अस्त्र अवश्य होते थे. इनमें सबसे प्रमुख था – ‘बलिस्ता’. यह बिना बारूद के यांत्रिकी पद्धति से पत्थर फेंकने वाला एक विशाल यंत्र होता था इस से सुलगते हुए पत्थर के गोले, जलते हुए तीर, सांप आदि शत्रुओं पर बरसाए जाते थे. युद्ध में ‘फ़लाखून’, ‘गरगज़, और ‘सबात’ का भी प्रयोग होता था. नौ-सेना – सैनिक अभियानों में नदियाँ पार करने में और माल ढोने में नावों का भी उपयोग होता था किन्तु सुल्तान की कोई सुसज्जित और प्रशिक्षित नौ-सेना नहीं थी. नौ-सेना का अधिकारी ‘मीर-ए-बहर’ होता था.

2.3.4 किले

सल्तनत काल में सामरिक दृष्टि से किलों का अत्यधिक महत्व था. राजधानी से लेकर प्रत्येक महत्वपूर्ण नगर में और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों में किलों का निर्माण किया जाता था. सुल्तान बलबन ने मंगोल आक्रमणों को विफल करने के लिए अपने साम्राज्य में किलों की श्रृंखला तैयार करवाई थी जिनमें अस्त्र-शस्त्र और खाद्यान्न, जल आदि की पर्याप्त व्यवस्था होती थी. गियासुद्दीन तुगलक़ का तो मक़बरे का निर्माण भी एक किले के रूप में हुआ है.

2.3.5 अस्त्र-शस्त्र बनाने के कारखाने

दिल्ली सल्तनत मूलतः युद्ध पर आधारित राज्य था और इसके शासक प्रायः युद्ध में रत रहते थे. युद्ध के लिए आवश्यक अस्त्र-शस्त्र का निर्माण शासन की देख-रेख में कारखानों में किया जाता था.

2.3.6 अस्त्र-शस्त्र के निर्माण में तथा रणनीति में सुधार की उपेक्षा

दिल्ली सल्तनत की स्थापना से लेकर पानीपत के प्रथम युद्ध तक दिल्ली के सुल्तानों की रणनीति और उनके अस्त्र-शस्त्र लगभग एक से ही रहे. बलबन और अलाउद्दीन खिलजी को छोड़कर, दिल्ली के सुल्तान मंगोल आक्रमणों को रोक पाने में प्रायः विफल रहे. मंगोलों के उत्तर-पश्चिम से हो रहे आक्रमणों को रोकने के लिए उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में समुचित प्रबंध किया जाना चाहिए था किन्तु दिल्ली के सुल्तान हर बार मंगोलों को दिल्ली की सीमा तक बढ़ने देते थे फिर किलों में छुपकर उनका कायरता पूर्ण तरीके से सामना करने का नाटक करते थे. मुहम्मद बिन तुगलक़ की सैन्य-शक्ति तो इतनी क्षीण हो गयी थी कि उसने मंगोलों का वीरतापूर्वक मुकाबला करने के स्थान पर अपनी राजधानी ही दिल्ली से दौलताबाद स्थानांतरित करने का निश्चय कर लिया था.

तैमूर को भी दिल्ली के प्रवेश द्वार तक बढ़ते रहने से किसी ने नहीं रोका था. 1398-99 में तैमूर के आक्रमण को रोक पाने में भी तत्कालीन दिल्ली का सुल्तान पूर्णतया विफल रहा था. 17 **दिसंबर, 1398 को पानीपत के निकट तुगलक़ सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद की सेना तथा तैमूर की सेना के मध्य युद्ध हुआ. सुल्तान को अपनी विशाल हस्ति-सेना की विनाशकारी शक्ति पर बहुत भरोसा था किन्तु तैमूर ने अपने ऊंटों की पीठ पर लकड़ियों का ढेर बाँध कर और फिर उनमें आग लगाकर उन्हें हाथियों के सामने दौड़ा दिया. दौड़ती आग से भयभीत हाथी पलट कर अपनी सेना को ही रौंदते हुए भाग खड़े हुए. कुछ ही समय में तैमूर की सेना की तुगलक़ सेना के विरुद्ध निर्णायक विजय प्राप्त हुई. मंगोलों की रणनीति की ही भांति तैमूर की रणनीति दिल्ली सुल्तानों की रंनेती से कहीं अधिक श्रेष्ठ थी.**

इस बीच एशिया और यूरोप के अनेक देशों में युद्ध में तोपों का प्रचुर मात्रा में उपयोग होने लगा था. यहाँ तक कि दक्षिण-भारत के विजयनगर तथा बहमनी राज्य भी युद्ध में तोपों का उपयोग करने लगे थे किन्तु दिल्ली सल्तनत में युद्ध में तोपों का प्रयोग अब तक नहीं किया जा रहा था. पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर की इब्राहीम लोदी पर विजय का एक बड़ा कारण उसका सक्षम तोपखाना था.दूसरी ओर दिल्ली के सुल्तान अभी भी सैकड़ों साल पुरानी रणनीति अपना रहे थे. दिल्ली के सुल्तानों की सेना, उज़्बेगों तथा मुगलों द्वारा अपनाई गयी 'तुलुगमा' रणनीति से सर्वथा अनभिज्ञ थी.

दिल्ली सल्तनत के सैनिकों के लिए युद्ध में आत्म-रक्षा का समुचित प्रबंध किए जाने की कोई व्यवस्था नहीं थी. कवच, शिरस्त्राण का उपयोग, आम सैनिक के लिए तो स्वप्न में भी संभव नहीं था. पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी के अधिकांश सैनिक तो बिना जूतों के, नंगे पैर लड़ रहे थे.जहाँ एक ओर दिल्ली सल्तनत की सैन्य-प्रणाली प्रारंभिक काल में भारत में विजय पर विजय प्राप्त करने का कारण बनी वहीं परवर्ती काल में उसका पिछड़ापन दिल्ली सल्तनत के विघटन और अंततः उसके पतन के लिए उत्तरदायी हुआ.

2.4 दिल्ली सल्तनत की प्रशासनिक प्रणाली

2.4.1 ख़लीफ़ा की सर्वोच्चता

दिल्ली सल्तनत में इस्लाम राज्य-धर्म था और वह एक मुस्लिम राज्य था. सैद्धांतिक रूप से दिल्ली सल्तनत की प्रशासनिक प्रणाली, क़ुरान शरीफ़ की शिक्षाओं पर आधारित थी और उसी से निर्देशित होती थी. प्रत्येक मुस्लिम

राज्य में सैद्धांतिक दृष्टि से ख़लीफ़ा ही सर्वोच्च शासक होता था और दुनिया भर के सभी मुस्लिम राज्यों के शासक उसके आधीन होते थे और उनकी हैसियत ख़लीफ़ा के साम्राज्य – 'ख़िलाफ़त' के एक सूबेदार से अधिक नहीं होती थी. यदि 'ख़िलाफ़त' का कोई सूबेदार स्वयं को एक स्वतंत्र शासक के रूप में स्थापित भी कर लेता था तो वह एक शासक के रूप में ख़लीफ़ा की संस्तुति और उसके द्वारा मान्यता प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता था और ख़ुद को उसका नायब अथवा उसका प्रतिनिधि ही कहता था. दिल्ली सल्तनत में सुल्तानों ने आम तौर पर ख़लीफ़ा की औपचारिक सत्ता स्वीकार करने में किसी प्रकार का विरोध व्यक्त नहीं किया.

2.4.2 सुल्तान – दिल्ली सल्तनत का सर्वोच्च प्रशासक

दिल्ली सल्तनत का मुख्य प्रशासक स्वयं सुल्तान होता था. सुल्तान पूर्णरूपेण स्वतंत्र तथा सर्व-शक्तिमान शासक के रूप में अपनी इच्छा को ही क़ानून के रूप में लागू करने में सक्षम था. हालांकि मुस्लिम राज्यों में वंशानुगत उत्तराधिकार की कोई व्यवस्था नहीं थी और शासक को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने का कोई अधिकार नहीं था फिर भी दिल्ली सल्तनत में सुल्तान, अपनी मृत्यु से पूर्व अपना उत्तराधिकारी घोषित कर देता था और उसके अनुचर, उसके अमीर, सामान्यतः उसकी इच्छा का सम्मान व अनुपालन करते थे.

सैद्धांतिक रूप से शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से सक्षम कोई भी मुसलमान सुल्तान के पद के दावेदारी कर सकता था किन्तु 15 वीं शताब्दी से पहले तक यह आप्रवासी तुर्कों तक ही सीमित रहा. बाद में अफ़गान भी सुल्तान के पद पर आसीन हुए.मुख्य प्रशासक के रूप में सुल्तान का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह अपनी सल्तनत पर क़ुरान शरीफ़ की शिक्षाओं के अनुरूप शासन करे. मुस्लिम क़ानून की स्वयं व्याख्या करने का सुल्तान को अधिकार था. सुल्तान आजीवन शासक के पद पर बने रहने का अधिकारी था. बिना रक्त-रंजित क्रान्ति के, अथवा पारिवारिक, या दरबारी षड्यंत्र के, सुल्तान को अपदस्थ नहीं किया जा सकता था.

2.4.3 दिल्ली सल्तनत के सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप में सुल्तान

दिल्ली सल्तनत में सर्वोच्च प्रशासक तथा अपनी मुस्लिम प्रजा का धर्म-प्रमुख होने के साथ-साथ सुल्तान, सर्वोच्च न्यायाधीश भी होता था. न्यायाधीश के रूप में उसकी शक्तियां असीमित थीं और उसकी इन शक्तियों पर न तो कोई बंधन था और न ही किसी प्रकार का कोई नियंत्रण. यदि सुल्तान सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली होता था तो उसका हर वचन अपने आप में क़ानून होता था. अलाउद्दीन खिलजी जैसा शक्तिशाली सुल्तान कहता था – **'सुल्तान का वचन ही क़ानून है.'**

2,4.4 सर्वोच्च सेनानायक के रूप में सुल्तान

दिल्ली सल्तनत में सुल्तान ही सैन्य-प्रशासन का प्रमुख अर्थात् सर्वोच्च सेनानायक होता था. सुल्तान एक निरंकुश शासक भी था और सर्वोच्च सेनानायक भी था. राज्य की समस्त शक्तियां एक अकेले सुल्तान में केन्द्रित थीं. यह सुल्तान की अपनी इच्छा पर निर्भर करता था कि वह अपनी असीमित शक्तियों को अपने अधीनस्थों में किस प्रकार वितरित करे.

2.4.5 दिल्ली सल्तनत का केन्द्रीय प्रशासन

2.4.5.1 शक्ति का केन्द्रीकरण

यूँ तो दिल्ली सल्तनत एक मुस्लिम राज्य था जिसका कि स्वरुप मूलतः लोकतान्त्रिक होता है और वह शक्ति के विभाजन के सिद्धांत पर आधारित होता है किन्तु परिस्थितियों के अनुसार दिल्ली सल्तनत में शक्ति के केन्द्रीकरण पर बल दिया गया था. हिन्दू प्रतिरोध और उत्तर-पश्चिम से हो रहे मंगोल आक्रमणों के कारण सुल्तान को जहाँ अपनी सेना को शक्तिशाली बनाए रखना पड़ता था, वहीं उसे शक्ति के केन्द्रीकरण की नीति को भी अपनाना पड़ता था.

2.4.5.2 सुल्तान का मंत्रिमंडल

शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए के सुल्तान निम्न मंत्री नियुक्त करता था.–

1. **वज़ीर** – यह सुल्तान का प्रधानमंत्री होता था और उसके साथ ही यह वित्त-मंत्री भी होता था. वज़ीर प्रशासनिक विषयों में सुल्तान का प्रमुख सलाहकार भी होता था. वज़ीर, नागरिक-प्रशासन के साथ-साथ सैन्य-प्रशासन का कार्य भी देखता था. वज़ीर के कार्यालय को 'दीवान-ए-विज़ारत' कहा जाता था. कभी-कभी वज़ीर इतना शक्तिशाली हो जाता था कि वह सुल्तान के स्थान पर तख्तनशीन भी हो जाता था. उदाहरण के लिए नासिरुद्दीन महमूद का वज़ीर, बलबन, उसकी मृत्यु के बाद ख़ुद सुल्तान बन बैठा था.

2..**दीवान-ए-आरिज़ अथवा आरिज़-ए-मुमालिक** – सेना के रख-रखाव और उस पर नियंत्रण रखने का दायित्व 'दीवान-ए-आरिज़' का होता था. यह मुगलकाल के 'मीरबक्शी' के समकक्ष होता था. इसकी भूमिका वर्तमान रक्षा-मंत्री से कहीं अधिक होती थी. वज़ीर के बाद इसका ही पद सबसे महत्वपूर्ण होता था. सैनिकों की भर्ती, सेना के लिए घोड़ों की ख़रीद-फ़रोख्त, उनके रख-रखाव, सैनिक अनुशासन, सैनिकों के भोजन, कपड़े, उनके रहने की व्यवस्था, सैनिक अभियानों तथा युद्ध के समय प्रत्येक आवश्यक सामग्री की आपूर्ति, अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण तथा उनके रख-रखाव, सेना का नियमित निरीक्षण, सैनिकों की सैन्य-क्षमता का परीक्षण आदि उसके दायित्व थे.

3..**दीवान-ए-इंशा** – शाही पत्र-व्यवहार, शाही फ़रमान आदि का दायित्व इस मंत्री का होता था. 'दबीर-ए-ममालिक' विभाग इसके आधीन होता था. इस विभाग की कार्रवाही अत्यंत गोपनीय होती थी. और 'दीवान-ए-इंशा' के पद पर सुल्तान द्वारा अपना कोई अत्यंत विश्वस्त व्यक्ति ही नियुक्त किया जाता था.

4..**दीवान-ए-रिसालत** – ए. बी. एम. हबीबुल्ला के अनुसार यह विदेश मंत्री होता था और कूटनीतिक पत्र-व्यवहार, विभिन्न राज्यों को भेजे जाने वाले राजदूतों की नियुक्ति, उनको सौंपे जाने वाले कार्य, राज्य में आने वाले विदेशी राजदूतों से संपर्क आदि का दायित्व उसी का होता था. दिल्ली के सुल्तान मध्य-एशिया के विभिन्न राज्यों से मधुर सम्बन्ध बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहते थे और इस कार्य में 'दीवान-ए-रिसालत' की महत्वपूर्ण भूमिका रहती थी.

5..**सद्र-उस-सुदूर** – इसका दायित्व, समाज को इस्लाम की मूलभूत शिक्षाओं के अनुरूप धार्मिक-सामाजिक जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करना, धार्मिक संस्थाओं की देखभाल करना और धार्मिक विवादों निबटारा करना होता था और साथ ही खैरात के रूप में ज़रुरतमंदों की राज्य की ओर से सहायता करना तथा विद्वानों को वित्तीय सहायता देना, तालिब-ए-इल्म को वजीफ़ा देना भी इसके दायित्वों में सम्मिलित था.

6..क़ाज़ी-उल-क़ज़ात – सुल्तान के बाद यह राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था और न्याय-विभाग का प्रमुख भी यही होता था.

सुल्तान को यह अधिकार था कि वह चाहे अपने मंत्रियों से उनके मंत्रालय के विषय में सलाह ले अथवा न ले, उनके मंत्रालय के कार्यों में हस्तक्षेप करे या उनको ही विभाग के कार्यों का निष्पादन करने दे. मंत्रियों की नियुक्ति, उनका कार्य-काल और उनके अधिकार आदि सब सुल्तान की अपनी मर्ज़ी पर निर्भर करते थे. यह कहना उचित होगा कि व्यावहारिक दृष्टि से उपरोक्त मंत्री, सुल्तान के मंत्री कम और सचिव, अधिक थे.

2.4.5.3 मजलिस-ए-खल्वत

सुल्तान के विशिष्ट परामर्शदाताओं को 'मजलिस-ए-खल्वत' के नाम से जाना जाता था. इसमें सुल्तान के मंत्री, उसके अपने घनिष्ठ मित्र, विश्वस्त अधिकारी, और उलेमा सम्मिलित होते थे. किन्तु 'मजलिस-ए-खल्वत' की सलाह मानने के लिए भी सुल्तान बाध्य नहीं था.

2.4.5.4 सुल्तान के अन्य प्रमुख अधिकारी

1. बरीद-ए-मुमालिक – यह गुप्तचर विभाग का प्रमुख होता था.
2. दीवान-ए-अमीर कोही – यह कृषि विभाग का प्रमुख होता था.
3. दीवान-ए-खैरात – यह अधिकारी दान-पुण्य के वितरण का कार्य देखता था.
4. दीवान-ए-इश्तिहकाक़ – यह पेंशन विभाग का प्रमुख होता था
5. सर-ए-जांदार – यह शाही अंगरक्षक विभाग का प्रमुख होता था.
6. दीवान-ए-बंदगान – यह गुलामों के विभाग का प्रमुख होता था.
7. अमीर-ए-शिकार – यह शाही परिवार के लिए शिकार करने की व्यवस्था करता था.
8. अमीर-ए-आखुर – यह अश्वशाला का अध्यक्ष होता था.
9. शहना-ए-पील – शाही हस्तिशाला का यह अध्यक्ष होता था.
10. अमीर-ए-मुत्सर्रिफ़ – यह शाही कारखानों का अध्यक्ष होता था.
11. दीवान-ए-रियासत – अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में इस अधिकारी का दायित्व बाज़ार नियंत्रण का सफल सञ्चालन होता था.
12. दीवान-ए-मुस्तखराज़ – अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में यह भू-राजस्व विभाग का अध्यक्ष होता था.
13. दीवान-ए-नज़र – मुहम्मद बिन तुगलक़ ने उपहारों के वितरण के लिए इस अधिकारी की नियुक्ति की थी.
14. मुशरिफ़ – यह शाही महालेखाकार होता था और राज्य की आय-व्यय का लेखा-जोखा रखता था.
15. मुस्तौफ़ी – यह मुशरिफ़ के लेखे-जोखे की जांच-पड़ताल करता था.
16. खज़ीन – यह कोषाध्यक्ष होता था.
17. बारबक – यह दरबार की शानो-शौकत बनाए रखने और शाही रस्मों के कुशल सञ्चालन का दायित्व संभालता था.

18. अमीर-ए-हाजिब – सुल्तान से हर मिलने वाले की जांच-पड़ताल का दायित्व इस अधिकारी का होता था.

19. अमीर-ए-मजलिस – शाही दावतों और उत्सवों के सफल आयोजन का दायित्व इस अधिकारी का होता था.

20. कोतवाल – दिल्ली और सभी प्रमुख नगरों में नियुक्त कोतवाल का दायित्व अपने नगर में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना था. अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में दिल्ली का कोतवाल अला-उल-मुल्क था जिससे परामर्श लेने में सुल्तान भी कोई संकोच नहीं करता था.

21. पुलिस – दिल्ली सल्तनत में अलग से कोई पुलिस विभाग नहीं था. स्थानीय अधिकारियों को अपनी सेना की सहायता से ही अपने-अपने क्षेत्र में शान्ति-व्यवस्था बनाए रखने की ज़िम्मेदारी होती थी. शहर कोतवाल के पास पुलिस के अधिकार होते थे किन्तु वह मूलतः एक सैन्य-अधिकारी होता था.

2.4.6 कर प्रणाली

2.4.6.1 खराज

खराज – यह भू-राजस्व होता था जो कि भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में राज्य की आय का मुख्य साधन होता था. आम तौर पर यह कर उपज का एक तिहाई भाग होता था किन्तु अलाउद्दीन खिलजी ने इसे बढ़ाकर उपज का आधा कर दिया था. खराज का निर्धारण सामान्यतः अनुमान पर आधारित था किन्तु अलाउद्दीन खिलजी और सिकंदर लोदी जैसे सुल्तानों ने भूमि की नाप-जोख किए जाने के पश्चात कर-निर्धारण की व्यवस्था की थी. मुसलमान कृषकों से अपेक्षाकृत भू-राजस्व कम लिया जाता था और यह 'उश्र' कहलाता था. यह सामान्यतः उपज का 10% होता था. खालसा भूमि सुल्तान की निजी संपत्ति होती थी और इस से प्राप्त भू-राजस्व, सुल्तान के निजी खज़ाने में जाता था. अधीनस्थ शासक एक निश्चित राशि सुल्तान को देते थे और फिर उन्हें अपनी प्रजा से प्राप्त शेष भू-राजस्व अपने पास रखने का अधिकार था. विद्वानों तथा अन्य व्यक्तियों को इनाम में दी गयी भूमि पर किसी प्रकार का कोई कर नहीं लगाया जाता था.

2.4.6.1.1 लगान व्यवस्था

बंटाई लगान-व्यवस्था में फ़सल तैयार होने पर सरकारी अधिकारी कुल उपज में से राज्य का हिस्सा गल्ले के रूप में वसूल करते थे. इसे 'गल्ला-बक्शी' भी कहते थे. कुछ स्थानों पर लगान वसूल करने के लिए 'खेत-बंटाई' की विधि भी अपनाई जाती थी. अलाउद्दीन खिलजी को अपने सैनिकों की अनाज की आवश्यकता की पूर्ती के लिए प्रचुर मात्रा में अनाज की आवश्यकता होती थी इसलिए वह किसानों से अनाज के रूप में ही लगान वसूलता था.

2.4.6.1.2 मसाहत (भूमि का मापन)

सल्तनत काल में अलाउद्दीन खिलजी पहला सुल्तान था जिसने कि लगान-निर्धारण के लिए कृषि-योग्य भूमि की नाप-जोख की प्रणाली लागू की थी. किन्तु गियासुद्दीन तुगलक़ ने इस व्यवस्था को समाप्त कर दिया.

2.4.6.1.3 नहरों का निर्माण और सिंचाई कर

फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने किसानों को सिंचाई की सुविधा देने के लिए राज्य की ओर से नहरों के निर्माण में अत्यधिक धन का निवेश किया था. उसने यमुना, घग्घर और सतलज पर 5 बड़ी नहरों का निर्माण कर साम्राज्य के एक बड़े कृषि-भूमि क्षेत्र को सिंचाई की सुविधाओं से समृद्ध किया था. इन नहरों में में 'राजवाही' और 'उलुगखानी' प्रमुख थीं. उलेमाओं की सहमति से उसने 'हक़्क़-ए-शर्ब' के रूप में किसानों से कुल उपज का 10% भाग प्राप्त किया था.

2.4.6.2 खम्स

1. खम्स – सैनिक अभियानों में सैनिकों को शत्रु-क्षेत्र में खुलेआम लूटने की छूट थी और इस लूट में राज्य का हिस्सा – 20 प्रतिशत होता था किन्तु अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद बिन तुगलक़ ने खम्स की दर बढ़ाकर 80% कर दी थी.

2.4.6.3 जज़िया

जज़िया – यह गैर-मुस्लिमों से लिया जाने वाला धार्मिक कर था. मुस्लिम राज्यों में रहने वाले गैर-मुस्लिम 'जिम्मी' कहलाते थे और उन्हें अपमानजनक स्थिति में यह कर देना पड़ता था. ब्राह्मण, अपंग, भिखारियों आदि से जज़िया नहीं लिया जाता था किन्तु फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने ब्राह्मणों पर भी जज़िया लगा दिया था. सामान्यतः जज़िया – अमीरों से 40 टका वार्षिक, माध्यम वर्ग से 20 टका वार्षिक और निर्धनों से 10 टका वार्षिक वसूला जाता था.

2.4.6.4 ज़कात

ज़कात – यह मुसलमानों से लिया जाने वाला धार्मिक कर था. यह सामान्यतः व्यक्ति की आय का 2.5% होता था. ज़कात के रूप में वसूली गयी राशि मुस्लिम समाज के कल्याण हेतु खर्च की जाती थी.

2.4.6.5 अन्य कर

1. सिंचाई कर – जिन कृषकों को नाहर आदि से अपने खेतों में सिचाई करने की सुविधा थी उनसे उनकी उपज का 10% सिंचाई कर के रूप में लिया जाता था.
2. व्यापार कर – बाज़ार में वस्तुओं के क्रय-विक्रय पर भी कर लगाए जाने की व्यवस्था थी. व्यापार कर – सामान्यतः गैर-मुस्लिमों से वस्तु के मूल्य का 5% और मुसलमानों से वस्तु के मूल्य का 2.5% वसूला जाता था. घोड़ों के क्रय-विक्रय पर सभी से उसके मूल्य का 5% कर के रूप में वसूला जाता था.
3. चुंगी – नगर में माल ले जाने के लिए व्यापारियों को चुंगी देनी पड़ती थी.
4. अबवाब – अतिरिक्त कर को अबवाब कहा जाता था. अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को देखते हुए सुल्तान को कितने भी अबवाब लगाने का अधिकार था. अलाउद्दीन खिलजी ने चारागाह कर भी लगाया था. गड़े हुए खज़ाने के मिलने पर राज्य की ओर से 20% कर लिया जाता था. और खानों से निकलने वाले खनिजों पर भी राज्य की ओर से 20% कर लगाया जाता था.

2.4.7 न्याय-व्यवस्था

2.4.7.1 न्याय-व्यवस्था का आधार

सल्तनत काल में न्याय-व्यवस्था का मुख्य श्रोत - मुस्लिम क़ानून था जो कि क़ुरान, शरियत, हदीस (पैगम्बर के कथन), क़ुरान शरियत, हदीस (पैगम्बर के कथन), इज्मा (मुस्लिम विधि-वेत्ताओं द्वारा मुस्लिम क़ानून की व्याख्या) और क़यास (तर्क के आधार पर क़ानून विषयक निष्कर्ष निकालना) पर आधारित था.

2.4.7.2 न्याय-वितरण

सुल्तान, राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था. दीवान-ए-मजालिस तथा दीवान-ए-ममालिक उसे विधि-सम्मत परामर्श देते थे. सुल्तान के बाद क़ाज़ी-उल-क़ज़ात सबसे बड़ा न्यायाधीश होता था. धार्मिक विवादों का निबटारा सद्र-उस-सुदूर करता था. इक्तों और शिकों में भी क़ाज़ी और सद्र होते थे. गाँवों में न्याय करने का दायित्व पचायतों का होता था. सल्तनत में दंड-व्यवस्था अत्यंत कठोर थी. विद्रोही की सज़ा प्राण-दंड थी. अपराधी का अंग-भंग किया जाना, काल-कोठरी में डाला जाना और कोड़े लगाया जाना एक आम बात थी.

दिल्ली सल्तनत में बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा को निष्पक्ष न्याय का लाभ नहीं मिल पाता था. न्याय के कठघरे में यदि मुसलमान के विरुद्ध हिन्दू खड़ा होता था तो सामान्यतः निर्णय मुसलमान के पक्ष में ही जाता था. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने तो अनेक हिन्दू अपराधियों को यह लालच दिया था कि यदि वो इस्लाम में दीक्षित हो जाएं तो उन्हें अपराध-मुक्त कर दिया जाएगा. इसके अतिरिक्त हिन्दू और हिन्दू के ही मध्य विवाद में हिन्दू-न्यायशास्त्र से पूर्णतया अनभिज्ञ क़ाज़ी वर्ग से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती थी कि वो दोनों पक्षों को उचित न्याय दिलवा सकेंगे.

2.4.8 व्यापार

सल्तनत काल में सूती वस्त्र का निर्यात प्रचुर मात्रा में होता था. लोहा, अनाज, जड़ी-बूटी, मसाले, शक्कर, नील आदि का भी निर्यात होता था और आयातित वस्तुओं में घोड़े, अस्त्र-शस्त्र, गुलाम, मेवे, फल, शराब आदि सम्मिलित थे. चूंकि सल्तनत काल में व्यापार-संतुलन भारत के पक्ष में था इसलिए लाभ के रूप में प्रचुर मात्रा में सोना, चांदी, हीरे-जवाहरात सल्तनत में आते थे.दिल्ली, थट्टा, अन्हिलवाड़, वाराणसी, लाहौर, सोनारगांव, देवल (यह अंतर्राष्ट्रीय बंदरगाह था) सल्तनत काल के प्रसिद्द व्यापारिक केंद्र थे.

2.4.9 दिल्ली सल्तनत का प्रांतीय प्रशासन

2.4.9.1 इक्ता तथा इक्तेदार

सुल्तान इल्तुतमिश ने अपने साम्राज्य को इक्तों (प्रान्तों) में विभाजित किया था. इक्तों का शासन का दायित्व इक्तेदारों को सौंपा जाता था. इक्तेदार को 'नायब वली' अथवा 'मुक्ती' भी कहा जाता था. प्रत्येक इक्तेदार के पास एक निश्चित संख्या में सैनिक टुकड़ी होती थी जिसको आवश्यकता पड़ने पर उसे सुल्तान के अभियानों के लिए प्रस्तुत करना होता था. इक्तेदार अपने इक्ते का मुख्य प्रशासक भी होता था. इक्तेदार का पद वंशानुगत नहीं होता था. उसकी नियुक्ति और उसका कार्य-काल सुल्तान की इच्छा पर निर्भर करता था.सुल्तान बलबन के शासनकाल से इक्तेदारों के वित्तीय भ्रष्टाचार पर नज़र रखने के लिए तथा उसको रोकने के लिए 'ख्वाजा' के पद का सृजन किया गया.

2.4.9.2 शिक, परगना तथा ग्राम का प्रशासन

प्रशासनिक सुविधा के लिए इक्तों को शिक अर्थात् जिलों में और जिलों को परगनों में विभाजित किया जाता था.

शिक का प्रशासनिक अधिकारी 'शिकदार' कहलाता था. परगना में मुख्य अधिकारी होते थे – 'मुशरिफ़', 'आमिल' (भू-राजस्व तथा अन्य कर एकत्र करने वाला अधिकारी), 'अमीन' (भूमि की नाप-जोख करने वाला अधिकारी), 'कानूनगो' (भू-राजस्व तथा उपज के पुराने अभिलेख की देख-रेख करने वाला अधिकारी) तथा 'कारकुन' (लिपिक).सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई ग्राम होती थी. ग्राम्य-प्रशासन का दायित्व पंचायत का होता था इसमें ग्राम-प्रधान, चौधरी, खुत और मुक़द्दम की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी. किन्तु शासन की ओर से भू-राजस्व तथा ज़मीन की नाप-जोख से अभिलेखों की देख-रेख का दायित्व 'पटवारी' का होता था.

2.5 सारांश

दिल्ली सल्तनत में यद्यपि सैद्धांतिक रूप से सुल्तान ही सर्वोच्च सेनानायक तथा सैन्य-विभाग का प्रमुख होता था किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से 'आरिज़-ए-मुमालिक' मुख्य सैन्य-प्रशासक होता था.दिल्ली सल्तनत की सेना में तुर्क, ईरानी, अफ़गान, मंगोल, भारतीय मुस्लिम और हिन्दू भी होते थे किन्तु बहुसंख्यक सैनिक मुसलमान ही होते थे. दिल्ली सल्तनत के सैनिकों में एकता और संगठन का सर्वथा अभाव था. दिल्ली सल्तनत के अधिकांश सैनिकों की भर्ती पूर्णरूपेण अस्थायी होती थी. इनको वेतन के रूप में लूट का एक हिस्सा मिलता था. सल्तनत काल में गैर-मुस्लिम शक्तियों के विरुद्ध सैनिक-अभियानों को 'जिहाद' का नाम दे दिया जाता था. आम तौर पर इक्तेदार और अमीर अपने-अपने लिए सैनिकों की भर्ती किया करते थे. अधिकांश सैनिकों की भर्ती केवल सैनिक अभियानों, वाह्य-आक्रमणों और आतंरिक विद्रोहों के समय की जाती थी. यह अलाउद्दीन खिलजी ही था जिसने एक स्थायी सेना का गठन किया था. सल्तनत काल में सैनिकों के लिए सैन्य-प्रशिक्षण का कोई प्रबंध नहीं था.

सेना के तीन प्रमुख अंग थे –

1. पैदल सैनिक
2. घुड़सवार – घुड़सवार सेना दिल्ली सल्तनत की सेना का प्रमुख अंग थी.
3 हस्ति-सेना – हस्ति-सेना रखने का अधिकार केवल सुल्तान को था. हाथियों को युद्ध के लिए प्रशिक्षित किया जाता था.

दिल्ली सल्तनत में तोपखाना नहीं होता था किन्तु अन्य प्रकार के आग्नेय अस्त्र अवश्य होते थे. इनमें सबसे प्रमुख थे – 'बलिस्ता' 'फ़लाखून', 'गरगज़ और 'सबात'. सैनिक अभियानों में नदियाँ पार करने में और माल ढोने में नावों का भी उपयोग होता था. नौ-सेना का अधिकारी 'मीर-ए-बहर' होता था.सल्तनत काल में सामरिक दृष्टि से किलों का अत्यधिक महत्व था. एशिया और यूरोप के अनेक देशों में युद्ध में तोपों का प्रचुर मात्रा में उपयोग होने लगा था. किन्तु दिल्ली सल्तनत में युद्ध में तोपों का प्रयोग अब तक नहीं किया जा रहा था. पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर की इब्राहीम लोदी पर विजय का एक बड़ा कारण उसका सक्षम तोपखाना था. दिल्ली सल्तनत में सुल्तानों ने आम तौर पर ख़लीफ़ा की औपचारिक सत्ता स्वीकार करने में किसी प्रकार का विरोध व्यक्त नहीं कियादिल्ली . .सल्तनत का सर्वोच्च प्रशासक स्वयं सुल्तान होता था सुल्तान पूर्णरूपेण स्वतंत्र तथा सर्वशक्तिमान शासक के रूप - .में अपनी इच्छा को ही क़ानून के रूप में लागू करने में सक्षम था

दिल्ली सल्तनत में सर्वोच्च प्रशासक तथा अपनी मुस्लिम प्रजा का धर्म-प्रमुख होने के साथ-साथ सुल्तान, सर्वोच्च न्यायाधीश भी होता था. न्यायाधीश के रूप में उसकी शक्तियां असीमित थीं.दिल्ली सल्तनत में सुल्तान ही सर्वोच्च सेनानायक होता था.

शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए के सुल्तान निम्न मंत्री नियुक्त करता था.–

1. वज़ीर – यह सुल्तान का प्रधानमंत्री होता था और उसके साथ ही यह वित्त-मंत्री भी होता था.

2..दीवान-ए-आरिज़ अथवा आरिज़-ए-मुमालिक – सेना के रख-रखाव और उस पर नियंत्रण रखने का दायित्व 'दीवान-ए-आरिज़' का होता था.

3..दीवान-ए-इंशा – शाही पत्र-व्यवहार, शाही फ़रमान आदि का दायित्व इस मंत्री का होता था. 'दबीर-ए-ममालिक' विभाग इसके आधीन होता था. 4..दीवान-ए-रिसालत – यह विदेश मंत्री होता था.

5..सद्र-उस-सुदूर – इसका दायित्व, समाज को इस्लाम की मूलभूत शिक्षाओं के अनुरूप धार्मिक-सामाजिक जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करना, धार्मिक संस्थाओं की देखभाल करना और धार्मिक विवादों निबटारा करना होता था.

6..क़ाज़ी-उल-क़ुज़ात – सुल्तान के बाद यह राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था और न्याय-विभाग का प्रमुख भी यही होता था.

मंत्रियों की नियुक्ति, मंत्रियों का कार्य-काल और उनके अधिकार आदि सब सुल्तान की अपनी मर्ज़ी पर निर्भर करते थे. सुल्तान के विशिष्ट परामर्शदाताओं को 'मजलिस-ए-खल्वत' के नाम से जाना जाता था. सुल्तान के अन्य प्रमुख अधिकारी थे - बरीद-ए-मुमालिक, दीवान-ए-अमीर कोही, दीवान-ए-खैरात, दीवान-ए-इश्तिहकाक़, सर-ए-जांदार, दीवान-ए-बंदगान, अमीर-ए-शिकार, अमीर-ए-आखुर, शहना-ए-पील, दीवान-ए-रियासत, मुशरिफ़, मुस्तौफ़ी, खज़ीन, बारबक, अमीर-ए-हाजिब, अमीर-ए-मजलिस, कोतवाल. दिल्ली सल्तनत में अलग से कोई पुलिस विभाग नहीं था. स्थानीय अधिकारियों को अपनी सेना की सहायता से ही अपने-अपने क्षेत्र में शान्ति-व्यवस्था बनाए रखने की ज़िम्मेदारी होती थी.

सुल्तान को परम्परागत दृष्टि से केवल चार कर – खराज, खम्स, मुख्य कर चार थे -

1. **खराज** – यह भू-राजस्व होता था. मुसलमान कृषकों से अपेक्षाकृत भू-राजस्व कम लिया जाता था और यह 'उश्र' कहलाता था.

खालसा भूमि सुल्तान की निजी संपत्ति होती थी और इस से प्राप्त भू-राजस्व, सुल्तान के निजी खज़ाने में जाता था. अधीनस्थ शासक एक निश्चित राशि सुल्तान को देते थे और फिर उन्हें अपनी प्रजा से प्राप्त शेष भू-राजस्व अपने पास रखने का अधिकार था. बंटाई लगानव्यवस्था में- फ़सल तैयार होने पर सरकारी अधिकारी कुल उपज में से राज्य का हिस्सा गल्ले के रूप में वसूल करते थे .भी कहते थे 'बक्शी-गल्ला' इसे .

सल्तनत काल में अलाउद्दीन खिलजी पहला सुल्तान था जिसने कि लगान-निर्धारण के लिए कृषि-योग्य भूमि की नाप-जोख की प्रणाली लागू की थी. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने किसानों को सिंचाई की सुविधा देने के लिए राज्य की

ओर से नहरों के निर्माण में अत्यधिक धन का निवेश किया था. उलेमाओं की सहमति से उसने ‘हक़-ए-शर्ब’ (सिंचाई कर) के रूप में किसानों से कुल उपज का 10% भाग प्राप्त किया था.

2. **खम्स** – सैनिक अभियानों में सैनिकों को शत्रु-क्षेत्र में खुलेआम लूटने की छूट थी और इस लूट में राज्य का हिस्सा – 20 प्रतिशत होता था.

3. **जज़िया** – यह गैर-मुस्लिमों से लिया जाने वाला धार्मिक कर था. फ़िरोज़ शाह तुगलक़ ने ब्राह्मणों पर भी जज़िया लगा दिया था.

4. **ज़कात** – यह मुसलमानों से लिया जाने वाला धार्मिक कर था. यह सामान्यतः व्यक्ति की आय का 2.5% होता था.

अन्य करों में सिंचाई कर था. यह उपज का 10% होता था. बाज़ार में वस्तुओं के क्रय-विक्रय पर भी कर लगाए जाने की व्यवस्था थी. नगर में माल ले जाने के लिए व्यापारियों को चुंगी देनी पड़ती थी.अतिरिक्त कर को अबवाब कहा जाता था. अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को देखते हुए सुल्तान को कितने भी अबवाब लगाने का अधिकार था.

सल्तनत काल में न्याय-व्यवस्था का मुख्य श्रोत - मुस्लिम क़ानून था जो कि क़ुरान, शरियत, हदीस, जो कि क़ुरान, शरियत, हदीस, इज्मा और क़यास पर आधारित था.

सुल्तान, राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था. सुल्तान के बाद क़ाज़ी-उल-क़ज़ात सबसे बड़ा न्यायाधीश होता था. धार्मिक विवादों का निबटारा सद्र-उस-सुदूर करता था. इक्तों और शिकों में भी क़ाज़ी और सद्र होते थे. गाँवों में न्याय करने का दायित्व पचालातों का होता था. सल्तनत में दंड-व्यवस्था अत्यंत कठोर थी.दिल्ली सल्तनत में बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा को निष्पक्ष न्याय का लाभ नहीं मिल पाता था.

सल्तनत काल में सूती वस्त्र का निर्यात प्रचुर मात्रा में होता था. लोहा, अनाज, जड़ी-बूटी, मसाले, शक्कर, नील आदि का भी निर्यात होता था और आयातित वस्तुओं में घोड़े, अस्त्र-शस्त्र, गुलाम, मेवे, फल,दिल्ली सल्तनत उद्योग तथा व्यापार बहुत उन्नत था. व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में था इसलिए भारत में सोना, चांदी, हीरे- जवाहरात, लाभ के रूप में प्रचुर मात्रा में आते थे. निर्यात में सूती कपड़े लोहा अनाज मसाले आदि प्रमुख थे जब कि ऊंची नस्ल के घोड़ों का बहुत ऊंची कीमत देकर आयात होता था. शराब का भी आयात होता था.

दिल्ली, थट्टा, अन्हिलवाड़, वाराणसी, लाहौर, सोनारगांव, देवल (यह अंतर्राष्ट्रीय बंदरगाह था) सल्तनत काल के प्रसिद्द व्यापारिक केंद्र थे – दिल्ली, वाराणसी, थट्टा, लाहौर, अन्हिलवाड़, सुरसती आदि.सुल्तान इल्तुतमिश ने अपने साम्राज्य को इक्तों में विभाजित किया थाप्रत्येक .इक्तों का शासन का दायित्व इक्तेदारों को सौंपा जाता था . ;क्तेदार अपने इक्ते का मुख्य प्रशासक भी होता .इक्तेदार के पास एक निश्चित संख्या में सैनिक टुकड़ी होती थी प्रशासनिक सुविधा के लिए इक्तों को शिक अर्थात् जि.थालों में, और जिलों को परगनों में विभाजित किया जाता था.शिक का प्रशासनिक अधिकारी ,’मुशरिफ़‘ – परगना में मुख्य अधिकारी होते थे .कहलाता था ’शिकदार‘ ’कारकुन‘ तथा ’कानूनगो‘ ,’अमीन‘ ,’आमिल‘ होते थे -ग्राम्य .सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई ग्राम होती थी. ग़ोख से -राजस्व तथा ज़मीन की नाप-प्रशासन का दायित्व पंचायत का होता था किन्तु शासन की ओर से भू

.का होता था 'पटवारी' रेख का दायित्व-अभिलेखों की देख

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए

1. घुड़सवार सेना
2. खराज
3. सल्तनतकालीन न्याय-व्यवस्था

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 1.3.3 सेना के प्रमुख अंग
2. देखिए 1.4.6.1 खराज
3. देखिए 1.4.7 न्याय-व्यवस्था

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

जिहाद – धर्म-विजय

क्रीग स्टैट – युद्ध पर आधारित राज्य

दो-अस्पा सवार – ऐसा घुड़सवार जिसके पास दो घोड़े हों

बलिस्ता – शिला-प्रक्षेपक

फ़लाख़ून – गुलेल

गरगज़ – चलायमान मंच

सबात – दीवार से घिरी गाड़ी जिसके पीछे सैनिक दुश्मन की मार से सुरक्षित रह सकें

हक़-ए-शर्ब – सिंचाई कर

तुलुगमा – तोपखाने और घुड़सवार सेना अप्रत्याशित असंयुक्त आक्रमण

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

इलियट, एच. एम., डाउसन, जे – 'हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया एज़ टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियंस', 8 भागों में, लन्दन, 1867

मजूमदार, आर. सी. (संपादक) – 'दि डेल्ही सल्तनत' बॉम्बे, 1980

सैयद, एम. एच. – 'हिस्ट्री ऑफ़ डेल्ही सल्तनत' नई दिल्ली, 2005

चंद्रा, सतीश – 'हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवल इंडिया', हैदराबाद, 2007

ईश्वरी प्रसाद – 'ए हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवल इंडिया' दिल्ली, 2018

रिजवी, एस. ए. ए. – 'तुगलक़कालीन भारत, भाग 1 तथा भाग 2,
अलीगढ़, 1956

रिजवी, एस. ए. ए. – 'खलजीकालीन भारत', नई दिल्ली, 2016

हुसेन. ए. एम. – 'दि तुगलक़ डायनेस्टी' कलकत्ता, 1963
इब्न बतूता – 'दि रहला' (अंग्रेज़ी अनुवाद – हुसेन, एम) बड़ौदा, 1953
जैक्सन, पीटर – 'दि डेल्ही सल्तनत: पॉलिटिकल एंड मिलिट्री हिस्ट्री' केम्ब्रिज, 2003
कुरैशी, आई. एच. – दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ दि डेल्ही सल्तनत' नई दिल्ली, 1996

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. सर्वोच्च प्रशासक, सर्वोच्च सेनानायक तथा सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप में सुल्तान के अधिकारों और उसके कर्तव्यों की विवेचना कीजिए.

शर्की वंश

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 जौनपुर राज्य एक दृष्टि में

3.4 शर्की वंश का राजनीतिक उत्कशर्

3.5 ख्वाजाजहाँ: प्रारम्भिक जीवन (1394–1399ई0)

3.6 सल्तनत का वजीर

3.7 ख्वाजाजहाँ: जौनपुर का स्वतन्त्र शासक

3.8 सैनिक कार्यवाहियाँ

3.9 बिहार पर आक्रमणःउज्जैनियाँ राजपूतों से युद्ध

3.10 मुबारक शाह (1399 – 1402 ई0)

3.11 इब्राहिम शाह (1402–1496 ई0)

3.12 महमूद शाह (1436–1457 ई0)

3.13 हुसैन शाह (1458–1500 ई0)

3.14 शर्की राजवंश की स्थापत्य कला

3.15 सारांश

3.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.17 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.18 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

14 वीं शताब्दी में जिन स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ उसमें जौनपुर उत्तर भारत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित राज्य था। इसने न केवल राजनीतिक रूप से स्वतंत्रता हासिल की बल्कि आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी पर्याप्त विकास किया। साहित्य और स्थापत्य कला के क्षेत्र में काफी ख्याति अर्जित की। इसी कारण जौनपुर को शिराज–ए–मलिक कहा जाने लगा। इस राज्य ने अपने वैभव एवं सम्पन्नता के लिए काफी ख्याति अर्जित की।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान संकेगे कि–

- जौनपुर के शर्की वंश का स्थापना एवं विकास।
- शर्की वंश के शासकों के कला एवं साहित्य का संरक्षण।
- शर्की वंश के काल में जौनपुर का कलात्मक विकास।
- जौनपुर की राजनीतिक,आर्थिक,साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियां।

3.3 जौनपुर राज्य एक दृष्टि में

तैमूर के तुफानी आक्रमण ने सल्तनत की बची–खुची शक्ति का भी नाश कर दिया। अब तो दिल्ली के सुल्तान में इतनी शक्ति भी शेश नहीं रह गयी कि वह स्वयं अपनी रक्षा करता। इस प्रकार धीरे–धीरे साम्राज्य संकुचित होता चला गया। सैय्यद और लोदी शासकों के शासन काल में सल्तनत का विस्तार सिर्फ पंजाब तथा दोआब के क्षेत्रों में रह गया था। इस समय तक विकेन्द्रीकरण तथा विघटनकारी तत्व अत्यन्त ही सक्रिय हो उठे। सुल्तान अपने अमीरों के षड्यन्त्रों और विद्रोहों का दमन करने में ही फँसे रह गये। उन्हें सल्तनत को संगठित करने का अवसर ही नहीं मिला और नही ऐसा करने की क्षमता अथवा योग्यता उनमें थी। इस प्रकार सारे उत्तर भारत में छोटे–छोटे राज्यों का प्रार्दुभाव हुआ जो अपने क्षेत्रीय विस्तार के लिए आपस में ही संघश र्रत हो गये। सुल्तान चुपचाप इन घटनाओं को घटित होते देख रहे थे, क्योंकि इनकी स्वतन्त्रता अथवा राज्य विस्तार को रोकने में वे पूर्णतः असमर्थ थे। इन राज्यों की कोई प्राकृतिक सीमाएँ निर्धारित नहीं थी। ये राज्य शक्ति पर आधारित थे, अतः इनमें जो अधिक शक्तिशाली होता था वही अपने पड़ोसी राज्यों को जीत कर अपने अधीन कर लेता था। सारे भारत में अराजकता, अशान्ति, अव्यवस्था तथा संघश र् का सूत्रपात हो गया था जिसका अन्त बाद में बाबर द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् ही हो पाया।

वस्तुतः सल्तनत काल में विभिन्न प्रान्तों का शासन–सूत्र मुस्लिम प्रान्तपतियों के हाथ में ही था। अतः दिल्ली के स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी इन प्रान्तों पर मुसलमान शासकों का ही प्रभुत्व बना रहा। इन स्वतन्त्र मुस्लिम शासकों ने प्रशासन आदि के क्षेत्रों में दिल्ली के सुल्तान की नीतियों का ही अवलंबन किया। इस प्रकार देश में मुस्लिम सत्ता का ह्रास नहीं हुआ। यद्यपि वह विकेन्द्रित हो गया था। दूसरी ओर यह समझ लेना कि प्रान्तों में स्वतन्त्र मुस्लिम राज्यों की स्थापना से हिन्दूओं के राजनीतिक प्रभुत्व की समाप्ति हो गई, भ्रममूलक होगा। उत्तर में हिमालय की तराई के प्रदेश, काँगड़ा, नेपाल तथा असम, हिन्दू सत्ता, प्रभुत्व और संस्कृति के केन्द्र थे। मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा आदि में मुसलमानों का प्रभुत्व अभी भी स्थापित नहीं हो पाया था और इन क्षेत्रों में हिन्दुओं की राजनीतिक सत्ता स्थापित थी। दक्षिण में विजयनगर का राज्य इस काल में हिन्दू राजनीति, सभ्यता और संस्कृति का महान केन्द्र बन गया। इन हिन्दू राज्यों की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि इतना होने पर भी ये

आपस में संगठित न हो सके और आपसी ईर्ष्या, द्वेश , कलह एवं संघर्श के द्वारा इन्होंने अपनी शक्ति को क्षीण ही किया।

3.4 शर्की वंश का राजनीतिक उत्कर्ष

3.4.1: महमूद नासिरूद्दीन 1399 ई0 तक

अपने चचेरे भाई मुहम्मद तुगलक (जूना खाँ) की स्मृति में फिरोज शाह तुगलक ने जौनपुर नगर की स्थापना की थी। फिरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् कुछ ही वर्शों के भीतर दिल्ली सल्तनत के कुछ प्रान्तों ने अपनी स्वतन्त्रता की स्थापना कर ली थी। ऐसे राज्यों में जौनपुर पहला था। जौनपुर के प्रान्तपति ख्वाजा जहाँ ने तुगलक सुल्तान के शक्तिहीन होने और तैमूर के आक्रमण से व्याप्त विघटनकारी प्रवृत्ति का लाभ उठाकर अपनी स्वतन्त्रता की घोशणा कर दी।

3.5 ख्वाजाजहाँ प्रारम्भिक जीवन (1394–1399 ई0)

जौनपुर की सल्तनत शर्की अर्थात् 'पूर्वी' सल्तनत के नाम से प्रसिद्ध है और शर्की शासक, जिन्होंने जौनपुर में शासन किया, मलिक उस्–शर्क या पूर्वी प्रदेश का अधिपति के नाम से जाने जाते हैं।

जौनपुर राजवंश का प्रतिष्ठाता मलिक सरवर था। उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है उसने प्रारम्भिक जीवन सुल्तान फिरोज तुगलक के गुलाम के रूप में प्रारम्भ किया था, जिसे 'ख्वाजासरा' कहा जाता था। इस प्रकार फिरोजशाह के काल में यह ख्वाजासरा था। सुल्तान नासिरूद्दीन मुहम्मद शाह (फिरोज शाह के पुत्र) ने मलिक सरवर को ख्वाजासराओं का नेता बनाया। मलिक सरवर ने अपनी योग्यता तथा बुद्धिमानी से इतनी ख्याति प्राप्त कर ली कि उसे 'हस्तिशाला का निरीक्षक' नियुक्त किया गया, जिसे दरोगा–ए–पीलखाना कहा जाता था।

मुहम्मद तुगलक (द्वितीय) को यह सिपहसालार सैय्यद रज्जब अली (गयासुद्दीन द्वितीय के भाई) द्वारा दिया गया था। तुगलक शाह (फिरोज शाह के पौत्र एवं फतह खाँ के पुत्र) ने जब दिल्ली सल्तनत पर अधिकार किया तो उसने मलिक सरवर की व्यवहारिक बुद्धि से प्रभावित होकर उसे दिल्ली शहर का 'शाहना' नियुक्त किया।

3.6 सल्तनत का वजीर

1389 इ0 में जब मुहम्मद शाह (फिरोजशाह का छोटा पुत्र) गद्दी पर बैठा तो उसने मलिक सरवर को 'ख्वाजाजहाँ' की सम्मानित उपाधि से विभूशित कर सल्तनत के वजीर का सम्मानित पद प्रदान किया। इस प्रकार मलिक सरवर ने अपनी तीव्र बुद्धि और निष्ठा के बल पर 1389 ई0 में 'वजीर' का उच्च्य पद प्राप्त किया।

जब दरबार के एक अन्य प्रतिष्ठित अमीर इस्लाम खाँ, को यह आभास हुआ कि यदि उसकी नियुक्ति ऐसी ही बनी रहेगी तो उसकी प्रतिष्ठा पूर्णरूप से समाप्त हो जायेगी। अतः उसके निरन्तर विरोध के कारण दूसरे ही वर्श ख्वाजाजहाँ पदच्युत कर दिया गया। परन्तु ख्वाजाजहाँ चूंकि एक तीक्ष्ण बुद्धि–सम्पन्न व्यक्ति था। अतः उसने 1392 ई0 में इस्लाम खाँ द्वारा रचे जा रहे दरबारी शड़यंत्र की सूचना सुल्तान मुहम्मद शाह को दी क्योंकि वह स्वयं भी इस्लाम खाँ से विद्वेश रखता था। थोड़ी सी असन्तोश जनक छानबीन के बाद इस्लाम खाँ के ही भतीजे जाजू के साक्ष्य पर उसे मृत्यु–दण्ड दिया गया। इसके पश्चात् ख्वाजाजहाँ को पुनः विजारत का भार सौंपा गया।

एक वजीर के रूप में उसने सुल्तान मुहम्मद शाह, सुल्तान सिकन्दर शाह को अपनी महान सेवाएँ प्रदान की।

सन् 1394 ई0 में फिरोज शाह का पौत्र और मुहम्मद शाह का पुत्र महमूद शाह तुगलक सुल्तान नासिरूद्दीन की पदवी धारण कर गद्दी पर बैठा। उसको सिंहासन पर बैठाने में वजीर ख्वाजाजहाँ का प्रमुख हाथ था। सुल्तान ने उसकी राजभक्ति के परिणाम स्वरूप जमादि–उल–अव्वल, 796 हि0 (1394 ई0) में उसे मलिक–उस–शर्क की सम्मानित उपाधि से विभूशि त किया। सुल्तान ने ख्वाजाजहाँ की यह प्रतिष्ठित उपाधि देने के साथ ही साम्राज्य के पूर्वी प्रदेश के गर्वनर के रूप में उसकी नियुक्ति की जिसका प्रमुख केन्द्र जौनपुर को बनाया गया।

बदायूँनी ने महमूद तुगलक द्वारा दी गयी सम्मानपूर्ण उपाधि सुल्तान–उस–शर्क कही है। परन्तु फरिश्ता इत्यादि इतिहासकारों ने ख्वाजाजहाँ द्वारा प्राप्त की गयी प्रारम्भिक उपाधि 'मलिक–उस–शर्क' ही बतायी है। उनके अनुसार परवर्ती काल में महमूद तुगलक के शासन में व्याप्त विश्रृंखलता से लाभ उठाकर ख्वाजाजहाँ ने सुल्तान–उस–शर्क की उपाधि स्वयं ग्रहण की थी जिसका अर्थ है 'पूर्वी प्रदेश का शासक।'

3.7 ख्वाजाजहाँः जौनपुर का स्वत़न्त्र शासक

सुल्तान महमूद तुगलक ने मलिक–उस–शर्क ख्वाजाजहाँ को कन्नौज से बिहार तक के समस्त प्रदेश का प्रशासन का भार सौंपा। जौनपुर नामा से यह ज्ञात होता है कि महमूद शाह ने उन अमीरों को, जिन्होंने उसकी परेशानी में उसका साथ दिया था, उनके पद एवं प्रतिष्ठा के अनुसार राजानुग्रह प्रदर्शित किया। अतः साम्राज्य से दूरवर्ती प्रान्तों के विद्रोहों का दमन करने के लिए उसने चार अमीरों को चार विभिन्न दिशाओं में भेजा। मलिक–उस–शर्क को पूर्वी प्रान्त की ओर, दिलावर खाँ को मालवा, जफर खाँ को गुजरात एवं खिज खाँ को मुल्तान की ओर भेजा। जिस समय ये चार अमीर गवर्नर की हैसियत से अपने–अपने प्रान्तों में जाने लगे तो दिल्ली दरबार के ज्योतिषियों में से मुहम्मद शरीफ ने यह भविष्यवाणी की कि जिन मुहूर्तों में ये अमीर दिल्ली से प्रस्थान कर रहे हैं, उसके फलस्वरूप प्रत्येक सूबेदार अपने–अपने प्रान्तों में स्वतन्त्र होकर, दिल्ली सल्तनत से पृथक राज्य की नींव डालेंगे। आगे चलकर ज्योतिशी की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।

796 हि0 (मई, 1394 ई0) में मलिक–उस–शर्क ख्वाजाजहाँ ने विद्रोहियों को दण्ड देने हेतु दिल्ली से प्रस्थान किया। वह 20 सुसज्जित हाथियों के साथ इटावा कोल, खोर या कहूरा कनील, कंवल एवं कन्नौज के आस–पास के विद्रोहियों का दण्ड देकर जौनपुर की ओर अग्रसर हुआ। उसने अत्यन्त सरलतापूर्वक कन्नौज, कड़ा, अवध, काम्पिल्य, डलमऊ, संडीला रापरी बहराइच बिहार एवं तिरहुत के प्रदेश को अपने अधीन किया। उड़ीसा, मैनपुर, सम्भल, बरेली, आगरा भी धीरे–धीरे उसके अधीन होते गये।

इन विजयों से उत्साहित होकर एवं तुगलक शासन में व्याप्त अराजकता से लाभ उठाकर मलिक–उस–शर्क ख्वाजाजहाँ 'सुल्तान–उस–शर्क' की उपाधि धारण कर ली।

सुल्तान–उस–शर्क ने पूर्वी प्रान्त के शासक को रूप में उन हिन्दू विद्रोहियों का दमन किया जिन्होंने उस क्षेत्र के प्रशासन को एक विकट परिस्थिति में ला दिया था। उन प्रान्तों को उसने सुव्यवस्थित किया। हिन्दुओं ने जिन किलों को मुसलामानों से छीनकर नष्ट कर दिया था उनको सुल्तान–उस–शर्क ने उनके आधिपत्य से मुक्त किया और नये सिरे से उनका पुनर्निर्माण किया। किलों तथा उनके समीपवर्ती क्षेत्रों में अपनी सेना नियुक्त की। परगना कोल (अलीगढ़), इटावा, बहराइच और काम्पिल्य के विद्रोहियों को दण्ड देकर दिल्ली की ओर कोल तथा रापरी तक और दूसरी ओर बिहार तथा तिरहुत तक के विद्रोहियों को दण्ड दिया।

इस प्रकार सुल्तान–उस–शर्क ने अल्पकाल में ही अपनी उच्चस्तरीय राजनीतिक प्रतिभा के प्रदर्शन से एक विशाल क्षेत्र में अपनी प्रभुता स्थापित की। जिसके अन्तर्गत अवध, गंगा की घाटी, पश्चिम

में कोल से पूर्व में बिहार तक का प्रदेश शामिल था। 14 वीं शताब्दी के अन्त में दिल्ली के सुल्तान महमूद के पास राजधानी दिल्ली एवं समीपवर्ती 5 जिलों को छोड़कर कुछ भी अवशिष्ट नहीं था।

3.8: सैनिक कार्यवाहियाँ

रजब 798 हि0 (1395 ई0) में सुल्तान–उस–शर्क ने अपने दत्तक पुत्र मुबारक खाँ को मलिक–उस–शर्क (पूर्वी शासक) की उपाधि प्रदान कर उसे राज्य की समस्त राजकीय कार्यवाहियों का भार सौंपा एवं बंगाल पर आक्रमण के लिए भेजा। मुबारक खाँ ने विद्रोह एवं विद्रोहियों का अत्यन्त कुशलता से दमन किया और बंगाल के शासक से उपहार सामग्री एवं राजस्व प्राप्त कर लौटा। बदाऊँनी का कथन है कि सुल्तान–उस–शर्क ने उड़ीसा के जाजनगर तक सैनिक कार्यवाही की और उसे हस्तगत किया। उसने उस क्षेत्र से बहुत सी उपहार सामग्री एवं हाथी प्राप्त किये और उसी समय से लखनौती का शासक प्रति वर्ष हाथी भेजने लगा जैसा वह दिल्ली भेजा करता था।

फरिश्ता के अनुसार सुल्तान–उस–शर्क की शक्ति इतनी बढ़ गयी कि बंगाल के लखनौती में शासन कर रहे पूर्वी शासक रीति के अनुसार हाथी तथा अन्य उपहार–सामग्री (खिराज तथा पेशकश) दिल्ली सुल्तान को भेजने के स्थान पर शर्की शासक 'सुल्तान–उस–शर्क' की प्रगति से संशकित होकर उसी को भेंटस्वरूप देकर सन्तुष्ट किया।

निजामुद्दीन अहमद ने भी इस बात की पुष्टि की है कि लखनौती के शासक बिना मांगे राजस्व प्रतिवर्ष जौनपुर भेजने लगे, जो वे प्रतिवर्ष फिरोज को भेजते थे। यह कहा जाता है कि बंगाल का शासक गयासुद्दीन आजमशाह (795–813 हि0) जो सिकन्दर शाह का पुत्र था, जौनपुर के ख्वाजाजहाँ की निरन्तर प्रगति से संशकित होकर ख्वाजाजहाँ की निरन्तर प्रगति से संशकित होकर ख्वाजाजहाँ को राजस्व भेजने लगा, जो कि फिरोजशाह तुगलक के साथ की गयी सन्धि की शर्तों के अनुसार दिल्ली सुल्तान को भेजा जाना था। परन्तु इसका कोई साक्ष्य नहीं मिलता कि यह राजस्व लगातार दिल्ली सुल्तान को भेजा जाता था क्योंकि ख्वाजाजहाँ पर यह आरोप लगाया जाता है कि जिस समय यह राजस्व दिल्ली भेजा जा रहा था उसने उसे बलपूर्वक हस्तगत कर लिया, परन्तु यह कथन सत्य नहीं है। जो राशि ख्वाजाजहाँ को भेजी गयी थी वह शायद एक प्रशंसनीय उपहार था। डिस्ट्रिक्ट गजेटियर बान्दा से यह ज्ञात होता है कि सुल्तान–उस–शर्क जमुना के दक्षिण ओर अपने अधिकार–क्षेत्र का विस्तार नहीं कर सका था।

इस प्रकार ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क की क्रमशः प्रगति दिल्ली सल्तनत के स्वार्थ के विरूद्ध प्रमाणित हुई। 1398 ई0 में तैमूर के दिल्ली पर आक्रमण के समय जब दिल्ली का सुल्तान कठिनाईयों से घिरा हुआ था, ख्वाजाजहाँ ने दिल्ली के सुल्तान महमूद तुगलक को किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं की और पूर्व में अपने क्षेत्रीय विस्तार में संलग्न रहां

जब सुल्तान महमूद तुगलक ने तैमूर लंग के विरूद्ध युद्ध में अपनी पराजय के बाद गुजरात में शरण ली तो दिल्ली सल्तनत में किसी केन्द्रीय शक्ति एवं शक्तिशाली प्रभुत्व के अभाव मे ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क को जौनपुर में एक नवीन राजवंश को स्थायी रूप से स्थापित करने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। उसने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर 'अतावक–ए–आजम' की सम्मानित उपाधि धारण की एवं दिल्ली से पृथक होकर जौनपुर में एक स्वतन्त्र राजवंश 'शर्की राजवंश' की स्थापना की।

3.9: बिहार पर आक्रमण–उज्जैनियाँ राजपूतों से युद्ध

ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क की सबसे महत्वपूर्ण सैनिक कार्यवाही बिहार पर है। फरिश्ता के अनुसार ख्वाजाजहाँ ने गोरखपुर तथा बहराइच को अपने अधीन करके अन्तर्वेद तथा बिहार की ओर प्रस्थान किया। इससे सिद्ध होता है कि उसने बिहार पर सैनिक कार्यवाही की थी।

ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क के बिहार के उज्जैनियाँ राजपूतों से संघर्ष के सम्बन्ध में बहुत से इतिहासकार मौन हैं। फारसी की हस्तलिखित पुस्तकों में भी इस सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की गयी है। केवल बिहार तक ख्वाजाजहाँ के अधिकार का समर्थन किया गया है।

बीकानेर के बोधराज द्वारा शर्कियों एवं दक्षिणी बिहार के शाहाबाद जिले के उज्जैनियाँ राजपूतों के पारस्परिक सम्बन्ध पर थोड़ा बहुत प्रकाश डाला गया है। इसके द्वारा हमें ख्वाजाजहाँ के उज्जैनियाँ राजपूतों के विरूद्ध आक्रमणात्मक कार्यवाही का कुछ संकेत मिलता है।

ख्वाजाजहाँ ने 1394 ई0 में बिहार पर आक्रमण करने के लिए जौनपुर से प्रस्थान किया। उस समय संवत् 1400 में भोजपुर की गद्दी पर देवराज के पश्चात् सोमराज बैठा था। हरराज, गजराज एवं जगदेव तीन पुत्रों का छोडकर संवत् 1445 में स्वर्गवासी हुआ।

हरराज के समय संवत् 1450 (1394 ई0) में जौनपुर के सूबेदार ख्वाजाजहाँ के सैनिक जौनपुर से बिहार के लिए प्रस्थान करके चौसाघाट से उतरकर बक्सर में ठहरे। उनमें से कुछ सैनिक सैर करने हेतु गंगा के किनारे पहुंचे। ब्राह्मणों को पूजापाठ करते देख उन्हें सताने लगे एवं अशोभनीय कार्य करने लगे। ब्राह्मणों के विरोध करने पर वे उनसे उलझ पड़े एवं एक–दूसरे पर प्रहार करने लगे। उज्जैनियाँ राजपूतों के संघर्ष का यह एक महत्वपूर्ण कारण बताया जाता है।

उसी समय राजकुमार गजराज के राजपूत सैनिक घटनास्थल पर पहुंचे। उन्होंने मुस्लिम सैनिकों को धर दबाया। महाराजकुमार गजराज इस संघर्ष का संवाद पाकर अपने सैनिकों की सहायता के लिए स्वयं उपस्थित हुआ। बहुत से यवन सिपाही मारे गये, जो शेष बचे वे भागकर जौनपुर पहुंचे।

ख्वाजाजहाँ उज्जैनियाँ के हाथों अपने सैनिकों के मारे जाने का समाचार पाकर भोजपुर पर आक्रमण हेतु प्रस्थान किया। इस युद्ध में महाराज हरराज लड़ता हुआ मारा गया। महाराजकुमार गजराज और देवराज राज–परिवार के समस्त सदस्यों के साथ निकल भागे। मुस्लिम सैनिकों ने नगर में प्रवेश कर लूटमार मचायी एवं मन्दिरों को विध्वंस कर दिया। राज प्रसाद में आग लगाकर भोजपुर को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया।

उज्जैनियों ने भोजपुर से पलायन कर महाराजकुमार गजराज से गद्दी पर बैठाया। अगम्य जंगलों और पहाड़ों का आश्रय लेकर वे शर्की सैनिकों से लोहा लेते रहे। समय–समय पर वे पहाड़ों से उतरकर यवनों पर टूट पड़ते एवं लूट–मारकर वापस लौट जाते। इसी प्रकार उज्जैनियाँ राजपूतों के सैनिक गुरिल्ला युद्ध के द्वारा शर्की सैनिकों से उस समय तक उलझते रहे जब तक कि वि0सं0 1456 (1399 ई0) में सुल्तान–उस–शर्क ख्वाजाजहाँ की मृत्यु के बाद पुनः महाराजकुमार गजराज ने पहाड़ों से निकलकर कुरूर पर अधिकार कर लिया।

ख्वाजाजहाँ के दक्षिणी बिहार पर आधिपत्य के प्रमाण स्वरूप हम कह सकते हैं कि बिहार पर महमूद तुगलक का आधिपत्य, जैसा कि उसके प्रलेखों से ज्ञात होता है, ख्वाजाजहाँ ने अपने को स्वतन्त्र घोषित नहीं किया, तब तक उसने सभी सार्वजनिक इमारतों में अपने सम्प्रभु (महमूद तुगलक) के नाम का ही प्रयोग किया था। क्योंकि महमूद तुगलक के बिहार में प्राप्त 4 प्रलेखों में से 3 प्रलेखों की तिथि 796 हि0 के पश्चात् की है, जब मलिक सरवर ख्वाजाजहाँ सुल्तान की ओर से पूर्वी प्रदेश के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त हुआ था।

इससे स्पष्ट होता है कि ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क ने दक्षिणी बिहार के शहाबाद जिले तक अपनी सैनिक कार्यवाही की थी। मलिक सरवर ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क अपनी समस्त कार्यवाहियों में एक स्वतन्त्र शासक के समान था, यद्यपि उसने 'सुल्तान' की उपाधि ग्रहण नहीं की थी। परन्तु वह अपने को दिल्ली सल्तनत का अधीनस्थ मानने को भी तैयार नहीं था। इसलिए उसने केवल सुल्तान–उस–शर्क की उपाधि तक ही अपने को सीमित रखा।फरिष्ता के अनुसार सुल्तान–उस–शर्क की यह हार्दिक इच्छा थी कि वह खुतबा एवं सिक्का अपने नाम का पढ़वाए एवं ढाले। जिस प्रकार पूर्वी

शासक (लखनौती के श ासक) करते थे उसी प्रकार भी अपने सिर पर राजछत्र धारण करे। परन्तु मृत्यु ने उसे अधिक सोचने का अवसर नहीं दिया।

निजामुद्दीन अहमद इस सम्बन्ध में मौन है।यह भी हो सकता है कि मृत्यु ने उसे अधिक अवसर प्रदान नहीं किया क्योंकि 802 हि0 (1399 ई0) में अपने अल्पकालीन शासन के पश्चात् ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क कर मृत्यु हो गयी। उसने 5 वर्ष 6 माह तक शासन किया।

इस अल्पावधि के शासन के बावजूद भी ख्वाजाजहाँ को जौनपुर में उस उज्जवल और गौरवशाली राजवंश की स्थापना का महान श्रेय प्राप्त हुआ जिसके आगे दिल्ली सल्तनत की ज्योति मद्धिम पड़ गयी। जौनपुर के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना का श्रेय सम्पूर्ण रूप से ख्वाजाजहाँ को ही है। उसने उस समय व्याप्त राजनीतिक अशान्ति को समाप्त कर जौनपुर में एक सुव्यवस्थित शासनकी नींव डाली, हेग ने तो उसके जौनपुर की ओर प्रस्थान की तिथि को ही शर्की राजवंश की स्थापना की तिथि के रूप में चिन्हित कर दिया है।

ख्वाजाजहाँ ने एक ऐसे राजवंश की स्थापना की जिसका अस्तित्व आगामी 100 वर्षो के लिए सुरक्षित हो गया। तैमूर के चले जाने के पश्चात् दिल्ली सल्तनत की ओर अराजकतापूर्ण परिस्थिति से मुक्ति पाने के लिए अनेक प्रतिष्ठित और उल्लेखनीय विद्वानों ने राजधानी दिल्ली को त्यागकर जौनपुर के दरबार में शरण ली, जिन्हें शर्की राजाओं की ओर से सम्पूर्ण राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ। अल्पकाल के भीतर ही जौनपुर भारत का शिराज–ए–हिन्द नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ख्वाजाजहाँ ने अत्यन्त उदारता एवं न्यायपूर्वक शासन किया। वह अपनी हिन्दू मुस्लिम प्रजा में समान रूप से प्रिय था। हिन्दुओं की विशेष सहायता से ही उसने स्वतन्त्रता प्राप्त कर जौनपुर में

शर्की श ासन की नींव डाली और शर्की सल्तनत की सीमा का विस्तार किया। ख्वाजाजहाँ ने इमाद–उल–मुल्क बख्तियार खाँ को सम्पूर्ण दरबारी अमीरों से पृथक करके राज्य का मंत्री बनाया। उसने जौनपुर को विशेष आकर्षण प्रदान किया। उसने धार्मिक शिक्षा को विशेष महत्व प्रदान किया और इसके लिए खानकाहें (मठ) और मदरसे खोले गये। 1399 ई0 में उसके आकस्मिक निधन ने उसके शासन काल को अत्यन्त संक्षिप्त बना दिया। अपने जीवन–काल में ही उसने सैय्यद मुबारक शाह करनफल को अपना दत्तक पुत्रद एवं शर्की राज्य का भावी उत्तराधिकारी घोषित कर दिया जिसे उसके उच्चस्तरीय मानसिक विवेचन, दूरदर्शिता एवं शर्की राज्य की सुदृढ़ता के ज्वलन्त उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

3.10 मुबारक शाह (1399–1402 ई0)

1399 ई0 में ख्वाजा जहाँ का दत्तक पुत्र मलिक करनफूल गद्दी पर बैठा ओर उसने 'मुबारक शाह' की उपाधि धारण की। वह शर्की वंश का पहला शासक था जो सुल्तान कहलाया और जिसके नाम के सिक्के प्रचलित हुए तथा खुतबे पढ़े गये। मुबारक शाह के समय से ही जौनपुर का दिल्ली के साथ कटु सम्बन्ध शुरू हुआ।

3.11 इब्राहिम श ाह (1402–1496 ई0)

1402 ई0 में मुबारक शाह की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई इब्राहिम शाह जौनपुर का सुल्तान बना। वह शर्की वंश का सर्वश्रेश्ठ शासक था। दिल्ली के साथ उसका सम्बन्ध अच्छा नहीं था। एक बार जब सुल्तान महमूद अपने वजीर मल्लू से तंग आकर भाग कर जौनपुर आया तो इब्राहिम ने उसके साथ सम्मानोचित व्यवहार नहीं किया। इससे चिढ़कर महमूद ने जौनपुर के कन्नौज जिले पर अधिकार कर लिया। महमूद के उत्तराधिकारी खिज खाँ के साथ भी इब्राहिम के संघर्ष हुए। इब्राहिम ने कन्नौज को पुनः प्राप्त करने और बंगाल को जीतने का प्रयत्न किया, किन्तु इसमें वह असफल रहा।

इब्राहिम निःसंदेह शर्की वंश का महानतम शासक था। उसने चौंतीस वर्ष तक शासन करके अपने राज्य को विशाल एवं उन्नत बनाया। वह एक सुसंस्कृत सुल्तान तथा कला एवं विद्या का महान् प्रेमी था। उसने पाठशालाओं तथा विद्यालयों की स्थापना की और राजकोष से उन्हें उदार धर्मस्व प्रदान किये। उसने देश के विभिन्न भागों से विद्वानों तथा धर्मशास्त्रज्ञों को आमन्त्रित किया और उन्हें निर्वाह के लिए भत्ते तथा हर प्रकार से राज्य की ओर से संरक्षण दिया। उसने शिक्षा–साहित्य और कला को राज्य का संरक्षण आमंत्रित कर उन्हें राज्य की ओर से संरक्षण प्रदान किया। उसकी राज्य सभा में उच्चकोटि के विद्वान थे। उसके शासनकाल में जौनपुर इस्लामी धर्म–शास्त्रों कानून तथा अन्य विषयों पर अनेक ग्रंथों की रचना हुई। उसने अनेक भारतीय ग्रंथों का अनुवाद फारसी में भी करवाया । उसके शासनकाल में जौनपुर मुस्लिम शिक्षा तथा संस्कृति का एक प्रधान केन्द्र बन गया। इब्राहिम शाह ने अनेक भवनो का निर्माण कर जौनपुर को अधिक सुंदर, आर्कषक और वैभवशाली बनाया। उसके द्वारा र्निमित मस्जिदों में जौनपुर की अटाला मस्जिद सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उसके शासनकाल में स्थापत्य कला के क्षेत्र में एक नवीन शैली का विकास हुआ। जो शर्की शैली के नाम प्रसिद्ध है। इस शैली में र्निमित मस्जिदों में सामान्य मीनारों का अभाव था और इस पर हिन्दू स्थापत्य का भी प्रभाव पड़ा था। इब्राहिम को संगीत तथा अन्य ललित कलाओं से भी प्रेम था। संस्कृति के क्षेत्र में अपनी उपलब्धियों के कारण जौनपुर उसके शासनकाल में 'भारत के शिराज' के नाम से विख्यात हुआ। किन्तु, योग्य होने पर भी धर्मान्ध और असहिष्णु था। उसने हिन्दुओं पर अत्याचार किये। अटाला मस्जिद का निर्माण अटाला देवी के मंदिर को विध्वंश करके उसके भग्नावशेषों पर किया गया था। 1436 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई।

3.12: महमूद शाह (1436–1457 ई0)

इब्राहिम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महमूद शाह जौनपुर का शासक बना। उसने इक्कीस वर्ष (1436–1457 ई0) तक शासन किया। उसने अनेकों बार दिल्ली पर आक्रमण किये और उसको जीतने का प्रयास किया किन्तु सुल्तान बहलोल लोदी ने उसे परास्त कर दिया। महमूद शाह भी योग्य शासक था। शिक्षा–साहित्य तथा कला–कौशल के क्षेत्र में उसके शासनकाल में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। उसने भी कई मस्जिदों का निर्माण करवाया। 1457 ई0 में महमूद शाह की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका पुत्र मिक्खन मुहम्मद शाह के नाम से गद्दी पर बैठा, पर वह बड़ा ही निर्दयी, अत्याचारी और अदूरदर्शी शासक था। उसने अपने अमीरों से झगड़ा मोल ले लिया और अपने एक भाई की हत्या भी करवा दी। उसके कार्यों और नीतियों से असंतुष्ट और क्षुब्ध होकर अमीरों ने उसका वध करके उसके छोटे भाई हुसैन शाह को गद्दी पर बैठा दिया।

3.13: हुसैन शाह (1458–1500 ई0)

हुसैन शाह ने लगभग बयालीस वर्ष (1458–1500 ई0) तक राज्य किया। हुसैन शाह को संगीत से प्रेम था। जौनपुर के सल्तान ने प्रसिद्ध राग हुसैनी, कान्हड़ा और तोड़ी का आविष्कार किया था। उसके दरबार में हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदाय के विद्वान थे जिनमें नायक बख्श , बैजू (बावरा), पांडवी, लोहुंग, जुजू देंढी और डालू के नाम प्रमुख हैं। उसने बिहार के जमींदारों का दमन किया तथा उसके राज्य से कर वसूल कर लिया। उसने ग्वालियर को जीतने का भी असफल प्रयास किया था। इसी बीच में दिल्ली तथा जौनपुर के बीच पुनः संघर्ष आरम्भ हो गया। सन् 1489 ई0 में सुल्तान बहलोल लोदी ने उसे परास्त और पदच्युत करके अपने ज्येष्ठ पुत्र बरबरक शाह को जौनपुर का शासक नियुक्त कर दिया। हुसैन श ाह शर्की वंश का अंतिम शासक था। उसकी पराजय से जौनपुर की स्वतंत्रता समाप्त हो गई। हुसैन शाह को बिहार में शरण लेनी पड़ी। बिहार में बैठकर उसने दिल्ली के सुल्तान के विरूद्ध कुचक्र चलाये और जौनपुर राज्य के जमींदारों को उसके विरूद्ध विद्रोह करने का

भड़काया। सिकंदर लोदी को इससे काफी ईर्ष्या हो गई और उसने जौनपुर को स्थायी रूप से दिल्ली सल्तनत में मिला लिया। हुसैन शाह की मृत्यु 1500 ई0 में निर्वासित दशा में हो गई। इसके साथ ही शर्की राजवंश का अवसान हो गया।

लगभग अस्सी वर्षों तक जौनपुर शर्की वंश के अधीन स्वतंत्र रहा। इस काल में वह इस्लामी शिक्षा, कला और संस्कृति का एक मुख्य केन्द्र बन गया। शर्की शासकों के प्रयत्न से शिक्षा–साहित्य तथा कला–कौशल का काफी विकास हुआ। यहाँ अनेक मस्जिदों , मकबरों और भवनों का निर्माण किया गया। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में अल्पकालिक होते हुए भी जौनपुर का शर्की राजवंश बड़ा ही महत्वपूर्ण माना जाता है।

3.14: शर्की राजवंश की स्थापत्य कला

मध्य काल में स्थापत्य कला का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र जौनपुर रहा है। इस शहर की स्थापना 1359–60 ई0 में फिरोजशाह तुगलक ने की थी। यह एक लम्बे काल तक दिल्ली सल्तनत के अधीन रहा। 1394 ई0 में ख्वाजाजहाँ के अधीन जौनपुर एक स्वतंत्र राज्य बन गया। यह लगभग एक सदी तक स्वतंत्र राज्य रहा जिसके पष्चात् सिकन्दर लोदी ने पुनः उसे जीत कर सल्तनत का अंग बना लिया। ख्वाजाजहाँ ने जौनपुर में शर्की राजवंश की स्थापना की थी जिसके शासकों ने लगभग एक सदी तक स्वतंत्र रूप से जौनपुर पर शासन किया। शर्की शासकों ने जौनपुर में स्थापत्य को काफी प्रोत्साहन दिया। उन्होंने यहाँ बहुत ही इमारतों का निर्माण करवाया जिनमें महल, मस्जिदें और मकबरे आदि सभी शामिल थे। दुर्भाग्यवश आज इनमें से अधिकांश नष्ट हो गये हैं, किन्तु जो बचे हुए हैं उनसे शर्की–शैली की महानता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। शर्की शासकों द्वारा निर्मित भवनों में हिन्दू एवं मुस्लिम शैलियों का सुन्दर समन्वय मिलता है। यहाँ की शैली की अपनी कुछ खास विशेशताएँ थीं। यहाँ पर जितने भी भवन बनाए गये हैं, उनमें भारी ढालू दीवारें, संकीर्ण दहलीजें तथा चौकोर स्तम्भों का प्रयोग विशेश रूप से किया गया है। यहाँ की अधिकांश मस्जिदों में विध्वंस किये गये हिन्दू मन्दिरों की साम्रगी का ही प्रयोग हुआ है। मस्जिदों में इस्लामी शैली की मीनारें भी देखने को नहीं मिलती है।

जौनपुर के किले का निर्माण 1377 ई0 में किया गया था। अब यह किला खण्डहर के रूप में परिणित हो गया है। इसका केवल पूर्वी द्वार बचा हुआ है जिसकी स्थिति भी दयनीय है।

जौनपुर की शर्की शैली का सबसे महत्वपूर्ण इमारत अटालादेवी की मस्जिद है। इसका निर्माण कार्य 1377 ई0 में प्रारम्भ हुआ था और यह 1408 ई0 में बन कर तैयार हो गयी। इसमें हिन्दू शैली का अपूर्व समन्वय है, जैसा कि इसके नाम से ही परिलक्षित होता है। आज जहाँ यह मस्जिद स्थापित है वहाँ इससे पहले अटालादेवी का मन्दिर था। उसे नष्ट कर उस स्थान पर ही मस्जिद का निर्माण किया गया। इसके निर्माण में अटालादेवी के मन्दिर की सामग्री का प्रयोग किया गया है। इस मस्जिद में एक खुला वर्गाकार आँगन है जिसके उत्तर और दक्षिण पूर्व में खम्भेदार कमरे हैं। इसके पश्चिम में प्रार्थना–स्थल है। मस्जिद के तीन ओर प्रवेश–द्वार हैं जो गुम्बदों द्वारा आच्छादित हैं। यद्यपि निर्माण एवं शैली की दृष्टि से यह मस्जिद तुगलक–मस्जिदों से बहुत हद तक मिलती–जुलती है, फिर भी इनके बीच अनेक बातों में भिन्नता है। यह अपेक्षाकृत अधिक अलंकृत है। इसके प्रार्थना स्थल के सामने जो विशाल एवं प्रभावशाली महराबी जालियाँ लगी हुई हैं, यह शर्की–शैली की खास विशेषता है। इस प्रकार अटालादेवी की मस्जिद में मस्जिद निर्माण की शैली का एक नवीन आदर्श प्रस्तुत किया गया है, जो बाद में चलकर जौनपुर की स्थापत्य कला शैली की एक विशेषता बना गया। स्थापत्य की दृष्टि से अटालादेवी मस्जिद एक प्रभावशाली एवं आकर्षक नमूना है।

सुल्तान इब्राहिम (1401–40 ई0) के शासन काल में एक अन्य मस्जिद का निर्माण उसके दो गर्वनर मलिक खालिस और मलिक मुखालिस ने अपने नाम पर किया। यह एक अलंकरणहीन सादा मस्जिद है।

जौनपुर के भवनों में सबसे प्रमुख जामा मस्जिद है। इसका निर्माण हुसैनशाह शर्की ने 1417 ई0 के लगभग करवाया था। यह जौनपुर की सबसे विशाल मस्जिद है। सम्पूर्ण इमारत एक बहुत बड़े चबूतरे पर स्थित है। इसका प्रार्थना–स्थल दुमंजिला है। मस्ज्दि के मध्य का सिंह–द्वार बड़ा ही आर्कषक है। अन्दर का प्रार्थना –कक्ष पाँच भागों में विभाजित है। इसके दोनों ओर दो मंजिले खम्भेदार भाग हैं। इसका बड़ा हॉल, जिसकी छत बिना किसी आधार के टिकी है, खास रूप् से आकर्शक है। जामा मस्जिद की योजना और शिल्प–शैली अटालादेवी की मस्जिद से बहुत कुछ मिलती–जुलती है।

इब्राहिम शर्की ने 1430 ई0 में झँझरी मस्जिद का निर्माण करवाया। आज यह खण्डहर की अवस्था में पड़ी हुई है। इसके अवशेशों में केवल मध्य का बड़ा प्रवेश–द्वार ही बचा हुआ है। झँझरी मस्जिद भी अटालादेवी मस्जिद के नमूने पर बनी है। मस्जिद की भीतरी दीवारों पर अलंकरण और नक्काशियाँ की गयी हैं।

पन्द्रह सदी के मध्य में 'लाल दरवाजा' मस्जिद का निर्माण किया गया। इसके मुख्य प्रवेश–द्वार का रंग लाल है, अतः इसे इस नाम से पुकारा जाता है। यद्यपि यह मस्जिद भी अटालादेवी मन्दिर के समान है, परन्तु उससे कुछ बातों में भिन्न है। यह भिन्नता दोनों मस्जिदों के मुख्य प्रवेश–द्वारों में खास तौर पर देखने को मिलती है। इस मस्जिद के प्रवेश–द्वार की ऊँचाई उसके आधार की चौड़ाई की तुलना में कम है। पुनः अराला मस्जिद में महिलाओं की गैलरियाँ दूर कोनों में हैं जबकि झांझर मस्जिद में वे लगभग मध्य भाग में है। इसके भीतरी महराबी–निम्बर के मध्य भाग के ऊपर केवल एक ही गुम्बद है और उसके बगल में निकली छत भी अटाला मस्जिद से भिन्न है। इस प्रकार लाल दरवाजा मस्जिद अपनी कुछ मौलिकता लिए हुए हैं।

उपर्युक्त मस्जिदों के अतिरिक्त शर्की शैली में कई अन्य मस्जिदों एवं मकबरों का निर्माण हुआ। किन्तु, उनकी शैली में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है। शर्की शैली में कुछ खास दोश हैः गुम्बदों की कम ऊँचाई, निर्माण योजनाओं की भद्दी बनावट तथा इमारती अनुपात की कल्पना का अभाव। यद्यपि इस शैली में बनी इमारतों के अलग–अलग भाग सुन्दर एवं प्रभावोत्पदक है, परन्तु इन दोशों के कारण सम्पूर्ण इमारत स्थापत्य की दृष्टि से प्रभावोत्पादक एवं आकर्षक प्रतीत नहीं होते हैं। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि शर्की वंश के शासकों ने प्रथम श्रेणी के अनेक इमारतों का निर्माण करवाया जिनका मध्यकालीन भारतीय स्थापत्य कला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है।

3.15: सारांश

शर्की सल्तनत का अस्तित्व लगभग सौ वर्ष (1394–1500 ई0) तक ही बना रहा। अपनी उन्नति के काल में शर्की वंश की राज्य सीमा पष्चिमी उत्तर–प्रदेश के अलीगढ़ से उत्तरी बिहार के दरभंगा तक और उत्तर नेपाल से दक्षिणी में बुन्देलखण्ड तक थी। यद्यपि जौनपुर नगर की स्थापना फिरोजशाह तुगलक ने की थी, परन्तु स्वतंत्र शर्की वंश राज्य की स्थापना करने का श्रेय मलिक सरवर ख्वाजाजहाँ को जाता है। जौनपुर के शर्की वंश के सभी श ासकों ने कला एवं साहित्य को संरक्षण प्रदान किया। कला एवं साहित्य के उत्थान के कारण जौनपुर न केवल महत्वपूर्ण शिक्षा का केन्द्र बन गया बल्कि इसे शिराज–ए–मशरिक के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। इस समय लोग दूर–दूर से शिक्षा प्राप्त करने जौनपुर आया करते थे। बीबी राजा बेगम का मदरसा जौनपुर की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था थी। प्रारम्भिक अवस्था में शेरशाह सूरी ने भी जौनपुर में ही शिक्षा प्राप्त की थी। जौनपुर के शासकों ने स्थापत्यकला की ओर भी अपना विशेष ध्यान दिया तथा कलाकारों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन भी प्रदान किया था। हिन्दू और इस्लामिक शैली के समन्वय से स्थापत्यकला से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस नई विकसित शैली को जौनपुर की शैली का नाम भी दिया गया। इस शैली के प्रमुख इमारतों में जामा मस्जिद, अटाला देवी मस्जिद, झँझरी मस्जिद और लाल दरवाजा मस्जिद आदि प्रमुख हैं। जौनपुर राज्य न केवल राजनीतिक एवं आर्थिक उन्नति की बल्कि सांस्कृतिक क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की। दिल्ली

सल्तनत के बिखराव के बाद यह एक सम्पन्न और समृद्ध राज्य के रूप में विख्यात हुआ। अनेक विद्वानों एवं कलाकारों ने जौनपुर को अपना स्थाई ठिकाना बनाया। इन कलाकारों एवं विद्वानों के आगमन से कला और साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। संक्षेप में हम कह सकते हैं नवउदित सभी स्वतंत्र राज्यों में जौनपुर का स्थान सर्वोत्तम और सराहनीय बन गया।

3.16: अभ्यासार्थ प्रश्न

1. इब्राहिम शाह शर्की की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
2. जौनपुर की कलात्मक उपलब्धि की व्याख्या कीजिए।
3. जौनपुर स्वतंत्र राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।

3.17: सन्दर्भ ग्रन्थ

1. एल0 पी0 श र्मा– मध्यकालीन भारत
2. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव– भारत का इतिहास
3. लईक अहमद– मध्यकालीन भारतीय संस्कृति
4. हरिष्चन्द्र वर्मा– मध्यकालीन भारत–भाग–1
5. विपिन बिहारी सिन्हा– मध्यकालीन भारत
6. आर0 एस0 त्रिपाठी– हिस्ट्री ऑफ कन्नौज

3.18: निबंधात्मक प्रश्न

1. जौनपुर शर्की वंश के उदय पर एक लेख लिखिए।
2. जौनपुर को शिराज–ए–मलिक क्यों कहा जाता है।

मुगल सामांज्य की स्थापनाः बाबर एवं हुमायूँ

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 फरगना के शासक के रूप में, बाबर
1.3.1 समरकन्द के विरूद्ध बाबर का अभियान
1.3.2 बाबर का राजनीतिक निर्वासन
1.3.3 काबुल पर अधिकार
1.3.4 समरकन्द पर विजय
1.3.5 काबुल से वापसी
1.3.6 काबुल से भारत की ओर
1.4 भारत की राजनीतिक स्थिति
1.5 भारत की सामाजिक स्थिति
1.6 भारत की आर्थिक स्थिति
1.7 बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण करने के कारण
1.7.1 बाबर की महत्वकांक्षाएँ
1.7.2 धन प्राप्ति की कामना
1.7.3 भारत में सुरक्षा
1.7.4 बाबर को आक्रमण करने का निमंत्रण
1.7.5 बाबर को अमीरों से मिली प्रेरणा
1.8 भारत पर बाबर के आक्रमण
1.8.1 पानीपत के प्रथम युद्ध का स्वरूप
1.8.2 पानीपत के युद्ध का परिणाम
1.8.3 खनुआ का युद्ध
1.8.4 बाबर और मेदिनी राय
1.8.5 अफगानों का दमन एवं घाघरा का युद्ध
1.9 हुमायूँ का प्रारम्भिक जीवन
1.9.1 हुमायूँ और शेरशाह
1.9.1.1 चुनार पर आक्रमण
1.9.1.2 बंगाल पर अधिकार
1.9.1.3 चौसा का युद्ध
1.9.1.4 कन्नौज का युद्ध
1.9.2 हुमायूँ का निर्वासन जीवन
1.9.3 हुमायूँ की भारत की और वापसी
1.9.3.1 पंजाब पर हुमायूँ का आक्रमण
1.9.3.2 मच्छीवाड़ा का युद्ध
1.9.3.3 सरहिन्द का युद्ध
1.9.4 हुमायूँ का प्रतिस्थापना
1.9.5 हुमायूँ का अंतिम दिन और मृत्यु
1.10 सारांश
1.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
1.12 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

भारत में मुगल वंश का संस्थापक जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर का जन्म 14 फरवरी 1983 को फरगना में हुआ था। उसके पिता का नाम उमर शेख मिर्जा एवं माता का नाम कुतलुग निगार खानम था। बाबर के पिता तैमूर के तथा माता चंगेज खां के वंशज थे। इस प्रकार उसमें मंगोलों की क्रूरता एवं तुर्कों की योग्यता व साहस का समन्वय था। इन गुणों के अतिरिक्त उसमें ईरानियों की विनीत विशिष्टता भी मौजूद थी, जो उसे पालन–पोषण के कारण उपलब्ध हुई थी। उसका कुटुम्ब तुर्की जाति के चुगताई वर्ग के अन्तर्गत आता था, किन्तु वह अपने को आम तौर पर मुगल ही मानता था। इसलिए, भारतीय इतिहास में इसका वंश मुगलिया वंश या तैमूरी वंश के नाम से जाना जाता है।

1.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगें।

- बाबर का भारत के विरूद्ध विभिन्न सैनिक अभियान।
- बाबर का चुनौतीपूर्ण जीवन एवं संघर्ष।
- बाबर का राजनीतिक निर्वासन।
- बाबर का काबुल विजय एवं पादशाह का पद धारण करना।
- बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक समाजिक एवं आर्थिक स्थिति।
- बाबर के भारत पर आक्रमण करने के कारण ।
- पानीपत का प्रथम युद्ध एवं मुगल वंश की स्थापना
- खानुआ एवं चन्देरी का युद्ध एवं राजपूत शक्ति पर प्रहार
- घाघरा का युद्ध एवं अफगान शक्ति पर अंकुश।
- बाबर एक सहित्यकार एवं कला के संरक्षक के रूप में।
- हुमायूँ का प्रारम्भिक जीवन और चुनौतियां के सम्बन्ध में
- हुमायूँ शेरशाह का संघर्ष तथा हुमायूँ का भारत से पलायन
- हुमायूँ का निर्वासन जीवन एवं धैर्यता का परिचय
- हुमायूँ का भारत वापसी एवं पुनः मुगल राज्य की स्थापना
- हुमायूँ का अंतिम दिन और अकस्मात मृत्यु

1.3 फरगना के शासक के रूप में बाबर

8 जून 1494 ई0 को अपने पिता उमर शेख मिर्जा के अकस्मात मृत्यु के पश्चात बाबर फरगना का शासक बना। इस समय की इसकी आयु मात्र 11 वर्ष 4 महिने की थी। बाबर ने अपनी दादी एशान दौलत बेगम की सहायता से शासन करना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में उसने अपने चाचा अहमद मिर्जा के साथ शान्ति समझौता हेतु प्रयत्न किया परन्तु उसका प्रयास असफल रहा और इन दोनों के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया। कतिपय कारणों से युद्ध में बाबर को सफलता मिली और फरगना आक्रमणकारियों से बच गया। इसके पश्चात बाबर फरगना के शासक के रूप में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का सफल प्रयास किया। उसने शासन व्यवस्था को अच्छे ढ़ग से व्यवस्थित किया जिससे प्रजा में लोकप्रिय हो गया और जनता का समर्थन मिलने लगा।

1.3.1 समरकन्द के विरूद्ध बाबर का अभियान

फरगना की स्थिति सुधारने के पश्चात बाबर ने राज्य विस्तार की और अपना ध्यान केन्द्रित किया। बाबर तैमूर की राजधानी समरकन्द पर अधिकार करना चाहता था। समरकन्द फरगना की सीमा के निकट

था। इसलिए इस पर अधिकार हो जाने से पश्चिम की ओर से फरगना के राज्य की सुरक्षा हो जाती। इसके अतिरिक्त समरकन्द उस समय कला, शिक्षा और संस्कृति का केन्द्र भी था। सरकन्द पर अधिकार हो जाने से बाबर की प्रतिष्ठा एवं शक्ति में वृद्धि हो जाती। जुलाई 1494 ई0 मे समरकन्द के शासक अहमद मिर्जा की मृत्यु के पश्चात बाबर ने समरकन्द को जीतने का निश्चय किया, किन्तु 1496 ई0 के पूर्व वह इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण प्रयास न कर सका। बाबर ने इस वर्ष समरकन्द को जीतने का असफल प्रयत्न किया। 1497 ई0 मे उसने समरकन्द पर दूसरी बार आक्रमण किया। इस बार उसे अस्थायी सफलता मिली। उसने समरकन्द को जीत लिया और लगभग सौ दिनों तक वह तैमूर के राज सिंहासन पर विराजमान रहा। इसी बीच फरगना के विद्रोह की सूचना पाकर वह वहां के विद्रोहियों को दबाने के लिए फरगना गया। समरकन्द से हटते ही बाबर की सत्ता वहां समाप्त कर दी गई। राजधानी अंदीजान पर भी विद्राहियों ने कब्जा कर लिया। इधर फरगना भी बाबर के हाथों से समरकन्द के साथ–साथ निकल गया।

1.3.2 बाबर का राजनीतिक निर्वासन

बाबर अब केवल नाममात्र का शासक रह गया था, और उसके पास खोजंद नाम का एक छोटा सा पहाड़ी प्रदेश के अतिरिक्त कोई क्षेत्र नहीं बच पाया। उसके अपने लोग भी उसे छोड़कर अलग हो गये थे और उसके अनुयायियों की संख्या मात्र दो सौ रह गयी थी। बाबर ने अपने जीवन के दो वर्ष धुमक्कड़ के रूप में बिताया। उसने स्वंय लिखा है ''जब से मैं ग्यारह वर्ष का हुआ' मैने रमजान के दो त्योहार कभी एक स्थान पर नहीं मनाया। उसी दुर्भाग्य की चर्चा करते हुए इतिहासकार फरिश्ता ने लिखा है, कि 'भारत की गेंद अथवा शतरंज के बादशाह की भांति वह इधर उधर मारा–मारा फिरा जैसे समुन्द्र के किनारे कंकड़ धक्के खाते फिरते है। किन्तु इन दुर्भाग्य के दिनों में भी उसने अपने धैर्य एवं साहस का त्याग नहीं किया। वह अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त करने के लिए प्रयास करता रहा। 1498 में वह पुनः फरगना पर अधिकार कायम कर सका, परन्तु इस बार भी भाग्य ने पूरी तरह बाबर का साथ नहीं दिया। फरगना पर उसकी पकड़ स्थायी नहीं हो सकी। 1500 ई0 में फिर फरगना उसके हाथों से निकल गया तथा बाबर का धुमक्कड़ जीवन एक बार पुनः आरम्भ हुआ। बाबर के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह भी थी कि वह कभी भी विषम परिस्थिति में घबराता नहीं था। उसने अपने राज्य को पुनः हस्तगत करने क प्रयास जारी रखा।

1500–1501 में बाबर ने उजबेग नेता शैवानी खां को पराजित कर समरकन्द पर अधिकार कर लिया। वहीं उसने अपनी चचेरी बहन आयशा से शादी भी की। दुर्भाग्यवश न तो बाबर की शादी और न ही समरकन्द की विजय ही स्थायी सिद्ध हुई। आयशा ने बाद में उसका साथ छोड़ दिया। शैवानी खां ने भी कुछ ही महिनों के अन्दर सर–ए–पुल नामक स्थान पर हुए युद्ध में बाबर को पराजित कर उसे समरकन्द से भागने पर मजबूर कर दिया। उसे पुनः कंटीली राहों पर भटकना पड़ा।

1.3.1 काबुल पर अधिकार

समरकन्द और फरगना से निराश होकर बाबर ने अब अपना ध्यान अफगानिस्तान की ओर दिया। भाग्य ने इस बार बाबर का साथ दिया। कुंदुज के गर्वनर खुसरोशाह की पराजय के पश्चात उसकी सेना के बहादुर सिपाही बाबर से आ मिले। फलतः बाबर का हौसला पुनः बढ़ गया। इस समय अफगानिस्तान की राजधानी काबुल पर मुकीम अरगों का अधिपत्य था। 1504 ई0 में बाबर ने काबुल पर आक्रमण कर उस पर आसानी से अधिकार कर लिया। काबुल की विजय से बाबर के राजनीतिक जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया। काबुल विजय के पश्चात बाबर के जीवन में स्थिरता आई तथा आगामी सैनिक अभियानों के लिए तैयारी करने का उसे मौका मिला। काबुल पर अधिकार कर बाबर वहां का शासक बन बैठा। उसने तैमूरी परम्परा के विरूद्ध पहली बार मिर्जा की जगह पादशाह (बादशाह) की उपाधि धारण की। इससें बाबर की शक्ति और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई।

1.3.2 समरकन्द पर विजय

काबुल का शासक बनकर बाबर ने राज्य विस्तार की योजना बनाई। 1507 ई0 में उसने कंधार पर विजय प्राप्त कर इसे अपने भाई को सौंप दिया, परन्तु, शीघ्र ही कंधार पर मुगल अधिकार समाप्त हो गया। बाबर का समस्त ध्यान समरकन्द पर लगा हुआ था। इसे प्राप्त कने के लिए वह व्याकुल था। इसके लिए उसने अपने सम्बन्धियों से सहायता मांगी जो उसे नहीं मिली। हेरात से निराश लौटकर भी वह हताश नहीं हुआ। शैवानी खां की मृत्यु के पश्चात ईरान के शाह इस्माईल शफवी की सहायता से उसने समरकन्द बुखारा एवं खोरासां पर विजय प्राप्त की। बाबर की अभिलाषा अब पूरी हुईं उसने सजधज के तैमूर की राजधानी में प्रवेश किया। बाबर अब एक बड़े राज्य का मालिक बन चुका था। उसका राज्य ताशकंद, हिसार, समरकन्द, बुखारा, फरगना, काबुल और गजनी तक विस्तुत हो गया। उसके राज्य की सीमा अब भारतीय सीमा के निकट पहुंच गई।

1.3.5 काबुल से वापसी

दुर्भाग्यवश इस बार भी बाबर की सफलताएँ छणिक सिद्ध हुई। ईरान के शाह के वापस लौटते ही उजबेगों ने पुनः समरकन्द एवं निकटवर्ती प्रदेशों (ट्रांस ऑक्सियाना) पर आक्रमण कर दिया। 1512 ई0 में उजबेग नेता उबेदुल खां ने बाबर को परास्त कर समरकन्द से खदेड़ दिया। इतना ही नहीं, धीरे–धीरे ट्रांन्स आक्सियाना का समस्त प्रदेश (बदख्शां को छोड़कर) उसके हाथों से निकल गया। बदख्शां का प्रबंध खान मिर्जा के हाथों सौंपकर बाबर को 1513–14 में काबुल वापस लौटना पड़ा। इस प्रकार उत्तर–पश्चिम में साम्राज्य–विस्तार की उसकी योजना विफल हो गई

1.3.6 काबुल से भारत की ओर

1514–25 तक बाबर काबुल का शासक बना रहा। बाबर के जीवन के ये वर्ष अत्यन्त ही महत्वपूर्ण थे। हिन्दुस्तान की भावी विजय की योजनाएं और तैयारियां इसी दौरान हुई। कठिनाइयों एवं विपरित परिस्थितियों से जूझते–जूझते बाबर की राजनीतिक सूझ–बूझ अत्यधिक बढ़ गई थी। उसने राज्य की व्यवस्था को ठीक करने और सैनिक संगठन का गुण सीख लिया। निरंतर युद्धों में लिप्त रहने के कारण वह मध्य एशिया की लड़ाई जातियों की युद्ध प्रणाली से पूरी तरह परिचित हो गया। उजबेगों से उसने 'तुलगुमा' ब्यूह प्रणाली, ईरानियों से बन्दूकों का प्रयोग, तुर्कों से घुड़सवारी तथा मंगोलों और अफगानों से ब्यूह रचना सीखी। सैनिक संचालन के इन गुणों से बाबर को भारत में आशासीत सफलता मिली। काबुल में ही बाबर को उस्ताद अली तथा मुस्तफा नामक तुर्क तोपचियों की सेवाएं प्राप्त हुई, जिन्होनें बाबर के तोपखाने को सेना का सबसे महत्वपूर्ण विभाग बना दिया। काबुल में रहकर बाबर भारत की राजनीतिक गतिविधियों पर भी निगाह रखे हुए था। यहीं पर उसे दौलत खां, आलम खां, और राणा सांगा का भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण मिला। उत्तर पश्चिम में असफल होकर बाबर ने दक्षिण–पूर्व की और बढ़ने का प्रयास किया और इसमें वह सफल भी हुआ। भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी।

1.4 भारत की राजनीतिक स्थिति

1526 में भारत की राजनीतिक अवस्था अत्यन्त दयनीय थी। दिल्ली सल्तनत अपनी अंतिम सांस ले रहा था पूरे भारत में अनेक छोटे–छोटे राज्यों का उदय हो चुका था। इनमें आपसी एकता एवं संगठन न होकर आपसी प्रतिस्पर्द्धा एवं वैमनस्य की भावना थी। ये सदैव एक दूसरे को पराजित एवं अपमानित करने का सपना देखा करते थे। किसी भी महत्वकांक्षी आक्रमणकारी के लिए ऐसी स्थिति काफी उपयुक्त थी। भारत की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का वर्णन प्रो0 ईश्वरी प्रसाद ने इस ढ़ंग से किया है। उन्हीं के शब्दों में 'सौलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत छोटे–छोटे राज्यों का एक संघ था। शक्तिशाली और दृढ़ संकल्प वाले आक्रमणकारी के लिए उसकी विजय एक अनायास शिकार थी'।
स्वंय बाबर ने भी भारत की तत्कालीन स्थिति (प्राकृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक) का वर्णन अपनी आत्मकथा तुजुक–ए–बाबरी (बाबरनामा) में किया है। उसके अनुसार, 'हिन्दुस्तान की राजधानी दिल्ली है। सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी के समय से लेकर फिरोज शाह के समय तक हिन्दुस्तान का अधिकतर भाग

दिल्ली के सम्राटों के अधिकार में रहा। उस समय जब मैंने देश विजय की पांच मुसलमान राजा तथा दो काफिर शासन कर रहे थे। यहाँ पहाड़ी तथा जंगली प्रदेशों में छोटे–छोटे तथा महत्वहीन अनेक राजा और राय थे। बाबर ने जिन पांच मुसलमान और दो काफिर राज्यों का उल्लेख किया है, वे थे दिल्ली, गुजरात, बहमनी, मालवा, बंगाल (मुसलमान राज्य) तथा विजयनगर और मेवाड़ (काफिर राज्य)।

1.5 भारत की सामाजिक स्थिति

यद्यपि बाबर समान्यतः भारत की सामाजिक स्थिति के विषय में कोई विशेष बात नहीं कहता है, यद्यपि अन्य स्रोतों से ज्ञात होता है कि हिन्दुस्तान में उस समय मुसलमान और हिन्दू समाज के दो प्रमुख वर्ग थे। लम्बे समय तक एक साथ रहने की वजह से दोनो ने एक दूसरे के खान–पान वेश भूषा एवं रिति–रिवाजों को बहुत कुछ अपना लिया था। सल्तनत के अन्तर्गत मुसलमान शासक वर्ग में थे किन्तु हिन्दुओं की सहायता भी प्रशासन में ली जाती थी। हिन्दुओं से जजिया लिया जाता था। सामान्यतः उन्हें प्रशासन में महत्वपूर्ण पद नहीं दिए जाते थे, उन पर कुछ धार्मिक प्रतिबन्ध भी थे तथापि हिन्दू–मुस्लिम विभेद की खाई बहुत गहरी नहीं थी। अनेक स्थानीय सुल्तानों ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति भी अपनाई। भक्ति–आन्दोलन ने भी आपसी भेद–भाव को मिटाने मे मदद किया। बोलचाल की सामान्य भाषा हिन्दी अथवा उर्दू बन गई थी। हिन्दू–मुसलमान दोनों ही वर्गों में तीन सामाजिक उपवर्ग थे – सामंत वर्ग, माध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग, समाज में अनेक कुप्रथाएं – बाल विवाह, सती–प्रथा, जौहर, मधपान, ध्रुतकीड़ा, वेश्यावृत्ति इत्यादि प्रचलित थी। स्त्रियों की स्थिति दयनीय थी। राज्य की तरफ से शिक्षा की कोई भी व्यवस्था नहीं की गई थी।

हिन्दू विद्यार्थी पाठशाला एवं मुस्लिम बच्चे मकतब में शिक्षा ग्रहण करते थे। शिक्षा आम होने के कारण इससे अभिजात वर्ग ही लाभाविन्त होते थे। सामाजिक भेद–भाव एवं छुआ–छूत जैसी बुराईयां समाज में मौजूद थीं। इस प्रकार, भारतीय समाज अनेक दुर्बलताओं से ग्रस्त था।

1.6 भारत की आर्थिक स्थिति

भारत की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए बाबर लिखता है कि हिन्दुस्तान एक विशाल देश है। यहां पर पर्याप्त मात्रा में सोना और चांदी है। यहां हर एक पेशे और व्यापार के अनगिनत व्यक्ति है। रोजगार एवं व्यापार में लोग पुश्तैनी आधार पर काम करते है। जहांगीर के समय के एक ग्रन्थ तारीख–ए–दाऊदी में भी बाबर के भारत आगमन के समय की आर्थिक अवस्था का उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार अलाउदीन खिलजी के शासन के अतिरिक्त अनाज कपड़ा एवं अन्य वस्तुएं सुल्तान इब्राहिम के समय मे जितनी सस्ती थी उतनी कभी भी नहीं हुई। एक बहलोली सिक्के मे दस मन अनाज, पांच सेर मक्खन (घी) तथा दस गज कपड़ा खरीदा जा सकता था। अत्यधिक वर्षा होने से उपज बहुत अधिक होती थी। अन्य विवरणों से भी भारत की आर्थिक सम्पन्नता की जानकारी मिलती है। भारतियों का मुख्य व्यवसाय कृषि उद्योग एवं व्यापार था। वस्त्र उद्योग सबसे प्रमुख उद्योग था। भारत का आंतरिक एवं विदेशी व्यापार काफी विकसित था। भारत का व्यापारिक सम्बन्ध चीन, अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत, भूटान, मध्य एशियाई देशों तथा यूरोप से भी था। भारत विदेशों को वस्त्र, अफीम, अनाज, नील, एवं गरम मसालों का निर्यात करता था, तथा घोड़ो का आयात मख्य रूप से करता था। भारत की आर्थिक सम्पन्नता जानकर ही बाबर ने भारत विजय की योजना बनाई। इस प्रकार, बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक, सामाजिक, एवं सैनिक व्यवस्था अत्यन्त दुर्बल थी, राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा एवं विद्वेष की भावना चरम सीमा पर पहुंच गई थी। राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम की भावना का सर्वथा अभाव था। भारतीय समाज एवं सैन्य व्यवस्था भी खोखली हो चुकी थी भारत बिल्कुल निःसहाय स्थिति में था। बाबर ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया।

1.7 बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण करने के कारण

भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक विषमता का लाभ बाबर ने उठाया। उसने अपने राज्य विस्तार के लिए भारत पर आक्रमण किया। उसने तीन महत्वपूर्ण युद्धों (पानीपत, खानवा, और घाघरा) में विजय

प्राप्त कर भारत में मुगल वंश की सत्ता स्थापित की। बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण करने के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे।

1.7.1 बाबर की महत्वकाक्षाएं

भारत पर बाबर के आक्रमण करने के एक प्रमुख कारण उसकी असीम महत्वकाक्षाएं थी। बाबर तैमूर के कार्यों से अत्यन्त ही प्रभावित हुआ था। उसने देखा था कि किस प्रकार तैमूर ने भारतीय धन और संसाधनों का सहारा लेकर अपने मध्य–एशियाई साम्राज्यों को सुदृढ़ किया था तथा राजधानी को कला–कौशल का केन्द्र बना दिया था। इतना ही नहीं पंजाब का एक भाग तो तैमूर एवं उसके वंशजो के अधीन रहा भी था। अतः अफगानिस्तान पर अधिकार करते ही वह पंजाब पर अधिकार करना अपना कानूनी अधिकार मानने लगा। बाबर के समक्ष एक अन्य कारण भी था जिसने उसे भारत पर आक्रमण करने को प्रेरित किया। वह देख चुका था उसके राज्य का विस्तार मध्य–एशिया में उत्तर पश्चिम में संभव नहीं था। इसलिए एक महत्वकांक्षी शासक होने की वजह से उसने दक्षिण पूर्व अर्थात भारत की तरफ पांव फैलाकर एक साम्राज्य की स्थापना करने का निश्चय किया।

1.7.2 धन प्राप्ति की कामना

बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण किए जाने का एक मुख्य कारण धन प्राप्त करना भी था। उसके अपने राज्य काबुल की आय तथा इसके आर्थिक साधन अत्यन्त ही सीमित थे। इनसे सेना एवं प्रशासन का खर्च जुटाना भी कठिन था। इसके विपरीत भारत अपनी धन–सम्पदा के लिए विख्यात था। भारत से पर्याप्त मात्रा में धन प्राप्त कर बाबर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता था। इसलिए, वह भारत की तरफ आकर्षित हुआ।

1.7.3 भारत में सुरक्षा

यद्यपि बाबर ने बदख्शां, काबुल और कंधार पर अधिकार कर लिया था ; तथापि उसकी स्थिति निरापद नही हुई थी। उसे सदैव उज़बेगों के आक्रमण का खतरा सताता रहता था। भारत (पंजाब) पर विजय प्राप्त करने से उसे उजबेगों के आक्रमण के अवसर पर बढ़िया शरण–स्थल पंजाब में मिल सकता था। इसके अतिरिक्त वह पंजाब को केन्द्र बनाकर उजबेगों के विरूद्ध अभियान भी चला सकता था।

1.7.4 बाबर को आक्रमण करने का निमंत्रण

1526 ई0 में बाबर के आक्रमण का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह था कि इब्राहिम लोदी से असंतुष्ट कुछ अफगान सरदार बाबर की सहायता से इब्राहिम की सत्ता समाप्त करने की योजना बना रहे थे। इसी योजना के तहत संभवतः आलम खां ने बाबर से मुलाकात कर सहायता की मांग की। 1524 ई0 में पंजाब के गवर्नर दौलत खां ने अपने पुत्र दिलावर खां को बराबर के पास भेजकर इब्राहिम पर आक्रमण करने का प्रस्ताव रखा। दौलत खां ने बराबर को सम्भावित आक्रमण के समय सहायता करने का वचन भी दिया। इसके पूर्व ही आलम खां ने भी बाबर से मुलाकात कर उसके सामने प्रस्ताव रखा था कि अगर आलम खां को दिल्ली की गद्दी मिल जाएगी तो वह बाबर को लाहौर और पश्चिमी पंजाब के इलाके सौंप देगा। इन घटनाओं ने बाबर के सामने भारतीय राजनीति की दुर्लबताओं को स्पष्ट कर दिया। अफगानों के आपसी वैमनस्य को भाँपकर उसने पंजाब की तरफ बढ़ने का निश्चय किया।

जिस समय पंजाब में उपुर्यक्त घटनाएँ घट रही थीं उसी समय राणा सांगा ने भी बाबर के पास भारत पर आक्रमण करने का सन्देश भेजा। बाबरनामा में बाबर इसे स्वीकार करता है। राणा सांगा भी अफगान की शक्ति को समाप्त कर हिन्दू राज्य का स्वप्न संजो रहा था। सांगा समझता था कि अन्य मध्य एशियाई लुटेरों की भांति बाबर भी भारत से धन लूटकर वापस चला जाएगा और उसके पश्चात् वह स्वयं दिल्ली तक पहुंचेगा तब तक वह भी आगरा के निकट आ जाएगा। राणा सांगा के निमंत्रण से निश्चय ही बाबर का हौसला बढ़ा होगा और उसने भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया होगा।

1.7.5 बाबर को अमीरों से मिली प्रेरणा

यह भी कहा जाता है कि बाबर को भारत पर आक्रमण करने की प्रेरणा उसके एक अमीर से मिली थी। बाबर स्वयं अपनी आत्मकथा, बाबरनामा में उल्लेख करता है। उसने कहा था ''इसलिए आगे बढ़िये और संसार के सर्वश्रेष्ठ देश (भारत) पर अधिकार कर लीजिए। सिन्धु के उस पार एक साम्राज्य की स्थापना कीजिये जिसके लिए आपके पूर्वज मार्ग दिखा गये है। जाइए और हिन्दुस्तान के मध्य में अपना दरबार लगाइए और तातारी की बर्फ और तुषार को छोड़कर हिन्दुस्तान के सुखों का आनन्द लुटिए। हर वस्तु आपको दक्षिण की ओर आमंत्रित कर रही है। ईश्वर आपको काबुल तक लाया है और हिन्दुस्तान के मार्ग पर खड़ा कर दिया है। ईश्वर और मुहम्मद साहब की आज्ञा है कि आप भारतीयों की मूर्ति पूजा का नाश करें''। बाबर पर निश्चय ही इसका गहरा प्रभाव पड़ा होगा। भारत की आर्थिक सम्पन्नता देखकर बाबर प्रारम्भ से ही भारत विजय के लिए लालयित था परन्तु उसे कभी इसका उचित अवसर नही मिल सका था मौका मिलते ही बाबर ने भारत पर आक्रमण कर दिया।

1.8 भारत पर बाबर के आक्रमण

पानीपत की प्रथम लड़ाई से पूर्व बाबर ने भारत पर पाँच बार आक्रमण कर चुका था। शायद ये आक्रमण शत्रु की स्थिति और शक्ति को समझने के उद्‌देश्य से किये गये थे। 1519 ई0 से प्रारम्भ में उसने भारत में प्रथम अभियान किया। यह युसुफजाई कबीला के विरूद्ध किया गया था। उसने युसुफजाइयों को निमंत्रण भेजकर बाजौर के दुर्ग पर अधिकार किया। बाजौर के पश्चात् उसने झेलम नदी के किनारे स्थित भीरा पर भी अधिकार कर लिया। भीरा से ही उसने अपने दूत मुल्ला मुर्शीद के द्वारा दौलत खां लोदी और इब्राहीम लोदी के पास संदेश भेजवाया कि जिन स्थानों पर बाबर के पूर्वजों का अधिकार था उन्हें वापस लौटा दिया जाए। दौलत खां ने इस दूत को दिल्ली जाने नहीं दिया बल्कि लाहौर में ही रोक लिया। बाबर की भीरा विजय अस्थायी सिद्ध हुई। उसके काबुल वापस जाते ही बाबर के प्रतिनिधि हिन्दूबेग को भीरा से भगा दिया गया। सितम्बर 1519 ई0 में बाबर ने दूसरी बार भारत का रूख किया। वह खैबर मार्ग से भारत की तरफ बढ़ा। वह युसुफजाइयों का दमन करना तथा पेशावर को अपनी सैनिक शक्ति का केन्द्र बनाना चाहता था, लेकिन बदख्शां में उपद्रव की सूचना पाकर उसे वापस लौटना पड़ा।

बाबर का तीसरा आक्रमण 1520 ई0 में हुआ। इस बार पुनः बाजौर तथा भीरा पर विजय प्राप्त की। सियालकोट पर भी उसका अधिपत्य हो गया। इन विजयों से भारत का द्वार मुगलों के लिए खुल गया। बाबर आगे बढ़ने की योजना बना ही रहा था कि उसे कंधार में शाहबेग अरगों के उपद्रव की सूचना मिली। फलतः बाबर को वापस लौटना पड़ा। इसी समय बाबर को पंजाब के गवर्नर दौलत खां लोदी का निमंत्रण, भारत पर आक्रमण करने के लिए मिला। इसे स्वीकार कर बाबर पंजाब की तरफ बढ़ा। उसने लाहौर, दीपालपुर एवं जालंधर पर अधिकार कर लिया। लाहौर में ही बाबर ने पहली बार इब्राहिम लोदी की सेना को परास्त किया। बाबर ने युद्ध के पश्चात् आलम खां को दीपालपुर दिया तथा दौलत खां लोदी को जालंधर , सुलतानपुर तथा कुछ अन्य क्षेत्र दिया जिससे वह असंतुष्ट हो उठा। उसने बाबर के विरूद्ध षड्‌यंत्र किया जो विफल हो गया। बाबर के जाने के बाद पुनः दौलत खां लोदी अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास करने लगा। उसने आलम खां को भी दीपालपुर से निकाल दिया। अब आलम खां बाबर की शरण में पहुंचा। नवम्बर 1525 ई0 में बाबर दौलत खां लोदी के विरूद्ध आगे बढ़ा, मार्ग में हुमायूँ और ख्वाजा कलां भी अपनी सेनाओं के साथ बाबर से आ मिले। बाबर की सैनिक शक्ति को देखकर दौलत खां लोदी को आत्मसमर्पण करना पड़ा। उसे गिरफ्तार कर भीरा भेजा गया, परन्तु मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो गई। उसका पुत्र गाजी खां, इब्राहीम की शरण में चला गया परन्तु दिलावर खां बाबर के साथ ही बना रहा। बाबर ने समस्त पंजाब में आसानी से अधिकार कर लिया। अब दिल्ली का रास्ता उसके सामने साफ था।

1.8.1 पानीपत के प्रथम युद्ध का स्वरूप

बाबर द्वारा पंजाब पर अधिकार किया जाने तक इब्राहीम लोदी ने बाबर को आगे बढ़ने से रोकने का कोई विशेष प्रयास नही किया था, परन्तु जब बाबर पंजाब से आगे दिल्ली की ओर बढ़ा तो इब्राहिम ने स्वयं ही उसका मुकाबला करने का निश्चय किया। वह एक विशाल सेना के साथ पानीपत के मैदान की तरफ बढ़ा। बाबर भी तेजी से लाहौर से पानीपत की तरफ चला। मार्ग में उसने अनेक लोदी चौकियों पर अधिकार कर लिया। 12 अप्रैल 1526 को बाबर पानीपत पहुंचा जहां अफगान सुल्तान एक बड़ी सेना के साथ उसकी प्रतिक्षा कर रहा था।

पानीपत के युद्ध के अवसर पर दोनों पक्षों की सैन्य संख्या क्या थी यह निश्चित तौर पर नही कहा जा सकता है। बाबर अपने संस्मरण में सैनिकों की संख्या के विषय में नही बताता है। कहा जाता है कि इब्राहिम की सेना में एक लाख सैनिक एवं एक हजार हाथी थे। इस संख्या के विषय में संदेह व्यक्त किया गया है। वस्तुतः इब्राहिम की सेना में वास्तविक सैनिक के अतिरिक्त बड़ी संख्या में सेवक भी थे जिनका युद्ध से कोई वास्ता नही था।

सर जादूनाथ सरकार के अनुसार इब्राहिम की सेना में करीब 20,000 घुड़सवार थे। इसी संख्या के लगभग सरदारों द्वारा भेजे गये घुड़सवार सैनिक एवं करीब 30,000 पैदल सैनिक थे। हाथियों की एक बड़ी संख्या भी उसके पास थी। इसके विपरीत बाबर की सेना अत्यन्त ही छोटी थी। अबुल फजल के अनुसार बाबर की सेना में 12000 घुड़सवार थे। रशब्रुक विलियम यह संख्या 8000 बताते हैं। घुड़सवारों के अतिरिक्त बाबर के पास एक तोपखाना भी था। इसके अतिरिक्त पंजाब विजय के पश्चात् उसकी सेना में भारतीय मित्रों के सैनिक अफगान सैनिक एवं किराये के तुर्की सैनिक शामिल हो चुके थे। अतः बाबर की सेना भी कम नहीं थी लेकिन यह निश्चित रूप से इब्राहिम की सेना से छोटी मगर ज्यादा सशक्त थी।

पानीपत पहुंचकर बाबर स्थिति का जायजा लेता रहा। उसने खाइयां खोदकर और पेड़ो की बार खड़ी कर अपनी सुरक्षा की व्यवस्था की। खाइयों के सामने गाड़िया खड़ी कर उसने सुरक्षात्मक दीवार सी बना डाली और अधिक सुरक्षा और तोपचियों की सुविधा के लिए हर दो गाड़ियों के बीच लकड़ी की तिपाइयों पर पाँच या छः खालें खड़ी कर दी गई जिससे कि गोलंदाज सुगमतापूर्व खड़ा होकर गोला दाग सके। हर दो गाड़ियों के पहियों को मजबूती से बांध दिया गया तथा गाड़ियों के मध्य आने–जाने के लिए मार्ग छोड़ दिया गया, जिससे आवश्यकतानुसार बाबर के घुड़सवार निकल सकें। इस प्रकार बाबर ने अपनी व्यूह–रचना 'रूमी' अथवा 'ऑटोमन' पद्धति द्वारा किया। बाबर ने अपनी समस्त सेना को दाहिने, मध्य, बायां, अग्रिम और सुरक्षित पंक्तियों में विभाजित कर रखा था। इसके अतिरिक्त दो विशाल पार्श्व दल या तुलुगमा की भी व्यवस्था की गई। बाबर की सहायता के लिए हुमायूँ, बाबर के योग्य सरदार और दो कुशल तोपची–उस्ताद अली और मुस्तफा भी मैदान में थे। बाबर की तुलना में इब्राहिम की सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ नही थी।

21 अप्रैल 1526 को प्रातः ही दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। अफगान तेजी से आगे बढ़े परन्तु बाबर की सुरक्षा पंक्ति को देखकर उनमें घबराहट फैल गई। बाबर ने मौके का लाभ उठाकर इब्राहिम पर चारों ओर से आक्रमण कर उसे घेर लिया। बाबर के तीरंदाजों और तोपचियों, उसकी तुलुगमा पद्धति ने इब्राहिम की सेना के पाँव उखाड़ दिए। इब्राहिम वीरतापूर्वक युद्ध में बाबर का सामना करता रहा परन्तु युद्धक्षेत्र में ही पन्द्रह हजार सैनिकों के साथ मारा गया। इब्राहिम के साथ मारे जाने वालों में ग्वालियर का राजा विक्रम भी था। बाबर अपने संस्मरण में लिखता है कि आगरा पहुंचकर उसे ज्ञात हुआ कि पानीपत के मैदान में 40–50 हजार व्यक्ति मारे गये थे। निश्चित ही बाबर की यह उक्ति अतिश्योक्तिपूर्ण है तथापि इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कुछ घंटों के युद्ध ने ही भारत का भाग्य परिवर्तित कर दिया। इस महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख करते हुए बाबर कहता है, ''सर्वशक्तिमान परमात्मा की अपार अनुकंपा से यह कठिन कार्य मेरे लिए सुगम बन गया और वह विशाल सेना आधे दिन में ही मिट्टी में मिल गई''।

1.8.2 पानीपत के युद्ध का परिणाम

पानीपत के युद्ध के परिणाम भारतीय इतिहास और बाबर के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवं निर्णायक सिद्ध हुए। पानीपत के युद्ध ने भारतीय इतिहास के एक अध्याय को समाप्त कर दूसरे की शुरूआत कर दी। इस युद्ध ने विघटनशील तुर्क–अफगान अमीरों को अपने आघात से कुचल दिया तथा भारतीय राजनीति में एक नए खून–मुगल का प्रवेश कराया। बाबर की विजय ने लोदी वंश की सत्ता समाप्त कर दी। अफगान कुछ समय के लिए भारत की सर्वोच्चसत्ता से वंचित कर दिए गये। अब लोदी वंश की जगह एक ऐसे वंश मुगल का शासन प्रारम्भ हुआ। जिसने अपना विदेश दृष्टिकोण पूरी तरह से त्याग कर हर तरह से अपना भारतीकरण किया तथा लगभग पन्द्रह वर्षों से मध्यांतर के बाद लगभग तीन शताब्दियों तक भारत का सम्राट बने रहने का गौरव प्राप्त किया। इस वंश ने अनेक योग्य शासकों को दिया जिन्होंने भारत की सांस्कृतिक, कलात्मक एवं भौतिक प्रगति में अमूल्य योगदान दिया।

पानीपत के युद्ध के पश्चात् बाबर के अधीन पंजाब से आगरा तक का क्षेत्र आ गया। लोदियों (अफगानों) की कमर टूट चुकी थी। इतिहासकार लेनपूल के शब्दों में, ''अफगानों के लिए पानीपत का युद्ध उनका दुर्भाग्य था। इसने उनके राज्य और शक्ति का अंत कर दिया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप भारत में बाबर की विजय का दूसरा चरण पूरा हुआ। बाबर के घुमक्कड़ी के दिन समाप्त हो गए। उसकी विजयों में भाग बांटने वाला कोई नही था। आलम खां और दौलत खां की शक्ति समाप्त हो चुकी थी। राजा सांगा मेवाड़ में ही व्यस्त था। अतः निर्विरोध बाबर, लोदी राज्य का मालिक बन गया। 27 अप्रैल 1526 को दिल्ली में 'खुतबा' में उसका नाम पढ़ा गया हुमायूं ने आगरा पर अधिकार कर बाबर को वहां का बादशाह घोषित किया। अब लोदियों के सम्पूर्ण राज्य पर उसकी सत्ता स्थापित हो चुकी थी। आगरा में एकत्र लोदी खजाना भी मुगलों को मिल गया इससे बाबर की आर्थिक कठिनाई दूर हो गई।

सैनिक दृष्टिकोण से भी पानीपत के युद्ध के परिणाम महत्वपूर्ण निकले। इस युद्ध ने भारतीय सैन्य दुर्बलता को उजागर कर दिया। इब्राहिम की विशाल सेना को बाबर ने अपने कुशल सैन्य संचालन से परास्त कर दिया। इस युद्ध में भारत में पहली बार तोपखाने एवं तुलुगमा पद्धति का प्रयोग बाबर ने सफलतापूर्वक किया। इस नवीन युद्ध पद्धति ने भारत में युद्ध स्वरूप ही बदल दिया। इसके साथ–साथ बाबर की विजय से उसकी सैनिक क्षमता की धाक भारतीय राज्यों पर जम गई। वे उससे भयभीत हो गये, परन्तु सभी राज्यों की ऐसी स्थिति नही थी। अतः शीघ्र ही उत्तर भारत पर अधिपत्य स्थापित करने के लिए एक नये संघर्ष का आरम्भ हुआ।

1.8.3 खनुआ की युद्ध (16 मार्च 1527)

पानीपत के पश्चात् बाबर द्वारा भारत में लड़े गये युद्धों में सबसे महत्वपूर्ण खनुआ का युद्ध था जहां पानीपत के युद्ध में विजय ने बाबर को दिल्ली और आगरा का शासक बना दिया, वहीं खनुआ के युद्ध ने बाबर के प्रबलतम शत्रु राणा सांगा का अंत कर बाबर की विजयों को स्थायित्व प्रदान किया। राणा–सांगा बाबर द्वारा कालपी, बयाना, आगरा, और धौलपुर पर अधिकार किए जाने से क्रुद्ध था और इसे अपने राज्य पर बाबर का अतिक्रमण मानता था। दूसरी तरफ पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम के विरूद्ध राणा सांगा ने बाबर की सहायता नही की जिसके लिए बाबर उसे जिम्मेदार एवं विश्वासघाती मानता था। अतः दोनों पक्षों में युद्ध अवश्यंभावी बन गया।

राणा सांगा ने बाबर पर आक्रमण करने के पूर्व अपनी स्थिति सुदृढ़ की। उसकी सहायता के लिए हसन खां मेवाती, महमूद लोदी तथा उनके राजपूत सरदार अपनी–अपनी सेना के साथ आ पहुंचे। इससे राणा सांगा का हौसला बढ़ गया वह एक विशाल सेना के साथ बयाना एवं आगरा पर अधिकार करने को बढ़ा। बयाना के शासक ने बाबर से सहायता की याचना की। बाबर ने ख्वाजा मेंहदी को

राजपूतों का सामना करने को भेजा, लेकिन सांगा ने उसे परास्त कर बयाना पर अधिकार कर लिया। सीकरी के पास भी आरम्भिक मुठभेड़ में मुगल सेना को पराजित होकर पीछे हटना पड़ा। इन आरम्भिक विफलताओं से मुगलों में भय व्याप्त हो गया है। मुगल सैनिक आतंरिक हो गये, उनका मनोबल गिर गया। राजपूत की विजय से प्रभावित होकर कुछ अफगान सरदारों ने भी बाबर का साथ छोड़ दिया। यह एक कठिन परिस्थिति थी लेकिन बाबर ने धैर्यपूर्वक परिस्थिति का मुकाबला किया। अपनी सेना के मनोबल को बढ़ाने के लिए उसने 'जिहाद' की घोषणा कर दी। उसने शराब नही पीने की कसम खाई तथा शराब की सभी बरतनों को तोड़ दिया। उसने मुसलमानों पर से तमगा (एक प्रकार का सीमा कर) भी उठा लिया। उसने अपने–अपने सैनिकों से निष्ठापूर्वक युद्ध करने एवं प्रतिष्ठा की सुरक्षा करने का वचन लिया। सेना को यह भी आश्वासन दिया गया कि युद्ध के पश्चात जो सैनिक घर जाना चाहेंगे उन्हें जाने दिया जाएगा। इससे बाबर के सैनिकों में उत्साह जगा और वे युद्ध के लिए तत्पर हो गये।

बाबर राणा सांगा का मुकाबला करने के लिए फतेहपुर सीकरी के निकट खनुआ नामक स्थान पर पहुंचा। राणा सांगा वहीं उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। बाबर ने जिस व्यूह रचना का प्रयोग पानीपत में किया था वही यहां भी किया। बाबर के अनुसार राणा सांगा की सेना में 2 लाख से अधिक सैनिक थे परन्तु यह संख्या अतिश्योक्ति पूर्ण है। परन्तु यह निश्चित है कि बाबर की तुलना में राजपूतों की सेना की संख्या अधिक थी। 16 मार्च 1527 को खनुआ के मैदान में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। राजपूत वीरता से लड़े परन्तु बाबर के तोपखाना और उसकी 'तुलुगमा' युद्ध पद्धति ने राजपूतों के पाँव उखाड़ दिए। अनेक राजपूत योद्धा युद्ध क्षेत्र में मारे गये। राणा सांगा गम्भीर रूप से घायल अवस्था में रणक्षेत्र से निकल भागा ताकि वह पुनः बाबर से युद्ध कर सके परन्तु उसके सामन्तों ने बाद में विष देकर उसकी हत्या कर दी। बाबर की यह अद्भुत एवं महान विजय थी। युद्ध के इस अपार सफलता के पश्चात् उसने गाजी की उपाधि धारण की। पानीपत में एक अयोग्य और दुर्बल अफगान सुल्तान की पराजय हुई थी परन्तु खनुआ में वीर राणा सांगा के साथ–साथ राजपूत अफगानों का संयुक्त 'राष्ट्रीय मोर्चा' भी समाप्त हो गया। इस पराजय से राजपूत शक्ति को गहरा धक्का लगा।

1.8.4 बाबर और मेदिनी राय

यद्यपि खनुआ के युद्ध में राजपूत शक्ति को गहरी क्षति पहुंची तथापि इससे राजपूत शक्ति का सर्वनाश नही हो गया। राणा सांगा की तरह चन्देरी का शासक भी एक वीर राजपूत शासक था। राजपूताना पर अधिकार करने से पूर्व बाबर का इसके साथ संघर्ष होना अनिवार्य था क्योंकि राणा संग्राम सिंह के साथ ही मेदिनी राय भी राजपूतों को संगठित करने का प्रयास कर रहा था। अतः खनुआ के पश्चात बाबर ने विद्रोहियों के दमन का निश्चय किया। अलवर, चंदवार, रापड़ी, इटावा पर मुगलों ने पुनः अधिकार कर लिया। अब बाबर चंदेरी की ओर बढ़ा। उसने मेदिनी राय को अपने पक्ष में मिलाने एवं चन्देरी के बदले शम्शाबाद देने का प्रस्ताव रखा परन्तु मेदिनी राय ने बाबर के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। युद्ध समाप्त होकर बाबर ने चंदेरी के दुर्ग को घेर लिया। राजपूत दुर्ग की रक्षा नही कर सके उन्हें पराजित होना पड़ा। जनवरी 1528 ई0 को बाबर का अधिकार चन्देरी पर हो गया।

1.8.5 अफगानों का दमन एवं घाघरा का युद्ध

राजपूतों पर अपना प्रभाव स्थापित करने के पश्चात बाबर ने पुनः अफगान विद्रोहियों की और ध्यान दिया। जिस समय बाबर चन्देरी अभियान में व्यस्त था। अफगानों ने अवध में विद्रोह कर दिया। शम्साबाद और कन्नौज पर अधिकार कर वे बिहार के अफगान शासक की सहायता से आगरा विजय की योजना बना रहे थे। अफगान विद्रोहियों को बंगाल का सुल्तान नुसरत शाह भी सहायता पहुँचा रहा था। अतः चंदेरी विजय के पश्चात उसने अफगानों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

चन्देरी से बाबर अवध की तफर बढ़ा। उसके आगमान की खबर सुनकर अफगान चेता बिब्बन बंगाल भाग गया। बाबर ने लखनऊ पर अधिकार कर लिया। इधर बिहार में अफगान महमूद लोदी के नेतृत्व में अपने आपको संगठित कर रहे थे। बंगाल के सुल्तान से भी उन्हें सहायता मिल रही थी।

अफगानो ने बनारस से आगे बढ़ते हुए चुनार का दुर्ग घेर लिया। इन घटनाओं की सूचना पाकर बाबर तेजी से बिहार की और बढ़ा। उसके आगमन की सूचना पाकर अफगान भयभीत होकर चुनार का घेरा उठाकर भाग खड़े हुए। बाबर ने महमूद लोदी को शरण नहीं देने का निर्देश दिया, परन्तु नुसरत शाह द्वारा प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। फलतः 6 मई 1529 को घाघरा के निकट बाबर और अफगानों की मुठभेड़ हुई। अफगान बुरी तरह पराजित हुए। महमूद लोदी ने भागकर बंगाल में शरण ली।

घाघरा का युद्ध भारत में बाबर का अंतिम युद्ध था। भारत में लड़े गये युद्धों के परिणाम स्वरूप बाबर एक बड़े राज्य का स्वामी बन गया। उसका राज्य सिन्ध से बिहार तथा हिमालय से ग्वालियर और चन्देरी तक विस्तृत था। उसने भारत में मुगलों की सत्ता स्थापित कर दी थी। भारत में बाबर का अधिकांश समय युद्धों में ही व्यतीत हुआ। अतः वह प्रशासनिक व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सका। अंतिम समय में वह काबुल जाना चाहता था, वह लाहौर तक गया भी, परन्तु हुमायूँ की बिमारी की वजह से उसे आगरा वापस आना पड़ा स्वंय बाबर का स्वास्थ्य गिर रहा था। महल में भी षड़यन्त्र होने लगे थे। ऐसी ही परिस्थिति में 23 दिसम्बर 1530 को बाबर ने हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। 26 दिसम्बर 1530 को आगरा में बाबर की मृत्यु हुई।

1.9 हुमायूँ का प्रारम्भिक जीवन (1508–30)

बाबर की मृत्यु के पश्चात 30 दिसम्बर 1530 को हुमायूँ का आगरा में राज्यभिषेक हुआ। यद्यपि, अपनी मृत्यु के पूर्व ही बाबर ने हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। तथापि बाबर की मृत्यु के चौथे दिन ही वह गद्दी पर बैठ सका। इस विलम्ब का कारण सम्भवतः बाबर के वजीर निजामुद्दीन अली अहमद खलीफा का षड़यंत्र था। वह बाबर के बहनोई मेंहदी ख्वाजा को गद्दी दिलवाना चाहता था, परन्तु षड़यन्त्र विफल हो गया और हुमायूँ आगरा की गद्दी पर बैठा। हुमायूँ के जीवन एवं कार्यकलापों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है, प्रारम्भिक जीवन (1508–30) शेरशाह से संघर्ष (1530–56) निर्वासित जीवन (1540–55) एवं सत्ता की पुर्नस्थापना (1555–56)।

हुमायूँ का पूरा नाम नासिरूद्दीन मुहम्मद हुमायूँ था। उसका जन्म 6 मार्च, 1508 को काबुल में हुआ था। उसकी माता माहिम बेगम थी। बाबर हुमायूँ से अगध प्रेम करता था और उसे अपने पुत्रों में सबसे अधिक योग्य समझता था। गुलबदन बेगम ने हुमायूँ में लिखा है कि बाबर ने अपने राज्य का निर्माण हुमायूँ के लिए ही किया था। अपने प्रिय पुत्र की शिक्षा–दिक्षा का बाबर ने उचित प्रबन्ध किया था। उसे अरबी, फारसी एवं तुर्की भाषा की शिक्षा के अतिरिक्त सैनिक शिक्षा भी दी गई। वह तीरदांजी एवं घुड़सवारी में माहिर था। उसे युद्ध के मोरचे तथा व्यूह सरंचना एवं इसे तोड़ने की भी शिक्षा दी गई। 1526 ई0 के पानीपत के युद्ध में हुमायूँ ने बाबर की जीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। आगरा विजय में भी मुगल सेना ने हुमायूँ के नेतृत्व में कार्य किया था। इससे हुमायूँ की सैनिक क्षमता का आकलन किया जा सकता है।

1.9.1 हूमायूँ और शेर खां– (1530–40)

हुमायूँ का प्रबलतम शत्रु अफगान सरदार शेर खां था। वह एक योग्य एवं महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। अफगानों की दुर्बल स्थिति देखकर उसने अपनी शक्ति बढ़ाना आरम्भ कर दी। इसके लिए वह युद्ध एवं कूटनीति दोनों का सहारा लिया। बिहार के अल्पायु शासक जलाल खां के संरक्षक के रूप में वह बिहार का वास्तविक शासक बन बैठा। शेर खां की बढ़ती शक्ति से भयभीत होकर एवं अफगानों के दम के उद्देश्य से हुमायूँ ने गद्दी पर बैठने के पश्चात शेर खां पर आक्रमण कर चुनार का घेरा डाल दिया। हुमायूँ को बहकाकर शेर खां ने उसकी अधीनता को स्वीकार करने का ढ़ोंग किया। फलतः हुमायूँ चुनार उसी को सुपुर्द कर वापस लौट गया। 1533–36 के मध्य जब हुमायूँ आंतरिक विद्रोहो को दबाने मालवा एवं गुजरात की विजय में व्यस्त था, तब शेर खां ने अपनी शक्ति बढ़ा ली। उसने बिहार

की प्रशासनिक व्यवस्था सुदृढ़ कर ली तथा एक विशाल और मजबूत सेना इकट्ठी की उसकी शक्ति से प्रभावित हो कर अफगान उसे ही अपना नेता मानने लगे थे। शेर खां ने हजरत–ए–आला की भी उपाधी धारण की। यद्यपि उसने अभी तक मुगलों के विरूद्ध खुला विद्रोह नहीं किया था, तथापि अंदर ही अंदर वह इसकी तैयारी कर रहा था। वह गुप्त रूप से बहादुर शाह की सहायता भी कर रहा था। उसका पुत्र कुतुब खां भी अपनी सैनिक टुकड़ी के साथ आगरा से भागकर अपने पिता के पास पहुँच चुका था। शेर खां ने बंगाल पर चढ़ाई कर तेलियागढ़ी पर अधिकार कर लिया। बंगाल के नए सुल्तान महमूद शाह ने शेर खां को धन देकर अपनी रक्षा की।

1.9.1.1 चुनार पर आक्रमण

जुलाई 1537 में हुमायूँ ने शेर खां के विरूद्ध अपना अभियान आरम्भ किया। मार्ग में उसने चुनार के दुर्ग का घेरा डाला। यह दुर्ग शेर खां के अधीन था। चुनार का सामरिक महत्व बहुत अधिक था। यहां शेर खां का पुत्र कुतुब खां दुर्ग की रक्षा के लिए तैनात था। मुगल सेना के आगमन की खबर प्राप्त कर हुमायूँ को धोखा देने के लिए उसने अपनी सेना की एक टुकड़ी पहाड़ियों पर नियुक्त कर दी। इससे हुमायूँ धोखे में पड़ गया। वस्तुतः शेर खां

पहले ही चुनार में रसद एवं सैनिकों के साजो सामान हटा चुका था। हुमायूँ ने लगभग छः महिनों तक दुर्ग का घेरा डाले रखा। 1538 में रूमी खां के चालाकी से दुर्ग पर अधिकार कर लिया परन्तु इससे हुमायूँ को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। चुनार पर अधिकार कर वह बनारस गया और उस पर अधिकार कर बंगाल विजय की योजना बनाने लगा।

1.9.1.2 बंगाल पर अधिकार

जिस समय हुमायूँ चुनार का घेरा डाले हुआ था। उसी समय शेर खां रोहतास गढ़ के शक्तिशाली दुर्ग पर अधिकार कर बंगाल की राजधानी गौड़ की तरफ बढ़ रहा था। गौड़ पहुँचकर शेर खां ने अपना अधीपत्य स्थापित किया। गौड़ में उसे अथाह सम्पत्ति हाथ लगी। बंगाल का शासक महमूद शाह भागकर हुमायूँ के शरण में चला गया। अब शेर खां हुमायूँ से संधि की बातों में फसाकर अपनी शक्ति को सुदृढ़ करता रहा।

अगस्त 1538 में हुमायूँ ने बंगाल की ओर कूच किया और वह निर्विरोध बंगाल पर अधिकार कर उसने वहां प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की। हुमायूँ की बंगाल विजय निरूद्देश्य थी। इससे उसे कोई लाभ नहीं हुआ, बल्कि बंगाल की विजय से ही उसके पतन की प्रक्रिया आरम्भ हुई। बंगाल में आवश्यकता से अधिक समय तक रूके रहने के परिणाम हुमायूँ के लिए घातक सिद्ध हुए। हुमायूँ को बंगाल में आराम करते देखकर शेर खां ने क्रमशः चुनार , बनारस, जौनपुर, कन्नौज पटना इत्यादि पर अधिकार कर लिया। वह अब कन्नौज से बहराइस एवं मुंगेर से संभल तक के क्षेत्र का स्वामी बन गया। इसी समय हुमायूँ का भाई हिन्दल ने आगरा पहुँचकर स्वंय को शासक घोषित कर दिया तथा कामरान भी काबुल छोड़कर दिल्ली आ धमका। अब हुमायूँ ने शीघ्र ही आगरा लौटने का निश्चय किया।

1.9.1.3 चौसा का युद्धा (1539)

हुमायूँ के बंगाल से लौटने की सूचना पाकर शेर खां ने मार्ग में ही हुमायूँ को घेरने का निश्चय किया। हुमायूँ ने वापसी में अनेक गलतियाँ की। सबसे पहले उसने अपनी सेना को दो भागो में बाट दिया। सेना की एक टुकड़ी दिलावर खां के अधीन मुंगेर पर आक्रमण करने के लिए भेजी गई थी। सेना की

दूसरी टुकड़ी के साथ हुमायूँ स्वंय आगे बढ़ा। कर्मनासा नदी के किनारे चौसा नामक स्थान पर उसे शेर खां की उपस्थिति का पता चला उसने तत्काल शेर खां पर आक्रमण नहीं किया और तीन महिनों तक गंगा नदी के किनारे समय बरबाद करता रहा। वर्षा आरम्भ होते ही शेर खा ने आक्रमण की योजना बनाई। हुमायूँ का शिविर गंगा और कर्मनासा नदी के बीच एक बीची जगह पर था अतः बरसात का पानी इसमें भर गया। मुगलों का तोपखाना नकाम हो गया तथा सेना में अव्यवस्था व्याप्त हो गई। इसका लाभ उठाकर 26 जून 1539 की रात्रि में शेर खां ने मुगल छावनी पर अचानक आक्रमण कर दिया। मुगल खेमें मे खलबली मच गई। सैनिक प्राण बचाने के लिए गंगा में कूदकर भाग खड़े हुए। हुमायूँ स्वंय एक भिश्ती की सहायता से जान बचाकर गंगा पार कर सका। उसका परिवार भी खेमें में ही रहा गया। उसकी सेना नष्ट हो चुकी थी। अफगानों की शक्ति एवं महत्वकाक्षांए पुनः बढ़ गई। अब वह मुगलों को भगाकर आगरा पर अधिकार करने की योजनाएं बनाने लगे। शेर खां ने इस विजय के बाद शेरशाह की उपाधि धारण कर ली और पूर्ण रूप से स्वतंत्र शासक बन बैठा।

1.9.1.4 कन्नौज का युद्ध (1540)

हताश और परेशान हुमायूँ आगरा पहुंचकर शेरशाह से अंतिम लड़ाई के लिए तैयारी शुरू कर दी। उसने अपने विद्रोही भाई कामरान और हिन्दल को क्षमा कर दिया परन्तु इन भाइयों ने विपत्ति में भी उसकी सहायता नहीं की। हुमायूँ ने स्वंय ही जल्दी बाजी में सेना इकट्ठी की और अंतिम संघर्ष के लिए कन्नौज की और बढ़ गया। अप्रैल 1540 ई0 को हुमायूँ

कन्नौज पहुंच गया जहां शेरशाह पहले से ही मौजूद था। हुमायूँ ने यहां पुनः पहले वाली भूल दुहराई। उसने तत्काल शेरशाह पर आक्रमण नहीं किया, बल्कि उसके साथ वार्ता में संलग्न रहा। भीषण वर्षा के कारण मुगल शिविर में पानी भर गया। शेरशाह ने इस स्थिति का लाभ उठाकर 17 मई 1540 को हुमायूँ पर अचानक आक्रमण कर दिया। यद्यपि हुमायूँ ने वीरता से लड़ा परन्तु शेरशाह के हाथों पराजित होना पड़ा। युद्ध में परास्त होकर हुमायूँ आगरा पहुंचा। शेरशाह ने उसका पीछा जारी रखा। अफगानों की आगमन की खबर पाकर आगरा से लाहौर गया परन्तु वहां भी कामरान ने कोई सहायता नहीं की। वह स्वंय शेरशाह से गुप्त वार्ता कर रहा था। उसने उसके कश्मीर और बदख्शां जाने के मार्गों में भी रोड़े अटकाए। हुमायूँ ने 1543 ई0 तक भारत में ही शरण लेकर पुनः सत्ता प्राप्त करने का प्रयास किया, परन्तु विफल होकर, ईरान चला गया। भारत में मुगल सत्ता, कश्मीर के अतिरिक्त सवतः समाप्त हो गई।

1.9.2 हुमायूँ का निर्वासन जीवन

फरवरी 1544 ई0 को ईरान के शाह तहमस्प के सहायता की स्वीकृति प्राप्त कर ईरान पहुंचा। रास्ते मे उसके स्वागत की भरपूर व्यवस्था की लेकिन ईरान पहुँचनें पर बैरम खां के व्यवहार से क्षुब्ध होकर उसने हुमायूँ को अपमानित करना प्रारम्भ कर दिया। हुमायूँ इन्हें बर्दाशत करता रहा। अंततः वह कुछ निश्चित शर्तों के बदले शाह की सहायता पाने में सफल रहा। ईरान के शाह ने उसे 14,000 सैनिकों की सहायता दी। उसने हुमायूँ को अपने भाइयों से सावधान रहने और अफगानों के विरूद्ध राजपूतों का सहयोग प्राप्त करने की भी सलाह दी। इस सबके बदले हुमायूँ को शिया मत स्वीकार करना पड़ा। भारत में शियामत को राज्य धर्म बनाने का और कंधार शाह को सौंपने का वादा करना पड़ा। हुमायूँ को यह सारी शर्ते आसान लगी क्योंकि बाकी शासक उसके पकड़ने अथवा जान से माने के षड़यन्त्र कर रहे थे। राजपूतों से

भी बहुत अधिक एवं प्रभावशाली सहायता नहीं मिल पाई थी। अतः हुमायूँ के पास शाह के शर्तों को न मानने का कोई और विकल्प नहीं था।

1.9.3 हुमायूँ की भारत की ओर वापसी

ईरान के शाह की सहायता हुमायूँ के लिए एक वरदान सिद्ध हुई उसने अपना खोया हुआ धैर्य एवं शक्ति पुनः प्राप्त कर ली। एक बार फिर वह भारत में भाग्य आजमानें को लालचित हो उठा, लेकिन इसके पूर्व उसके लिए मध्य एशिया में अपनी शक्ति संगठित करना एवं विद्रोही भाइयों को वश में लाना आवश्यक था। इसलिए सबसे पहले कंधार विजय की योजना उसने बनाई। कंधार में उस समय अस्करी, कामरान, का प्रतिनिधि शासक के रूप शासन कर रहा था। हुमायूँ ने उसे पराजित कर अपने अधिकार में कर लिया वादा के अनुसार, ईरान के शाह को कंधार सौंप दिया गया परन्तु शीघ्र ही ईरानी गर्वनर की मृत्यु के बाद हुमायूँ ने इसे अपने अधिकार में कर लिया। बैरम खां को वहां का शासक नियुक्त किया गया। कुछ समय के बाद हुमायूँ ने काबुल और बदख्शां पर भी अधिकार कर लिया। 1553 ई0 तक हुमायूँ आंतरिक विद्रोहो पर नियंत्रण प्राप्त कर चुका था। काबुल कंधार, गजनी, तथा बदख्शां पर उसकी सत्ता स्थापित हो चुकी थी। वह पुनः भारत विजय के लिए तैयार हो उठा।

1.9.3.1 पंजाब पर हुमायूँ का आक्रमण

नवम्बर 1554 ई0 में हुमायूँ पंजाब की ओर रवाना हुआ। शीघ्र ही पेशावर पहुचं गया। सिन्धु पार करके वह लाहौर की तफर बढ़ा। इस बीच बैरम खां भी अपनी सेना के साथ कंधार से आकर हुमायूँ से मिल गया था। अतः हुमायूँ ने बिना किसी प्रतिरोध के फरवरी 1555 में लाहौर पर अधिकार कर लिया। लाहौर के पश्चात सरहिन्द, हिसार, और दीपालपुर पर भी मुगलों ने अधिकार कर लिया।

1.9.3.2 मच्छीवाड़ा का युद्ध

मुगलों के आगमन एवं पंजाब पर उनके अधिकार की सूचना पाते ही अफगान सुल्तान सिकन्दर सूर ने अपने योग्यतम सेनापति तातार खां और हैवात खां को सेना के साथ मुगलों को रोकने के लिए भेजा। लुधियाना के निकट मच्छीवाड़ा नामक स्थान पर मुगलों एवं अफगानों की मुठभेड़ हुई। मुगल तोपचियों के आगे अफगान धनुर्धर टिक नहीं पाए। 15 मई 1555 को अफगान पराजित होकर भाग खड़े हुए। इस विजय के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण पंजाब, सरहिन्द, हिसार–फिरोजा और दिल्ली के कुछ सीमावर्ती क्षेत्र पर भी मुगलों का अधिपत्य स्थापित हो गया।

1.9.3.3 सरहिन्द का युद्ध

मच्छीवाड़ा में पराजय के पश्चात स्वंय सिकन्दर सूर एक विशाल सेना के साथ सरहिन्द पर अधिकार करने के लिए दिल्ली से चला। बैरम खां, हुमायूँ एवं अल्पायु अकबर ने भी इस युद्ध में भाग लिया। 22 जून 1555 में सरहिन्द के निकट मुगलों और अफगानों की मुठभेड़ हुई। अफगानों की विशाल सेना मुगलों के सामने टिक नहीं पाई। अनेक अफगान सैनिक मारे गये सरहिन्द के युद्ध ने अफगानों की सत्ता समाप्त कर दी। जिस प्रकार पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम की पराजय ने भारत में मुगलों की सत्ता स्थापित की थी, उसी प्रकार सरहिन्द के युद्ध में सिकन्दर सूर की पराजय ने भारत में मुगल सत्ता की पुनर्स्थापना कर दी। इस युद्ध ने अफगानों के भाग्य का फैसला कर दिया। दिल्ली का सिंहासन उनके हाथों से निकल गया।

1.9.4 हुमायूँ की प्रतिस्थापना

सरहिन्द के युद्ध के पश्चात हुमायूँ के लिए दिल्ली का मार्ग प्रशस्त हो गया। सरहिन्द से हुमायूँ समाना गया। उसने सिकन्दर खान उजबेग को दिल्ली पर अधिकार करने को भेजा। मुगल सेना के आगमन

की खबर पाकर अफगान बिना विरोध किये ही दिल्ली छोड़कर भाग खड़े हुए। दिल्ली पर मुगलों का पुनः अधिकार हुआ। 23 जुलाई 1555 ई0 को विजेता हुमायूँ

ने दिल्ली में प्रवेश किया। एक बार फिर उसका अभिषेक हुआ। 'खुतबा' पढ़ा गया एवं हुमायूँ के नाम के सिक्के ढलवाए गये। मुगल अमीरों को इनाम बाटे गये।

1.9.5 हुमायूँ के अंतिम दिन और मृत्यु

हुमायूँ ने बहुत कठिन परिश्रम से विपत्तियों से जूझते हुए अंततः अपना खोया हुआ राज्य वापस पाया था। उसने अपने शेष समय आराम करने मे व्यतीत किया। वह अन्य, भागों की विजय और प्रशासनिक व्यवस्था की योजना बनाने में व्यस्त रहा, परन्तु दुर्भाग्य ने एक बार पुनः हुमायूँ पर प्रहार किया। 24 जनवरी 1556 को अपने पुस्तकालय की सीढ़िया से गिरकर वह गंभीर रूप से घायल हो गया। उपचार के बावजूद हुमायूँ के दुर्भाग्य पर व्यंग करते हुए इतिहासकार लेनपूल ने ठीक ही लिखा है, 'हुमायूँ जीवन भर ठोकरे खाता रहा ओर ठोकर खाकर ही उसके जीवन का अंत हुआ'।

1.10 सारांश

अनेक इतिहासकारों ने बाबर की भूरी–भूरी प्रशंसा उसके चरित्रिक गुणों, उसकी सैन्य प्रतिभा, शैक्षिक एवं कलात्मक अभिरूचि के आधार पर किया है। बाबर का जीवन–चरित्र एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है। बाल्यकाल से ही कठिनाईयों से जूझते रहने के बावजूद उसने कभी अपना धैर्य नहीं खोया और सदैव अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में संलग्न रहा। बाबर की ख्याति मुख्यतया उसके अदभुत सैनिक गुणों एवं अदम साहस के कारण से है। वह एक वीर सैनिक एवं कुशल सेनानायक था। वह घुड़सवारी, निशानेबाजी तथा तलवार चलाने में निपुण था। बाबर अपने सहयोगियों से सदैव मित्रवत व्यवहार करता था। यद्यपि बाबर ने राणा सांगा के विरूद्ध राजनीतिक कारणों से प्रेरित होकर 'जिहाद' की घोषणा की तथापि वह धर्मांध नहीं था। कट्टर सुन्नी होते हुए भी शियाओं एवं अन्य समुदायों पर अत्याचार नहीं किया। बाबर में साहित्यिक एवं कलात्मक प्रतिभा भी थी। वह तुर्की, अरबी एवं फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञाता था। उसे तुर्की साहित्य के दो सर्वाधिक प्रसिद्ध लेखकों में से एक माना जाता है। उसकी आत्मकथा तुजुक–ए–बाबरी की गणना विश्व के महान साहित्यिक ग्रन्थों में की जाती है।

बाबर की भारत विजय अनेक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण माना जाता है। बाबर ही पहला शासक था, जिसने कुषाण साम्राज्य के पतन के पश्चात पहली बार भारतीय साम्राज्य में काबुल और कंधार को सम्मलित किया। इससे भारतीय विदेशी व्यापार के विकास में मदद मिली। बाबर के आगमन के पश्चात भारत की परम्परागत युद्ध प्रणाली में परिवर्तन आया। अब बारूद, तोपखाना और घुड़सवारी पर भारत में भी बल दिया जाने लगा। बाबर ने तुर्क–अफगानों द्वारा धारण की जाने वाली 'सुल्तान' की उपाद्यि त्याग दी एवं अपने आपको पादशाह अथवा अथवा आरम्भ किया उसने देवी शक्ति पर आघृत सर्वशक्तिशाली बादशाह की स्थापना की। अब राजा का आधार प्रजा की इच्छा नहीं, बल्कि दैवी इच्छा मानी गई। इससे बादशाह की शक्ति और प्रतिष्ठा में अत्यधिक वृद्धि हुई। बाबर ने अपनी सैनिक प्रतिभा के बल पर भारत में उस विशाल और वैभवशाली राजवंश की नींव डाली, जिस पर अकबर ने एक विशाल और सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना की। इतिहासकार लेनपूल बाबर को एक भाग्यशाली सैनिक, मध्य एशिया और भारत की के बीच की कड़ी तथा मुगल साम्रज्य का संस्थापक मानते है।

हुमायूँ का व्यक्तित्व एवं चरित्र विवादास्पद है। तबकात ए–अकबरी के लेखक निजामुद्दीन अहमद और इतिहासकार फरिश्ता हुमायूँ के व्यक्तिगत चरित्र और मानवीय गुणों की प्रशंसा करते है। वा दयालु, विद्या प्रेमी, साहित्य, कला एवं विज्ञान में रूचि रखने वाला था परन्तु उसमें अनेक चरित्रिक दुर्बलताएं भी थी। वह आलसी, सुस्त और अदूरदर्शी था। इसीलिए, उसे अपना राज्य खोकर वर्षों तक भगौड़े का

जीवन व्यतीत करना पड़ा। हुमायूँ की सबसे प्रशंसनीय बात यह है कि घोर निराशा की परिस्थिति में भी उसने कभी धैर्य और साहस नहीं खोया। अंततः सफल हुआ यद्यपि वह बाबर की ही तरह अपने उत्तराधिकारी के लिए निरापद विरासत नहीं छोड़ सका, तथापि उसने मुगलों के शासन के लिए मार्ग अवश्य प्रशस्त कर दिया। आगे चलकर उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी अकबर ने मुगल साम्राज्य को और सुदृढ़ एवं स्थायित्व प्रदान किया।

1.11 अभ्यासार्थ प्रशन

1. बाबर के जीवन एवं संघर्षों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
2. बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिये।
3. बाबर कालीन युद्धों के कारणों एवं परिणामों पर प्रकाश डालें
4. बाबर के चरित्र एवं व्यक्तित्व की समीक्षा कीजिये।
5. भारत के विरूद्ध बाबर के विभिन्न सैनिक अभियानों के कारणों की समीक्षा कीजिये।
6. पानीपत के प्रथम युद्ध युगान्तकारी घटना थी विश्लेषण कीजिये।
7. बाबर के भारत आगमन के प्रभावों का समीक्षा कीजिये।
8. हुमायूँ के प्रारम्भिक जीवन एवं संघर्षों को रेखांकित कीजिये।
9. हुमायूँ एवं शेरशाह के मध्य सत्ता संघर्ष को दर्शाएं।
10. हुमायूँ के भारत से पलायन एवं वापसी का वर्णन कीजिये।
11. लेनपूल के कथन हुमायूँ जीवन भर ठोकरे खाता रहा और ठोकर खाकर ही जीवन का अंत हुआ से आप कहां तक सहमत है।
12. हुमायूँ के व्यक्तित्व एवं चरित्र पर एक नोट लीखिये।

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हरीश चन्द्र वर्मा :– मध्यकालीन भारत खण्ड 2 (1540–1761) हिन्दी माध्यम का0नि0 दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
2. बिपिन बिहारी सिन्हा :– मध्यकालीन भारत ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली
3. जे0एल0मेहता :– मध्यकालीन भारत का वृहत् इतिहास खण्ड–2
4. आर्शिवादी लाल श्रीवास्तव :– मध्यकालीन भारत (1000–1707)
5. अवधेश बिहारी पाण्डेय :– मध्यकालीन भारत का इतिहास
6. एल0पी0शर्मा :– मध्यकालीन भारत (1000–1761)
7. कामेश्वर प्रसाद :– भारत का इतिहास (1526–1757)
8. जे0एल0मेहता :– मध्यकालीन भारत का वृहत इतिहास खण्ड– 2
9. हरिश चन्द्र वर्मा :– मध्यकालीन भारत खण्ड 2
10. ऐ0एल0श्रीवास्तव :– मध्यकालीन भारत (1000–1707)
11. विपिन बिहारी सिन्हा :– मध्यकालीन भारत खण्ड 2

12- कामेश्वर प्रसाद :– भारत का इतिहास (1526–1757)

शेरशाह, इस्लामशाह तथा सूरी सैनिक प्रशासन

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्रारम्भिक जीवन

2.3.1 फरीद,सहसराम के जागीरदार के रूप में

2.3.2 शेर खां के सैनिक अभियान

2.3.3 शेर खां एवं हुमायूँ

2.3.3.1 चौसा का युद्ध

2.3.3.2 कन्नौज का युद्ध

2.4 शेरशाह का प्रशासन

2.5 केन्द्रीय संगठन

2.5.1 प्रशासकीय विभाग

2.5.2 प्रान्तीय व्यवस्था

2.5.3 स्थानीय शासन

2.5.3.1 सरकार

2.5.3.2 परगना

2.5.3.3 ग्राम्य व्यवस्था

2.6 राजस्व व्यवस्था एवं आर्थिक सुधार

2.6.1 भूमि एवं राजस्व व्यवस्था

2.6.2 मुद्रा व्यवस्था में सुधार

2.6.3 व्यापार को प्रोत्साहन

2.7 इस्लामशाह के कार्य

2.7.1 इस्लामशाह एवं आदिलशाह

2.7.2 अन्य अमीरों का दमन

2.7.3 नियाजी विद्रोह

2.7.4 सुजात खां का विद्रोह

2.7.5 खवास खां की हत्या

2.8 इस्लामशाह के सैनिक अभियान

2.9 प्रशासनिक व्यवस्था

2.10 सूरी सैनिक प्रशासन

2.10.1 घुड़सवार सेना

2.10.2 पैदल सेना

2.10.3 बन्दूकची अथवा तोपची सेना

2.10.4 स्थायी सेना की व्यवस्था

2.10.5 सैनिक को राज्य द्वारा वेतन

2.10.6 व्यक्तिगत दिलचस्पी

2.10.7 दाग एवं हुलिया की प्रथा

2.10.8 कठोर अनुशासन

2.11 सारांश

2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

भारत में द्वितीय अफगान राज्य का संस्थापक शेरशाह था। उसकी गणना मध्यकालीन भारत के महान शासकों में की जाती है। एक सामान्य वंश का होते हुए भी अपनी प्रतिभा के बल पर वह इतिहास का एक महत्वपूर्ण शासक बन गया। उसकी प्रशंसा एक राज्य निर्माण एवं कुशल प्रशासक के रूप में की जाती है। शेरशाह के कार्यकलापों एवं जीवन को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। आरम्भिक जीवन (1486—1550) , हूँमायू से संघर्ष (1530—40) और शासक के रूप में (1540—45) ।

2.2 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न प्रमुख बातें जान सकेंगें।

- शेरशाह के प्रारम्भिक जीवन एवं संघर्ष
- हुमायूँ एवं शेरशाह के बीच संघर्ष और भारत का शासक बनना।
- शेरशाह का प्रशासनिक व्यवस्था।
- शेरशाह का अदभुत राजस्व—व्यवस्था एवं आर्थिक सुधार।
- इस्लामशाह का राज्यारोहण एवं चुनौतियां।
- इस्लामशाह के सैनिक अभियान एवं प्रशासनिक व्यवस्था।
- सूर सैनिक प्रशासन।

2.4 प्रारम्भिक जीवन

शेरशाह का बचपन का नाम फरीद खां था। उनका जन्म बहलोल लोदी के समय में 1472 में हिसार फिरोजा में हुआ था। उसके पिता का नाम हसन खां एवं पितामह का नाम इब्राहिम खां सूर था। इब्राहिम के पूर्वज मूलतः अफगानिस्तान में रोहड़ी (शेरगढी) के निवासी थे। रोहड़ी में सूरों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। इसी समय (1452—53) सुल्तान बहलोल लोदी ने अफगानों को भारत आने का खुला निमंत्रण दिया। अतः इब्राहिम खां सूर अपने पुत्र हसन खां के साथ जीविका की खोज में भारत आया।

भारत आने पर इब्राहिम एवं उसके परिवार ने पंजाब में बजवाड़ा नामक स्थान को अपना ठिकाना बनाया। यहाँ पर इब्राहिम को हिसार फिरोजा के जागीरदार जमाल खां सारंगखानी के यहाँ नौकरी मिल गई। हसन खां ने भी बहलोल लोदी के दरबारी, खान—ए—आज़म उमर खां के यहां नौकरी मिल गई। हसन को शाहाबाद परगने की अनेक जागीरें दी गई। सुलतान सिकन्दर लोदी के समय में जब जमाल खां को जौनपुर की सुबेदारी मिली तब हसन खां के कार्यों से प्रसन्न होकर वह उसे अपने साथ जौनपुर ले गया। उसने हसन खां को सहसराम, हाजीपुर खवासपुर एवं टांडा परगानों की जगीरें सौप दी।

फरीदखां अपने पिता के साथ ही सहसराम आ गया। सहसराम में फरीद का जीवन कष्टपूर्ण था। अपनी विमाता के दुर्व्यवहार से परेशान होकर फरीद सहसराम छोड़कर जौनपुर चला गया। जौनपुर उस समय इस्लामी संस्कृति और विद्या के क्रेन्द्र के रूप में विख्यात था। अतः जौनपुर में ही रहकर फरीद ने अरबी और फारसी का गहन अध्ययन किया। उसने जैनपुर में सिकन्दरनामा, गुलिस्तां एवं बोस्तां जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ एवं दर्शन का अध्ययन किया । उसकी कुशाग्रता से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति फरीद के प्रशंसक एवं समर्थक बन गए। जमाल खां भी फरीद के गुणों से प्रभावित था। अतः उसने पिता—पुत्र में मेल कराने का प्रयास किया। उसने हसन खां को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह अपने जागीर का प्रबन्ध फरीद को सौप दें। फरीद ने इस शर्त पर यह कार्यभार संभाला कि उसका पिता प्रशासन के कार्यो में अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप नही करेगा।

2.3.1 फरीद, सहसराम के जागीरदार के रूप

जमाल खां के आदेशानुसार हसन खां ने फरीद को बिहार में सहसराम एवं खवासपुर की जागीरें सौंप दी। जागीरदार के रूप में फरीद ने करीब 21 वर्षो तक अपना समय बिहार में ही व्यतीत किया। इस

समय का सदुपयोग उसने शासन प्रबन्ध को व्यवस्थित करने में किया। फलस्वरूप उसे पर्याप्त प्रशासनिक शिक्षा एवं अनुभव प्राप्त हुए। जागीरदार के रूप में उसके कार्यों की प्रशंसा अब्बास खां शेरवानी खूब करता है। इसी अवधि में उसने कृषकों , जागीरदारों, मुकद्दमों से सीधा सम्पर्क स्थापित किया एवं विद्रोही जमीन्दारों पर नियंत्रण स्थापित किया। कृषि एवं भू–राजस्व व्यवस्था की तरफ प्रयाप्त ध्यान दिया। सेना का समुचित संगठन किया तथा स्थानीय अधिकारीयों के प्रति निश्चित नीति तय की

शासन–प्रबन्ध संभालतें ही फरीद ने देखा कि कृषि एवं भू–राजस्व की व्यवस्था शोचनीय थी। उसने मुकद्दमो पटवारियों और स्थानीय अधिकारीयों को स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दी कि अगर उन लोगों ने अपने उत्तरदायित्वों का पालन ठीक से नहीं किया तो उन्हें नौकरी से अलग कर दिया जायेगा। अनेक विद्रोही जमीदारों को मौत के घाट उतार दिया गया तथा उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। फरीद के इन कठोर कार्यों का वांछित परिणाम निकला। सर्वत्र शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित हो गई। जागीरदार के रूप में फरीद का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य था, किसानों के हितों की रक्षा करना। जमीन की नाप करवाकर उपज के अनुसार लगान की राशि तय की गई। किसानों को पट्टा देने एवं उनसे कबूलियत लिखवाने की व्यवस्था की गई। लगान निश्चित समय पर (वर्ष में दो बार) लेने का प्रबन्ध किया गया। राजस्व पदाधिकारीयों, सैनिकों एवं जमीदारों को स्पष्ट आदेश दिये गये कि वे किसानों को परेशान नहीं करें। फलतः किसान कृषि की ओर अधिक ध्यान देने लगे, जिससे आर्थिक व्यवस्था में वांछित सुधार हुआ। सैन्य व्यवस्था में भी परिर्वतन किये गये। सेना में समान रूप से हिन्दू एवं मुसलमानों को स्थान दिये गये। सैनिकों को नकद वेतन देने एवं घोड़ों को दागने की व्यवस्था की गयी। उसने प्रशासन के सभी विभागों पर अपनी पकड़ बनाए रखीं। उसनें प्रशासन के सभी विभागों की_निरीक्षण स्वयं करता था। निश्चित समय पर पदाधिकारियों का स्थानान्तरण की भी व्यवस्था की गई। इन प्रशासनिक सुधारों द्वारा फरीद ने आगामी शासन–व्यवस्था की नीवं डाली।

2.3.2 शेरखां के सैनिक अभियान

शेरखां के बढ़तें प्रभाव से नोहानी सरदारों का ईर्ष्यालू होना स्वाभाविक था। वे शेरखां के दुश्मन बन गये। जलाल खां भी शेरखां पर अंकुश रखना चाहता था। परन्तु शेरखां की शक्ति और प्रभाव के कारण वह विवश था। इसलिए, नोहानी सरदारों ने बंगाल के सुल्तान नुसरत शाह से सहायता मांगी। उत्तरी बिहार पर उस समय नुसरत शाह का अधिकार था। अतः वह दक्षिण बिहार पर अधिकार करने के लिए लालयित हो उठा। इधर शेरखां ने उत्तरी बिहार के गर्वनर मखदूम आलम– जो नुसरत शाह का सम्बन्धी था , को अपने पक्ष में मिला लिया। नुसरत शाह ने एक सेना दक्षिणी बिहार पर अधिकार करने को भेजी जिसे शेरखां ने पराजित कर दिया। क्रुद्ध होकर नुसरत शाह ने मखदमू आलम पर आक्रमणं कर युद्ध में मार डाला और दक्षिणी बिहार की तरफ बढ़ा ,परन्तु 1529 ई0 में उसकी सेना शेरखां द्वारा बुरी तरह पराजित हुई। इस विजय के पश्चात शेरखां की शक्ति और अधिक बढ़ गई। उसके पास पर्याप्त धन भी हो गया। नोहानी सरदारों ने एक बार पुनः शेरखां का प्रभाव समाप्त करने की कोशिश की एवं उन्होंने शेरखां की हत्या का प्रयास किया। नुसरतशाह को बुलवाया गया। इस बार भी शेरखां ने बंगाली सेना को पराजित कर दिया। शेरखां ही अब दक्षिण बिहार का वास्तविक शासक बन गया। उसने अब **हज़रत ए–आला** की उपाधि धारण कर ली।

बिहार के शासक बनने के पश्चात शेरखां अपना प्रभाव बढ़ाने में लग गया। 1530 ई0 में उसने चुनार के किले पर अधिकार कर लिया। यहां से उसे अपार धन भी हाथ लगा। उसने चुनार के भूतपूर्व गर्वनर ताज खां की विधवा लाड मलिका से विवाह भी कर लिया। इससे इसकी शक्ति एवं प्रतिष्ठा में और अधिक वृद्धि हुई। 1530 ई0 तक शेरखां पूर्णतः अफगानों की सत्ता स्थापित करने को तैयार हो चुका था। अब शेरखां ही अफगानों को वास्तविक नेता बन चुका था। बाबर की मृत्यु और हुमायूँ के राज्यारोहण ने शेरखां को अपने सपनों को साकार करने का मौका प्रदान किया।

2.3.3 शेरखां और हुमायूँ

बिहार में अपनी शक्ति स्थापित कर शेरखां के नए मुगल बादशाह हुमायूँ से संघर्ष करने का निश्चय किया। जब तक बाबर जीवित रहा, शेरखां ने उससे कभी खुला संघर्ष करने का प्रयास नहीं किया। दौराहा के युद्ध तक भी शेरखां मुगलों को भ्रम में फंसाए रखकर अपनी स्थिति मजबूत करता रहा आरम्भ में उसने हुमायूँ को भी भुलावे में रखा। वस्तुतः वह उचित मौके की तलाश में था। आरम्भ से ही उसने हुमायूँ के प्रति उपेक्षापूर्ण रवैया अपनाया था। हुमायूँ इस अफगान खतरे को समझता था। इसलिये उसने भी शेरखां पर अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया।

1532 ई0 के दौराहा विजय के बाद हुमायूँ ने हिन्दू बेग के नेतृत्व में एक सेना चुनार का दुर्ग अधिकृत करने को भेजा। यह दुर्ग शेरखां को लाड मलिका से प्राप्त हुआ था। मुगल सेना ने लगभग चार महिनों तक दुर्ग का घेरा डाले रखा। शेरखां ने आत्मसमर्पण नही किया बल्कि हिन्दू बेग की सहायता से वह हुमायूँ से समझौता करने का प्रयास करता रहा। उसने मुगलों के प्रति अपनी वफादारी की दुहाई दी और हुमायूँ को यह प्रस्ताव भेजा कि अगर उसे दुर्ग रखने की इजाफत दी जाए तो वह अपने पुत्र कुतुब खां के अधिन अफगान सेना की एक टुकड़ी को आगरा में बादशाह की सेवा में देगा। गुजरात के शासक बहादुर शाह द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण किए जाने सूचना प्राप्त कर हुमायूँ वापस लौटनें की जल्दी में था। अतः उसने शेरखां की ही शर्तो पर चुनार उसके पास रहने दिया। हुमायूँ के विरूद्ध शेर खां की यह पहली विजय थी।

1533 से 1537 ई0 के मध्य शेरखां ने बंगाल के शासक को अनेक बार पराजित किया। सबसे निर्णाय लड़ाई 1534 ई0 में सुरज गढ़ा में हुई। यह युद्ध शेरखां के जीवन में निर्णायक युद्ध था। इसके पश्चात उसने तेलियागढी एवं गौड़ में भी बंगाल के सुलतान ग्यासुद्दिन महमूद को पाजित किया। हुमायूँ से बंगाल के शासक ने सहायता की याचना की। शेरखां ने गुजरात के शासक बहादुर शाह से गुप्त सम्बन्ध बनाए रखा कुतुब खां भी शेरशाह के निर्देश पर आगरा छोड़कर भाग चुका था। इस घटनाओं से हुमायूँ क्रुद्ध हो उठा और शेरखां के प्रभाव एवं शक्ति को समाप्त करने का निश्चय किया।

1537 में हुमायूँ के आगमन की खबर सुनकर शेरखां ने बड़ी चुतराई से अपना खजाना और परिवार चुनार से हटाकर रोहतासगढ के दुर्ग में सुरक्षित कर लिया बाद में उसने धोखे से 1578 ई0 में इस पर अधिकार भी स्थापित कर लिया। इधर हुमायूँ ने चुनाव का दुर्ग घेर लिया और यह घेरा करीब छः माह तक बना रहा। इस अवधि में शेरखां ने हुमायूँ को बातों में उलझा कर अपनी स्थिति सुदृढ़ करता रहा। 1538 ई0 में रूमीखां के सहयोग से चुनार का दुर्ग पर अधिकार कर लिया परन्तु इस विजय से उसे बहुत अधिक लाभ नहीं मिला। इस विजय के बाद वह यह नहीं समझ पा रहा था कि पहले वह शेरखां की शक्ति को समाप्त करे अथवा बंगाल के सुलतान की सहायता करे। हुमायूँ की इस निष्क्रियता का लाभ उठाकर शेरखां ने मुंगेर और गौड़ (बंगाल) के बीच का प्रदेश जीत लिया। शेरखां द्वारा हुमायूँ के संधि प्रस्ताव का पालन नहीं करने पर हुमायूँ ने बंगाल विजय की योजना बनाई। उसने 1538 में गौड़ पर अधिकार कर उसका नाम जन्नताबाद रखा।

2.3.3.1 चौसा का युद्ध

जिस समय हुमायूँ बंगाल में रूका हुआ था, उसी समय शेरखां ने मौके का लाभ उठाकर उसकी वापसी के मार्ग को काट दिया। इतना ही नहीं, हुमायूँ को बंगाल में निष्क्रिय देखकर शेरशाह ने तिरहुत, बनारस, जौनपुर और कन्नौज पर भी अधिकार कर लिया। वस्तुतः तेलियागढ़ी से कन्नौज तक का सारा क्षेत्र अब शेरखां के अधिन आ गया। इससे जहां शेरखां का उत्साह बढ़ा, वही हुमायूँ के लिए अनेक समस्याएं खड़ी हो गई। उसे बंगाल से वापस लौटना एवं दिल्ली अथवा आगरा से सैनिक सहायता प्राप्त करना कठिन हो गया। आगरा में हुमायूँ के लिए परिस्थितियां चिंताजनक थी, गौड़ में कुछ सैनिकों को जहांगीर कुली बेग के नियंत्रण में छोड़कर वह बंगाल से वापस लौटा।

शेरखां, हुमायूँ के लौटने का इंतजार ही कर रहा था। चौसा के निकट दोनों की सेनाओं का सामना हुआ। दोनों सेनाएं कुछ दिनों तक निष्क्रिय पड़ी रहीं, और दोनों पक्ष संधिवार्ता में संलग्न रहें। शेरखां वस्तुतः उचित अवसर की तलाश में था। बरसात प्रारम्भ होते ही जून 1539 में शेरखां ने मुगल

शिविर पर आक्रमण किया। हुमायूँ की पराजय हुई। वह किसी तरह जान बचाकर भाग खड़ा हुआ। हुमायूँ की पराजय शेरखां के लिये वरदान बन गई। उसने पहली बार खुले संघर्ष में मुगल बादशाह को परास्त किया था, इससे उसकी शक्ति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धी हुई। इस विजय के पश्चात शेरखां ने **'शेरशाह'** की उपाधि धारणा की। इस प्रकार शेरशाह अब बंगाल और बिहार का स्वतंत्र शासक बन गया।

2.3.3.2 कन्नौज का युद्ध

चौसा की विजय के पश्चात शेरशाह हुमायूँ से अंतिम संघर्ष के लिए तैयार हुआ। बंगाल और बिहार की व्यवस्था कर वह कन्नौज की ओर बढ़ा। उधर हुमायूँ ने भी जल्दबाजी में एक सेना तैयार कर शेरशांह के मुकाबले के लिए आगरा से चल चड़ा दोनों सेनाओं का मुठभेड़ कन्नौज के बिलग्राम नामक स्थान पर मईः 1540 को हुआ। हुमायूँ युद्ध में पराजित होकर आगरा पहुंचा। शेरशाह ने उसका पीछा जारी रखा। अफगानों के आगमन की खबर पाकर हुमायूँ आगरा से लाहौर चला गया। शेरशाह ने दिल्ली–आगरा पर अधिकार कर लिया तथा हुमायूँ का पीछा करता हुआ पंजाब तक पहुंचा। हुमायूँ ने भारत में शरण लेने की कोशिश की, परन्तु निराश होकर ईरान चला गया। इधर 10 जून,1540 को आगरा में शेरशाह का पुनः राज्यभिषेक हुआ। शेरशाह के नेतृत्व में इस प्रकार द्वितीय अफगान राज्य की स्थापना हुई।

2.5 शेरशाह का प्रशासन

भारतीय इतिहास में शेरशाह सिर्फ एक महान विजेता एवं कुशल सेनानायक के रूप में ही विख्यात नहीं बल्कि उसकी गणना एक सक्षम प्रशासक के रूप में भी की जाती है। उसने न सिर्फ एक राज्य की स्थापना की, बल्कि एक सशक्त प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा इसे स्थायित्व प्रदान करने का भी प्रयास किया। शेरशाह का प्रशासनिक व्यवस्था ने अकबर के सामने एक आदर्श उपस्थित किया। अकबर ने शेरशाह द्वारा निर्देशित मार्ग को ही संशोधनों एवं परिवर्तनों के साथ अपनाया। लम्बे समय की अराजक अवस्था को समाप्त कर राज्य में शांति व्यवस्था स्थापित करने का श्रेय शेरशाह को दिया जा सकता है। तत्कालिन और आधुनिक विद्वानों ने शेरशाह की प्रशासनिक प्रतिभा की भूरी–भूरी प्रशंसा की है। इतिहासकार कानूनगो ने उसे सभी अफगान शासकों में महानतम् प्रशासकिय और सैनिक प्रतिभा का व्यक्ति माना है। उसने पांच वर्षो की अल्प अवधि में ही आश्र्चयजनक प्रशासकीय प्रतिभा का परिचय दिया। इसलिए, कीन महोदय (keene) ने तो यहां तक लिखा ''किसी भी सरकार ने, यहां तक कि अंग्रेजों ने भी इतनी अधिक बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दिया जितना कि इस पठान ने''।

शेरशाह के समूचे प्रशासन को सुविधानुसार तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। – **केन्द्रीय संगठन, प्रान्तीय व्यवस्था, एवं स्थानीय शासन।** इनके अतिरिक्त उसने सैनिक व्यवस्था एवं मुद्रा–सम्बन्धी भी व्यवस्था की।

2.6 केन्द्रीय संगठन

अफगान राज्य की शक्ति का केन्द्र स्वयं सुलतान था वह राजधानी आगरा से प्रशासन की पूरी निगरानी करता था। राज्य की पूरी शक्ति उसी के हाथों में केन्द्रित थी। सुलतान की सहायता के लिए विभिन्न पदाधिकारी नियुक्त किये गये एवं प्रशासनिक विभागों की स्थापना की गई। वह कार्यपालिका, न्यायापालिका एवं सैनिक मामलों का प्रधान था। राज्य की सभी नियुक्तियां स्वंय शेरशाह द्वारा ही होती थी। समस्त कर्मचारी अपने कार्यों के लिए शेरशाह के प्रति उत्तरदायित्व थे। शेरशाह की शक्ति पर किसी भी प्रकार का अंकुश अथवा नियंत्रण नहीं था। निरंकुश और असीमित शक्ति का मालिक होते हुए भी शेरशाह ने एक स्वेच्छाधारी शासक की तरह शासन नहीं किया ,बल्कि उसने एक उदार तानाशाह (Benevolent despot) के सामन अपनी शक्ति का उपयोग जनता की भलाई के लिए किया।

2.5.1 प्रशासकीय विभाग (central administration)

तुर्की प्रशासनिक व्यवस्था के विपरित शेरशाह ने वजीर का पद नहीं रखा। इसका कारण था कि वह अफागानों की इस प्रवृत्ति से अच्छी तरह परिचित था कि वे किसी को भी अपने से श्रेष्ठ नहीं मानतें थे। इसलिए, शेरशाह ने सारी शक्ति को भी अपने ही हाथों में केन्द्रित रखी और प्रशासन की समुचित व्यवस्था के लिए विभिन्न प्रशासकीय विभाग बनाए। इन विभागों के प्रधानों की हैसियत मंत्री के समान थी।

उनकी नियुक्त शेरशाह स्वयं करता था। सभी विभागों के प्रधानों की स्थिति एक समान थी। सभी शेरशाह के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कार्य करते थे। शेरशाह के समय में प्रमुख प्रशासकिय निम्नलिखित विभाग थे।

दीवान–ए–वजारत :– राजकीय आय–व्यय की देखभाल करने वाला तथा इस विभाग का प्रमुख वजीर होता था।

दीवान–ए–आरिज :– यह सैन्य सम्बन्धी मामले, सेना की नियुक्ति उनके वेतन, रसद इत्यादि की जिम्मेदारी थी। इसके प्रमुख को आरिज–ए–ममालिक की उपाधी दी गई थी।

दीवान–ए–रसालत :– इस विभाग के तुलना विदेश विभाग से की जाती है। वैदेशिक नीति से सम्बन्ध मामलों की देखभाल इसी विभाग के जिम्मे थी।

दीवान–ए–इन्शा :– इस विभाग के जिम्मे राजकीय घोषणाओं को तैयार करवाने उन्हें प्रसारित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। वस्तुतः, यह विभाग सरकारी अभिलेखागार
के रूप में कार्य करता था।

दीवान–ए–काजा –इस विभाग का प्रधान मुख्य काज़ी (न्यायधीश) होता था। मुख्य न्यायधीश की हैसियत से वह समुचित न्याय की व्यवस्था करता था।

दीवान–ए–वरीद – इस विभाग के जिम्मे गुप्तचर व्यवस्था का देखा–भाल सौंप गया था इस विभाग का प्रधान वरीद–ए–मुमालिक कहलाता था।

इन महत्वपूर्ण विभागों के अतिरिक्त केन्द्रीय प्रशासन से सम्बन्ध अन्य किसी प्रमुख पदाधिकारी का उल्लेख नही मिलता है, परन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता की सिर्फ इन्हीं व्यक्तियों के बलबुते पर केन्द्रिय प्रशासन नहीं चलता होगा। निश्चित ही कुछ अन्य प्रशासनिक पदाधिकारी रहें होंगें। शेरशाह किसी सुदृढ़ केन्द्रीय प्रशासन की व्यवस्था नहीं कर सका, बल्कि उसने सलतनतकाल से चली आ रही केन्द्रिय प्रशासनिक व्यवस्था को ही आवश्यक संशोधनों एवं परिवर्तनों के साथ बनाए। रखा। सारी शक्तियां अपने हाथ में केन्द्रित रखने के कारण शेरशाह को स्वयं ही सभी विभागों के कार्यों की देखभाल स्वयं करता था। अब्बास खां शेरवानी के अनुसार ''शेरशाह प्रशासन से सम्बद्ध सभी विभागों की देखभाल स्वयं करता था। उसने प्रत्येक कार्य के लिए दिन–रात को विभिन्न कार्यों के सम्पादन के अनेक भागों में बांट रखा था, और कार्यों में कभी ढिलाई नहीं करता था''।

2.5.2 प्रान्तीय व्यवस्था–(provincial set-up)

शेरशाह को प्रान्तीय शासन–व्यवस्था के सम्बन्ध में स्पष्ट और विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने इस सम्बन्ध में अलग–अलग मत व्यक्त किया है। डा0 कालीचरण कानूनगो का मत है कि शेरशाह प्रान्तीय शासन व्यवस्था रखना ही नहीं चाहता था। वह केन्द्र और परगना के बीच सरकार के अतिरिक्त के मत के विपरित डा0 पी शरण की मान्यता है कि शेरखां का राज्य विभिन्न प्रान्तों में विभक्त था। इन प्रान्तों का शासन सैनिक पदाधिकारी प्रातपति के रूप में करते थे तथा सरकार वस्तुतः प्रान्तीय इकाई ही थी। डॉ0 आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव का विचार है कि शेरशाह एवं उसके उत्तराधिकारी इस्लामशाह के समय में सम्पूर्ण अफगान राज्य 'प्रान्त' अथवा 'सूबों' में नही बल्कि इक्ता (IQTA) में विभक्त था। इनकी स्थिति बहुत कुछ तुर्की काल के आरम्भ में स्थापित इक्ताओं के ही समान थी। इस पर सैनिक अधिकारी शासन करते थे। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रान्तीय शासन व्यवस्था के क्षेत्र में पूरे अफगान राज्य में एकरूपता नही पाई जाती है। विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार अलग –अलग व्यवस्था स्थापित की गई परन्तु सभी जगह सुल्तान द्वारा कड़ा नियंत्रण बनाए रखा गया। सुल्तान सांय शासन –व्यवस्थामें गहरी रूचि रखता था इसे व्यवस्थित रखने के लिए अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की / प्रान्तीय अधिकारी विभिन्न नामों से जाने जात थे, जैसे– आकिम, जमीन एवं फौजदार इत्यादि। सभी प्रांतीय अधिकारियों की स्थिति भी एक समान नही थी परन्तु सभी पर सुल्तान का कड़ा नियंत्रण था।

2.5.3 स्थानीय शासन (local administration)

प्रान्तीय शासन की अपेक्षा शेरशाह ने स्थानीय प्रशासन पर अधिक ध्यान दिया। स्थानीय प्रशासन में अधिक एकरूपता एवं संगठनात्मक व्यवस्था देखी जा सकती है परन्तु ऐसा प्रतीय होता है कि इस क्षेत्र में भी शेरशाह कोई आमूल परिवर्तन नही कर सके। सल्तनतकालीन प्रशासकीय इकाइयों एवं पदाधिकारियों के नामों से परिवर्तन कर उन्हें ही बनाए रखा गया। शेरशाह के समय में प्रान्त क्रमशः सरकार, परगना एवं ग्राम में विभक्त थे। इस प्रशासनिक इकाइयों का शासन प्रबन्ध विभिन्न पदाधिकारियों के जिम्मे सौंपा गया था।

2.5.3.1 सरकार

प्रान्त या सूबे अनेक सरकारों (जनपदों) में विभक्त किए गये थे। एक अनुमान के अनुसार शेरशाह के साम्राज्य में 47 सरकार थे। सरकार का प्रशासन से प्रमुख अधिकारी – शिकदार–ए– शिकदारान एवं मुसिक–ए–मुंसिफान के जिम्मे था। वे अपने अधनिस्थ के कार्यों का निरीक्षण करते थे तथा सरकार के भीतर शान्ति व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करता था। शिकदार–ए–शिकदारान जहां समस्त प्रशासनिक मामलों का देखभाल करता था वही मुसिफ–ए–मुसिफान सरकार में प्रमुख न्यायाधीश की भूमिका निभाता था। वह परगने के अमीरों के कार्यो एवं उत्तर दायित्वों का निरीक्षण करता था। दो अधिकारीयों के बीच कार्यो एवं उत्तरदायित्व का विभाजन कर शेरशाह ने दोनों पदाधिकारीयों को एक–दूसरे के कार्यो पर नियंत्रण रखने का मौका प्रदान किया।

2.5.3.2 परगना

सरकार से छोटी प्रशासनिक इकाई परगना संख्या सरकार की तरह निश्चित नहीं थी। परगनों के प्रशासन के लिए अनेक पदाधिकारी नियुक्त किए जाते थे। ये पदाधिकारी थे शिकदार, फोतेदार, कारकुन एवं अमीन। परगना का सर्वोच्च पदाधिकारी शिकदार होता था। वह शिकदार–ए–शिकरदान के अधीन काम करता था। उसका मुख्य कार्य परगना में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखना था। परगनें में शिकदार के ही समान महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली पदाधिकारी अमीन अथवा मुंसिफ था। वह परगने की समस्त भू–व्यवस्था का नियंत्रण था। इस हैसियत से वह लगान वसूली एवं लगान सम्बन्धी मुकदमें की देखभाल करता था। फोतदार का पद कोषाध्यक्ष के समान था परगने की समस्त आमदनी उसके पास जमा की जाती थी। वह समस्त आय–व्यय का लेखा–जोखा भी रखता था। इन पदाधिकारीयों के अतिरिक्त प्रत्येक परगने में एक फारसी एवं हिन्दी कारकुन (क्लर्क) होते थे। ये लगान एंव भू–व्यवस्था तथा आय–व्यय से सम्बन्ध सभी दस्तावेज तैयार करते एवं उन्हें अपने पास रखतें थे।

2.5.3.3 ग्राम्य व्यवस्था

प्रशासनिक सुविधा के लिए सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई ग्राम्य को बनाया गया था। एक परगना में अनेक गांव होते थे। ग्राम–प्रशासन का प्रधान मुखिया होता था वह सरकारी पदाधिकारी नहीं होता था परन्तु उसे स्थानीय प्रशासन की जिम्मेदारी सौपी गयी थी। मुखिया अन्य स्थानीय पदाधिकारीयों, **पटवारी, मुकद्दम**, एवं **चौकीदार,** की सहायता से अपने–अपने गांव में शान्ति की स्थापना करता, व लगान वसूल करवाता, अपराधों की रोक–थाम करवाता एवं अपराधियों को दंडित करता था। इसके अतिरिक्त स्थानीय स्तर पर शिक्षा, स्वस्थ्य एवं सफाई की व्यवस्था का उत्तरदायित्च भी स्थानीय अधिकारीयों पर था। शेरशाह ने इन स्थानीय अधिकारीयों के पद को कानूनी दर्जा प्रदान की तथा उनके विशेषाधिकारों की सुरक्षा की, परन्तु इसके साथ–साथ उन पर महत्वपूर्ण जिम्मेदारी भी डाल दी। शेरशाह की यह व्यवस्था अत्यन्त कारगर सिद्ध हुई और गांवों से अपराध मिल गया।

2.6 राजस्व–व्यवस्था एवं आर्थिक सुधार

शेरशाह ने राज्य की आर्थिक व्यवस्था को भी सुदृढ़ करने का प्रयास किया। वह इस बात को अच्छी तरह समझता था कि एक सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के अभाव मे कोई राज्यस्थायी एवं शक्शिाली नहीं हो सकता। इसलिए, उसने भूमि एवं राजस्व व्यवस्था मुद्रा एवं वाणिज्य–व्यापार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये।

2.6.1 भूमि एवं राजस्व–व्यवस्था

शेरशाह का राज्यकाल भू–राजस्व व्यवस्था और किसानों की स्थिति में सुधार के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। राज्य की आमदनी निश्चित करने एवं किसानों की दशा में सुधार लाने के लिए अनेक उपाय किये गये। राज्य की आमदनी का मुख्य स्रोत लगान ही था परन्तु इसके अतिरिक्त लवारिस सम्पत्ति व्यापारिक कर, टकसाल, नमक, चुंगी, जजिया, खुम्स से भी राज्य की आमदनी होती थी। राज्य को व्यापार–वाणिज्य, उपहार नजरानों एवं युद्ध में लुटी गई सम्पत्ति से भी आमदनी होती थी शेरशाह ने भू–राजस्व व्यवस्था एवं कृषि में सुधार के लिए अनेक उपाय किए। उसने भू–राजस्व व्यवस्था को लागू करते समय यह ध्यान में रखा कि प्रस्तावित व्यवस्था से न तो राज्य को ही हानी हो और न किसानों को अनावश्यक शोषण हो, शेरशाह का उद्देश्य ऐसी व्यवस्था को लागू करना था जिससे राज्य और किसान दोनों ही लाभाविन्त हो सके।

लगान की राशि निश्चित करने के उद्देश्य से शेरशाह ने राज्य के समस्त भूमि की माप कार्यवाई। सभी कृषि योग्य भूमि को उपज के आधार पर क्रमशः उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणी में विभक्त किया गया। तीनों प्रकार की जमीनों में प्रतिबीघा उपज के आधार पर उस भूमि की औसत पैदवार निश्चित की गई। उपज का–तिहाई भाग (1/3) लगान निश्चित किया गया। दरों की एक नई प्रणाली **'राय'** निकाली गई। जिसके अनुसार अलग–अलग किस्मों पर राज्य के भाग की दर अलग–अलग तय की गई। विभिन्न क्षेत्रों के बाजार भाव के अनुसार दर कीमत तय की गई। इस प्रकार, शेरशाह के अनुसार बीघेवार, जिन्सवार भूमि कर निश्चित की। किसानों को नकद अथवा जिन्स के रूप में लगान देने की छुट थी। लगान वर्ष में दोबार ली जाती थी। किसानों को लगान के अतिरिक्त, जरीबाना (भूमि की नाम के लिए) और महासिलाना (लगान कर्मचारीयों के वेतन के रूप में) भी देना पड़ता था। इसकी दर 2/ ½ से 5 प्रतिशत तक तय की गई थी।

शेरशाह के समय में लगान निश्चित करने के तीन प्रमुख प्रणाली थी – गल्लाबक्शी (बटाई) नश्क, मुकतई या कनकूत तथा नकद, जब्ती अथवा जमाई। गल्लाबक्शी अथवा बटाई तीन प्रकार की थी– खेत–बटाई, लंक–बटाई एवं रास–बटाई। खेत बटाई व्यवस्था के अधीन और सरकार में हो जाता था। लंक–बटाई मे अनाज को डंठलों से अलग किए बिना ही बांट लिया जाता था। रास–बटाई में अनाज को भूमि से अलग कर तब विभाजन किया जाता था। नश्क, मुकतई, अथवा कनकूत–व्यवस्था के अन्तर्गत खेत में खड़ी फसल को ही देखकर उपज का अनुमान लगा लिया जाता था तथा उसी के आधार पर लगान की राशि तय की जाती थी। राज्य एवं किसान के लिए सबसे सुविधाजनक व्यवस्था नगदी, जमाई अथवा जब्ती थी। इस व्यवस्था के अनुसार किसान और सरकार के बीच तीन वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए प्रतिबधं प्रतिवर्ष की दर से लगान की राशि निश्चित कर दी जाती थी।

शेरशाह ने भू–लगान अथवा राजस्व कर्मचारीयों को स्पष्ट आदेश दिया था कि लगान निर्धारित करते समय तो उदारता दिखाएं, परन्तु उसकी वसूली कठोरता पूर्वक करें। सैनिकों को भी आदेश दिये गये कि मार्ग में पड़ने वाले फसलों को नुकसान न पहुंचाए। प्रत्येक किसान को राज्य की ओर से पट्टा दिया जाता था, जिसमें निर्धारित लगान का ब्योरा रहता था। किसानों से इसकी काबूलियत भी लिखवाई जाती थी। राजस्व अधिकारीयों पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता था जिससे कि वह किसानों को परेशान नहीं करें। इन्हीं उद्देश्यों से अमिलों की बदली की नियमित व्यवस्था की गई। प्रत्येक गांव का पटवारी जमीन से सम्बन्ध दस्तावेजों को अपने पास रखता था। परगना की समस्त भूमिका विवरण कानूनगो के पास सुरक्षित रहता था।

2.6.2 मुद्रा – व्यवस्था में सुधार

राज्य की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से शेरशाह प्रचलित मुद्रा– प्रणाली में भी आवश्यक परिवर्तन किए। शेरशाह के राज्यारोहण के समय मुद्रा – प्रणाली में एकरूपता नही थी इसलिए सुल्तान बनते ही उसने प्राचीन सिक्कों का प्रचलन बन्द करवा दिया और विभिन्न धातुओं के निश्चित अनुपात के नए सिक्के ढलवाए। उसने शुद्ध चांदी के रूपये और तांबे के दाम ढलवाए। चांदी का दाम 180 ग्रेन का होता था इसमें शुद्ध चांदी की मात्रा 175 ग्रेन रखी गई। 167 ग्राम सोने की अशर्फी भी निकाली गई। इसके अतिरिक्त चांदी और तांबे के सिक्कों के मूल्य के आधे, चौथाई, आठवें और सातहवे भाग के छोटै सिक्के भी

चलवाए गये । इन सिक्को को सरकारी टकसाल में ढलवाए गये थे। सिक्को पर बादशाह का नाम और जिस टकसाल में उन्हें ढाला गया था उस स्थान का नाम अरबी भाषा में खुदवाया गया। शेरशाह के मुद्रा–सम्बंधी सुधारों की प्रशंसा करते हुए एडवर्ड टॉमस ने मत व्यक्त किया है,"शेरशाह के राज्काल मे भारतीय मुद्रा इतिहास में एक प्रमुख स्थान केवल टकसालों के किए गए सुधारों द्वारा ही प्राप्त नही किया, बल्कि पूर्वकालीन राजाओ की मुद्रा–व्यवस्था के उत्तरोत्तर ह्रास को रोककर उन सुधारों में से बहुतों को जारी करते हुए प्राप्त किया जिन्हें आनेवाले मुगल शासकों ने अपना बताया।"

2.6.3 व्यापार को प्रोत्साहन

शेरशाह ने व्यापार –वाणिज्य की प्रगति के लिए भी अनेक कदम उठाए। आवागमन के साधनों में सुधार एवं सरायों की स्थापना से व्यापारियों को अनेक सहूलियतें हुई। फलतः व्यापार का विकास भी हुआ। शेरशाह ने व्यापार पर लगाई जाने वाली अनेक चुंगियों को बन्द करवा दिया। अब व्यापारियों को सिर्फ दो स्थानों पर चुंगी देनी पड़ती थी। राज्य की सीमा में प्रवेश करते समय और बाजार में सामान बेचते समय। इससे व्यापारियों को अधिक लाभ हुआ। मापतौल के लिए मानक बटवारों का उपयोग करने को कहा गया। सामान में मिलावट करने वालों और जाली बटखरों के उपयोग करने वाले व्यापारियों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई। वस्तुतः शेरशाह ने जहां व्यापारियों को अनेक सुविधाएं प्रदान की , वहीं उसने व्यापारियों से उपभोक्ताओं की सुरक्षा की भी व्यवस्था की।

2.7 इस्लाम शाह (1445–53)

शेरशाह के आक्समिक मृत्यु के पश्चात अफगान सरदारों ने इस्लाम शाह को सिहांसन पर बैठाया। इस्लाम शाह का मूल नाम जलाल खां था और वह शेरशाह खां का दूसरा बेटा था। इस्लाम शाह को बचपन से उचित शिक्षा–दीक्षा प्रदान की गई थी। शेरशाह के शासनकाल में उसे अपनी सैनिक तथा प्रशासनिक गुणों को दिखाने का अवसर भी प्राप्त हुआ। शेरशाह की ओर से उससे 1531 ई0 में हुमायूँ के विरूद्ध चुनार के दुर्ग की रक्षा, 1537 ई0 में गौड़ के घेरे में तथा चौसा और कन्नौज के युद्धों में अपनी सैनिक योग्यता का उचित परिचय दिया था। शेरशाह के साम्राज्य विस्तार के कार्यों में भी उसने सक्रिय सहयोग दिया था। अनुमानतः इसका इस्लाम शाह ने अपने पिता के द्वारा की जाने वाली साम्राज्य की व्यवस्था और सुधार योजनाओं में भी सहयोग दिया होगा। इस प्रकार 1543 में अपने राज्याभिषेक के पूर्व ही इस्लाम शाह को सैन्य संचालन एवं प्रशासन सम्बन्धी प्रशिक्षण प्राप्त हो गया था।

इस्लामशाह अपने पिता के ही समान वीर सेनानायक से भिन्न था। शासक बनते ही उसने प्रतिशोध वंश कलिंजर के राजा कीरत सिंह और उससे साथ युद्वबंदी बनाए गए। अन्य लोगों की हत्या करवा दी। इसके पश्चात वह राजधानी आगरा पहुंचा। राजधानी पहुंचकर उसने सेना में पुरस्कार और नगद वेतन बांटे। अपनी निजी सेना के सैनिकों को उसने तरक्की दी जिससे पहले के अनेक साधारण सैनिक और अफसर अमीर वर्ग नाराज हो गया और इस वर्ग ने अनेक विद्रोह को प्रोत्साहन दिया। फलतः इस्लामशाह का अधिकांश समय और उसकी शक्ति इन विद्रोहों के दमन में लगी।

2.7.1 इस्लामशाह और आदिल खा

सुलतान बनने के बावजूद इस्लामशाह को सबसे अधिक खतरा अपने बड़े भाई आदिल खां से था। इस्लामशाह से असंतुष्ट कुछ अमीर भी आदिल खां को राज्य पर अधिकार करने के लिए उकसा रहें थे। अतः इस्लामशाह ने सबसे पहले आदिल खां से ही निबटने की योजना बनाई उसने आदिल शाह को एक धूर्तापूर्ण पत्र लिखते हुए आगरा आने का नियंत्रण दिया एवं उसकी सुरक्षा का वापस दिया आदिल जब आगरा पहुंचा।

तब इस्लाम शाह ने उसकी हत्या का षडयंत्र रचा। आदिल खां भागकर बयाना चला गया। इस्लाम ने उसे बयाना की गर्वनरी दे दी, जिसे उसने स्वीकार कर लिया, परन्तु आदिल खां की गतिविधियों पर अंकुश रखने के लिए खवास खां एवं ईसा खां नियाजी को भी बयाना में नियुक्त किया गया। इस्लामशाह इतने पर भी संतुष्ट नहीं हुआ। उसने पुनः आदिल खां की हत्या करने करने का षडयंत्र रचा जिसे खवास खां ने विफल कर दिया। इस घटना के बाद अपने समर्थन अमीरों की सहायता से आदिल खां ने विद्रोह कर

दिया परन्तु वह पराजित हुआ । बयाना से भागकर वह पन्ना चला गया जहां बुरी परिस्थितियों में उसकी मौत हो गई। आदिल खां के प्रमुख सहयोगी अमीर, खवांस खां एवं ईसा खां मेनात एवं वहां से कुमायूँ के राजा की शरण में चले गये।

2.7.2 अन्य अमीरों का दमन

आदिल खां से निजात पाने के पश्चात इस्लामशाह ने अन्य विद्रोही अमीरों के दमन का निश्चय किया। जिन अमीरों से उसे खतरा की आकांशा थी उन्हें उसने अपने रास्तें से हटा दिया। जलाल खां जलवानी और उसके भाई खुदादाद खां पर विद्रोहियों का साथ देने का आरोप लगाकर उनकी हत्या करवा दी गई। इसी प्रकार कुतुब खां ब्रहाजीत खां गौड़, जलाल खां नियाजी और आदिल खां के पुत्र महमूद खां को गिरफतार कर ग्वालियर के किले में बन्द करवा दिया गया। बाद में इन्हें विष देकर मार डाला गया। इस्लामशाह के इन कार्यों से अफगान अमीरों के दिलों में भय व्याप्त हो गया। जो सरदार इस्लामशाह के क्रोध से बच गये उन लोगों ने अपनी सुरक्षा के लिए विद्रोही का सहारा लिया।

2.7.3 नियाजी विद्रोही

अफगान सरदारों के विद्रोही में प्रमुख था नियाजी विद्रोही। नियाजी अफगान सुलमान के कृत्यों से अत्यन्त ही क्षुबध थे। इन लोगों ने सुलतान के अत्याचारों का सामने करने का निश्चय किया। विद्रोह का नेतृत्व हैबत खां नियाजी ने किया। वह पंजाब का गर्वनर था। उसने भाई सईद खां, जो आगरा से भागकर लाहौर पहुंचा था। एवं अन्य अमीरों की सहायता से विद्रोह कर दिया। वह पंजाब का स्वतंत्र शासक बन बैठा। खुतब एवं सिक्कों पर उसका नाम खुदवाया गया। वह दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए भी निकल पढ़ा। इस्लामशाह स्वयं विद्रोहियों को कुचलने के लिए आगे बढ़ा। अम्बाला के निकट दोनों सेवाओं की मुठभेड़ हुई। सुजात खां की सहायता से सुलतान ने विद्रोहियों पर विजय पाई।

हैबत खां नियाजी भागकर गक्खरों की शरण में पहुंचा। सुलतान की सेना ने गक्खा प्रदेश में भी विद्रोहियों का पीछा किया। हैबत खां वहां से भागकर कश्मीर पहुंचा और वही इसकी मृत्यु हो गई। इस्लामशाह ने गक्खा प्रदेश की सुरक्षा की व्यवस्था की, मानकोट का सुदृढ़ दुर्ग बनवाया और हुमायूँ के वापस आने की संभावना को कम कर दिया।

2.7.4 सुजात खां का विद्रोह

हैबत खां के दमन के पश्चात सुलतान ने सुजात खां की तरफ अपना ध्यान दिया सुजात खां मलवा का गर्वनर था। उसने नियाजी विद्रोह के समय सुलतान के प्रति स्वामी भक्ति प्रकट की थी परन्तु इस्लामशाह के शंकालु प्रवृत्ति से वह उसकी तरफ से पूर्णत्या संतुष्ट नहीं था एवं अपनी सुरक्षा के प्रयासों में लगा हुआ था। निजामियों के अम्बाला में पराजय के बाद जब वह आगरा पहुंचा तब उसकी हत्या का प्रयास किया गया। इसमे बादशाह का हाथ होने की आशंका कर वह सुलतान की अनुमति लिए बिना ही मालवा लौट गया। इस पर क्रुद्ध होकर इस्लामशाह ने मालवा पर आक्रमण कर दिया। सुजात खां सुलतान का मुकाबला किए बिना ही भाग खड़ा हुआ। बाद में उसने सुलतान की अधीनता पुनः स्वीकार कर ली। अतः मालवा का प्रान्त उसे फिर से सौंप दी गई।

2.7.5 खवास खां की हत्या

खवास खां, शेरशाह के समय का एक प्रमुख सरदार था। उसने आदिल खां का साथ दिया था। आदिल खां के पराजय के पश्चात उसने कुमाऊँ के राजा के यहां शरण ली थी।

इस्लाम खां ने खवास खां को उसकी सुरक्षा का आश्वासन देकर आगरा बुलवाया। मार्ग में ही संभल के नजदीक, वहां के गर्वनर ताज खां कारारानी द्वारा उसकी हत्या करवा दी गई। इस प्रकार क्रूरतापूर्वक इस्लामशाह ने अपने सभी प्रतिद्वंदियों एवं विरोधी सरदारों पर विजय पाई, परन्तु विद्रोह की भावना को सदैव के लिए समाप्त नहीं किया जा सका। खुले विद्रोह में असफल होकर सुलतान के विरोधियों ने उसकी हत्या का भी प्रयास किया, परन्तु भाग्यवंश उसकी हत्या की सभी प्रयास विफल रहें।

2.7 इस्लाम शाह के सैनिक अभियान

इस्लाम शाह में सैनिक प्रतिभा भी थी। सुलतान बनने के पूर्व ही वह अनेक सैनिक अभियानों में भाग ले चुका था। इस्लाम शाह के समक्ष सबसे बड़ी समस्या मुगलों के सम्भावित आक्रमण का खतरा था। हुमायूँ पुनः अपनी शक्ति संचित कर भारत पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था, परन्तु इस्लाम शाह के भय से वह भारत की सीमा पार करने का साहस नहीं जुटा पाया। 1553 ई0 में हुमायूँ सिन्ध की तरफ बढ़ा। वह कश्मीर के शासक की सहायता से भारत पर आक्रमण करना चाहता था। इस्लाम शाह उस समय बीमार था, परन्तु हुमायूँ की गतिविधियों की सूचना पाकर वह अपनी सेवा के साथ पंजाब की ओर बढ़ा। हुमायूँ इस्लाम शाह के आगमन की सूचना पाते ही अपनी भारत विजय की योजना त्याग कर काबुल लौट गया। इस्लाम शाह नें भारत पर मुगल आक्रमण की संभावना को विफल कर दिया। इस्लाम शाह नें कश्मीर के शासक मिर्जा हैदर को भी अपना मित्र बना लिया। उसने पूर्वी बंगाल पर अधिकार कर सूर साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया।

2.8 प्रशासनिक व्यवस्था

इस्लाम शाह एक कुशल शासन प्रबन्धक भी था, परन्तु राज्य और सुलतान के अधिकारों के प्रति उसकी अवधारणां शेरशाह से भिन्न थी। वह सुल्तान के हाथों में सारी शक्ति को केन्द्रित करना चाहता था। वह सुलतान के हाथों में सारी शक्ति को केन्द्रित करना चाहता था। वह सुलतान के पद को सारी शक्तियों का केन्द्र एवं सबसे अधिक प्रतिष्ठित मानता था। वह सभी अफगान सरदारों को अपना अधीनस्थ एवं अनुसार समझता था, इसलिये , सुलतान बनते ही उसनें अफगान सरदारों की स्वतंत्र प्रव्रत्ति पर निरंकुश नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। उनके प्रभाव को कम कर दिया गया एवं उनके अनेक अधिकारों और सुविधाओं को वापस ले लिया गया। उदाहरण स्वरूप, अफगान अमीर हाथी नहीं रख सकते थे , उनके पास नर्तकी नहीं रह सकती थी तथा लाल रंग के खेमों व्यवहार अमीर नहीं कर सकते थे।

2.10 सूरी सैनिक प्रशासन

शेरशाह ने द्वितीय अफगान साम्रज्य के निर्माण एवं इसकी सुरक्षा के लिए सैन्य संगठन पर विशेष ध्यान दिया उसने एक स्थाई एवं विशाल सेना का संगठन किया। उसको सेना प्रधानतः निम्नलिखित चार भागों में विभक्त भी।

2.10.1 घुड़सवार

इस भाग से सैनिक की संख्या अब्बास खां के अनुसार डेढ़ लाख थी। वह शेरशाह की सेना का सर्वशक्तिशाली विभाग थे। इसमें शेरशाह ने अधिकांश अफगानों की बहाली की थी।

2.10.2 पैदल सेना

ये प्रायः पायक के नाम से पुकारे जाते थे इस वर्ग के सैनिकों का महत्व अधिक नहीं था, किन्तु इनमें आधे तीरंदाज एवं बन्दूकची होते थे। मल्लयुद्ध एवं तलवार बाजी में भी इन्हें निपुणता रहती थी और वे सुलतान के अंग रक्षक, दुर्गरक्षक आदि भी बहाल किये जाते थे। 3– हस्थि सेनाः अब्बार खॉ के अनुसार शेरशाह की सेना के इस विभाग में हाथियों की संख्या लगभग पचास हजार थी।
अब्बास खां के अनुसार शेरशाह की सेना के इस विभाग में हाथियों की संख्या लगभग पचास हजार थी।

2.10.3 बन्दूकची अथवा तोपची सेना

घुड़सवार सेना के बाद यह शेरशाह की सेना का सबसे महत्वपूर्ण वर्ग था ,बन्दूकूचियों की संख्या लगभग चालिस हजार बताई जाती है। सेना का प्रधान सम्राट ही था, किन्तु सुविधा के लिए वह सेनापति की नियुक्ति किया करता था। सेना के सर्वोच्च सैनिक, प्रान्तीय शासकों, जागीरदारों एवं में अनेक महत्वपूर्ण सुधार लाए। इनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैः–

2.10.4 स्थाई सेना की व्यवस्था

शेरशाह ने एक_शक्तिशाली स्थायी केन्द्रीय सेना की व्यवस्था की पहले सुलतान को सेना प्रान्तीय शासकों एवं जागीरदारों के द्वारा मौका पड़ने पर भेज दी जाती थी। यह ठिक है कि सेना का वेतन एवं खर्चे शाही खजाने से ही दिये जाते थे, किन्तु ये सैनिक सुलतान के प्रति वफादार न होकर गर्वनरों अथवा

जागीरदारों को ही अपना स्वामी मानतें थे, और इन्ही के आदेश पर चलतें थे। ऐसी सामन्ती सेना पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता था।

अतः शेरशाह ने एक स्थायी केन्द्रीय सेना का संगठन किया जो सुलतान के आदेश पर साम्राज्य की सुरक्षा के लिए सदैव तैयार रहती थी।

2.10.5 सैनिकों को राज्य द्वारा वेतन देने की व्यवस्था

शेरशाह के पूर्व सेना सामन्ती व्यवस्था पर संगठित थी। सैनिकों को वेतन आदि देने के लिए जागीरें दी जाती थी, और प्रान्तीय शासक एवं जागीरदार इन्हीं जागीरों की आय से सैनिकों के वेतन का भुगतान करते थे। शेरशाह को यह सामन्तवादी व्यवस्था अच्छी नहीं लगी, क्योंकि सरदारों से मांगी जाने वाली सेना अदक्ष एवं अविश्वसनीय होती थी। अतः उसके राज्य की ओर से वेतन भोगी सेना का निर्माण किया। सैनिकों के वेतन का आंशिक भाग जागीरदारों के अंशदान तथा आंशिक रूप से शाही खजाने से नकद दिया जाता था।

2.10.6 व्यक्तिगत दिलचस्पी

शेरशाह सैनिक की बहानी, तरक्की एवं उनके वेतन के भुगतान में व्यक्तिगत दिलचस्ती लेता था। लेखकों के अनुसार वह नये सैनिकों की भरती खुद ही करता था, किन्तु इस विचार को पूर्ण रूप से नहीं मान लिया जा सकता है। इतना व्यापक कार्य एक व्यक्ति के द्वारा सम्भव नहीं हो सकता था, फिर भी इस बात की गुजांइश है कि वह स्थायी केन्द्रीय सैनिकों की बहाली स्वयं करता है। इस उददेश्य से उसनें बख्शी–ए–लशकर की नियुक्ति शुरू की जो उसे सहायता देता था। सैनिकों की बहाली एवं पदोन्नति उनके व्यक्तिगत गुणों पर की जाती थी, सिफारिश पर नहीं। सेना में अफगानों की संख्या सर्वाधिक थी, किन्तु अन्य जातियों के लोग यथा हिन्दू भी इसमें शामिल थे।

2.10.7 दाग एवं हुलिया की प्रथा

शेरशाह नें घोड़े के दागने की अलाउद्दीन की प्रथा को पुनः जारी किया। सरकारी घोड़ों पर दाग लगाने का उददेश्य यह था कि सैनिक अच्छे नस्ल के सरकारी घोड़े को बेच न सके अथवा उनको बदल न सके। इसके अतिरिक्त अलाउद्दीन की तरह उसने प्रत्येक सैनिक की हुलिया रजिस्टर में लिखवाया था

2.10.8 कठोर अनुशासन

शेरशाह इस तथ्य को भली–भांती जानता था। कि शक्तिशाली सेना के लिए कठोर अनुशासन अनिर्वाय था अतः उनके वेतन, पदोन्नती अथवा अन्य बातों से उदारता बरत कर भी उसने अनुशासन के मामले में कठोर दण्ड दिया।

2.11 सारांश

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में शेरशाह एक प्रतिभावान शासक के रूप में याद किया जाता है। एक वीर विजेता और योद्धा के रूप में शेरशाह की प्रशंसा तत्कालीन एवं आधुनिक इतिहासकारों ने की है। अफगानों की दुर्बल स्थिति को देखते हुए उसने अपने सीमित साधनों के बल पर ही उन्हें संगठित करने का प्रयास किया। अपनी अदम्य विरता और कूटनीतिज्ञता के बल पर वह शीघ्र ही मुगल बादशाह हुमायूँ को हिन्दुस्तान से बाहर छोड़कर स्वयं ही भारत का मालिक बन बैठा। पांच वर्षो की अवधि में ही उसने एक विशाल सामाज्य की स्थापना कर ली। उसने सिर्फ साम्राज्य की स्थापाना नहीं की बल्कि एक कुशल और सुदृढ़ प्रशासन द्वारा इसे स्थायित्व भी प्रदान किया। उसने राज्य की समृद्धी के लिए भू–राजस्व व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार किए व्यापार–वाणिज्य को प्रोत्साहीत दिया एवं मुद्रा–प्रणाली को व्यवस्थित किया। इन्हीं कार्यों की वजह से एक इतिहासकार ने तो उसे 'मुसलमान शासकों में सर्वश्रेष्ठ' माना है। अनेक इतिहासकार उसे' अकबर का मार्गदर्शक' भी मानते है।

इस प्रकार शेरशाह ने तत्कालीन सैन्य व्यवस्था के अनेक दोषों को सफलतापूर्वक दूर किया। इस क्षेत्र में उसने अलाउद्दीन का अनुसारण किया था। किन्तु, सेना की बहाली में धर्म एवं जाति–पाति के भेद–भाव को दूर कर उसने वास्तविक अर्थ में एक राष्ट्रीय सेना का निर्माण किया था और यहां वह

अलाद्दीन खिलजी से बहुत आगे था, सूर सेना की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि इसमें मुख्यतः अफगानों को, और एक विशेष जाति को ही स्थान दिया गया। फलतः शेरशाह के पश्चात सेना की स्वामिभावि सुलतानों प्रति न होकर अपने अफगान सरदारों के प्रति हो गई। इसनें अनेक विद्रोही को जन्म दिया। एवं अन्तः साम्राज्य के पतन के कारण बनी। इनत तमाम खामियों के बावजूद सूर सेना संगठित एवं सुदृढ़ थी। शेरशाह के पश्चात सुलतान के अक्षमता के कारण सेना में थोड़ी शिथिलता अवश्य आई।

इस्लाम शाह नें प्रशासन के क्षेत्र में भी कुछ सुधार किये। प्रशासन से संबद्ध अनेक कानून बनवाये गये, और उनका कड़ाई से पालन करने का आदेश दिया गया। प्रति शुक्रवार को सम्राज्य के प्रत्येक जिले में दरबार लगवाया जाता था। जहाँ इस्लाम शाह की आज्ञाएं पढ़ कर सुनाई जाती थी। उसने सैन्य व्यवस्था में भी परिवर्तन किए। उसने सेना का संगठन श्रेणीबद्ध बना दिया। मुगलों की मनसबदारी व्यवस्था का आधार आगे यही व्यवस्था बनी। उसने शेरशाह के ही समान अनेक सराय का भी निर्माण करवाया। तारिख –ए–पाऊदी का लेखक अब्दुललाह एवं इतिहासकार बदायूँनी इस्लामशाह की योग्यता की प्रशंसा करता है। इस्लामशाह में अनेक गुण थे। वह सैनिक एवं प्रशासनिक प्रतिभा का धनी व्यक्ति था बल्कि इसका विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण भी किया। उसने हुमायूँ को भारत लौटने का अवसर नहीं दिया। इस्लामशाह में अनेक गुणों के साथ–साथ कुछ अवगुण भी थें वह ईष्यालु, दंभी, एवं शंकाल–प्रवृति का व्यक्ति था। अनेक इतिहासकारो ने उसकी तुलना इब्राहिम लोदी से की है।

इस्लामशाह की नीतियां अन्ततः सूर साम्रज्य के पतन एवं मुगलों की पुर्नस्थापना के लिए उत्तदायी सिद्ध हुई।

2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

- शेरशाह जीवन एवं संघर्षो के बारे में उल्लेख कीजिये।
- शेरशाह एवं हुमायूँ के मध्य सत्ता संघर्षों का वर्णन कीजिये।
- शेरशाह के प्रशासनिक व्यवस्था की चर्चा कीजिये।
- शेरशाह का राजस्व प्रशासन एवं आर्थिक सुधार की समीक्षा करें।
- इस्लाम शाह का एक शासक के रूप में मूल्यांकन कीजिये।
- सूर शासन के पतन के प्रमुख कारणों का विश्लेषण कीजिये।
- सूर शासन के सैनिक प्रशासन पर एक नोट लिखिये।
- शेरशाह का द्वितीय अफगान साम्राज्य के संस्थापक के रूप में मूल्यांकन करें।

2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

ए0बी0 पाण्डे	–	मध्यकालीन भारत का इतिहास
हरिश्चन्द्र वर्मा	–	मध्यकालीन भारत – खण्ड–2
ए0एल0 श्रीवास्तव	–	मध्यकालीन भारत – (1000–1707)
बी0बी0 सिन्हा	–	मध्यकालीन भारत
जे0एस0 मेहता	–	मध्यकालीन भारत का वृहत, इतिहास–खण्ड–2
एल0पी0 शर्मा	–	मध्यकालीन भारत
कामेश्वर, प्रसाद	–	भारत का इतिहास (1526–1557)

मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार : अकबर एवं जहाँगीर

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए अकबर का प्रारम्भिक विजय
3.4 विद्रोही अमीरों एवं बागियों का दमन
3.5 अकबर की साम्राज्यवादी नीति
3.6 अकबर का राजपूताना क्षेत्रों की विजय
  3.6:1 मेड़ता विजय
  3.6:2 गोंडवाना विजय
  3.6:3 चित्तौड़ की घेराबन्दी और विजय
  3.6:4 रणथम्भौर विजय
  3.6:5 अन्य राजपूताना क्षेत्रों का समर्पण
3.7 अकबर का उत्तर भारत का विजय
  3.7:1 गुजरात विजय
  3.7:2 बिहार एवं बंगाल की विजय
  3.7:3 कश्मीर की विजय
  3.7:4 सिन्ध की विजय
  3.7:5 उड़ीसा का विजय
  3.7:6 बलुचिस्तान की विजय
3.8 अकबर की उत्तर पश्चिमी नीति
3.9 अकबर की दक्कन विजय
3.10 अकबर की धार्मिक नीति
3.11 अकबर की प्रशासनिक नीति
3.12 जहाँगीर का परिचय
3.13 जहाँगीर की राजपूत नीति
3.14 मेवाड़ के साथ सम्बन्ध
3.15 जहाँगीर की दक्कन नीति
3.16 कांगड़ा की नीति
3.17 कन्धार की पराजय
3.18 जहाँगीर की धार्मिक नीति
3.19 सारांश
3.20 अभ्यासार्थ प्रश्न
3.21 सन्दर्भित ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

सम्राट अकबर वास्तव में भारत मुगल साम्राज्य के वास्तविक संस्थापक था। उसने न सिर्फ एक विशाल मुगल साम्राज्य की स्थापना की बल्कि उसको स्थायित्व एवं सुदृढ़ता भी प्रदान की। उसने अपने पराक्रम और अदम साहस के बल पर अनेक क्षेत्रीय शासकों को पराजित कर एक विशाल एवं सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना की। अकबर और उसका उत्तराधिकार जहाँगीर ने

राजपूतों के साथ मित्रता एवं वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर मुगल राज्य की जड़ को और मजबूत बना दिया। जिन राज्यों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार करने से इंकार कर दिया उनके विरूद्ध सैन्य अभियान भी किए गये। विशाल सैनिक शक्ति एवं कुशल कूटनीति के आधार पर लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत मुगलों के अधीन आ गया था। अकबर एवं जहाँगीर ने धार्मिक उदारता का परिचय देते हुए यहां के मूल निवासियों का सहयोग एवं समर्थन प्राप्त किया जो साम्राज्य को दृढ़ता प्रदान करने में मील का पत्थर साबित हुआ।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि–

- अकबर ने किन–किन राज्यों के विरूद्ध सैनिक अभियान किये।
- अकबर ने किस प्रकार राजपूतों का समर्थन प्राप्त किया।
- अकबर ने मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए कौन सी नीति आपनाई।
- जहाँगीर ने अपने पिता से प्राप्त विशाल मुगल साम्राज्य को किस प्रकार बरकरार रखा।
- जहाँगीर के धार्मिक एवं राजपूत नीति ने किस प्रकार मुगल साम्राज्य को संगठित एवं सुदृढ़ बनाया।

3.3 मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए अकबर का आरम्भिक विजय

सिंहासन पर बैठने के समय अकबर राज्यविहीन राजा था। दिल्ली के सिंहासन तक पहुँचने के लिए उसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ा था। पानीपत की दूसरी लड़ाई में विजय प्राप्त करने के बाद ही दिल्ली और आगरा उसके नियंत्रण में आ सके थे। मई 1557 में मानकोट में सिकन्दर सूर द्वारा आत्मसमर्पण किए जाने के बाद ही पंजाब अकबर के प्रभाव में आ गया था। 1558–59 में ग्वालियर पर विजय पाई गयी और उसे मुगल साम्राज्य में शामिल किया गया। मुहम्मद आदिलशाह को पराजित किया गया और इस प्रकार 1559–60 में जौनपुर को अफगानी विद्रोहियों के चुंगल से मुक्त कराया गया। अकबर ने अब्दुल्ला खान उजबेग की कमान में एक नई सेना भेजी जिसने मालवा को उसके शासक बाज बहादुर से पुनः छीन लिया बाज बहादुर ने भागकर मेवाड़ के राजा उदय सिंह के दरबार में शरण ली। अकबर ने अब्दुल्ला खान को मालवा का सूबेदार नियुक्त कर दिया और उसका मुख्यालय माण्डु में रखा गया।

3.4 विद्रोही अमीरों और बागियों का दमन

अकबर एक जन्मजात योद्धा और महान नेता था। उसके भीतर साम्राज्यवाद की गहरी प्रवृतियां थी। तथापि सैनिक कारनामों की नियमित जीवनवृति अपनाने अथवा सम्राज्यवादी नीति की कल्पना करने से पूर्व उसे अपने विद्रोही अमीरों और सगे सम्बन्धियों से निपटना पड़ा था क्योंकि इन लोगों ने 1560 के दशक में उसकी सत्ता के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया था। पूर्वी भारत में अफगान विद्रोहियों के विरूद्ध खान जमान उजबेग के नेतृत्व में मुगल सेना भेजी गई और उसने इस पर विजय पायी तथा लूट की सामग्री प्राप्त की परन्तु उसने इसे अकबर को नहीं दिया। जब अकबर ने स्वयं जौनपुर के लिए कूच किया तब उसने सारी लूट की दौलत अकबर को लौटा दी। और अकबर ने उसे माफ कर दिया।

अब्दुल्लाह खान उजबेग को अकबर ने मालवा का सूबेदार नियुक्त किया था। मालवा प्रान्त अपनी उर्वरता सम्पदा और प्राकृतिक सनसाधनों से सम्पन्न होने के कारण षड़यंत्रकारियों और विद्रोहियों की जन्म स्थली बना हुआ था। कुछ ही वर्षों के भीतर अब्दुलाह खान ने अथाह सम्पत्ति संचित कर ली सेनाओं के आकार में वृद्धि कर ली। बाज बहादुर के शासन के समय के राजद्रोही अफगानी व्यक्तियों के साथ मेल मिलाप बढ़ा लिया और फिर विद्रोह का डंका बजा दिया। इस आशय की सूचना पाकर अकबर ने व्यक्तिगत रूप से मालवा के लिए कूच किया। पहली जुलाई 1564 को घमासान वर्षा के वाजजूद वह आगरा से रवाना हुआ और अब्दुल्लाह पर अचानक हमले का नेतृत्व किया। अब्दुल्लाह को पराजय का मुँह देखना पड़ा। अकबर ने कारा बहादुर खान को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया।

मालवा के विद्रोही सूबेदार अब्दुल्लाह खान उज़बेग ने गुजरात में शरण ली थी। वही से वह छिपता–छिपता जौनपुर चला गया जहां जौनपुर के सुबेदार खान जमान ने उसे संरक्षण प्रदान किया। उन्होंने अकबर के प्रति एक षड़यन्त्रकारी योजना बनायी। अनेक असंतुष्ट उज़बेग तथा अफगान अमीरों के साथ मिलकर उन्होंने 1565 में अकबर के विरूद्ध आम बगावत कर दी। विद्रोहियों का घोषित उद्‌देश्य अकबर का तख्ता पलटकर सिंहासन पर उसके स्थान पर मिर्ज़ा कामरान के पुत्र अबुल काज़िम को स्थापित करना था। सम्भल के प्रभावशाली मिर्जा भी इस मामले में विद्रोहियों के साथ हो गए। उनके विरूद्ध भेजी गई एक शाही सेना खदेड़ दी गयी। तब अकबर ने उनके विरूद्ध स्वयं मोर्चा संभाला। अकबर के लिए ऐसे दो मोर्चों पर जो कि एक दूसरे से अत्यधिक दूरी पर थे अपने दो शत्रुओं के साथ लड़ना कठिन था। उसने अपने भरोसे के अधिकारियों को यह आदेश दिया था कि वे उज़बेग विद्रोहियों के युद्ध के मैदान में उतरे बिना ही उन सतही तौर पर दबाव बनाए रखे और उनकी गतिविधियों पर निगाह रखे। स्वयं उसने आगरा और दिल्ली से नई सैनिक टुकडियां लेकर गुप्त रूप से पंजाब के लिए कूच किया।

अकबर के आगमन की सूचना मिलने पर मिर्जा मुहम्मद हाकिम हक्का–बक्का रह गया, उसने बहुत जल्दी लाहौर की घेराबन्दी हटा ली और खैबर की तरफ भाग खड़ा हुआ। शाही सेना ने सिन्धु नदी तक उसका पीछा किया। इससे पूर्व कि उज़बेगों को अकबर के पंजाब के लिए कूच करने का पता चले और वे मिर्जा मुहम्मद हाकिम के नाम से खुतवा पढ़े, अकबर के मार्ग में पड़ने वाली निदियों में जबरदस्त बाढ़ आ गई, गंगा घाटी में सेना की आवाजाही पर रोक लग गई। परन्तु अकबर हाथ पर हाथ रखकर बैठने वाला नहीं था। उसने इलाहाबाद के निकट मेकुवाल में स्थित उज़बेगों के शिविर पर अचानक हमला बोल दिया और उनके सैनिकों के बीच आतंक फैला दिया। खान जमान युद्ध में मारा गया जबकि उसके अनेक साथियों को बन्दी बना लिया गया और उन्हें कठोर दण्ड दिया गया। अबुल कासिम को भी मृत्यु दण्ड दे दिया गया। इस तरह विद्रोह को भी अकबर ने कुचल दिया।

3.5 अकबर की साम्राज्यवादी नीति

एक प्रभुसत्ता सम्पन्न शासक के रूप में शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लेने के बाद अकबर की पहली प्रेरणा यह थी कि वह अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार करे और भारत के पड़ोसी शासकों पर आधिपत्य जमा ले। विजय मार्ग पर चलने के लिए ही नहीं अपितु एक स्वतंत्र शासक के रूप में अपने खुद के अस्तित्व के खातिर भी उसके लिए युद्ध तत्परता पहली आवश्यकता थी। तत्काल निकटस्थ सरदारों पर उसकी प्रारम्भिक विजय तथा राजद्रोही अमीरों एवं सम्बन्धियों के विद्रोहों को सफलतापूर्वक कुचल देने से अकबर के भीतर सम्राज्यवादी भावनाएं जागृत करने के लिए अपेक्षित मात्रा में विश्वास उत्पन्न हो गया था। मुगल शासन

व्यवस्था के अधीन समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में एक सर्वशक्ति सम्पन्न सामुदायिक अथवा केन्द्रिय सरकार स्थापित करने के उद्देश्य से अकबर ने एक महत्वाकांक्षी योजना का विकास किया। देश का राजनीतिक एकीकरण तथा समूचे देश के भीतर सरकार की स्थापना उसके जीवन के लक्ष्य बन गए। उसकी सैनिक कार्यवाहियों का युग जिसकी शुरूआत 1560 में मालवा पर आक्रमण के साथ हुई और जिसका अंत 1601 में असीरगढ़ विजय के साथ हुआ भारत के सैनिक इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है। देश के राजनीतिक, एकीकरण तथा देशवासियों की राष्ट्रीय अखण्डता, जातिवाद अथवा धार्मिक तत्वों के लिए कोई भी स्थान नहीं था। बल्कि वे पूर्णतः उसकी राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित थी। अकबर की महत्वपूर्ण विजय यात्राओं, जिनके फलस्वरूप धीरे–धीरे उसके साम्राज्य का विस्तार हुआ था। का अध्ययन निम्नशीर्षों के अधीन किया जा सकता है।

3.6 अकबर का राजपुताना क्षेत्रों की विजय

अकबर आध्यात्मिक मनोवृति का व्यक्ति था। जनवरी 1962 में वह ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के दरगाह के दर्शन करने के लिए अजमेर गया। उसका रास्ता अम्बर (आज का जयपुर) के राजपूती राज्य से होकर गुजरता था। अम्बर के शासक राजा बिहारी मल कछवाहा ने अपनी स्थिति की सुरक्षा हेतु सांगनेर में अकबर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और स्वेच्छा से युवा शासक के साथ अपनी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। अकबर ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा उसके अजमेर से वापसी के समय अम्बर में विवाह सम्पन्न हुआ जिसमें अकबर के सभी संगी साथियों का बारात के रूप में स्वागत किया गया तथा खूब आवभगत की गई। अकबर अपने राजपूत सम्बन्धियों के अत्यन्त शालीन निष्ठापूर्ण तथा राजसी व्यवहार से अत्यधिक प्रभावित हुआ।

जब अकबर ने राजपूतों की तरफ से मित्रता का हाथ बढ़ाया उस समय वह सत्ता का स्वामी था। उन्हें अपने अधीन लाने के लिए उसने स्नेह और दण्ड नीति अपनाई अर्थात उसके एक हाथ में फूल और दूसरे हाथ में तलवार होती थी। उनमें से कुछ को जिन्होंने स्वेच्छा से अकबर के समक्ष समर्पण कर दिया था, शाही तंत्र का अंग बना लिया गया जबकि उनमें से अधिकांश अकबर से चौकन्ने रहते थे और अकबर ने उन्हें युद्ध क्षेत्र में शक्ति की परीक्षा करने और अपने निष्कर्ष स्वयं निकालने के बाद अवसर प्रदान किए।

3.6:1 मेड़ता विजय

अपने अजमेर प्रवास के दौरान अकबर ने अपने स्थानीय मुगल कमांडरों को मेड़ता के किले पर चढ़ाई करने के आदेश दिए थे। उस समय मेड़ता के किले पर जोधपुर के राव मालदेव के एक जागीरदार जयमल राठौर का कब्जा था। जयमल ने अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में मेड़ता की रक्षा के लिए बहुत बहादुरी से युद्ध किया। इस युद्ध में दोनों पक्षों के लोग बड़ी संख्या में हताहत हुए किन्तु अन्ततः मार्च 1562 में मुगलों ने मेड़ता पर विजय प्राप्त कर ली।

3.6:2 गोंडवाना विजय

1564 में अकबर ने गोंडवाना के हिन्दू राज्य पर जो कि आधुनिक मध्य प्रदेश का उत्तरी भाग था और जिसकी राजधानी चौरागढ़ थी अकारण हमले के आदेश दिए। उन दिनों इस राज्य को गढ़कटंगा तथा कटंगा दोनों मुख्यालयों का ऐतिहासिक महत्व था। उन दिनों इस राज्य पर महोवा की चन्देल राजकुमारी रानी दुर्गावती का शासन था जो अपने पुत्र वीर नारायण के लिए शासन की बागडोर थामे हुई थी। आक्रमणकारी मुगल सेना में आसफ खान की कमान में 50000 पैदल घुड़सवार फौज थी। जबकि रानी की कमान में 20000 सैनिक तथा 1000 युद्ध में लड़ने वाले हाथी शामिल थे। रानी दुर्गावती ने हमलावरों को आगे बढ़ने से रोका और जब

तक वह बुरी तरह से घायल तथा अक्षम नहीं हो गई तब तक दो दिनों तक बहादुरी से लड़ती रही। अपने सम्मान के रक्षा करने के लिए उसने स्वयं को छुरा घोप कर मार डाला।

3.6:3 चित्तौड़ की घेराबन्दी और विजय

गोंडवाना की विजय को मेवाड़ मारवाड तथा रणथम्भौर के दुर्जेय राजपूत शासकों द्वारा रोका नही जा सका। स्वभावतः इससे अकबर की उनके विरूद्ध आक्रामण युद्ध छेड़ने की योजना को बल मिल गया। सितम्बर 1567 में उसने अपनी सैनिक कार्यवाहियों में सबसे प्रसिद्ध और दुखद रूप से रोचक कार्यवाही मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ की घेरावबन्दी और विजय का संकल्प किया। मेवाड़ विजय के लिए अकबर ने बहुत व्यापक तैयारियां की थी। विशिष्ट अफगान सेनापतियों के दल से युक्त विशाल आक्रमणकारियों से सुसज्जित सेना की कमान अकबर ने स्वयं संभाली थी। अकबर की सेना 20 अक्टूबर 1567 को चित्तौड़ के बाह्य परिसर तक पहुंच गई थी। राजपूत सामन्तों की स्थिति की गंभीरता का एहसास था उन्होंने एक अकेले किले की खातिर अपने शासक उदय सिंह के प्राणों को खतरे में डालना उचित नहीं समझा क्योंकि उन्हें यह आशंका थी कि मुगलों के साथ उनका युद्ध लम्बे समय तक चलेगा। अतः उन्होंने राजा और परिवार तथा खजाने के साथ ही उसकी सर्वश्रेष्ठ सेना को अरावली पवर्तमाला के दुर्भेध जंगलों में सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया था। लगभग पांच माह तक चले इस युद्ध में अन्ततः राजपूतों की हार हुई और चित्तौड़ पर भी मुगलों का अधिकार हो गया।

3.6:4 रणथम्भौर विजय

विजय से प्रात्साहित होकर अकबर ने अप्रैल 1568 में राजपूतों के दूसरे दुर्दमनीयगढ़ रणथम्भौर पर आक्रमण करने के आदेश दिए। रणथम्भौर का शासक मेवाड़ के एक जागीरदार सुर्जनराय हाड़ा के हाथों में था। चित्तौड़ में प्राप्त अपने अनुभव के आधार पर मुगल सैनिकों ने फुर्ती के साथ किले की घेरावन्दी कर ली तथा अधिक मारधाड़ के बिना ही एक सबात का निर्माण कर लिया। घमासान युद्ध के 6 सप्ताह के भीतर सुर्जन राय ने शान्ति संधि की पेशकश की जिसे बड़ी उदार शर्तों पर मंजूर कर लिया गया।

3.6:5 राजपूताना क्षेत्रों का समर्पण

चित्तौड़ और रणथम्भौर के एक के बाद एक और बहुत जल्दी–जल्दी पतन के कारण उत्तरी भारत के सभी हिन्दू शासकों के ह्रदयों में आतंक बैठ गया था। विजयी मुगल सेनाओं का मनोबल ऊँचा बनाए रखने के उद्देश्य से अकबर ने बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक कालिंजर किले पर आक्रमण के आदेश दे दिए मजनू खान के नेतृत्व में मुगल सेना ने अगस्त 1569 में कालिंजर की घेराबन्दी कर दी। हल्के प्रतिरोध के बाद रामचन्द्र ने समर्पण कर दिया तथा उसे इलाहाबाद में एक जागीर दे दी गई। नवम्बर 1570 में दो राजपूत शासकों ने अम्बर के राजा भगवन दास के माध्यम से नागौर में अकबर का अधिपत्य स्वीकार कर लिया ये दो राजपूत शासक थे जोधपुर के मालदेव के पुत्र राजा चन्द्रसेन तथा बीकानेर के कल्याण मल। दिसम्बर 1570 में जैसलमेर के रावल हर राय ने भी मुगल शंहशाह की दासता स्वीकार कर ली और उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। इस प्रकार 1570 के अन्त तक मेवाड़ और इसके अधीनस्थ राज्य डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा प्रतापगढ़ को छोड़कर सारा राजपुताना मुगल राज्यक्षेत्र का अंग बन गया।

3.7 उत्तर भारत की विजय

अकबर ने उत्तर भारत विजय के अन्तर्गत निम्न क्षेत्रों पर अपना विजय परचम लहराया।

3.7:1 गुजरात विजय

गुजरात पर विजय की कल्पना अकबर ने राजस्थान में पैर जमाने के बहुत पहले ही की थी। वर्ष 1537 में बहादुर शाह की मृत्यु के समय से ही गुजरात आंतरिक विद्रोहों और सत्ता के लिए प्रतिद्वन्द्वि दावेदारों के बीच संघर्षों से ग्रसित था। वर्ष 1572 में गुजरात में कोई जमी हुई सरकार नहीं थी। इसका शासक मुजफ्फर शाह तृतीय अयोग्य और अलोकप्रिय था और करीब 6 सोमती अमीर उसकी सत्ता की अवज्ञा कर रहे थे। दिसम्बर 1572 में सनील के युद्ध में अकबर ने अपने विद्रोहियों को पराजित कर बडौदा चंपानेर व सूरत पर कब्जा कर लिया। गुजरात में नागरिक प्रशासन के सभी इंतजाम करने के बाद अकबर मार्च 1573 में सीकरी वापस लौट आया जहां उसकी विजय का उत्सव मनाया गया। इसी समय आगरा के पास सीकरी शहर की स्थापना हुई जहां शेख सलीम चिश्ती का घर भी था और जिसके कारण अकबर का इस स्थान से दिली लगाव भी था।

3.7:2 बिहार एवं बंगाल की विजय

बिहार एवं बंगाल शेरशाह के अधीन सूर साम्राज्य के गढ़ थे। उसकी मृत्यु के पश्चात् बिहार के अफगान सूबेदार सुलेमान कर्रानी ने स्वतंत्र राज्य की घोषणा कर दी उसने बंगाल एवं उड़ीसा को भी जीत लिया, टांडा में अपनी राजधानी बनाई थी। 1568 में उसे अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर किया गया। 1572 में उसकी मृत्यु के बाद उसका बड़ा पुत्र गद्दी पर बैठा जिसका नाम बयाजिद था। परन्तु सुलेमान द्वितीय के पुत्र दाऊद को सिंहासन पर बैठाया। अकबर को जब इस बात का का पता लगा तो उसने मुनीम खॉ को दाऊद को दंडित करने और बिहार को जीतने का फरमान जारी किया। मुनीम खॉ द्वारा बल प्रदर्शन के आधार पर दाऊद को संधि के लिए राजी कर लिया, पर शीघ्र ही उसने इसका विरोध कर दिया अतः अकबर ने स्वयं ही शाही फौज की कमान संभाली एवं अगस्त 1574 में पटना में दाऊद को पराजित किया। दाऊद की मृत्यु के साथ ही बंगाल की क्षेत्रीय स्वाधीनता समाप्त हो गयी।

3.7:3 कश्मीर की विजय

अकबर दीर्घ काल से कश्मीर घाटी को अपने नियंत्रण में लेने का स्वप्न संजोए हुए था। मुगल प्रभुत्ता को स्वीकार करने के लिए कहे जाने पर कश्मीर सुल्तान युसुफ खान ने 1581 ई. में अपने एक पुत्र के जरिए कूटनीतिक जबाव भेजा। लेकिन किसी कारण वश इस पर बात नहीं बन पायी। अकबर ने अपनी सेना को आदेश दिया कि हिमपात के दौरान और जब दुश्मन असावधान हो उन्हें पाकली मार्ग जहाँ हिमपात कम होता है से जाना चाहिए। विवश युसुफ खान ने इन शर्तों पर मुगल जनरलों से शांति संधि की, अब वह अकबर के नाम से सिक्के जारी करेगा और खुतबा पढ़ेगा और शाही अधिकारियों को कश्मीरी टकसाल, केसर की खेती, शाल निर्माण एवं घाटी में शिकार के विनियमन का प्रभार सौंपा जायेगा। वह और उसके सबसे बड़े पुत्र याकूब शहंशाह को व्यक्तिगत रूप से श्रंद्धाजलि अर्पित करने के लिए मुगल दूत के साथ गए। किन्तु अकबर ने कश्मीर घाटी को अपने साम्राज्य में मिला लेने का निश्चय कर लिया। अतः उसने कठोर मुद्रा अपना ली और युसुफ खान को हिरासत में ले लिया। याकूब को पकड़कर उसके पिता के साथ कैदी के रूप में बिहार भेज दिया गया।

3.7:4 सिंध की विजय

भाखर के द्वीप किले सहित ऊपरी सिंध को अकबर ने 1574 में ही जीत लिया था। सन् 1590 में उसने नवजवान दिलेर अब्दुल रहीम खान–ए–खाना को इस हिदायत के साथ मुल्तान का सूबेदार नियुक्त किया कि वह सिंधु नदी के मुहाने तक सिंध की विजय पूर्ण करें। इस प्रयोजन से उसे सौ हाथियों और तोपखाने की एक श्रृंखला समीत एक शक्तिशाली शाही फौज जिसमें

अनेक सैनिक अधिकारी थे दी गई। थट्टा के तुर्कमान सरदार मिर्ज़ा जानी बेग की शाही फौज ने थट्टा के किले में घेर लिया जबकि शाही फौज की एक टुकड़ी ने सहवान पर आक्रमण कर दिया। जानी बेग ने दो माह तक कड़ा मुकाबला किया किन्तु उसे बार–बार पराजय का मुंह देखना पड़ा और आत्म समर्पण करना पड़ा। अन्त में इसे भी मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

3.7:5 उड़ीसा का विलय

राजा मान सिंह काबुल से दरबार में वापिस बुला लिया गया और 1586 ई0 मे बिहार और बंगाल का शासन प्रबन्ध उसे सौप दिया गया। शहंशाह ने उसे उड़ीसा, जो उन दिनों लोहानी जाति के एक अफगान परिवार के नियंत्रण में था को जीतकर बंगाल की खाड़ी के किनारे–किनारे साम्राज्य की पूर्वी सीमाओं का विस्तार करने की सलाह दी। सन 1590 में मानसिंह ने उड़ीसा पर आक्रमण कर दिया और इसके शासक निसार खान को आत्म समर्पण करने के लिए विवश कर दिया। निसार ने नजराने के तौर पर समुद्र किनारे प्रसिद्ध हिन्दू जगन्नाथ मंदिर समेत पुरी के क्षेत्र समर्पित कर दिए। इन्हें खालसा में शामिल कर लिया गया। सन् 1592 में निसार खान ने शत्रुतापूर्ण रवैये का संकेत दिया जिसके कारण मानसिंह ने दूसरी बार चढ़ाई कर दी। विद्रोही पराजित हुआ तथा उड़ीसा को मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया गया।

3.7:6 बलुचिस्तान की विजय

मार्च 1586 में ही करीब आधे दर्जन बलुची सरदारों को शाही दरबार में उपस्थित होने और अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार कर लिया गया था। उत्तर–पश्चिम में मुगल साम्राज्य के विस्तार को प्रोत्साहन देने के लिए अकबर ने उन दिनों अफगानों द्वारा शासित बलुचिस्तान को जीतने हेतु मीर मासूम को तैनात किया। उसने उनके गढ़ सीबी जो क्वेटा के उत्तर–पूर्व में स्थित था, पर आक्रमण किया तथा कड़े युद्ध में उन्हें पराजित किया। साथ ही उसने राष्ट्रीय राजनीति की मुख्य धारा में शामिल होने पर शाही संरक्षण से होने वाले लाभों को महसूस कराने के लिए उन पर कूटनीतिक दबाव भी डाला। उसके प्रयास सफल हुए और इसके फलस्वरूप मकरान जो क्षेत्र कन्धार की सीमाओं तक समुंद्र के किनारे–किनारे था समेत पूरा बलुचिस्तान मुगल साम्राज्य का अंग बन गया।

3.8 अकबर का उत्तर–पश्चिमी नीति

मुगल साम्राज्य की वृद्धि और विस्तार के कारण अकबर धीरे–धीरे इसकी प्राकृतिक सीमाओं के प्रति सजग हो गया जिनकी विदेशी आक्रमणों अथवा घूसपैठों से रक्षा की जा सके। जहां हिमालय दीवार की तरह खड़ा था और उत्तर का एक संतरी थी वहीं उत्तर–पश्चिम में इसकी सुलेमान पर्वतमालाएं न केवल काफी नीची थी अपितु उनमें अनेक दर्रे थे जो भारतीय उपमहाद्वीप और मध्य एशियाई देशों के बीच सम्पर्क बनाए हुए थे। इसके अतिरिक्त खैरक, कुर्रम, टोची, गोमल एवं बोलन के विशाल दर्रे आर्यों और सिकन्दर से लेकर भारत में मुगल शासन के संस्थापक बाबर समेत तुर्कों और मंगोलों तक सभी विदेशी आप्रवासियों और आक्रमणकारियों के लिए भारत का प्रवेश द्वार के लिए काम करते थे। उत्तरी भारत के कुछ सफल तुर्की शासक भी इस स्थिति के प्रति सजग थे और इल्तुतमिश, बलबन व अलाउद्दीन खिलजी को मंगोल खतरे से उत्तर–पश्चिम सीमा की रक्षा के लिए विशेष उपाय करने पड़े थे। किन्तु मुगलों के साथ ऐसा नहीं था कि उनके समय में अफगानिस्तान भारतीय साम्राज्य जिसकी अंतराष्ट्रीय सीमाएं हिन्द कोह तक धकेल दी गई थी का ही एक अंग था। अकबर मध्यकाल का पहला भारतीय सम्राट था जिसने उनकी उपद्रवी आदतों पर अंकुश लगाने एवं

उनके पहाड़ी निवासों को शाही नियन्त्रण में लाने का गंभीर प्रयास किया। इस समस्या ने उसका ध्यान 1585 ई0 में खींचा जब मिर्जा मुहम्मद हकिम की मृत्यु होने पर अकबर ने काबुल को एक नियंत्रित स्त्रोत के रूप में अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसने प्रारूपी भारतीय सूबों अथवा प्रांतो के पैटर्न पर काबुल में नागरिक शासन और प्रशासन की संस्थाऐं स्थापित की। इसके अतिरिक्त लगभग उसी समय एक नया खतरा काबुल से बहुत आगे मुगल साम्राज्य की वास्तविक अंतर्राष्ट्रीय उत्तर–पश्चिमि सीमाओं पर पैदा हुआ। यह खतरा पार (तुरान) में अबदुल्लाह खान के नेतृत्व में उजबेगों जो मुगलों के पारंपरिक दुश्मन थे, के अभ्युदय के रूप में था। सन् 1584 ई0 में अबदुल्लाह खान ने बदख्शान से उसके मुगल सरदार सुलेमान मिजी को भगाकर उस पर कब्जा कर लिया सुलेमान मिजी अपने परिवार सहित भागकर अफगानिस्तान चला गया और मिर्जा मुहम्मद हाकिम के पास शरण ली। सुलेमान मिर्जा का नवजवान पौत्र शाहरूख, जो जनवरी 1585 ई0 में फतेहपुर सीकरी पहुंच गया था और एक मनसबदार बन गया था, ने अकबर को अबदुल्लाह खान और काबुल के उसके सर्मथकों से मुगल साम्राज्य को होने वाले वास्तविक खतरे की सूचना दी। काफी सोच–विचार के बाद अकबर ने एक वृहत और दीर्घ कालीन उत्तर–पश्चिमी सीमा नीति बनाई। इस नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अकबर ने साम्राज्य के नागरिक शासन का प्रभार फतेहपुर सीकरी में अपने विश्वस्त और अनुभवी मंत्रियों को सौंप दिया और स्वयं मार्च 1585 में शाही दरबार के साथ दिल्ली प्रस्थान किया। उसने जुलाई 1585 में लाहौर के लिए प्रस्थान किया और वहीं से उत्तर–पश्चिमी सीमा की ओर धीरे–धीरे शिकार का आनन्द लेते हुए चला। राजा मानसिंह शाही दल के आगे–आगे शाही फौज लेकर काबुल की ओर बढ़े और जुलाई–अगस्त 1585 में अफगानिस्तान को अपने प्रभावी नियंत्रण में ले लिया।

इसी बीच 1591 में अबदुलारहीम खान–ए–खाना ने सिंध को जीत लिया था और 1595 तक फारस और कन्धार के सीमांतो तक बलुचिस्तान को मुगल सेनाओं ने रौंद दिया। पूर्व में कन्धार हुमायूँ के राज्य का एक भाग था। इस बात का लाभ उठाते हुए कि फारसी दरबार के फारसी सूबेदार मुजफ्फर हुसैन मिर्जा के बीच तनावपूर्ण सम्बन्ध है, अकबर ने अपने गुप्तचरों के जरिए मिर्जा से सम्पर्क साधा और उसे अपने पक्ष में कर लिया इसके परिणामस्वरूप मुजफ्फर खान ने अपने फारसी स्वामियों को दगा देकर कन्धार का प्रभार मुगल अधिकारी शाहबेग को सौंप दिया। मुजफ्फर खान अपने परिवार सहित भारत चला आया।

अकबर के उत्तर–पश्चिमी अभियान के प्रारम्भ होने के समय तक तूरान के शासक अबदुल्लाह खान उजबेग का बदख्शान पर दृढ़ नियंत्रण हो चुका था। अतः अकबर ने उसे चुनौती देने का कोई प्रयार नहीं किया फिर भी वह उजबेग सरदार को अफगानिस्तान में घुसपैठ न करने की चेतावनी देने को बैचेन था। अतः अकबर ने अपने सैनिक जनरलों को उत्तर–पश्चिम में विशेषकर हिन्द कोट, (हिन्दकुश) के साथ सटे हुए अफगानिस्तान की अंतराष्ट्रीय सीमाओं को मजबूत और सुरक्षित करने का आदेश दिया। विशाल सेना में सुसज्जित सैनिक चौकियों की स्थापना और अंर्तराष्ट्रीय सीमाओं पर मुगल सैनिकों की तेज गतिविधियों के कारण अबदुल्लाह खान समझ गया कि अकबर हर स्थिति के लिए तैयार है। वस्तुतः सुदृढ़ उत्तर–पश्चिमी अभियान की अकबर द्वारा की गई पहल के कारण ही तूरान के साथ शांति स्थापित हो सकी। सन 1595 ई0 में कन्धार पर मुगलों द्वारा स्थापित नियंत्रण से अबदुल्लाह खान उजबेग बेहद भयभीत हो गया और उसने मुगल क्षेत्रों पर हमला करने के सारे विचार त्याग दिये। अकबर की महज एशियाई नीति के फलस्वरूप उसका दिमाग खराब नहीं हुआ, बल्कि इसने उसे

अधिकाधिक विनम्र सौम्य और अपने राज्य पर मजबूत पकड़ बनाए रखने एवं हाल में विजित क्षेत्रों में पूर्ण शांति और व्यवस्था कायम करने की उसकी चाहत में गंभीर बना दिया।

3.9 अकबर की दक्कन विजय

अकबर की साम्राज्यवादी नीति का मुख्य सार मुगल राजघराने के अधिराजत्व के अधीन भारत का राजनीतिक एकीकरण था। सन 1591 ई0 तक सिंध के सम्मिलन के बाद वह उत्तर का र्निविवाद स्वामी बन गया एवं उत्तर–पश्चिमी अभियान की उसकी उल्लेखनीय सफलता ने उसकी ख्याति और प्रतिष्ठा में चार चांद लगा दिए। सिंध में अपनी विजय के तुरन्त बाद अकबर ने अगस्त 1591 में लाहौर से चार कूटनीतिक मिशन दक्कन के चार प्रमुख क्षेत्रीय राज्यों, खानदेश अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा के लिए रवाना किए। खानदेश के सुल्तान राजा अलीखान जिसका राज्य मुगल साम्राज्य के ठीक दक्षिण में ताप्ती घाटी में था ने दिल्ली का अधिराजत्व स्वीकार कर लिया। सन 1593 ई0 के अंत में अकबर ने अहमदनगर को पराभूत करने के उद्देश्य से दो मुगल सेनाऐं रवाना की एक का नेतृत्व अब्दुल रहीम खाने–खाना कर रहा था और दूसरे का शहजादा मुराद था। शहजादा मुराद और खाने–खाना ने क्रमशः गुजरात और मालवा से अपनी–अपनी सेना लेकर प्रस्थान किया। वे अहमदनगर से करीब चालीस कोस दूर चंद में एक–दूसरे से मिल गए। नवम्बर 1595 में मुगल सेनाऐं आक्रमणकारी मिजाज में अहमदनगर के समीप पहुंच गई। मियां मंजू उनके रंग–ढंग से भयभीत हो गया और अहमदनगर किले को चांद बीबी के हाथों सौंपकर भाग गया। चांद बीबी ने 3 महीने से भी अधिक समय तक मुगल सेना का सामना किया लेकिन अंत में हार गयी और इस पर मुगलों का अधिकार हो गया।

इसके बाद अकबर ने बारी–बारी से खानदेश 1599 ई0 मे असीरगढ़ को 1601 ई0 में जीत लिए और उसकी दक्कन नीति सफल हुई। अकबर का सफल सैनिक जीवन जिसकी व्यावहारिक रूप से गुजरात में 1560 में मालवा के विरूद्ध सेना भेजने के साथ हुई थी असीरगढ़ की विजय के साथ समाप्त हो गया। अपने महान पितामह की भांति वह भी जन्मजात सैनिक और लोकनायक था और चार दशकों से भी अधिक समय तक पूरे जोश में तलवार थामें रहा और अपने सुनियोजित और निडरता से किए सैनिक अभियानों में लगभग हमेशा ही सफल रहा। उसका विशाल साम्राज्य 15 प्रांतो अथवा सूबों में विभक्त था जिनमें से अधिकांश का नाम उनके मुख्यालयों के नाम पर रखा गया था। पूरब से पश्चिम तक उत्तर के बारह सूबे बंगाल, बिहार, इलाहाबाद, अवध, आगरा, दिल्ली, लाहौर, मुलतान काबुल, अजमेर, मालवा और अहमदाबाद, दक्कन में मुगल क्षेत्र को तीन प्रांतों खानदेश, बरार व अहमदनगर में विभाजित किया गया था, उन तीनों का एक ही सूबेदार था। उड़ीसा बंगाल का एक सरकार जिला था जबकि उसी तरह कश्मीर व कंधार काबुल सूबा के सरकार माने जाते थे। बलुचिस्तान व सिंध मुलतान सूबे में शामिल थे।

3.10 अकबर की धार्मिक नीति

विभिन्न समुदायों के देश मध्यकालीन भारत में उसके लोगों के धार्मिक विश्वासों आचरणों में काफी भिन्नता थी। इस्लाम धर्म यहां दृढ़ता से जमा हुआ था और अल्पसंख्यक होने के बावजूद मुसलमानों की भारतीय सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था में प्रभावशाली स्थिति थी। अकबर मध्यकालीन भारत का पहला शासक था जिसने धार्मिक सहिष्णुता की नीति को धर्मनिरपेक्षता के शिखर तक पहुंचाया। उसकी राज्य नीति केवल भावनाओं एवं समान्योक्ति पर आधारित नहीं थी। देश की सामाजिक–राजनीतिक दशा ऐसी थी कि अकबर ने धार्मिक विषयों में स्वतंत्र विचार रखना उचित समझा। उसकी भारतीय प्रजा में गैर–मुस्लिम बहुसंख्यक थे।

उनका विश्वास और सक्रिय समर्थन जीते बगैर अकबर भारत में मुगल शासन को स्थापित और सुदृढ़ करने की उम्मीद नहीं कर सकता था। भारत मे इस्लाम जिसे यहां के अधिकांश लोगों ने अपनाने से अस्वीकार कर दिया था के आगमन के समय ही धर्म ने भारतीय समाज मे विभाजनकारी शक्ति की भूमिका अदा की थी। अकबर ने जटिल भारतीय सामाजिक–राजनैतिक व्यवस्था की अपकेंद्री प्रवृत्तियों को बखूबी समझा एवं धर्म को राजनीति से पृथक कर इन प्रवृत्तियों को खत्म करने का गंभीर प्रयास किया। इसके अतिरिक्त अकबर का खुद का कटु अनुभव था कि मात्र धार्मिक सादृश्य ही अपने अनुयायियों का प्रेम और प्रतिष्ठा पाने की गारंटी नहीं है। उसने अपने ही बेईमान और ईर्ष्यालु सगे–सम्बन्धियों के हाथों कष्ट भोगा था।

अकबर पूरी तरह अपने महत्वाकांक्षी और उप्रद्रवी मुस्लिम अमीरों जो प्रायः विद्रोह कर जाते थे और कभी–कभी तो उसकी जान लेने को उतारू हो जाते थे पर ही निर्भर कर सकता था। दूसरी ओर अकबर की अत्यंत समर्पित बुद्धिमती और सुसंस्कृत हिन्दू पत्नियों ने उसका प्यार जीत लिया और उनके सम्बन्धियों ने राजगद्दी के प्रति निस्वार्थ सेवा अर्पित कर उसकी कृतज्ञता जीती।

धार्मिक नीति के क्षेत्र में अकबर ने एक नई दिशा में प्रगति की। उसकी महानता उसकी धार्मिक नीति पर ही आधारित है। अकबर से पूर्व सल्तनत कालीन शासकों द्वारा उदार धार्मिक नीति का प्रदर्शन नहीं किया गया। अफगान शासकों मे मात्र शेरशाह ने इस दिशा मे कुछ प्रयास किया किन्तु एक पूर्ण उदार धार्मिक नीति का प्रारम्भ अकबर के शासनकाल में ही संभव हुआ। अपनी इस नीति से उसने सभी धर्मों एवं संप्रदायों के एकता व समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। अकबर की धार्मिक नीति का निर्धारण विभिन्न तत्वों द्वारा हुआ है। धार्मिक उदारता अकबर को विरासत के रूप में मिली थी। अकबर के पिता हुमांयूँ में भी उदारता एवं सहिष्णुता के गुण विद्यमान थे। अकबर के धार्मिक नीति को उदार बनाने में उसके शिक्षक एवं संरक्षकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। बायर्जाद, मुनीम खॉ, मीर अब्दुल लतीफ व मुल्ला पीर मुहम्मद जैसे उदार शिक्षकों का अकबर पर गहरा प्रभाव पड़ा। इनमें मीर अब्दुल लतीफ अत्यंत उदार थे जिनका अकबर पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। इन्हीं से अकबर ने सुलह–ए–कुल अर्थात सर्वत्रिक भाईचारा का ज्येष्ठ सिद्धांत सीखा। अकबर का संरक्षक बैरम खां भी अत्यंत उदार एवं सहिष्णु था जिसका प्रभाव अकबर के ऊपर पड़ा।

अकबर की धार्मिक नीति को भक्ति एवं सूफी संतो ने भी प्रभावित किया। वह सूफीवाद की चिश्तिया शाखा के अधिक निकट था। तथा शेख सलीम चिश्ती के प्रति उसमें अपार श्रद्धा थी। सूफी विद्वान शेख मुबारक तथा उसके पुत्र अबुल फजल एवं फैजी ने भी अकबर की उदार मनोवृत्ति के विकास में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। शेख मुबारक 1573 ई0 में गुजरात विजय के बाद अकबर के सम्पर्क में आया। इसके अतिरिक्त अकबर स्वयं उदार प्रवृत्ति का व्यक्ति था धर्म एवं जाति का भेदभाव किए बिना प्रजा के कल्याण को ही वह ईश्वर की सच्ची उपासना मानता था। इसी से प्रभावित होकर 1562 ई0 में युद्ध बंदियों को दास बनाने तथा बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार कराने पर प्रतिबंध लगा दिया। 1562 ई0 में अकबर ने अम्बर की राजपूत राजकुमारी हरकाबाई से विवाह किया। इसका राजनैतिक एवं धार्मिक परिणाम महत्वपूर्ण रहा। वह हिन्दु धर्म के सम्पर्क में आया तथा प्रवाहित होकर उन्हें अनेक सुविधाऐं प्रदान की। वह स्वयं मथुरा की यात्रा की तथा 1563 ई0 तीर्थयात्रा कर समाप्त कर दिया। 1563 ई0 मे ही पंजाब में गौ हत्या पर प्रतिबंध लगा दिया। बाद में राजपूतों से संघर्ष के दौरान इस कर को पुनः लगा दिया गया तथा अन्तिम रूप से 1579 ई0 में उसने इसे समाप्त कर दिया। अपनी धार्मिक नीति के परिणामस्वरूप अकबर ने अपने समय के भारतीयों को न केवल राजनीतिक

बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक नेतृत्व प्रदान किया और मुगल साम्रज्य को सुदृढ़ एवं विस्तृत किया।

3.11 अकबर की प्रशासनिक नीति

अकबर भारत में मुगल वंश तथा प्रशासन का वास्तविक संस्थापक था यह पद्धति प्रभुसत्ता सम्पन्न तथा इस्लामी राज्यतंत्र के उन परम्परागत मुस्लिम संकल्पना से मूलभूत रूप से भिन्न थी जिसके मुख्य प्रतिमान बगदाद के अब्बासिद खलीफाओं तथा मिस्र के खलिफाओं ने स्थापित किए थे। अकबर ने विरासत में एक इस्लामी राजतंत्र प्राप्त किया था जो अमीर–उल–मोमनिन के रूप में निरपेक्ष शासक के व्यक्तित्व के चारों ओर परिक्रमा लगाता था उसने राज्य की परम्परागत इस्लामी सिद्धांत की सभी आवश्यक विशेषताओं को सुरक्षित रखा। इसलिए अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों के बाद अकबर ने राज्य नीति के उपकरण के रूप में इस्लामी कानून की सर्वोच्चता को पुर्नगठित किया। तथा मुगल कुलीन वर्ग उल्मा से विश्वास का रक्षक एवं अनुयायियों का नेता के रूप में श्रद्धा प्राप्त की थी। अकबर ने साहस के साथ अपनी सभी जनता जिसमें संयोग से गैर–मुस्लिमों का बहुमत था, का निरपक्ष शासक होने के अपने दावे को दृढ़तापूर्वक रखा।

अकबर ने राज्य सिद्धांत अपनी अर्न्तवस्तु और कार्य क्षेत्र दोनों दृष्टियों से क्रांतिकारी थे और वे मुस्लिम के इस्लामी राज्य की संकल्पना के प्रतिकूल एवं धर्मनिरपेक्ष राज्य के पक्षधर थे। अकबर की हिन्दू जनता इस सिद्धांत के पक्ष में थी और मुस्लिम जनता में से अधिसंख्यक लोगों ने अनिच्छापूर्वक ही इस सिद्धांत को स्वीकार किया था। ऐसे महान विचारों के लिए अपने ध्यान में रखते हुए अकबर ने मुगल शासन के समूचे प्रशासनिक संरचना में आमूलचूल परिवर्तन ला दिए। एक व्यवहार कुशल राजनीतिज्ञ तथा एक महान प्रशासक होने के नाते अकबर ने राजतंत्र के एक–एक पक्ष पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। अकबर सच्चे अर्थों में मुगल शासन तथा प्रशासन प्रणाली का संस्थापक था। इसने उसके जीवन काल में देश की धरती में बहुत गहरी जड़े जमा ली थी और उसके शाही उत्तराधिकारियों के शासनकाल के दौरान एक शताब्दी से भी अधिक समय तक इसी रूप में बना रहा और मुगल शासन के सुदृढ़िकरण एवं विस्तारीकरण में एक अहम भूमिका निभाता रहा।

3.12 जहाँगीर का परिचय

अकबर के दो पुत्र हसन और हुसैन बाल्यावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। उसका तीसरा बेटा सलीम जो नूरूद्दीन जहाँगीर के नाम से गद्दी पर बैठा था। जहाँगीर 30 अगस्त 1569 राजपूत शकी मरियम–उज–जमानी के गर्भ से से हुआ जो राजा बिहारीमल की पुत्री थी। अकबर ने अपने बच्चों के पालन पोषण में गहरी दिलचस्पी ली उसने राजकुमारों को सैन्य प्रशिक्षण और शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध शिक्षकों और सेना नायकों को नियुक्त किया। कुछ भी हो उसके श्रेष्ठ प्रयासों के बावजूद उसका कोई भी पुत्र उसकी तरह बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्ति न बन सका। अकबर के सभी तीनों जीवित पुत्रों ने जवान होने पर उस युग की बुराइयों को ग्रहण कर लिया और शबाव एवं शराब के आदि हो गए। राजकुमार मुराद की मृत्यु के कारण मई 1599 में हुई जबकि दनियाल एक शारीरिक और मानसिक क्षति से अप्रैल 1604 में मर गय। युवराज सलीम भी लापरवाही से रहता था फिर भी वह अपने बेहतर शरीर के कारण अत्यधिक तनाव का सामना कर सका। बादशाह बनने के बाद जहाँगीर ने मुगल साम्राज्य के सुदृढ़िकरण तथा विस्तारीकरण के लिए जो प्रयास वह मुगल शासक अकबर के समान तो नहीं लेकिन फिर भी उसने इस परम्परा को अपनाते हुए मुगल साम्राज्य दृढ़ता और शक्ति प्रदान की।

3.13 जहाँगीर की राजपूत नीति

जहाँगीर ने अपने प्रभावशाली पिता की भाँति राजपूत नीति को ईमानदारी पूर्वक अपनाया। राजपूत राजकुमारी का पुत्र अपने धार्मिक दृष्टिकोण में अत्यंत उदार तथा खुले विचारों वाला व्यक्ति था उसने अपने पिता की राज्य नीतियों का तक्रसंगत निर्णय से पालन किया। यह कहना गलत नहीं होगा कि अकबर द्वारा परिश्रम से विकसित की गई मुगल नीति के मूल तत्वों ने जहाँगीर तथा शाहजहाँ के शासक काल के दौरान ही स्वादिष्ट फल प्रदान किए थे। गुरू अर्जुन देव के बारे में जहाँगीर अपने संस्मरणों में जो कठोर टिप्पणी की है उसमें धार्मिक असहिष्णुता की गंध आती है, वह टिप्पणी लगता है एक क्रोधी तानाशाह की अपवाद स्वरूप निकली भड़ास थी जिसका स्वयं का ही अस्तित्व अपने ही पुत्र के विद्रोह के कारण खतरे में पड़ गया था। जहाँगीर ने इसके बाद धार्मिक असहिष्णुता की भावना का प्रदर्शन फिर कभी नहीं किया। उसने अपनी प्रजा को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की तथा गैर–मुस्लिमों पर जजिया या सामाजिक–धार्मिक प्रतिबंध लगाने का बिल्कुल भी प्रयत्न नहीं किया। खुर्रम घटना पर राजा मान सिंह के साथ उसके सम्बंधों की विरक्ति से हिन्दुओं विशेषकर राजपूतों की ओर जहाँगीर की नीति या दृष्टिकोण में कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा।

अपने पिता की तरह जहाँगीर ने भी कई राजपूत राजकुमारियों से विवाह किया था और राजपूत शासक घरानों के साथ स्नेहपूर्ण संबंध बनाये रखे। जहाँगीर का उत्तराधिकारी राजकुमार खुर्रम का जन्म एक राजपूत राजकुमारी से हुआ था जो जोधपुर के राजा उदयसिंह की पुत्री थी। उसका राजदरबार में राजपूत दरबारियों तथा सैन्य प्रमुखों का शक्तिशाली गुट था। उसका राजदरबार विभिन्न समुदायों के विद्वानों कलाकारों तथा सैन्य प्रमुखों से पहले की भांति ही सुशोभित था और हिन्दुओं के लिए असैन्य तथा सैन्य सेवाओं के दरवाजे पूर्णतः खुले थे।

3.14 मेवाड़ के साथ सम्बन्ध

जहाँगीर के पदारोहण के समय मुगल साम्राज्य मेवाड़ के साथ युद्धग्रस्त था। यह भ्रम चारों तरफ फैला था कि स्वतंत्र मेवाड़ का अस्तित्व अंशतः स्वयं उसकी बेवकूफी के कारण ही था। क्योंकि अपने राजकीय जीवन में उसने उसको अधीन करने के अपने पिता के आदेश को मानने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार मेवाड़ की जीत जहाँगीर के लिए सम्मान का विषय बन गई। तदनुसार उसने पदारोहण के तुरंत बाद ही अपने दूसरे पुत्र राजकुमार परवेज के नियंत्रण में मेवाड़ की ओर एक सैनिक टुकड़ी भेजा। इस अभियान का मुख्य लक्ष्य राणा अमर सिंह था। देवार दर्रे पर राज सैनिकों तथा राणा के मध्य खूनी किन्तु अनिर्णायक युद्ध हुआ। मेवाड़ के राजपूतों के मध्य मतभेद उत्पन्न करने के उद्देश्य से मुगलों ने सागर को अपने आश्रित के रूप में चित्तौड़ नियुक्त किया यद्यपि लोगों ने अपने राणा के रूप में विश्वासघाती को स्वीकार नहीं किया और शीघ्र ही सागर को चित्तौड़ खाली करना पड़ा। 1608 से 1615 के बीच जहाँगीर ने मेवाड़ के विलय के लिए करीब चार सैनिक अभियानों को भेजा। 1608 में महाबत खान के नेतृत्व में, 1609 में अब्दुल्लाह खान के नेतृत्व में, 1611 में मिर्जा अजीज कोका तथा राजकुमार खुर्रम के नेतृत्व में 1613 में जहाँगीर ने खुद अपनी निगरानी में मेवाड़ के विरूद्ध अविराम सैन्य कार्यवाही का विचार बनाया। उसने अपना मुख्यालय अजमेर स्थानांतरित कर दिया और अपनी सम्पूर्ण सेनाओं को घरफूंक की नीति अपनाई उसने शहरो को विध्वंस कर दिया गांवों को मिट्टी में मिला दिया। राजपूतों द्वारा सुरक्षित तथा बाधित क्षेत्रों को अवरूद्ध कर दिया गया। इन क्षेत्रों में सभी प्रकार की बाह्य आपूर्तियों को बंद कर दिया गया यहां तक कि इन क्षेत्रों में आने जाने–वाले जलमार्गों को बंद कर उनकी दिशा को भी

परिवर्तित कर दिया गया। मेवाड़ में अकाल तथा महामारी फैल जाने से स्थिति और अधिक खराब हो गई। परिणामतः मेवाड़ के लोगों की हिम्मत टूट गयी तथा अपनी बर्बादी से भयभीत हो गये। अतः 1615 में राणा ने अपने मामा शुभकरण को मुगलों के साथ सम्मानजनक शर्तों पर शांति समझौता करने हेतु भेजा। राजकुमार की सिफारिश पर सम्राट ने मेवाड़ के साथ अति उदार शर्तों पर शांति समझौता किया और मेवाड़ मुगल साम्राज्य कें अधीन आ गया।

3.15 मुगल साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण एवं विस्तारीकरण के लिए जहाँगीर की दक्कन नीति

अपने पिता की तरह जहाँगीर भी सम्पूर्ण दक्षिण भारत को जीतने के लिए समर्पित था ताकि देश में राजनीतिक एकता पूर्ण हो सके। इस प्रकार यह अकबर की नीति की निरन्तरता थी जिसमें दक्षिण के समस्त क्षेत्रीय राज्यों से आक्रामक युद्ध की कल्पना की गई थी। 1608 में जहाँगीर ने अब्दुल रहीमखान–ए–खाना के हारे हुए क्षेत्रों को अहमदनगर से पुनः प्राप्त करने की आज्ञा दी किन्तु मलिक अम्बर के शक्तिशाली प्रतिरोध के सामने वह कुछ भी करने में असफल रहा। 1610 में परवेज को दक्कन का सूबेदार नियुक्त कर अहमदनगर पर आक्रमण करने के लिए कहा गया, किन्तु उपलब्धि कुछ भी नहीं हुई। 1616 में अहमदनगर को रौंदने के लिए साम्राज्यवादियों द्वारा हर प्रकार की व्यवस्थाऐं की गई। राजकुमार खुर्रम ने राजनैतिक शक्ति से मलिक अम्बर के साथ समझौता स्थापित करने में अपनी विशिष्ट कूटनैतिक दक्षता का परिचय दिया। मुगलों की भयानक युद्ध की तैयारी तथा उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा को देखकर मलिक अंबर 1617 में शांति समझौता करने पर सहमत हो गया। समझौता बहुत ही उदार शर्तों पर हुआ तथा अहमदनगर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

3.16 कांगड़ा की जीत 1620 ई0

1584 में अकबर ने कश्मीर घाटी पर विजय प्राप्त की थी। उत्तरी–पूर्वी पंजाब में कांगड़ा का दुर्ग अभेद माना जाता था। अकबर ने कांगड़ा दुर्ग पर अधिकार करने के लिए खाने जहाँ को नियुक्त किया किन्तु वह सफल नहीं हुआ। जहाँगीर ने कांगड़ा विजय का निश्चय किया। इस उद्देश्य से उसने 1615ई0 में लाहौर के सूबेदार मुर्तजा खां को कांगड़ा अभियान के लिए नियुक्त किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। तत्पश्चात् यह दायित्व 1618 में शाहजादा खुर्रम को सौंपा गया। खुर्रम ने कांगड़ा दुर्ग का घेरा डाला तथा दुर्ग में रसद पहुंचने के सभी मार्ग को अवरूद्ध कर दिया। 14 माह के घेराबंदी के बाद 16 नवम्बर 1620 ई0 को किले पर मुगलों का अधिकार हो गया।

3.17 कन्धार की पराजय 1622 ई0

साम्राज्यिक मुगलों और फारस के बीच काफी लंबे समय तक कंधार झगड़े का विषय रहा। अकबर ने अपनी कूटनीतिज्ञ दक्षता द्वारा 1595 में इसे फारसी नियंत्रण से प्राप्त किया था, हालांकि फारसियों ने इस पराजय से समझौता नहीं किया था। राजकुमार खुसरों के विद्रोह के समय फारस के शाह अब्बास ने कंधार पर आक्रमण किया किन्तु बलपूर्वक इन पर विजय पाने में असफल रहा तथा क्षमापूर्वक जहाँगीर की ओर समझौतावादी भाव अपनाया। मुगल सम्राट को प्रसन्न करने के उद्देश्य से 1607 से 1621 के बीच बहुमूल्य उपहारों के साथ उसने चार शिष्टमण्डल आगरा भेजे, तथापि जहाँगीर की अयोग्यता तथा राज्य के मामलों से विमुख होने का लाभ उठाकर 1622 में कंधार पर अचानक आक्रमण कर दिया और इसे अपने नियंत्रण में ले लिया। इस समय तक नूरजहां ने शाहजहाँ के विरूद्ध षडयंत्र रचना शुरू कर दिया था। उसने राजकुमार को कंधार अभियान पर नेतृत्व के लिए जहाँगीर से आज्ञा प्राप्त की किन्तु राजकुमार ने ऐसा करने से इंकार कर दिया और बदले में विद्रोह का झण्ड़ा उठा लिया। इससे

फारसियों को अपने नये क्षेत्रों को एकीकृत करने में सफलता मिल गई तथा कंधार मुगल साम्राज्य के नियंत्रण से निकल गया।

3.18 जहाँगीर की धार्मिक नीति

धार्मिक नीति के क्षेत्र में जहाँगीर ने अपने पिता का ही अनुकरण किया तथा सुलह–ए–कुल की नीति को कार्यन्वित रखा। उसका पालन पोषण एक उदार वातावरण में हुआ था। वह ईश्वर में विश्वास करता था तथा अपने धर्म की मुख्य बातों का पालन करता था। हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाइ सभी धर्मों के मानने वालों को राज्य की ओर से सुविधाऐं प्राप्त थीं। जहाँगीर अपने पिता अकबर की भांति हिन्दु धर्म के प्रति सहिष्णुता की नीति को अपनाया। उसके समय में हिन्दू राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त हुए तथा उनके ऊपर कोई अतिरिक्त कर नहीं लगाया गया। वह हिन्दुओं के त्योहारों में खुद भाग लेता था। जहाँगीर ने 1612 ई0 में पहली बार रक्षा बन्धन का त्योहार मनाया तथा अपनी कलाई पर राखी बँधवायी। जैनियों के प्रति जहाँगीर ने कुछ कठोर कदम अवश्य उठाया किन्तु उन्हें जैन धर्म को मानने में कोई बांधा उत्पन्न नहीं की। गुजरात के जैनियों को दण्ड़ित करने के दो कारण बताए जाते हैं पहला कारण था कि श्वेताम्बर जैनियों के नेता मानसिंह ने खुसरो के विद्रोह के समय यह भविष्यवाणी की थी कि दो वर्ष के अंत तक साम्राज्य का अन्त हो जाएगा किन्तु कुछ समय बाद यह आदेश वापस ले लिया। दूसरा कारण नैमिकता का था। जैन भक्तों की बहु–बेटियां मंदिरों में रहने वाले जैन यात्रियों से मिलती थी। 1617 में जहाँगीर ने जैन मंदिरों को बन्द करने तथा जैन यात्रियों को साम्राज्य से बाहर निकालने का आदेश दिया किन्तु यह आदेश क्रियान्वित नहीं किया जा सका। इसी तरह की नीतियां उसने ईसाई, सिख व सूफी सम्प्रदायों के लिए अपनाई जो मुगलवंश के साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण तथा विस्तारिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

3.19 सारांश

निःसन्देह अकबर एवं जहाँगीर भारत में मुगल साम्राज्य का विस्तार के साथ–साथ इसे सुदृढ़ संगठित भी बनाया। इन शासकों ने जहां अपनी साम्रज्यवादी नीति का पालन करते हुए एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया वहीं इसको सुदृढ़ बनाने हेतु उदार धार्मिक नीति का भी पालन किया। राजपूतों के साथ मित्रता एवं वैवाहिक सम्बन्ध ने इसमें और दृढ़ता प्रदान कर दी। प्रशासन को सुदृढ़ बनाने हेतु अनेक उपाय किए गये स्थानीय लोगों का सहयोग लिया गया तथा व्यवसाय को चुस्त–दुरूस्त किया गया। राजपूत नीति के माध्यम से शासक वर्ग का सहयोग भी प्राप्त हुआ। अकबर की विस्तारवादी नीति का उसके पुत्र जहाँगीर ने भी जारी रखा। उसने कांगड़ा, कंधार, अहमदनगर एवं मेवाड़ को अपने अधीन लाया। अकबर द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था को और अधिक मजबूत बनाया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अकबर और जहाँगीर की उदार धार्मिक नीति एवं सहिष्णुता के भाव ने नव स्थापित मुगल साम्राज्य को भारत में अत्यधिक दृढ़ता प्रदान की। अब मुगलों को चुनौती देने वाले राजपूत स्वंय ही मुगल साम्राज्य के संरक्षक एवं कर्णधार बन चुके थे।

3.20 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अकबर का जीवन परिचय तथा उसकी धार्मिक नीति का वर्णन कीजिए ?
2. अकबर की सैन्य अभियान एवं विभिन्न विजयों का अवलोकन कीजिए ?
3. अकबर की साम्राज्यवादी नीति का मूल्यांकन कीजिए ?
4. अकबर की राजपूत नीति का वर्णन कीजिए तथा इसमें कितना सफल रहा इसका विश्लेषण कीजिए ?

5. जहाँगीर का जीवन परिचय देते हुए जहाँगीर की राजपूत नीति की व्याख्या कीजिए ?
6. जहाँगीर की दक्षिण नीति का वर्णन कीजिए ?

3.21 सन्दर्भ–ग्रंथ

1. हरीश चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत खण्ड–2
2. जे. एल. मेहता, मध्यकालीन भारत का वृहत इतिहास खण्ड–2
3. बिपिन बिहारी सिन्हा, मध्यकालीन भारत
4. एल. पी. शर्मा, मध्यकालीन भारत
5. सतीश चंद्र, मध्यकालीन भारत
6. आर्शिवादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास

मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार : शाहजहाँ एवं औरंगजेब

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देष्य

1.3 खुर्रम का उत्कर्ष

1.4 उत्तराधिकार का संघर्ष

1.5 राज्यारोहण

1.6 शाहजहाँ के शासन की प्रमुख घटनाएँ

- 1.6.1 जुझार सिंह का विद्रोह
- 1.6.2 खानजहाँ लोदी का विद्रोह
- 1.6.3 पुर्तगालियों का दमन

1.7 शाहजहाँ का सैनिक अभियान

1.8 शाहजहाँ की आरम्भिक सफलताएँ

1.9 शाहजहाँ की मध्य एषियाई नीति

- 1.9.1 कांधार का अभियान
- 1.9.2 शाहजहाँ का बल्ख अभियान

1.10 शाहजहाँ की दक्कन नीति

- 1.10.1 अहमदनगर पर आक्रमण
- 1.10.2 बीजापुर से संघर्ष

1.11 शाहजी द्वारा निजामषाही को पुनर्जीवित करने का प्रयास

1.12 बीजापुर पर आक्रमण

1.13 गोलकुंडा के साथ संधि

1.14 औरंगजेब के आरम्भिक सेना अभियान

- 1.14.1 उत्तर–पूर्वी तथा पूर्वी भारत
- 1.14.2 पुर्तगालियों का दमन
- 1.14.3 पलामू पर अधिकार

1.15 औरंगजेब की दक्षिण नीति

- 1.15.1 दक्षिण राज्यों से युद्ध के कारण
- 1.15.2 बीजापुर से संघर्ष
- 1.15.3 जयसिंह का अभियान

1.16 बीजापुर की आंतरिक राजनीति में मुगलों का हस्तक्षेप

1.17 बीजापुर का पतन

1.18 गोलकुंडा पर अधिकार

1.19 निष्कर्ष

1.20 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.21 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1: प्रस्तावना

शाहजहाँ और औरंगजेब मुगल वंश के दो महान शासक थे। जिनके शासनकाल में मुगल साम्राज्य का काफी विस्तार हुआ। उन्होंने साम्राज्य के विस्तार के साथ प्रशासन को भी सुदृढ़ किया। शाहजहाँ दक्षिण के राज्यों को अपने नियंत्रण में लाया तथा कंधार को पुनः ईरानियों से वापस लेने की कोशिश की एवं बल्ख पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। अन्य मुगल सम्राटों की भांति औरंगजेब भी एक साम्राज्यवादी शासक था। उत्तराधिकार के युद्ध से उत्पन्न अशांत राजनीतिक अव्यवस्था का लाभ उठाकर साम्राज्य के विभिन्न भागों में स्थानीय शासक स्वतंत्र होने का प्रयास कर रहे थे। इसलिए, सबसे पहले औरंगजेब ने उन स्थानों पर ही मुगल सत्ता पुनः सुदृढ़ करने का प्रयास किया। कालांतर में उसे राजपूतों, सिक्खों, मराठों एवं दक्षिण के राज्यों से लंबा संघर्ष करना पड़ा। अनेक समस्याओं के बावजूद औरंगजेब साम्राज्य को संगठित एवं सशक्त रखने में सफल रहा।

1.2: उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि

- शाहजहाँ का उत्कर्ष व उत्तराधिकार का संघर्ष।
- शाहजहाँ के शासन की प्रमुख विशेषताएँ।
- औरंगजेब का आरम्भिक सेना अभियान।
- औरंगजेब की दक्षिण नीति।

1.3: खुर्रम का उत्कर्ष

शाहजहाँ अथवा खुर्रम की महानता और सफलताओं का परिचय हमें जहाँगीर के शासनकाल में ही मिल जाता है। डॉ0 सक्सेना के शब्दों में, "जहाँगीर का शासनकाल मुख्यतः राजकुमार खुर्रम द्वारा प्राप्त ओजस्वी विजयों का इतिहास है'। उसका आकर्षक व्यवहार, आचरण के कठोर कर्तव्य–परायणता तथा दुरदयनीय साहस इन सब गुणों के कारण उसे जीवन में सफलता मिलना निश्चित था। उसे कभी अवसर की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वह स्वयं उसके पास आ गया।" इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि डॉ0 सक्सेना के मत युक्तिसंगत है, क्योंकि खुर्रम ने अपने पिता के शासनकाल में मेवाड़, दक्षिण के क्षेत्र, कांगड़ा आदि के अभियानों में अपार सफलता हासिल की और उसने एक परिपक्व, कुशल तथा योग्य सेनानायक के रूप में अपना परिचय दिया। इन सफलताओं के बाद खुर्रम राजनीतिक क्षैतिज का एक उदीयमान नक्षत्र समझा जाने लगा।

जहाँगीर ने 1614 ई0 में मेवाड़ के राणा के विरूद्ध खुर्रम को मोर्चा लेने के लिए भेजा। मेवाड़ में इसके पूर्व अन्य अनुभवी सेनानायक विफल हो चुके थे। खुर्रम को मेवाड़ में असाधारण सफलता मिली और वहां राणा अमर सिंह ने आत्मसर्मपण कर दिये। मेवाड़–विजय ने खुर्रम की ख्याति में चार चांद लगा दिया। यह खुर्रम के जीवन की पहली महान विजय थी। खुर्रम की योग्यता को देखकर 1616–17 ई0 में जहाँगीर ने शहजादे परवेज के स्थान पर दक्षिण में युद्ध–संचालन का भार उसे सौंपा। इसी समय उसे शाह की उपाधि भी प्रदान की गयी। खुर्रम ने अपनी योग्यता, चातुर्य तथा कूटनीति के बल पर मलिक अम्बर को बालाघाट लौटने तथा अहमदनगर एवं अन्य दुर्गों को मुगलों को समर्पित कर देने के लिए बाध्य कर दिया। इस पर जहाँगीर बहुत खुश हुआ और मुगल दरबार में खुर्रम की कूटनीति तथा चतुर राजनीति की धाक जम गयी। सम्राट ने खुर्रम के इन प्रषंसनीय सेवाओं के बदले में उसे उपहारों तथा उपाधियों के अतिरिक्त गुजरात की सूबेदारी भी 1616 ई0 में प्रदान कर दी। इसी वर्ष खुर्रम ने कांगड़ा के विरूद्ध ओजस्वी विजय प्राप्त की। दक्षिण में शान्ति–सुव्यवस्था स्थापित कर 1617 ई0 में खुर्रम दक्षिण को छोड़कर वापस चला आया था। किन्तु इसी बीच एक ओर मुगल अधिकारियों के भ्रष्टाचार तथा आपसी फूट और दूसरी ओर मलिक अम्बर का साहस, चतुराई और परिश्रम के कारण

दक्षिण के ऊपर से मुगलों का नियंत्रण ढीला पड़ गया। अतः 1621 ई0 में खुर्रम को दूसरी बार दक्षिण जाना पड़ा। इस बार भी खुर्रम ने आत्मसाहस और परिश्रम के द्वारा इस क्षेत्र में पुनः मुगलों की शक्ति को स्थापित कर दिया। इस समय तक खुर्रम की शक्ति और प्रभाव साम्राज्य में बहुत अधिक बढ़ गये।

1.4: उत्तराधिकार का संघर्ष

जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् भी नूरजहाँ इस बात के लिए प्रयत्नशील रही कि शासन में उसका प्रभुत्व पूर्ववत् स्थापित रहे। उसने अपने दामाद शहरयार को भावी सम्राट बनाने के उद्देश्य से अधिकाधिक सैनिकों को इकट्ठा करने का और जल्द–से–जल्द लाहौर से उसके पास आ जाने का सलाह दिया। दूसरी ओर नूरजहाँ का भाई आसफ खाँ भी उतना ही अधिक सचेत था। उस समय उसका दामाद खुर्रम जिसे वह सम्राट बनाना चाहता था, दक्षिण में था। अतः उसने सोचा कि राजधानी में उपद्रवों को रोकने के लिए उपाय करना तथा दाराशिकोह, शाहशुजा और औरंगजेब को जो उस समय नूरजहाँ के महलों में हो, अधिकार में करना आवश्यक है। उसने संकल्प किया कि कुछ दिनों के लिए खुसरो के पुत्र दबारबख्श को सिंहासन पर बैठा दिया जाय। इसी समय नूरजहाँ ने आसफ खाँ को चालाकी से अपने पास बुलाकर उसे कैद करने का षड्यंत्र किया, किन्तु आसफ खाँ ने बहाने बनाये और वह उससे मिलने नहीं गया। उसने बनारसी नामक एक हरकारे को जहाँगीर की मृत्यु की सूचना शाहजहाँ के पास पहुंचाने के लिए भेजा। आसफ खाँ ने दवारबख्श को सम्राट घोषित किया और अमीरों के एक बड़े गुट को अपने पक्ष में कर लिया।

1.5 राज्यारोहण

इसी बीच शहरयार ने भी लाहौर में अपना राज्याभिषेक करवाया। लाहौर तथा वहां के राजकोष पर भी उसने अधिकार कर लिया। अमीरों एवं सैनिकों को अपने पक्ष में करने के उद्देश्य से उसने पानी की तरह पैसे बहाये। आसफ खाँ शहरयार को कुचलने के उद्देश्य से शक्तिशाली सेना के साथ लाहौर की ओर बढ़ा। लाहौर से लगभग छः मील की दूरी पर दोनों पक्षों की सेनाओं के बीच टक्कर हुई। शहरयार के सैनिक आसफ खाँ की सेना के सामने न टिक सके और तितर–बितर होकर भाग खड़े हुए। शहरयार ने भागकर जहाँगीर के रणवास में शरण ली, किन्तु उसे पकड़ लिया गया और एक कैदी के रूप में उसे दवारबख्श के समक्ष उपस्थित किया गया। उसे अन्धा बनाकर तहीमुरस तथा हुसंग के साथ कारावास में डाल दिया गया। जब इस विजय की सूचना खुर्रम को मिली तो उसने अपने श्वसुर को इन राजकुमारों को दवारबख्श सहित मौत के घाट उतार देने का आदेष दिया। आदेषानुसार, दवारबख्श सहित सभी राजकुमारों का वध कर दिया गया और आसफ खाँ की सर्वसम्मति से खुर्रम को लाहौर में सम्राट घोषित कर दिया गया और उसके नाम से खुतबा पढ़ा गया। 4 फरवरी, 1628 ई0 को खुर्रम ने आगरे में प्रवेष किया और शाहजहाँ के नाम से वह मुगल सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। इस अवसर पर उसने 'अबुल मुजफ्फर सिहाबुद्दीन मुहम्मद साहब फिरानेशानी' की उपाधि धारण की।

1.6 शाहजहाँ के शासन की प्रमुख घटनाएँ

आंतरिक विद्रोह

गद्दी पर बैठते ही शाहजहाँ को अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। इनमें प्रमुख थे। दक्षिण में खानजहाँ लोदी का विद्रोह (1629–31 ई0) और बुंदेलखंड का विद्रोह (1628–35 ई0)।

1.6.1: जुझार सिंह का विद्रोह

गद्दी पर बैठते ही शाहजहाँ को बुंदेला सरदार जुझार सिंह के विद्रोह का सामना करना पड़ा। वह वीर सिंह का पुत्र था जिस पर जहाँगीर की विशेष कृपा थी। 1627 ई0 में अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् जुझार सिंह ओरछा का राजा बना।अपने राज्य की जिम्मेदारी अपने पुत्र विक्रमादित्य को सौंपकर वह स्वयं आगरा दरबार में बादशाह के पास चला आया। ओरछा में विक्रमादित्य के व्यवहार से आम जनता और मुगल पदाधिकारी परेषान हो गए। अतः शाहजहाँ का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। अब्दुल

हमीद लाहौरी की बादशाहनामा से ज्ञात होता है कि जब शाहजहाँ ने अधिकारियों को आदेष दिया कि वे वीर सिंह बुंदेला द्वारा अनुचित ढंग से एकत्र किए गए धन की जाँच करें तो जुझार सिंह ने अपने आपकों अपमानित महसूस किया। उसे भय भी हुआ। अतः, आगरा छोड़कर वह ओरछा चला गया और युद्ध की तैयारी करने लगा। महावत खाँ ने उसे परास्त कर दिया। उसने बादषाह से क्षमा माँग ली तथा हर्जाने के रूप में धन दिया। शाहजहाँ ने उसे दक्षिण के युद्ध में सहायता करने को भेज दिया। 1634 ई0 में जुझार सिंह ओरछा वापस लौटा और पुनः अपनी शक्ति बढ़ाकर उत्पात मचाने लगा। उसने मुगल अधिकृत राज्य गोंडवाना के दुर्ग चौरागढ़ पर आक्रमण कर वहाँ के राजा से इसे छीन लिया और राजा की हत्या करवा दी। मृत राजा के पुत्र के फरियाद करने पर शाहजहाँ ने उसे दुर्ग मुगलों को सौंप देने एवं 10 लाख रूपए, राजकोष में जमा करने का आदेष दिया। जुझाार सिंह ने इस आज्ञा की अवहेलना की। अतः, औरंगजेब को सेना के साथ भेजा गया। मुगल सेना द्वारा पीछा किए जाने पर मार–काट मचाता, दुर्गों को नष्ट करता हुआ वह दक्षिण की ओर भागा। मुगल सेना के सामने बुदेंल बिखर गए। स्वयं जुझार सिंह और उसका पुत्र विक्रमादित्य (विक्रमजीत) गोंडो के द्वारा मार डाले गए।

1.6.2: खानजहाँ लोदी का विद्रोह

शाहजहाँ के शासन काल में दूसरा महत्वपूर्ण विद्रोह खानजहाँ लोदी का हुआ। वह एक अफगान अमीर था। उसका पिता दौलत खाँ लोदी अकबर के अधीन एक पदाधिकारी था। खानजहाँ ने जहाँगीर की भी सेवा की थी। उसे 5000 का मनसब दिया गया था। बाद में वह गुजरात और दक्कन का सूबेदार भी बनाया गया। वह स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने का सवप्न देख रहा था। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने के पूर्व की विषम परिस्थितियों को देखते हुए उसने अपनी इच्छा पूरी करने का प्रयास किया। उसने 30,000 रूपयों में बालाघाट का मुगल इलाका अहमदनगर के निजामषाह को बेच दिया, एक सेना इकट्ठी की और मालवा पर चढ़ाई की योजना बनाई। इस समय तक शाहजहाँ सम्राट बन चुका था। अतः खानजहाँ ने सम्राट से माफी मांग लेने में ही अपनी भलाई समझी। शाहजहाँ ने उसकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उसे क्षमादान दिया। इतना ही नहीं, उसे पुनः दक्कन की सूबेदारी सौंपी गई, लेकिन उसे बालाघाट निजामशाह से वापस लेने को कहा गया। खानजहाँ ने इस कार्य में ढिलाई की, अतः शाहजहाँ ने उसे दरबार में बुलवा लिया और दक्कन की सूबेदारी महावत खाँ को सौंपी।

खानजहाँ कुछ दिनों तक आगरा में शांत और निष्क्रिय रहा परंतु अपने विद्रोही स्वभाव के वशीभूत होकर वह पुनः आगरा से भाग निकला। शाहजहाँ ने उसका पीछा करने के लिए सेना भेजी। बुंदेलखंड में पराजित होकर वह पुनः दक्षिण की ओर भागा। अहमदनगर के सुल्तान की सहायता एवं संरक्षता प्राप्त कर वह मुगलों से संघर्ष की तैयारी करने लगा। शाहजहाँ इस विद्रोह को दबाने के लिए 1629 ई0 में स्वयं दक्षिण की ओर बढ़ा। उसने मराठों को अपने पक्ष में मिला लिया। शाहजी भौंसले (षिवाजी के पिता) भी अहमदनगर की नौकरी छोड़कर शाहजहाँ के साथ मिल गए। खानजहाँ को तीन ओर से घेरकर उस पर आक्रमण किया गया और अनेक स्थानों पर उसे पराजित किया गया। अहमदनगर ने भी उसका साथ छोड़ दिया। खानजहाँ को बाध्य होकर उत्तर की ओर भागना पड़ा। पंजाब पहुँचकर वह अफगानी की सहायता से पुनः अपनी शक्ति संगठित करना चाहता था, परंतु उसकी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। मुगल सेना ने उसके पुत्रों और संबंधियों को पकड़ लिया और उनकी हत्या कर दी। उत्तर प्रदेष के बाँदा जिला स्थित सिहोदा नामक स्थान पर खानजहाँ युद्ध करता हुआ। 1631 ई0 में मारा गया। इस प्रकार, अफगान एक बार पुनः मुगलों द्वारा निर्णायक रूप से पराजित कर दिए गए।

1.6.3: पुर्तगालियों का दमन

शाहजहाँ को बुंदेलों और अफगान विद्रोह के अतिरिक्त पुर्तगालियों की ओर भी ध्यान देना पड़ा। पुर्तगाली पूर्वी बंगाल में भी बड़ी संख्या में बसे हुए थे। उन्हें नमक के व्यापार का एकाधिकार प्राप्त था जिसके बदले वे शाही राजकोष में प्रतिवर्ष 10,000 टंका देते थे। मुगल सामान्यतः उनके शांतिपूर्ण कार्यों

में हस्तक्षेप नहीं करते थे। चटगाँव, हुगली इत्यादि में पुर्तगाली बस्तियाँ थीं। पुर्तगाली व्यापार के साथ कैथोलिक संप्रदाय का प्रचार भी करते थे। इस प्रक्रिया में वे बल का भी प्रयोग करते। ये स्थानीय निवासियों को पकड़कर ईसाई बनाते, उनके गाँवों पर आक्रमण कर उन्हें लूटते एवं लोगों को पकड़ कर बेच देते अथवा धनराशि लेकर ही मुक्त करते। चटगाँव के पुर्तगाली समुद्री डाका भी डालते थे। स्थानीय मुगल अधिकारियों ने इस तरफ ध्यान नहीं दिया था। शाहजहाँ को जब इन घटनाओं की सूचना मिली तो उसने उनके दमन का निष्चय किया।

शाहजहाँ पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसने धार्मिक भावनाओं के वशीभूत होकर पुर्तगालियों का दमन किया, परंतु पुर्तगालियों से सहायता माँगी थी जो उसे नहीं मिली। इसके अतिरिक्त शाहजहाँ के सम्राट बनने पर पुर्तगालियों ने उसे नजराना भी नहीं दिया था। इन कारणों से पुर्तगालियों से सम्राट व्यक्तिगत तौर पर भी नाराज था। इसी समय पुर्तगालियों ने मुमताज महल की दो बांदियों सहित उनकी नौकाओं का अपहरण कर लिया। बाध्य होकर शाहजहाँ ने पुर्तगालियों की धृष्टता के लिए उन्हें दंडित करने का निष्चय किया। बादषाह के आदेश पर बंगाल के गवर्नर कासिम खाँ ने जल और स्थल मार्गों से हुगली पर आक्रमण कर दिया। पुर्तगालियों ने युद्ध एवं शांति की नीति का सहारा लिया, परंतु वे निर्णायक रूप से 1632 ई0 में पराजित हुए। हुगली पर मुगलों का आधिपत्य स्थापित हो गया। पुर्तगाली शहर छोड़कर भागने लगे। हजारों पुर्तगाली मारे गए एवं हजारों स्त्री–पुरूषों को बंदी बना लिया गया। पुर्तगालियों की कैद से हजारों बंदियों को मुक्त करवाया गया। बंदी ईसाइयों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने को बाध्य किया गया। इनकार करने पर अनेकों की हत्या करवा दी गई। उनके गिरजाघर नष्ट कर दिए गए। शाहजहाँ द्वारा पुर्तगालियों का दमन राजनीतिक कारणों से उचित था, परंतु उनके विरूद्ध धार्मिक उन्माद का प्रदर्षन उचित नहीं था।

1.7ः शाहजहाँ का सैनिक अभियान

शाहजहाँ में अपूर्व सैनिक क्षमता थी। बादशाह बनने के पूर्व ही उसने इसका पर्याप्त परिचय दिया था। गद्दी पर बैठने के बाद आंतरिक कठिनाईयों पर विजय प्राप्त कर उसने साम्राज्य की ओर ध्यान दिया। उसकी सैनिक गतिविधियों का केंद्र मध्य एशिया और दक्कन था। उसने कांधार को पुनः वापस लेने का प्रयास किया एवं अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुंडा पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। इन कार्यों में उसे उसके योग्य सरदार महावत खाँ और अपने तृतीय पुत्र औरंगजेब से पर्याप्त सहायता मिली, परंतु इन सैनिक अभियानों से शाहजहाँ को कोई विशेष लाभ नहीं हो सका। इन महत्वपूर्ण अभियानों के अतिरिक्त शाहजहाँ के समय में कुछ छोटे–मोटे अभियान भी हुए।

1.8ः शाहजहाँ की आरंभिक सफलताएँ

शाहजहाँ ने उत्तर–पूर्वी भारत के अनेक छोटे राजाओं ओर जमींदारों को जो मुगल अधीनता को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, मुगलों की अधिसत्ता स्वीकार करने को बाध्य कर दिया। मालवा में भागीरथ भील और भरवी गोंड को क्रमषः 1632 और 1644 ई0 में मुगलसत्ता स्वीकार करने को बाध्य किया गया। 1642ई0 में पलामू के राजा प्रताप ने भी शाहजहाँ की अधीनता स्वीकार कर ली। इसी प्रकार, लघु तिब्बत और आसाम पर भी मुगल आधिपत्य स्थापित किया गया। जफर खाँ के अधीन 1637–1638 ई0 में लघु तिब्बत के विरूद्ध एक सैनिक अभियान चलाया गया। तिब्बती शासक अब्दल ने शाहजहाँ की अधीनता स्वीकार कर ली और युद्ध के हर्जाने के रूप में पर्याप्त धनराषि दी। शाहजहाँ ने आसाम पर भी अधिकार करने की योजना बनाई। आसाम के साथ अनेक वर्षों तक (1628–39 ई0) झड़पें होती रहीं। अंत में दोनों पक्षों में समझौता हो गया। आसाम के साथ व्यापारिक एवं कूटनीतिक संबंध स्थापित हुए।

1.9ः शाहजहाँ की मध्य एशियाई नीति

बाबर के समय से ही मुगल बादशाहों की यह चेष्टा रही थी कि बल्ख और बदख्शाँ पर उनका अधिकार हो, क्योंकि यह उनकी मूल भूमि थी। इसी प्रकार, कांधार का सामरिक महत्व था। बाबर से जहाँगीर तक बल्ख पर अधिकार करने का सुअवसर प्राप्त नहीं कर सके थे। इधर 1622 ई0 में कांधार भी ईरानियों ने मुगलों से छीन लिया था। अतः काबुल की सुरक्षा के लिए बल्ख पर अधिकार करना एवं खोए हुए कांधार को प्राप्त करना ही शाहजहाँ की मध्य एशियाई नीति का मूल उद्देश्य था। इसमें सफलता प्राप्त कर वह अपने पूर्वजों की इच्छापूर्ति तथा अपनी साम्राज्यवादी महत्वकांक्षा को शांत करना चाहता था।

1.9.1: कांधार का अभियान

सबसे पहले शाहजहाँ ने कांधार को पुनः प्राप्त करने की योजना बनाई। इस समय तक ईरान के शाह अब्बास प्रथम (1587–1629 ई0) की मृत्यु हो चुकी थी। वहाँ अराजकता व्याप्त थी। शाहजहाँ ने इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए कूटनीतिक चाल चली। इस समय कांधार का प्रशासक अली मर्दान खाँ था। उसने अनाधिकृत रूप से काफी धन एकत्र कर रखा था और राजकीय धन का गबन किया था। नए शासक के गद्दी पर बैठते ही उसे भय हुआ कि उसे दंडित किया जाएगा। इसलिए उसने शाहजहाँ से संरक्षण की माँग की। शाहजहाँ ने उसे अपने संरक्षण में ले लिया। शाहजहाँ को प्रसन्न करने के लिए उसने कांधार का किला मुगलों को 1638 ई0 में सौंप दिया।

1.9.2: शाहजहाँ का बल्ख अभियान

मध्य एशियाई राजनीति में ईरान के सफावीद राजवंश के अतिरिक्त उजबेक भी प्रबल प्रतिद्वंदी थे। उजबेकों ने बल्ख और बदख्शाँ पर अधिकार कर लिया तथा समरकंद, जो मुगलों की पैतृक भूमि थी, उस पर अधिकार जमा लिया था। इतना ही नहीं, काबुल पर भी उनके आक्रमण के खतरे बने हुए थे। वे बलूची और अफगान कबीलों को भी मुगलों के विरूद्ध उकसाते रहते थे। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने के पूर्व ही उजबेकों ने काबुल पर आक्रमण किया था। इसलिए शाहजहाँ उजबेकों से क्रुद्ध था। वह अपने पूर्वजों की भूमि पर अधिकार करना चाहता था। इस समय बल्ख और बुखारा में इमाम कुली का छोटा भाई नजर मुहम्मद शासन कर रहा था, परंतु वह जनता मे ंअलोकप्रिय था। इसलिए 1645 ई0 में नजर मुहम्मद के बेटे अब्दुल अजीज ने सत्ता हथिया ली। नजर मुहम्मद भागकर बल्ख चला गया। बुखारा अब्दुल अजीज के अधीन रहा। नजर मुहम्मद ने शाहजहाँ से सहायता माँगी। शाहजहाँ ने इन उजबेकों पर अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए सुनहरा मौका समझा। उसने राजकुमार मुराद के अधीन एक सेना नजर मुहम्मद की सहायता के लिए भेजी। उसे आदेश दिया गया कि वह नजर मुहम्मद को समरकंद पर अधिकार करने में मदद दे, लेकिन मुराद ने बल्ख पर अधिकार कर नगर को लूटा। उसने ऑक्सस नदी के किनारे स्थित तिर्मिज पर भी अधिकार कर लिया। नजर मुहम्मद फारस चला गया। मुराद की सफलता पर शाहजहाँ ने उसे बल्ख और बदख्शाँ का शासक नियुक्त करना चाहा, परंतु मुराद वापस भारत आ गया।

मुराद के स्थान पर शाहजहाँ ने औरंगजेब को इन प्रदेशों का प्रशासक नियुक्त किया। उसने टॉस–ऑक्सियाना में उजबेकों के विद्रोह को शांत किया। शाहजहाँ को इस बात की आशंका थी कि नजर मुहम्मद ईरान के शाह की सहायता लेकर पुनः बल्ख पर अधिकार न करे। इसलिए, उसने कूटनीति का प्रदर्शन करते हुए शाह अब्बास द्वितीय से मैत्रीपूर्ण संबंध कायम किए तथा नजर मुहम्मद को विश्वास दिलाया कि मुराद का कार्य अनुचित था। शाहजहाँ ने यह नीति इसलिए अपनाई, क्योकि वह समझता था कि बल्ख समय तक सेना के बल पर मुगल प्रभाव बनाए रखना कठिन है। उसने नजर मुहम्मद को सहायता एवं बल्ख वापस करने का आश्वासन दिया, परंतु यह शर्त रखी कि वह औरंगजेब से क्षमा माँगे। नजर मुहम्मद इसके लिए तैयार नहीं हुआ। इस बीच रसद की कमी और कड़ाके की ठंड के कारण मुगल सेना को वापस लौटने पर मजबूर होना पड़ा। मुगल सेना की वापसी अत्यंत ही कष्टदायक हुई। बल्ख से मुगलों को लौटने पर मजबूर होना पड़ा। उजबेकों के छापामार हमलों और

मार्ग की कठिनाइयों से सेना का एक बड़ा भाग नष्ट हो गया। बल्ख से मुगल सेना की वापसी ठीक वैसी ही थी जैसी कि 1842 ई0 में काबुल से अंग्रेजी सेना की वापसी। "मध्य एशिया तक साम्राज्य–विस्तार करने तथा उत्तर–पश्चिम सीमा के बाहरी किनारे को सुरक्षित करने के प्रयत्न में मुगल सम्राट को सफलता न हुई। जो परिस्थिति अकबर ने स्थापित कर दी थी उसमें कोई उन्नति न हुई"। बल्ख अभियान से मुगल सेना की प्रतिष्ठा तो बढ़ी, परंतु इससे कोई विशेष राजनीतिक लाभ नहीं हुआ।

1.10: शाहजहाँ की दक्कन नीति

दक्षिण राज्यों पर मुगल प्रभुत्व स्थापित करने का पहला प्रयास अकबर ने किया था। जहाँगीर को भी दक्षिणी रियासतों से संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष में स्वयं शाहजहाँ ने प्रमुख भूमिका निभाई थी, परंतु मुगल अपना स्थायी प्रभाव बनाने में असफल रहे थे। मलिक अंबर ने मुगलों को नाकों चने चबवा दिए, परंतु उसकी मृत्यु के पश्चात् (1626 ई0) दक्षिणी रियासतों (अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा) की स्थिति कमजोर हो गई तथापि दक्षिणी रियासतों मुगलों के विरूद्ध सदैव षड्यंत्र में लगी रहती थी। इसलिए, शाहजहाँ ने इन राज्यों के विरूद्ध आक्रामक नीति अपनाई। उसका मुख्य उद्देश्य अहमदनगर राज्य को, जो मुगलविरोधी गतिविधियों का केंद्र था, नष्ट करना एवं बीजापुर और गोलकुंडा पर प्रभावशाली आधिपत्य स्थापित करना था।

1.10.1: अहमदनगर पर आक्रमण

गद्दी पर बैठने के बाद शाहजहाँ ने अहमदनगर राज्य द्वारा छीने गए मुगल इलाकों को वापस लेने का प्रयास किया। इसके लिए खान–ए–जहाँ लोदी को दक्कन का सूबेदार बनाया गया। लेकिन, उसने विद्रोह कर दिया और निजामशाह से मिल गया। उसके विद्रोह का दमन कर महावत खाँ को दक्षिणी सूबे का प्रशासन सौंपा गया। इसके साथ–साथ शाहजहाँ ने अहमदनगर के विरूद्ध बीजापुर राज्य को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयास किया। मराठों को भी अपनी ओर मिलाने का प्रयास शाहजहाँ ने किया। बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह और महत्वपूर्ण मराठा सरदार लखजी जाधव के दामाद शाहजी भोंसले शाहजहाँ से मिल गए। शाहजी को पाँच हजार का मनसब और पूना की जागीर दी गई। शाहजी के साथ अन्य अनेक मराठा सरदार भी शाहजहाँ के पक्ष में चले आए। इस प्रकार अहमदनगर को राजनयिक और सैनिक दृष्टिकोण से अलग कर शाहजहाँ के पक्ष में चले आए। इस प्रकार अहमदनगर को राजनियक और सैनिक दृष्टिकोण से अलग कर शाहजहाँ ने अहमदनगर पर आक्रमण की तैयारी आरंभ कर दी।

इस समय अहमदनगर राज्य की बागडोर मलिक अंबर के पुत्र फतह खाँ के अधीन थी। वह मलिक अंबर जितना योग्य और स्वामीभक्त नहीं था बल्कि सदैव अपना उल्लू सीधा करने में लगा रहता था। 1629 ई0 में अहमदनगर पर आक्रमण किया। बुराहनपुर से शाहजहाँ स्वयं इस अभियान का नियंत्रण करता रहा। मुगल सेनापति आजम खाँ ने अहमदनगर रियासत के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया एवं राज्य की बाहरी चौकी परेंडा का घेरा डाल दिया।

शाहजहाँ की विस्तारवादी नीति से भयभीत होकर अहमदनगर के सुलतान मुर्तजा द्वितीय ने बीजापुर के पास सहायता की प्रार्थना की। बीजापुर दरबार का शक्तिशाली दल मुगलों की कार्यवाहियों से आषंकित था। उन्हें अपने लिए भी खतरा महसूस हो रहा था। इसके अतिरिक्त मुगलों ने पूर्व संधि की शर्तों के अनुसार अहमदनगर राज्य में जीते हुए इलाकों में से बीजापुर को हिस्सा नहीं दिया था। अतः अहमदशाह ने निजामशाह का पक्ष लेने का निर्णय किया एवं मुगलों से संबंध तोड़ लिया। नई परिस्थितियों से बाध्य होकर मुगलों को परेंडा का घेरा उठा लेना पड़ा।

इस समय अहमदनगर राज्य में दरबारी दलबंदी चरम सीमा पर पहुँची हुई थी। फतह खाँ को सुल्तान ने अपना मंत्री नियुक्त किया था जिससे कि वह शाहजहाँ से संधि की वार्ता चला सके, परंतु इस विश्वासघाती ने निजामषाह की हत्या करवा दी और गद्दी पर उसके अल्पायु पुत्र को बिठाकर सारी शक्ति अपने हाथों में केंद्रित कर ली। उसने शाहजहाँ से समझौता भी कर लिया। उसने शाहजहाँ को

बहुमूल्य भेंट दिए। अहमदनगर में शाहजहाँ के नाम का खुतबा पढ़ा गया और सिक्के जारी किए गए। इन कार्यों के पारितोषिक स्वरूप फतह खाँ को मुगल सेवा में ले लिया गया और पूना की जागीर शाहजी से छीनकर दे दी गई। इससे शाहजी ने भी मुगलों का साथ छोड़ दिया। अहमदनगर रियासत नष्टप्राय हो गया।

1.10.2: बीजापुर से संघर्ष

अगले कुछ वर्षों तक शाहजहाँ का ध्यान दक्षिण के दुर्भिक्ष और मुमताजमहल की मृत्यु (1631 ई0) तथा अन्य घटनाओं में उलझा रहा। इस बीच दक्षिण में पुनः असंतोष भड़क उठा। दक्कन के सूबेदार महावत खाँ को बीजापुर राज्य और अहमदनगर के सरदारों के एक गुट ने परेषान करना आरंभ किया । मुगलों और बीजापुर राज्य में अहमदनगर राज्य के विभाजन के लिए प्रतिद्वंद्विता आरंभ हो गई। बीजापुर ने परेंडा पर अधिकार कर लिया और दौलाताबाद का घेरा डालने के लिए भेजी गई। शाहजी भी उनकी सहायता कर रह था। शाहजी और बीजापुरी सेना ने फतह खाँ को (जो मुगलों की सेवा में था) प्रलोभन दिया। अतः उसने मुगलों का साथ छोड़कर शाहजी से संधि कर ली। क्रुद्ध होकर महावत खाँ ने दौलताबद का घेरा डाल दिया। फतह खाँ ने पुनः मुगलों से क्षमा माँगकर आत्मसर्मपण कर दिया एवं किला मुगलों को सौंप दिया। फतह खाँ को धन ओर नौकरी दी गई। निजामशाह को गिरफ्तार कर ग्वालियर भेज दिया गया। इस प्रकार, फतह खाँ के विष्वासघात के कारण अहमदनगर राज्य और निजामशाही वंष का अंत 1633 ई0 में हुआ।

1.11: शाहजी द्वारा निजामशाही को पुनर्जीवित करने का प्रयास

अहमदनगर के पतन के बाद भी मुगलों की समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। निजामशाही और आदिलशाही सैनिकों और सरदारों ने हिम्मत नहीं हारी। मुगलों से अपनी स्वतंत्रता की रक्षा का उन लोगों ने जी तोड़ प्रयास किया। इनमें सबसे अधिक जागरूक एवं सक्रिय शाहजी भौंसले थे। मलिक अंबर के ही समान शाहजी ने निजामशाही वंश के एक राजकुमार को ढूँढकर उसे अहमदनगर का सुल्तान घोषित कर दिया एवं सभी सैनिकों एवं सरदारों को उसकी सहायता करने का आह्वान किया। बीजापुर के सुल्तान ने इस कार्य के लिए शाहजी को सैनिक सहायता भी दी। शाहजी ने अब मुगलों को परेशान करना आरंभ कियां उसने अहमदनगर के अनेकों भागों पर अधिकार कर लिया। इसलिए, शाहजहाँ को स्वयं 1635 ई0 में दक्कन जाना पड़ा। उसने शाहजी के अनेक सहायकों को भय अथवा धन का प्रलोभन दिखाकर अपने पक्ष में कर लिया और शाहजी द्वारा अधिकृत अनेक इलाकों को वापस ले लिया। अहमदनगर पर मुगल सत्ता पुनः स्थापित की गइ। शाहजी अपनी सुरक्षा के लिए इधर से उधर भागता रहा।

1.12: बीजापुर पर आक्रमण

शाहजहाँ के दिमाग में यह बात बैठ गई कि बीजापुर पर अधिकार किए बिना दक्षिण में पूर्ण शांति नहीं हो सकती। इसलिए, उसने एक ही साथ 'लालच और छड़ी' की नीति अपनाई। अहमदनगर पर नियंत्रण स्थापित करने के पश्चात् मुगल सेना को बीजापुर पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। साथ ही, एक दूत को बीजापुर के सुल्तान अहमदनगर रियासत का आपस में बँटवारा कर लें। बीजापुर का बीजापुर के सुल्तान अहमदनगर रियासत का आपस में बँटवारा कर लें। बीजापुर का सुल्तान इस के मुगल सेना द्वारा मचाए गए नरसंहार और बर्बादी से भयभीत हो उठा। मुगल–विरोधी सरदारों को अपदस्थ कर दिया गया और आदिलशाह ने शाहजहाँ से एक नई संधि कर ली। इसके अनुसार, बीजापुर ने मुगल अधिसत्ता स्वीकार कर ली तथा 20 लाख रूपए हर्जाने के रूप में देना स्वीकार किया। यह भी तय हुआ कि सुल्तान शाहजी के दमन में मुगलों की सहायता करेगा तथा अगर शाहजी बीजापुर की सेवा में रहेगा तो उसे मुगल सीमा से दूर दक्षिण में तैनात किया जाएगा। आदिलशाह ने गोलकुंडा में मामले में भी हस्तक्षेप नहीं करने का वचन दिया। इतना ही नहीं, सुल्तान

इस बात के लिए भी तैयार हो गया कि भविष्य में बीजापुर और गोलकुंडा के बीच होनेवाले सभी विवादों का निबटारा शाहजहाँ की मध्यस्थता से होगा। बदले में शाहजहाँ ने बीजापुर को अहमदनगर रियासत का एक भाग, जिसकी वार्षिक आय 20 लाख हूण थी, दिया।

1.13: गोलकुंडा के साथ संधि

शाहजहाँ ने बीजापुर के साथ ही गोलकुंडा के सुल्तान कुत्बमुल्क के साथ भी एक संधि की। उसने शाही राजदूत का अपने दरबार में भव्य स्वागत किया तथा शाहजहाँ की संप्रभुता स्वीकार कर ली। उसने शाहजहाँ के नाम का खुतबा पढ़वाया और सिक्के जारी किए। उसने शाहजहाँ के प्रति वफादार रहने का आष्वासन दिया। गोलकुंडा को इन सबके बदले 4 लाख वार्षिक हूण के कर से, जो वह बीजापुर को देता था, मुक्त कर दिया गया। मुगला से सुरक्षा प्राप्त करने के एवज में गोलकुंडा के सुलतान ने 2 लाख वार्षिक हूण शाही राजकोष को देना स्वीकार किया। 1636 ई0 की इन दो संधियों के परिणामस्वरूप शाहजहाँ ने दक्षिण की रियासतों पर मुगल आधिपत्य को प्रभावशाली ढंग से स्थापित कर दिया।

1.14: औरंगजेब के आरंभिक सेना अभियान

उत्तराधिकार के युद्ध से उत्पन्न अशांत राजनीतिक शासक अव्यवस्था का लाभ उठाकर साम्राज्य के विभिन्न भागों में स्थानीय शासक स्वतंत्र होने का प्रयास कर रहे थे। इसलिए, सबसे पहले औरंगजेब ने उन स्थानों पर ही मुगल सत्ता पुनः सुदृढ़ करने का प्रयास किया। कालांतर में उसे राजपूतों, सिंखों, मराठों एवं दक्षिण के राज्यों से लंबा संघर्ष करना पड़ा। 1681 ई0 तक उसका सारा ध्यान उत्तरी भारत (उत्तर–पूर्वी, पूर्वी भारत तथा उत्तर–पष्चिम भारत) की ओर लगा रहा। इस बीच दक्षिण की समस्या पर उसने ध्यान नहीं दिया, परंतु 1681 ई0 1707 ई0 तक औरंगजेब ने अपना सारा ध्यान दक्षिण भारत की समस्याओं पर दिया, उत्तरी भारत को बिल्कुल ही भूल बैठा। यहाँ तक कि परिवार, सेना, राजकोष और दरबार के साथ वह स्थायी रूप से दक्षिण भारत में ही रहने लगा। औरंगजेब की इस नीति का मुगल साम्राज्य पर घातक प्रभाव पड़ा।

1.14.1: उत्तर–पूर्वी तथा पूर्वी भारत

शासक बनने के तत्काल बाद औरंगजेब का ध्यान उत्तर–पूर्व एवं पूर्वी भारत की समस्याओं ने आकृष्ट किया। औरंगजेब के पूर्व मुगल साम्राज्य की सीमा पश्चिमी असम तक जा पहुँची थी। अहोमों और कूच बिहार के शासकों के आपसी संघर्ष का लाभ उठाकर मुगलों ने असम की घाटी में और कूच बिहार के शासकों पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था। 1638 ई0 में मुगलों और अहोमों के बीच हुई संधि के अनुसार, बार नदी दोनों राज्यों की सीमा निर्धारित की गई थी। गौहाटी मुगलों के प्रभाव में आ गया था। इस बीच बंगाल में शूजा की सूबेदारी के दौरान अव्यवस्था फैलने लगी जिसका लाभ उठाकर अहोमों ने अपनी शक्ति संगठित करनी आरंभ कर दी। कूच शासक भी अपनी स्वतंत्रता के लिए लालायित हो उठे। इसी बीच 1657 ई0 में कूच शासक प्रेम नारायण ने मुगल क्षेत्रों पर अधिकार करने का प्रयास किया। 1658 ई0 में अहोमों ने गौहाटी एवं उसके आस–पास के क्षेत्रों को लूट कर मुगलों की स्थिति दुर्बल बना दी।

1.14.2: पुर्तगालियों का दमन

औरंगजेब के शासन तक पुर्तगाली भारत में एक व्यापारिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। पश्चिम भारत के अतिरिक्त पूर्वी भारत में भी वे अपना प्रभाव बढ़ा रहे थे। पुर्तगाली (फिरंगी) आराकानी (माघ) समुद्री डाकुओं के साथ मिलकर बंगाल के तटवर्ती इलाकों में अषांति मचाए हुए थे। उनके अत्याचारों और लूटपाट से चटगाँव से ढाका तक का क्षेत्र असुरक्षित हो गया था। इसका सामान्य जीवन एवं आर्थिक प्रगति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा था। इसलिए, बंगाल के सूबेदार शाइस्ता खाँ ने इस तरफ अपना ध्यान दिया।

समुद्री डाकुओं की कार्यवाहियों को रोकने के लिए शायस्ता खाँ ने एक सुदृढ़ जल बेड़े का गठन किया। उसने बंगाल की खाड़ी में स्थित सोनद्वीप, जो समुद्री डाकुओं की गतिविधियों का केंद्र था, पर अधिकार कर लिया। इसके बाद चटगाँव पर आक्रमण कर 1666 ई0 में उसपर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार, पुर्तगालियों एवं मार्ग लुटेरों का आतंक एवं प्रभाव समाप्त कर दिया गया। इसके फलस्वरूप समुद्री तट एवं व्यापारिक मार्ग सुरक्षित हो गए एवं बंगाल के व्यापार में वृद्धि हुई।

1.14.3: पलामू पर अधिकार

औरंगजेब ने पलामू पर भी अधिकार किया। 1642 ई0 में शाहजहाँ ने इस पर अधिकार स्थापित किया था, परंतु अशांत राजनीतिक व्यवस्था का लाभ उठाकर यह पुनः स्वतंत्र हो गया था। इसलिए, 1661 ई0 में बिहार के सूबेदार दाउद खाँ ने पलामू के राजा को पराजित कर उसके राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

1.15: औरंगजेब की दक्षिण नीति

औरंगजेब के शासन का उत्तरार्द्ध (1681–1707 ई0) दक्षिणी शक्तियों से युद्ध करने एवं दक्षिण में अपनी शक्ति सुदृढ़ करने में व्यतीत हुआ। दक्षिण की समस्याओं में वह इस बुरी तरह घिर गया कि उसे उत्तरी भारत की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला जिसके घातक परिणाम निकले।

1.15.1: दक्षिण राज्यों से युद्ध के कारण

दक्षिण में उस समय तीन शक्तियां बीजापुर, गोलकुंडा के शिया तथा मराठे। दो बार दक्षिण का सूबेदार रहने के कारण वह दक्षिण की राजनीति से वाकिफ था। इसी कारण वह उनकी शक्ति को मुगल सेना हेतु गंभीर चुनौती मानता था। वह शिया राज्यों को इस्लाम विरोधी मानता तथा मराठों में अधीन हिंदू पदपादषाही की स्थापना का भी विरोधी था। अतः शासक बनने के बाद उसने दक्षिण में विस्तारवादी नीति अपनाई। उसका उद्देष्य इन राज्यों पर अधिकार कर मुगल साम्राज्य सुदृढता, यूरोपीय व्यापारियों की राजनीतिक लालसा में कमी तथा धार्मिक एवं आर्थिक कारणों ने उसे विस्तारवादी नीति हेतु प्रेरित किया।

1.15.2: बीजापुर से संघर्ष

मुस्लिम राज्यों में दक्षिण भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली बीजापुर का आदिलशाही राजवंश था। दक्षिण के सूबेदार के रूप में औरंगजेब ने इस पर अधिकार करने का प्रयास किया था, परंतु शाहजहाँ के हस्तक्षेप तथा बीमारी के कारण वह ऐसा नहीं कर सका था। उत्तराधिकार के युद्ध में शामिल होने से पूर्व 1657 ई0 में वह कल्याणी तथा बीदर बीजापुर से ले चुका था। उत्तराधिकर के युद्ध से उत्पन्न परिस्थिति का लाभ उठाकर उसने मुगलों से मैत्री तोड़ ली थी। वह अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास कर रहा था। औरंगजेब को यह भय भी हुआ कि कहीं सुल्तान आदिलशाह मराठों के साथ मिलकर औरंगजेब को परेशान न करे। इसलिए, उसने बीजापुर पर आक्रमण करने की योजना बनाई।

1.15.3: जयसिंह का अभियान

1665 ई0 में जयसिंह ने बीजापुर आक्रमण किया। आक्रमण के पूर्व ही वह शिवाजी, गोलकुंडा के कुतुबशाही शासक एवं बीजापुर राज्य के प्रभावषाली सरदारों को अपने पक्ष में मिलाने में सफल हो चुका था। जयसिंह का बीजापुर अभियान सफल नहीं हो सका। सुल्तान आदिलशाह ने आक्रमण की सूचना मिलते ही अपनी सुरक्षा की पूरी व्यवस्था कर ली थी। दूसरी तरफ, जयसिंह की तैयारी पूरी नहीं थी। उसके पास बड़ी तोपें एवं शिवाजी को अपने पक्ष में मिलाया था परंतु युद्ध आरंभ होते ही दोनों ने मुगलों का साथ छोड़ दिया। दक्कन की सभी आरंभिक सफलताएँ हाथ लगीं, परंतु बीजापुर राज्य कुतबशाही सेना की सहायता और छापामार युद्धप्रणाली के आधार पर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने में सफल हुआ। जयसिंह को निराश होकर वापस लौटना पड़ा। वापसी में भी उन्हें बहुत अधिक परेषानी

और हानि उठानी पड़ी। मुगलों को इस युद्ध से न तो एक ईंच जमीन ही मिली और न ही धन की प्राप्ति हुई।

क्रुद्ध होकर औरंगजेब ने जयसिंह को वापस लौटने का आदेष दिया। मार्ग में बुरहानपुर में 1667 ई0 में जयसिंह की मृत्यु हो गई। जयसिंह की जगह अब शहजादा मुअज्जम को दक्षिण अभियान का नेतृत्व सौंपा गया। 1668 ई0 में मुगलों ने रिश्वत देकर किसी प्रकार शोलापुर प्राप्त कर लिया।

1.16: बीजापुर की आंतरिक राजनीति में मुगलों का हस्तक्षेप

1672 ई0 में आदिलशाह की मृत्यु के पष्चात अल्पायु सिंकंदरषाह नया सुलतान बना। उसके समय में दरबार की दलबंदी और गहरी हो गई। खबास खाँ के दल ने मराठों के विरूद्ध मुगलों की सहायता का वचन दिया था, परंतु 1676 ई0 में उसका दरबार में प्रभाव समाप्त हो गया। दरबार में मराठों और गोलकुंडा का प्रभाव बढ़ने लगा। इसलिए, मुगल सूबेदार बहादुर खाँ ने 1676 ई0 में बीजापुर पर आक्रमण कर दिया।

बहादुर खाँ के स्थान पर दिलेर खाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाया गया। उसका बीजापुर के अफगानों से अच्छा संबंध था। इस समय बीजापुर दरबार मे खबास खाँ की जगह बहलोल खाँ का प्रभाव था। उसने मराठों तथा गोलकुंडा के विरूद्ध बीजापुर को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयास किया एवं आंशिक रूप से इसमें सफल भी रहा। बीजपुर को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयास किया एवं आंशिक रूप से इसमें सफल भी रहा। बीजापुर और मुगल सेना ने गोलकुंडा पर आक्रमण किया जो विफल हो गया। इस पराजय ने बीजापुर राज्य में बहलोल की स्थिति दुर्बल कर दी। गोलकुंडा के दबाव पर सीदी मसूद, जो दक्कनी गुट का नेता था, उसे बीजपुर का प्रशासक बनाया गया। इस प्रकार बीजापुर पर गोलकुडा का प्रभाव पहले से भी अधिक बढ़ गया। इस प्रभाव को कमजोर करने के लिए दिलेर खाँ ने सीदी मसूद को अपने पक्ष में मिलाकर उसके साथ एक संधि कर ली। इस संधि के अनुसार, सुल्तान आदिलशाह ने अपनी बहन का विवाह शाहजादा आजम के साथ करने को वचन दिया। बीजापुर ने औरंगजेब की अधीनता स्वीकार करने एवं मराठों को सहयोग नहीं देने का भी वचन दिया, लेकिन सीदी मसूद इस निर्णय पर कायम नहीं रह सका। उसने मराठों के साथ भी एक गुप्त समझौता कर लिया। इस पर क्रुद्ध होकर दिलेर खाँ ने 1679 ई0 में बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। बीजापुर के सुलतान ने मराठों और अन्य दक्षिणी रियासतों के सहयोग से दिलेर खाँ का आक्रमण भी विफल कर दिया। मुगलों को कोई सफलता नहीं मिल सकी, उल्टे दक्षिण की तीनों प्रमुख शक्तियां मुगलों के विरूद्ध संगठित हो गई।

1.17: बीजापुर का पतन

अप्रैल, 1685 में आजम के सेनापतित्व में मुगल सेना ने बीजापुर पर घेरा डाल दिया। आदिलशाह की सहायता के लिए मराठे एवं गोलकुंडा के सुल्तान ने भी सैनिक सहायता भेजी। बीजापुर पर लंबे समय तक घेराबंदी बनी रही। औरंगजेब को स्वयं बीजापुर जाना पड़ा। उसकी उपस्थिति से मुगल सेना में नवजीवन का संचार हुआ। दूसरी तरफ, बीजापुर के प्रतिरोध की शक्ति–समाप्त हो रही थी। अतः आदिलशाह ने 1686 ई0 में आत्मसर्मण कर दिया।

1.18: गोलकुंडा पर अधिकार

1656 ई0 में औरंगजेब ने गोलकुंडा के सुल्तान अब्दुला कुतुबशाह के साथ संधि की थी। कुतुबशाह ने मुगल अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस संधि के बावजूद गोलकुंडा बीजापुर और मराठा की सहायता किया करता था। 1672 ई0 में कुतुबशाह की मृत्यु के बाद अब्दुल हसन योग्य शसन न बन पाया। इस समय शासन की बागडोर मदन्ना और अखन्ना के हाथों में थी। अतः 1685 ई0 में गोलकुंडा पर आक्रमण हुआ। मुगल सेना ने हैदराबाद पर अधिकार कर सुल्तान को संधि करने पर विवष कर दिया। सुल्तान युद्ध का हर्जाना, वार्षिक कर, मालखेड़ और अन्य जीते हुए क्षेत्र औरंगजेब को

देने को तैयार हुआ परंतु मंत्रियों को नही। इसी बीच एक षड़यंत्र रचकर दोनों मंत्रियों की हत्या कर दी गई। अतः औरंगजेब ने 1687 ई0 में गालेकुंडा पर घेरा डाला परंतु कड़ी सुरक्षा के कारण प्रवेश हेतु उसने दुर्गरक्षक को रिश्वत देकर फाटक खुलवा दिया तथा दुर्ग पर अधिकार में सफल हुआ। सुल्तान को पेंशन देकर दौलताबाद के दुर्ग में बंद कर दिया।

1.19: निष्कर्ष

शाहजहाँ और औरंगजेब के समय में मुगल सम्राज्य का अत्यधिक विस्तार एवं विकास हुआ। उत्तर भारत के अलावा दक्षिण भारत में भी मुगलों का नियंत्रण स्थापित हो गया था। अब तक काबुल–कान्धार से लेकर सुदूर दक्षिण तक मुगलों का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। मौर्य साम्राज्य के पतन के उपरान्त यह पहला अवसर था, जब भारत भौगोलिक, राजनीतिक एवं प्रषासनिक आधार पर एक सूत्र में बंध गया था। अब भारत एकीकृत राज्य के रूप में संगठित हो चुका था। मुगलों के साम्राज्य विस्तार की यह पराकाष्ठा थी। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् इतने विषाल मुगल सम्राज्य को संभालना कमजोर मुगल शासकों के लिए दुष्कर हो गया था। मुगल शासकों ने साम्राज्य विस्तार के साथ–साथ प्रशासनिक ढांचे को भी मजबूत बनाया। जिसके परिणामस्वरूप मुगल साम्राज्य सुदृढ़ को सका। राजस्व, सैनिक एवं प्रषासनिक क्षेत्र में आवश्यक परिवर्तन किये गये, जिससे मुगल राज्य एक सशक्त साम्राज्य के रूप में उभरने में सफल हो सका।

1.20: अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शाहजहाँ के समय में उत्तराधिकार के युद्धों का वर्णन कीजिए।
2. शाहजहाँ के समय में मुगलों की दक्षिण नीति का वर्णन कीजिए।
3. शाहजहाँ की मध्य–एशियाई नीति का विवरण दीजिए।
4. औरंगजेब के आरम्भिक सैन्य अभियानों का उल्लेख कीजिए।
5. औरंगजेब की दक्षिण नीति की समीक्षा करे।
6. औरंगजेब के शासनकाल में होने वाले विद्रोहों पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

1.21: सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बिपिन बिहारी सिन्हा– मध्यकालीन भारत
2. आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव– भारत का इतिहास
3. एल0 पी0 शर्मा– मध्यकालीन भारत
4. इमत्याज अहमद– मध्यकालीन भारत

मुगलों की धार्मिक नीति

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 विभिन्न मुगल शासकों की धार्मिक नीति

2.4 अकबर के धार्मिक उदारता के कारण

2.5 इबादतखाना की स्थापना

2.6 महजर की घोषणा

2.7 दीन–ए–इलाही

2.8 जहाँगीर एवं उसकी धार्मिक नीति

2.9 शाहजहाँ एवं उसकी धार्मिक नीति

2.10 औरंगजेब की धार्मिक नीति

2.11 इस्लाम विरोधी प्रथाओं का दमन

2.12 औरंगजेब के हिन्दू विरोधी कार्य

2.13 निष्कर्ष

2.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.16 निबंधात्मक प्रश्न

2.1: प्रस्तावना

मुगल शासनकाल मे ंएक नये और उदार धार्मिक दृष्टिकोण का विकास हुआ जिससे कि सम्राज्य की बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा को प्रशासन में सम्मानपूर्वक स्थान प्राप्त हो सका और धर्म के आाधार पर भेद–भाव का बहुत हद तक अंत हुआ। मुगल शासकों के व्यक्तिगत विचारों, युग की परिस्थितियों और राजनीतिक व्यवहारिकता के कारण बाबर से औरंगजेब तक महान बादशाहों ने जिस धार्मिक नीति का पालन किया उससे भारत पर महत्वपूर्ण और दूरगामी प्रभाव पड़े। समाजिक एवं धार्मिक एकता लाने में अकबर एवं उसकी नीतियों ने प्रमुख भूमिका अदा की। अकबर ने धार्मिक आधार पर सारे भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया। सामाजिक एकता लाने एवं सामाजिक भेदभाव को दूर करने हेतु उसने सुलह–ए–कुल की नीति का अनुसरण किया। जहांगीर और शाहजहां ने भी अकबर की नीति को आगे बढ़ाया परन्तु अंतिम मुगल सम्राट औरंगजेब ने इस नीति का त्याग कर दिया। औरंगजेब की कठोर धार्मिक नीति के कारण मुगलों की लोकप्रियता घटने लगी और यह वंश पतन की ओर अग्रसर हो गया। निःसंदेह दिल्ली सुल्तानों की अपेक्षा मुगल अधिक धार्मिक रूप में सहिष्णु और उदार थे।

2.2: उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि

- विभिन्न मुगल सम्राटों की धार्मिक नीतियां कैसी थीं।
- अकबर की धार्मिक नीति और उसका महत्व।
- जहाँगीर और शाहजहाँ की धार्मिक नीतिया।
- औरंगजेब की धार्मिक नीति एवं उसके दुष्परिणाम।
- मुगलों की धार्मिक नीति और उसके परिणाम।

2.3: विभिन्न मुगल शासकों की धार्मिक नीतियां

मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर दिल्ली के सुल्तानों की भाँति असहिष्णु अथवा अनुदार नहीं था। यह सत्य है कि वह एक अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था, फिर भी वह अपेक्षाकृत उदार और सहिष्णु था। कट्टर सुन्नी होने पर भी उसने शियाओं के साथ मित्रता की। किन्तु हिन्दुओं के प्रति बाबर सहिष्णु नहीं था। राणा सांगा के विरूद्ध खानवा की लड़ाई में उसने जिहाद (धर्म युद्ध) का नारा दिया। अपने सैनिकों को उसने जोश दिलाया था कि वे जो युद्ध कर रहे हैं, वह काफिरों के विरूद्ध एक धर्म युद्ध है और काफिरों का विनाश करना प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है। पुनः बाबर ने मुसलमानों को रसून कर से मुक्त कर दिया था, जबकि हिन्दुओं से वह पुरानी दरों पर ही यह कर वसूल किया। बाबर के शासन काल में हिन्दू मदिरों को ध्वंस करने तथा मूर्तियों को नष्ट–भ्रष्ट करने की परम्परा भी बनी रही। उसके हिन्दू बेग और शेख जैन नामक सेनापतियों ने सम्भल और चंदेरी के हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त किया। इसी प्रकार राम के जन्म स्थान पर अयोध्या में बने हुए मन्दिरों को तुड़वा कर उसके स्थान पर एक मस्जिद का निर्माण करवाया गया। बाबर ने स्वयं ग्वालियर के निकट उरवा में अनेक मूर्तियों को नष्ट किया था। इतना होने पर भी उसने हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य नहीं किया और न ही योजनाबद्ध रूप से उन पर अत्याचार किए जैसा कि इसके पूर्व के सुल्तान और बाद में औरंगजेब ने किया। किन्तु, उसके शासन काल में धार्मिक कठोरता, अनुदारता तथा असहिष्णुता की नीति कम मात्रा में ही सही, बनी रही। इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता है कि उसने तत्कालिक धार्मिक अनुदारता में कमी लाने के लिए कोई प्रयास किये।

हुमायूँ की धार्मिक नीति भी बाबर की नीति से भिन्न नहीं थी। यद्यपि परिस्थिति वष अथवा अपनी उदारता के चलते उसने शिया धर्मावलम्बियों के प्रति अपार सहिष्णुता प्रदर्शित की, किन्तु हिन्दुओं के प्रति उसके व्यवहार में परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। जिस समय गुजरात के शासक बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और चित्तौड़ की रानी कर्णावती ने राखी भेजकर उससे सहायता की याचना की , उस समय हुमायूँ ने बहादुरशाह पर (जो उसका प्रधान विरोधी और दुष्मन था) आक्रमण करना इसलिए उचित नहीं समझा कि वह एक काफिर के

विरूद्ध युद्ध कर रहा था। किन्तु ऐसा कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलता है कि जिसके आधार पर हुमायूँ पर धार्मिक असहिष्णुता का दोष और मढ़ा जाए।

2.4: अकबर की धार्मिक उदारता के कारण

अकबर की महानता का एक महत्वपूर्ण कारण उसके द्वारा अपनायी गयी एक उदार एवं लोकप्रिय धार्मिक नीति भी है। इस संदर्भ में अकबर ने भारतीय शासकों की परम्परा का निर्वाह किया। अकबर का दीन–ए–इलाही काफी हद तक अशोक के 'धम्म', कनिष्क की धार्मिक सहिष्णुता, समुद्रगुप्त का 'पुराण पकीती' तथा शिवाजी के 'हिन्दू पद–पद–शाही' से मिलता–जुलता है। अकबर की यह धार्मिक उदारता कुछ अंषों में उसे विरासत के रूप में मिली थी। कुछ अंशों में तत्कालीन परिस्थितियों का भी इसमें सहयोग था ओर कुछ अंश में उसका व्यक्तित्व भी इसका महत्वपूर्ण कारण था। अकबर का जन्म एवं पालन–पोशण अपेक्षाकृत अधिक उदारतापूर्ण वातावरण में हुआ था। उसके पिता सुन्नी तथा माता षिया थी। अकबर का जन्म राजपूत की छत्रछाया में हुआ था। अकबर का शिक्षक अब्दुल लतीफ अपनी धार्मिक उदारता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था। उसने अकबर को शांति का पाठ पढ़ाया। जिस पर अकबर ने पूर्ण अमल किया। 16 वी0 शताब्दी छानबीन का युग था। यह युग कबीर, नानक, चैतन्य, चिश्ती आदि से भिन्न नहीं था, सिवाय इसके कि अकबर ने राजमुकुट पहना था। उसके व्यक्तित्व में भी कुछ ऐसी विषेशताएं थी, जिन्होंने उसकी धार्मिक उदारता की नीति को संवारा। धार्मिक कट्टरता एवं धर्मान्धता उसके स्वभाव में न थे। अपने प्रारंभिक जीवन से ही उसने विभिन्न विचारों, भिन्न–भिन्न विश्वासों एवं अनुष्ठानों को ग्रहण करना प्रारंभ कर दिया था। दूसरों शब्दों में, उसने आध्यात्मिक चेतना प्रारंभ कर दी। बैरम खां के संरक्षण से मुक्त होने के बाद अकबर ने साधु संतों तथा फकीरों से व्यक्तिगत सम्पर्क बढ़ाया। मध्य एशिया, फारस तथा भारत के लोगों के बीच यह आम बात थी।

अकबर की धार्मिक उदारता की प्रथम चिंगारी उस समय विकीर्ण हुई, तब उसकी अवस्था मात्र 20 वर्ष की थी। इस वर्श उसने **दास प्रथा** को समाप्त किया। 1563 ई0 में **तीर्थयात्रा कर** तथा 1564 ई0 में धार्मिक **जजिया कर** (गैर मुसलमानों से प्राप्त) की समाप्ति की। उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि अकबर दूसरे मुसलमान शासकों से भिन्न था चूंकि वह निःसंकोच सशक्त निर्णय लिया करता था। 1562 ई0 में **बैरम खां एवं हरम से मुक्ति** के पश्चात् वह पूर्ण रूप से निर्णय लेने में स्वतंत्र हो गया। उसने जीवन एवं मृत्यु जैसे गम्भीर विषयों पर चिन्तन करना आरम्भ किया।

2.5: इबादतखाना की स्थापना (1575 ई0)

अकबर एक निष्ठावान एवं उदार मुसलमान था। वह प्रार्थना, ध्यान, समाधि, नमाज आदि में आस्था रखता था। बदायूंनी के अनुसार, ""सम्राट कभी–कभी रात–रात भर 'याह' या 'हादी' का रट लगाया करता था। उसने प्रसिद्ध मुसलमान संतों ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, शेख सलीम चिश्ती तथा अब्दुलनबी के आशीर्वाद हेतु अनेक कष्ट उठाये। किन्तु वह कभी भी कट्टर सुन्नी नहीं था। बचपन से ही वह एक जिज्ञासु प्रवृत्ति का व्यक्ति था और उसने सदा सत्य को जानने की कोशिश की। इसी उद्देश्य से उसने 1575 ई0 में फतेहपुर सीकरी मे इबादतखाना (पूजा गृह) का निर्माण करवाया। यहां प्रत्येक बृहस्पतिवार की संध्या में धार्मिक विचार–विमर्ष हुआ करता था। प्रारंभ में इबादतखाना के इस सत्संग में सिर्फ मुसलमान शेख, पीर, उलेमा ही आमंत्रित किये जाते थे। किन्तु, उनके आपसी वार्तालाप (विचारों) से अकबर को विरक्ति होने लगती थी। 'सत्य' की खोज की बात तो दूर रही वे अपना समय अधिकांशतः लड़ाई–झगड़े, एक–दूसरे के ऊपर आरोप–प्रत्यारोप में व्यतीत करने लगे। इनके ऐसे उत्तरदायित्व शून्य व्यवहार, धर्म को तात्विक, दृष्टि से विवेचना करने की असमर्थता एवं व्यक्तिगत स्वार्थों को देखकर अकबर ने अपनी दृष्टि फेरी और बारी–बारी से ईसाई, पारसी, बौद्ध, हिन्दू, जैन, शिया और सूफी आदि से संबंध स्थापित किये । इन धर्मों के विद्वान भी अब इबादतखाना के विचार–विमर्श में निमंत्रित किये जाने लगे। उन्हें निर्देशित किया गया कि वे नियमित रूप से धर्म की समस्याओं पर आपस में विचार–विमर्ष करें। वह स्वयं भी अनेक अवसरों पर इन बैठकों में शामिल रहता था। कुछ समय पश्चात् उसने अनुभव किया कि सभी धर्मों के आवश्यक तत्व एक से ही हैं चूंकि सभी में कुछ बुराइयां और कुछ अच्छाइयां हैं।

2.6: महजर की घोषणा (1579 ई0)

इबादतखाना से अकबर को असम्मान ही अधिक मिला। अकबर उलेमा वर्ग से प्रसन्न नहीं था। मुख्य सदर अब्दुलनबी ने भ्रष्टाचार और अनाचार से अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति में काफी वृद्धि कर ली थी। उसने हिन्दुओं और शियाओं पर अत्याचार भी किये थे। अकबर ने उसे पदमुक्त कर दिया। लगभग इसी समय 1579–80 ई0 में पूर्व में विद्रोह हुआ। काजियों ने अकबर को धर्म विरोधी कहते हुए अनेक फतवे दिये। अकबर ने विद्रोह को कुचल दिया और काजियों को कठोर सजाएं दीं। अन्य धर्मावलम्बियों की संगत से भी उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन हुए। अतः मुल्लाओं से निपटने के लिए अपनी स्थिति और मजबूत करने की इच्छा से उसने महजर की घोषणा करवायी। इसमें कहा गया कि यदि कुरान (मुजताहित) की व्याख्या से समर्थ विद्वानों में परस्पर मतभेद हो तो अकबर 'सर्वाधिक न्यायशील और विवेकी' होने के नाते और खुदा की नजरों में इसका दर्जा मुजताहिदों से ऊँचा होने के कारण उनमें से किसी भी व्याख्या को स्वीकार कर सकता है जो 'देश के लाभ और अधिकांष लोगों के हित' में हो। यह भी कहा गया है कि बादशाह यदि 'कुरान का अनुसरण करते हुए और देश के लाभ में' कोई नयी आज्ञा जारी करे तो उसे सभी को स्वीकार करना होगा। इस प्रकार बादशाह के कहने से अबुफजल एवं फैजी के पिता शेख मुबारक ने, जो स्वयं इस्लाम धर्म का एक प्रमुख विशेषज्ञ था, 1579 ई0 के जून माह में एक प्रपत्र (महजर) पेश किया। अकबर ने इस्लाम के मतभेदों से उत्पन्न होने वाली असुविधा को दूर करने के लिए इस 'महजर' को स्वीकार कर लिया। अब पूरे देश में इस्लाम संबंधी मतभेदों में अकबर को अंतिम निर्णय का अधिकार दिया गया । 'महजर' के द्वारा साम्राज्य में सुव्यवस्था एवं शांति कायम रखने एवं सर्वमान्य आदेश निकालने का अधिकार बादशाह को दिया गया। किन्तु, वह कुरान के विरूद्ध आदेश नहीं निकाल सकता था। अब वह भारत की मुसलमान जनता के लिए धार्मिक सत्ताधिपति भी बन गया। डॉ. स्मिथ के अनुसार, महजर के द्वारा अकबर को निमूर्लता का पद मिल गया, वह मनमाना आदेश निकाल सकता था। मैलिसन के अनुसार, अकबर को हिन्दुओं, जैनों, बौद्धों, ईसाईयों आदि के साथ समानता व्यवहार करने का अधिकार मिला परंतु, डॉ0 स्मिथ ने इस बात का खण्डन किया है। अतः भिन्न–भिन्न मतों से यह प्रतीत होता है कि महजर ने उलेमा को सम्राट के अधीन ला दिया, उन्हें सम्राट की नीति का समर्थक बनाया और अकबर की निरंकुषता में वृद्धि की।

महजर का तत्कालिक परिस्थितियों के विषेश महत्व था। अकबर ने उस युग में सहनशीलता की बात कही जहां देश के अनेक क्षेत्रों में शिया, सुन्नी तथा महावदियों के बीच रक्तरंजित संघर्श छिड़ा हुआ था। इस संदर्भ में प्रो0 सतीश चन्द्र ने स्पष्ट किया कि "इस बात में सन्देह नहीं है कि भारत में स्थिति को सामान्य बनाने में महजर का अपेक्षित प्रभाव था परंतु देश के विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के लोगों को एक स्थान पर बैठाने में असफलता मिली"।

2.7: दीन–ए–इलाही (1581 ई0)

अकबर महजर की घोषणा के बाद भी 'सत्य' की खोज मे तल्लीन रहा। अतः उसने 1584 ई0 में अपनी प्रजा के लिए आचारों की एक संहिता का संकलन करवाया। उसने अपने साम्राज्य में भिन्न–भिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों को धार्मिक स्वतंत्रता एवं सहिष्णुता प्रदान की। उसने सभी मतों का समन्वय करने का प्रयत्न किया और सभी का संकलन कर इसका नाम तौहीद–ए–इलाही (दीन इलाही) या दैवी एकेश्वरवाद रखा। 'दविस्ताने मजाहिबे' के रचियता मोहसिन फानी के मत में यह एक 'मजहब' था। डॉ0 स्मिथ ने भी इसे एक 'नूतन धर्म' माना है और इस प्रकार की चेष्टा के लिए अकबर को मूर्ख तक कहा है। अकबर का 'दीन–इलाही' वास्तव में कोई नया धर्म नहीं था। यह एक सामाजिक–धार्मिक भातृ सम्प्रदाय था। जिसका संगठन विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों एवं जातियों को एक–दूसरे के अधिक–से–अधिक निकट लाने के उद्देश्य से किया गया था। इसकी रचना 'सार्वजनिक सहिष्णुता' (सुलह कुल) के सिद्धान्त पर की गयी थी और स्वयं सम्राट ने सभी धर्मों में से श्रेष्ठ बातें संग्रहित करके इसमें रखी थी। इस सम्प्रदाय में ईश्वर की एकता पर विश्वास प्रकट किया था। इसके विषय में सामान्य रूप से यही कहा जा सकता है कि यह अत्यन्त सादा था, इसकी आचार संहिता भी साधारण थी तथा गंभीर दार्शनिक पक्षों की इसमें नितांत कमी थी। यह 'सार्वजनिक सहिष्णुता' एवं 'विश्व–बन्धुत्व' की भावना पर आधारित था। इसके अतिरिक्त यह

अकबर की उन प्रतिक्रियाओं से भी प्रभावित था जो अन्य धर्मों के साथ संपर्क में आने से अकबर के मस्तिष्क में हुई।

सभी धर्मों में सत्य है, इस विश्वास को लेकर अपनी धार्मिक सहिष्णुता की नीति के व्यवहारिक प्रयोग के लिये अकबर ने महत्वपूर्ण कार्य करने प्रारम्भ कियें–ः

1. मुसलमान, हिन्दू, पारसी, ईसाई, जैन आदि सभी धार्मिक सम्प्रदायों के व्यक्तियों को अपने पूजा–स्थलों (मस्जिद, मन्दिर, चर्च) को बनवाने, उनमें पूजा करने, अपने धर्म को स्वतंत्रतापूर्वक मानने एवं प्रचार करने तथा अपने धार्मिक उत्सवों, पर्वों आदि को मनाने की स्वतंत्रता प्रदान की।
2. बलात धर्म– परिवर्तन करके बने मुसलमानों को पुनः अपने धर्म को स्वीकार करने की आज्ञा दे दी गई।
3. राजकीय सेवा में धार्मिक भेद–भाव को समाप्त कर दिया गया और योग्यता को महत्व दिया गया।
4. हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों, (अर्थववेद, रामायण, महाभारत) आदि का फारसी में अनुवाद कराया गया।
5. झरोखा–दर्शन, तुला–दान जैसी परम्पराओं का प्रचलन, होली, दिवाली, बसन्त आदि हिन्दू पर्वों का दरबार में आयोजन, अकबर द्वारा मांस न खाने का निश्चय, गो–वध का निषेध, महल में अग्नि को सर्वदा प्रज्जवलित रखना, सूर्य की ओर अकबर द्वारा मुख करके बैठना, शिकार खेलने पर प्रतिबन्ध, पशु–पक्षियों के वध पर प्रतिबन्ध आदि ऐसे कार्य थे जो अकबर की उदार–प्रवृत्ति के प्रतीक स्वीकार किये जाते हैं।
6. राज्य की कर व्यवस्था सम्पूर्ण प्रजा के लिये एक–समान की गई।
7. धर्म के आधार पर व्यक्ति और व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं रखने की आज्ञा दी गई, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी वेश–भूषा, आचार–विचार और सामाजिक परम्परा को मानने की सुविधा थी।

इस प्रकार राज्य की ओर से धर्म के आधार पर प्रजा में कोई भेद–भाव नहीं किया गया और सभी धर्मों को समान सुविधायें प्रदान की गई।

2.8ः जहाँगीर एवं उसकी धार्मिक नीति

अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर के शासनकाल में पुनः धार्मिक अनुदारता की नीति का प्रारम्भ होता है। जिसकी पराकाष्ठा औरंगजेब के शासन काल में जाकर होती है। यद्यपि जहाँगीर ने सामान्य तौर पर अकबर की धार्मिक नीति के मार्ग का ही अवलम्बन किया, किन्तु उसमें धर्म की कट्टरता स्वतः ही आती गई और उसने यदा–कदा गैर मुसलमानों को इस्लाम धर्म में परिवर्तित भी किया। उसने राजोरी के एक हिन्दू को स्थानीय मुस्लिम कन्या का धर्म परिवर्तन कर विवाह करने पर कठोर दण्ड दिया था। उसने उन मुसलमानों को दण्ड दिया जो हिन्दू धर्म में विष्वास रखते थे तथा हिन्दू सन्यासियों के साथ सम्पर्क स्थापित करते थे। जहांगीर ने अजमेर, कांगड़ा, मेंवाड़ आदि में अनेक हिन्दू मन्दिरों का विध्वंस भी किया।

सिक्खों के प्रति उसका व्यवहार अत्यन्त असहिष्णु था। उसने सिक्ख गुरू अर्जुन देव की हत्या करवा दी। सिक्खों के प्रति यह नीति धार्मिक कारणों से थी या राजनीतिक कारणों से, इस पर विद्वानों के बीच मतैक्य नहीं है। डॉ0 बेनी प्रसाद और वी0ए0 स्मिथ ने इसका राजनीतिक कारण माना है। किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है गुरू अर्जुन देव की हत्या के पीछे जहाँगीर के धार्मिक उद्देश्य भी शामिल थे। जहाँगीर ने शिया एवं जैन अनुयायियों पर भी अत्याचार किया। शिया लेखक काजी नुरूल्ला को प्राण दण्ड दिया। फिर भी उसने अपने पिता के समान हिन्दू और ईसाईयों को क्रमशः मन्दिर तथा चर्च–निमार्ण करने की स्वतंत्रता दी। वह समय–समय पर हिन्दू तथा ईसाई सन्तों का भाषण भी सुना करता था। एक सीमा तक उसने अकबर द्वारा प्रतिपादित धार्मिक नीति का अनुसरण किया और सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति करते समय उसने हिन्दू तथा मुसलमानों के बीच किसी भी प्रकार का भेद–भाव नहीं किया। वास्तव में जहाँगीर की नीति में विरोधाभास था। एक ओर तो उसमें धार्मिक कट्टरता थी तो दूसरी ओर उदारता। फिर भी उसके शासन काल में अकबर के उदार दृष्टिकोण का हल्का सा पतन हुआ।

2.9ः शाहजहाँ एवं उसकी धार्मिक नीति

शाहजहाँ का शासनकाल यद्यपि स्वर्णयुग की संज्ञा से विभूषित किया जाता है, किन्तु धर्म की दृश्टि से यह अनुदारता और प्रतिक्रिया का काल था। शाहजहाँ एक कट्टर सुन्नी था। उसने असहिष्णुता पूर्ण नीति अपनाई

जिससे साम्राज्य विनाश की ओर अग्रसर हुआ। उसने हिन्दुओं पर पुनः तीर्थ–यात्रा कर लगाया। नये मन्दिरों के निर्माण और पुराने मन्दिरों के जीर्णोद्धार की अनुमति नहीं दी। इतना ही नहीं, उसके शासन काल में मन्दिरों के विध्वंस की प्रक्रिया पुनः आरंभ हो गयी। उसने बनारस के समीप 72, गुजरात के तीन तथा इलाहाबाद, कश्मीर आदि स्थानों में अनेक मन्दिरों को ध्वस्त करवाया। मुसलमान शासकों की पुरानी नीति के अनुसार शाहजहाँ ने विद्रोही नीति सरदारों और शत्रुओं के मन्दिरों तथा तीर्थ–स्थानों को नष्ट करवाना शुरू किया। हिन्दू मन्दिरों के ध्वस्त कर उनके मलबों से अनेक मस्जिदें बनवायी गयीं। उसने 'सिजदा' तथा 'तुलादान' की हिन्दू प्रथा को मुगल दरबार में समाप्त कर दिया। रक्षाबन्धन, दशहरा, बसन्त आदि त्योहारों को दरबार में मनाया जाना बन्द करवा दिया। उसने धर्म परिवर्तित मुसलमानों को पुनः हिन्दू धर्म को अपनाने पर रोक लगा दी। दलपत नामक हिन्दू को केवल इस कारण प्राणदण्ड दिया गया कि उसने एक मुस्लिम कन्या को हिन्दू बनाकर उसके साथ विवाह कर लिया था। उसके शासन काल में युद्ध बन्दियों को पुनः मुसलमान बनाने का कार्य आरम्भ हो गया। जो युद्ध बन्दी मुसलमान बन जाता था उसे क्षमा कर दिया जाता था। इस्लाम और कुरान के विरूद्ध अपशब्द कहने वाले हिन्दुओं को मृत्यु दण्ड दिया जाता था। यद्यपि शाहजहाँ के शासन काल के अन्तिम चरण में (सम्भवतः दारा शिकोह के प्रभाव के चलते) कुछ अंश में धार्मिक सहिष्णुता और उदारता की मात्रा में वृद्धि हुई।

2.10: औरंगजेब की धार्मिक नीति

औरंगजेब का चरित्र और उसके कार्य अनेक अर्थों में अकबर के चरित्र एवं कार्यों से भिन्न थे। अकबर ने अपनी दूरदर्शिता, लोकहित की भावना, राष्ट्र–प्रेम एवं धार्मिक उदारता के आधार पर महान की उपाधि पायी। सभी क्षेत्रों में उसे सफलता ही मिली। दूसरी ओर औरंगजेब अपनी अदूरदर्षिता एवं धार्मिक संकीर्णता के कारण असफल एवं अलोकप्रिय शासक के रूप में हमारे सामने आता है। वस्तुतः उसी के शासनकाल में मुगल साम्राज्य के पतन का हम प्रारंभ पाते हैं। औरंगजेब की धार्मिक नीति संकुचित थी। वह एक धर्मान्ध कट्टर सुन्नी शासक था। वह इस्लाम की राजत्व तथा राजसत्ता सम्बन्धी नीति का समर्थक था और उसके शासन का आधार कुरान था। अकबर तथा अपने अन्य पूर्वजों को, जिन्होंने इस्लाम को राज्य धर्म के पद से पदच्युत कर दिया था तथा इस्लाम की राजत्व संबंधी नीति को तिलांजलि दे दी थी, वह इस दृष्टिकोण से उन्हें दोषी मानता था। उनके द्वारा किये गये इस दोष को समाप्त करने के उद्देश्य से औरंगजेब ने पुनः इस्लाम को राजधर्म घोषित कर दिया। यह कहना उचित नहीं है कि वह भारत को काफिरों के देश (दर–उल–हर्व) से इस्लामी राज्य (दार–उल–इस्लाम) में परिणत कर देना चाहता था, फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि धर्म के संदर्भ में उसकी नीति अनुदार एवं गलत थी।

2.11: इस्लाम विरोधी प्रथाओं का दमन

गद्दी पर बैठने के बाद औरंगजेब ने सर्वप्रथम इस्लाम विरोधी उन सभी प्रथाओं को बंद करने का आदेश जारी किया, जिन्हें अकबर ने चलाया था और इस्लाम को भारतवर्ष एवं मुगल दरबार में उस स्थान पर स्थापित किया, जिस पर वह अकबर के पूर्व प्रतिष्ठित था। उसने सिक्कों पर कलमा खुदवाना बंद कर दिया, दरबार में नवरोज के पर्व तथा दशहरा, दीवाली एवं होली जैसे पर्वों को मनाने की प्रथा को समाप्त कर दिया, तुलादान, झरोखा दर्शन आदि को बन्द करवा दिया। उसने इस्लाम को पुनः राजधर्म घोषित कर दिया। उसने देश के गैर–मुसलमानों को राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारों से उस समय तक वंचित रखने की इच्छा व्यक्त की जब तक वे इस हीनता से तंग आकर इस्लाम को स्वीकार न कर लेते। हिन्दू प्रभावित प्रथाओं की समाप्ति कर दी, शराब एवं भांग जैसे मादक द्रव्यों का सेवन निषेध कर दिया, बड़े शहरों में मुहतसिबों (धर्म निरीक्षक) की नियुक्ति की जो मुसलमानों के बीच कुरान के कानूनों को लागू करते थे, हिन्दू विधि से नमस्कार की प्रथा, तिलक की प्रथा, पशु अथवा मुनष्यों की मूर्तियों को रखने की प्रथा आदि को समाप्त कर दिया, आगरा में जहांगीर के द्वारा स्थापित की गयी दो हाथियों की मूर्तियों को हटवा दिया, संगीत का पूर्ण बहिष्कार कर सब राजकीय संगीतज्ञों को निकाल–बाहर किया, राज्य के हिन्दू ज्योतिषियों को पदच्युत कर दिया, वेष्यावृत्ति को निषेध किया, कब्रों को छत से ढकने की मनाही कर दी तथा स्त्रियों को मजारों पर जाना बन्द कर दिया, पुराने मस्जिदों की मरम्मत और नये मस्जिदों का निर्माण करवाकर उनके लिए इमाम, मुअजिम आदि नियुक्त करवाये आदि। धर्म विरोधी एवं इस्लाम के निन्दकों को

कठोर सजाएं दी जाती थी यथा अनेक सूफियों को उनकी उदारता के लिए दण्ड दिया गया। दारा के साथी सरमद को इस्लाम की निन्दा के लिए तथा उनके शिष्यों को इस्लाम के प्रथम तीन खलीफाओं को कुछ अपशब्द कहने पर प्राण दण्ड दे दिया गया। इस तरह से उसने इस्लाम को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया । औरंगजेब ने भड़कीले पोशाकों को पहनना बंद करवा दिया। उसके काल में पजामों ओर दाढ़ी की लम्बाई निष्चित कर दी गयी। मुहर्रम के समय जुलूस निकाले पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसी तरह से सती–प्रथा पर भी उसने प्रतिबंध लगाये। उसके प्रयत्नों से साफ परिलक्षित होता है कि औरंगजेब ने इस्लाम के आदर्शों पर शासन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था, किन्तु सम्राट के ये प्रयत्न समान रूप से सफल नहीं हो पाये। 'संगीत को दफनाने' की औरंगजेब की कामना प्रायः असफल रही। इस पर प्रतिबंध के बावजूद सरदार और सामन्तों ने संगीतज्ञों को संरक्षण प्रदान किया। औरंगजेब का यह आदेश सिर्फ बड़े–बड़े नगरों को छोड़कर मृतप्राय ही था। शराब, भांग आदि मादक द्रव्यों के प्रतिबंध के आदेश का ठीक से पालन नहीं हुआ। मनूची लिखता है कि शराब एक ऐसा आम चलन था कि औरंगजेब ने एकबार चिड़चिड़ा कर कहा था कि आश्चर्य है कि इस विशाल साम्राज्य में केवल दो ही व्यक्ति शराब से परहेज करते हैं एक मैं ओर दूसरा प्रधान काजी। वेश्यावृत्ति पर प्रतिबंध लगाने के बावजूद भी देश में वेश्याओं एवं नर्तकियों की उपस्थिति का वर्णन किया है।

2.12: औरंगजेब के हिन्दू विरोधी कार्य

उसने कुछ ऐसे आदेश निकाले, जिनके चलते हिन्दुओं में काफी असंतोष फैला। प्रो. एस. आर. शर्मा. ने अपनी पुस्तक 'रिलिजियस पॉलीसी ऑफ दी ग्रेट मुगल एम्पर्स' में लिखा है, "औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दूओं पर अत्यधिक अत्याचार हुए। यद्यपि उसमें हिन्दू ओर मुसलमान दोनों का रक्त मिश्रण था, तथापि वह हिन्दुओं का बहुत बड़ा विरोधी था।" उसकी हिन्दू विरोधी नीति मुख्यतः उसके व्यक्तित्व से प्रभावित थी, किन्तु उसके राजनीतिक उद्देश्यों को भी इस सिलसिले में आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता है। उत्तराधिकार युद्ध में हिन्दुओं ने मुख्य रूप से दारा का साथ दिया था। औरंगजेब इस बात से पूर्ण परिचित था कि उसके गद्दी पर आने से हिन्दुओं को निराशा हुई। अतः वह उन्हें पूरी तरह से दबाकर रखना चाहता था, जिससे वे उसके शासन के विरूद्ध षड्यंत्र न कर सकें। यह भी उसकी हिन्दू विरोधी नीति का एक महत्वपूर्ण कारण रहा होगा।

औरंगजेब ने हिन्दुओं के त्योहारों पर आंशिक प्रतिबंध लगाये। उदाहरणस्वरूप उसने सड़कों पर होली खेलना तथा होली के लिए पैसा या लकड़ी वसूल करना बंद कर दिया। सती–प्रथा पर भी उसने निषेध लगाया। हिन्दू मेलों तथा धार्मिक उत्सवों पर भी प्रतिबंध लगाये गये। 1659 ई0 में एक फरमान के द्वारा उसने पुराने मंदिरों के जीर्णोद्धार पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके दस वर्ष पश्चात् अपने प्रान्त के शासकों को काफिरों के मंदिरों तथा पाठशालाओं, धार्मिक तथा पवित्र स्थानों को तोड़–फोड़ डालने तथा उनके धार्मिक तथा विद्या के प्रचार को रोकने का कठोर आदेश दिया। मुहतसीब लोगों की अपनी सीमा के हर भाग में जाकर हिन्दू मंदिरों तथा पुण्य स्थानों को नष्ट–भ्रष्ट करना पड़ा। मंदिर तोड़ने के लिए नियुक्ति किये गये सरकारी अधिकारियों की संख्या इतनी थी कि उसके निरीक्षण के लिए अलग से एक दरोगा की बहाली की गयी। यह दुष्कर्म सम्पूर्ण देश मे किया गया और गुजरात, कश्मीर, जोधपुर, उदयपुर, जयपुर, मथुरा, बनारस, उड़ीसा, बंगाल, बीजापुर, गोलकुण्डा आदि क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर मंदिर ध्वस्त किये गये। संसार प्रसिद्ध बनारस के विश्वनाथ, मथुरा के केशवदेव तथा सोमनाथ जैसे पवित्र मंदिरों को धराशायी कर दिया गया। डॉ0 ए. वी. पाण्डे का मत है कि औरंगजेब ने सिर्फ नये मंदिरों को गिरवाने का आदेश दिया होगा, क्योंकि 1659 के फरमान में औरंगजेब ने इस विचार की उक्ति की थी कि हिन्दुओं के पुराने मंदिरों की रक्षा करना और उसके धार्मिक अधिकारों में हस्तक्षेप न करना राज्य का कर्तव्य है। सच्चाई जो भी हो एक बात तय है कि औरंगजेब के शासनकाल में यह पाप भारत के कोने–कोने में किया गया था और आज भारत में जो पुराने मंदिर मौजूद हैं, उनमें अधिकांश अठारहवीं सदी या उसके बाद के बने प्रतीत होते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि औरंगजेब के शासनकाल में व्यापक ढंग से मंदिर ध्वस्त किये गये। मंदिरों के साथ–साथ मूर्तियों को भी बड़े पैमाने पर तोड़ा गया। डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव के शब्दों में, "देश के सभी प्रांतों से दिल्ली और आगरा में गाड़ियां भर–भरकर मूर्तियां लायी गयीं और उन्हे दिल्ली, आगरा तथा अन्य नगरों की जामा मस्जिदों की सीढ़ियों के

नीचे भरवा दिया गया।" वे पुनः कहते हैं, "कभी–कभी तो मूर्तियों को तोड़ने के साथ–साथ अनियंत्रित भ्रष्टता का कार्य तक संपन्न हुआं जैसे देवालय में गायों का वध करना। मूर्तियों को जनता के पैरों द्वारा कुचला जाना।" औरंगजेब के इन दुश्कर्म से भारत की हिन्दू जनता अवश्य ही उसे घृणा करने लगी होगी, किन्तु समकालीन मुसलमानों के बीच इनक कार्यों के लिए वह 'जिन्दापीर' के रूप में लोकप्रिय हो गया।

हिन्दुओं को ओर अधिक नीचे दिखाने के उद्देश्य से औरंगजेब ने 12 अप्रैल, 1679 ई0 को अपनी एक आज्ञा के द्वारा पुनः 'जजिया कर' लगा दिया, जिसकी समाप्ति अकबर ने अपने शासनकाल में की थी। जजिया के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है, किन्तु सर यदुनाथ सरकार जैसे इतिहासकारों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यह सामान्यतः हर गैर मुस्लिम व्यक्तियों पर लगता था चाहे वह सरकारी नौकर हो या कास्तकार या व्यापारी। यहां तक ब्राह्मणों को भी इस कर में छूट नहीं थी। औरंगजेब जजिया की वसूली बड़ी कड़ाई से करता था। गैर–मुस्लिम जनता को तीन श्रेणियों में बांटा गया था। प्रथम श्रेणी के लोगों को जजिया कर के रूप में 48 दरहम, द्वितीय श्रेणी वालों को 24 दरहम तथा तृतीय श्रेणी के लोगों को 12 दरहम वार्षिक देना पड़ता था। स्त्री, बच्चे, भिखारी, गुलाम तथा कंगाल इस कर से मुक्त थे। हिन्दुओं ने सामूहिक रूप से इस कर के विरूद्ध प्रदर्षन भी किये, किन्तु उन्हे कुचल दिया गया। उसने मुसलमान व्यापारियों की सीमाशुल्क से मुक्त कर दिया, किन्तु हिन्दू व्यापरियों से 5 प्रतिशत की पुरानी चुंगी वसूल की जाती रही। हिन्दुओं के बगीचों की पैदावार पर 20 प्रतिशत कर तथा मुसलमानों पर केवल 6 प्रतिशत कर की लगाया जाता था। इसी तरह से पशुओं की बिक्री पर हिन्दुओं को 5 प्रतिशत कर देना पड़ता था जबकि मुसलमानों को केवल ढाई प्रतिशत कर देना था। औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दुओं को अन्य दूसरे ढंग से अपमान भी सहने पड़े, तथा उन्हें यह आदेष दिया गया कि वे मुसलमानों जैसे कपड़े न पहने। सन् 1695 ई0 में औरंगजेब ने राजपूतों को छोड़कर अन्य हिन्दुओं को हथियार लेकर, हाथी, अच्छे नस्ल के घोड़े या पालकी पर चढ़ने की मनाही कर दी। सन् 1671 ई में एक फरमान के द्वारा हिन्दुओं को पेशकारों, करोड़ियों तथा दीवानों के पद से हटाकर उनके स्थान पर मुसलमान अधिकारियों को रखा जाना अनिवार्य किया गया। बड़े पदों और मनसबों पर हिन्दुओं की संख्या पर मुसलमान अधिकारियों को रखा जाना अनिवार्य किया गया। बड़े पदों और मनसबों पर हिन्दुओं की संख्या दिन–प्रतिदिन कम होती चली गयी । हिन्दुओं पर जुल्म अभी ओर भी लदने बाकी थे। औरंगजेब को इन कार्यों से भी जब संतोष नहीं हुआ तो उसने बलपूर्वक तथ अन्य कूटनीतिक चालों से हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करना शुरू किया। मुसलमान बनने के लिए उन्हें अनेक प्रकार के प्रोत्साहन दिये गये, यथा अपराधियों को इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने पर छोड़ दिया जाता, ऐसे व्यक्तियों को इनाम दिया जाता आदि। पंजाब के कुछ परिवारों के पास ऐसे फरमान मौजूद हैं, जिनमे इस्लाम स्वीकार करने पर सरकारी नौकरी देने का उल्लेख मिलता है। न्याय शासन भी इस पक्षपात से सर्वथा मुक्त नहीं रहा। अगर सम्पत्ति को लेकर दो व्यक्तियों में झगड़े हो जाते और उसमें से कोई एक इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेता तो सम्पत्ति उसे दे दी जाती। उसने सिक्खों के गुरू तेग बहादुर, गुरू गोविंद सिंह के बेटों तथा अन्य प्रतिश्ठित व्यक्तियों को भी मुसलमान बनाने का प्रयत्न किया। शम्भुजी तथा कवि कलश को भी मुसलमान होने पर अभयदान देने का आश्वासन दिया गया। इस प्रकार औरंगजेब के राज्य काल में साम्राज्य इस्लाम के प्रचार की एक शक्तिषाली संस्था बन गयी। औरंगजेब की इन धर्मांध एवं धर्म असहिष्णुता की नीति का अधिकांश भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने कटु आलोचना की है। सर बूल्जे हेग ने औरंगजेब को धर्मांध संबोधित करते हुए लिखा है, "यंत्रण आर्थिक दबाव, रिश्वत, जबरदस्ती धर्म परिवर्तन, पूजा प्रतिबंध आदि उसके साधन थे।" डॉ. स्मिथ के शब्दों में, "औरंगजेब उस राज्य का निर्माण करना चाहता था, जिसमें मुहम्मद और कुरान महान् समझे जाएं तथा वे लोगों के जीवन का पथ प्रदर्शन करें। इस भांति औरंगजेब का उद्देष्य हिन्दू धर्म का विनाश एवं मुस्लिम राज्य की स्थापना करना था।" औरंगजेब ने अकबर के यशों पर पानी फेर दिया था।

औरंगजेब की नीति मृत्यु के पश्चात् भी बनी रही। उसके प्रायः सभी उत्तराधिकारियों ने धार्मिक असहिष्णुता की नीति का ही अवलम्बन किया। किन्तु बाद में मुगल शासकों की कमजोरी तथा हिन्दुओं की शक्ति के पुर्नत्थान के कारण इस नीति का महत्व ही जाता रहा।

2.13: निष्कर्ष

मुगलों की धार्मिक नीति दिल्ली सल्तनत की अपेक्षा अधिक उदार एवं सहिष्णु थी। उनकी धार्मिक नीति कूटनीतिपूर्ण एवं राज्यहित में थी। इसी नीति के अनुसरण के कारण मुगल भारत में लम्बे समय तक राज्य करने एवं जनता का सहयोग प्राप्त करने में सफल हुए। यद्यपि बाबर और हुमाँयू का इस क्षेत्र में कोई बड़ा योगदान नहीं था परन्तु अकबर ने इसमें सराहनीय भूमिका अदा की। उसने सम्पूर्ण राज्य में धार्मिक एकता और सामाजिक समरसता लाने का यथोचित प्रयास किया। उसने धार्मिक एवं सामाजिक भेद–भाव के आधार पर लिए जाने वाले सभी कर समाप्त कर दिये। सभी के साथ समान व्यवहार किया गया और सभी को आगे बढ़ने के सु–अवसर प्रदान किया गया। सुलह–ए–कुल की नीति का अनुसरण तथा दीन–ए–इलाही एवं इबादत खाना की स्थापना इसी नीति का द्योतक है। अकबर के ठीक विपरीत औरंगजेब ने कठोर धार्मिक नीति अपनाई। उसने सारे गैर–इस्लामिक रीति–रिवाज एवं परिपाटी – झरोखा दर्षन एवं तुलादान इत्यादि को बन्द करवा दिया। सिक्के पर कलमा खुदवाना और नौरोज त्यौहार मनाने पर भी पाबंदी लगा दी। औरंगजेब के कठोर धार्मिक नीति के भयानक दुष्परिणाम हुए। उसने मुगल–साम्राज्य की एकता, अखण्डता, शक्ति और सम्पन्नता को नष्ट कर दिया। जहाँ अकबर की धार्मिक नीति ने मुगल साम्राज्य को शक्ति और स्थिरता दी वहीं औरंगजेब की धार्मिक कठोर नीति ने इस वंश को पतन की ओर अग्रसर कर दिया।

2.14: अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'दीन–ए–इलाही' के प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।
2. 'दीन–ए–इलाही' की असफलता एवं अलोकप्रियता के कारणों का वर्णन कीजिए।
3. शाहजहाँ की धार्मिक नीति की समीक्षा कीजिए।
4. औरंगजेब की धार्मिक नीति का वर्णन करते हुए उसके दुष्परिणामों का उल्लेख कीजिए।

2.15: सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विपिन बिहारी सिन्हा–मध्यकालीन भारत
2. मानिक लाल गुप्ता–मध्यकालीन भारत का इतिहास
3. एल0 पी0 षर्मा – मध्यकालीन भारतग अ
4. आषीर्वादीलाल श्रीवास्तव– भारत का इतिहास
5. इमत्याज अहमद–मध्यकालीन भारत

2.14: निबंधात्मक प्रश्न

1. बाबर तथा हुमायूँ की धार्मिक नीति का उल्लेख कीजिए।
2. अकबर की धार्मिक नीति के मुख्य प्रेरक तत्वों का विष्लेशण कीजिए।

मराठों का उदय : शिवाजी की उपलब्धियाँ

3.1 परिचय

3.2 उद्देश्य

3.3 17वीं शताब्दी के पश्चिमी भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

3.4 शिवाजी के पूर्ववर्तियों की बदलती किस्मत

3.5 शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन और उनके प्रेरणास्रोत

3.6 शिवाजी की उपलब्धियाँ

- 3.6.1 तहस–नहस भू–भागों का जीर्णोद्धार
- 3.6.2 किलों पर कब्जा और नियंत्रण
- 3.6.3 नागरिक प्रशासन (केन्द्रीय तथा प्रांतीय या सूबाई) में सुधार
- 3.6.4 राजस्व प्रबन्धन : कृषि और व्यापार को प्रोत्साहन
- 3.6.5 समर्थ सैन्य शक्ति का गठन
- 3.6.6 धार्मिक सहिष्णुता और उदार नीतियाँ

3.7 सारांश

3.8 प्रयुक्त शब्दों की परिभाषा

3.9 स्व–मूल्यांकन के प्रश्न और उत्तर

3.10 संदर्भ सूची

3.11 अनुशंसित साहित्य

3.12 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

3.1 परिचय

भारत के पश्चिमी क्षेत्र को, जहाँ आज मराठा और मराठी भाषी लोग रहते हैं, पूर्व आधुनिक काल में दक्कन (दक्षिण) कहा जाता था। इस क्षेत्र का अधिकांश भाग पथरीला है। यहाँ ऊँचे–ऊँचे पठार हैं और यह भू–भाग दुरूह है। यह भू–भाग लगभग 600 मील तक समुद्र के समानान्तर फैला हुआ है। इस क्षेत्र की भू–भागीय विशेषताओं ने इस क्षेत्र के मानव–इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला है। इस क्षेत्र ने पिछली दो सहस्राब्दियों में अनेक राज्यों का उत्थान और पतन देखा है। इसके अलावा इस क्षेत्र ने उत्तर भारत में अवस्थित साम्राज्यों का सफलता पूर्वक प्रतिरोध किया, उनके आक्रमणों को झेला और सैन्य विजय भी हासिल की है। दक्कन की सैन्य विजयों की अनेक शताब्दियों का इतिहास खंगालें, तो हम पाते हैं कि मराठों ने सन् 1818 ई0

में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी से परास्त होने से पहले 17वीं शताब्दी में अपने शासन के द्वारा उत्तर भारत के साम्राज्य का मजबूती से मुकाबला ही नहीं किया, बल्कि इस क्षेत्र के प्रशासनिक और आर्थिक जीवन में भी सकारात्मक बदलाव किया।

3.2 उद्देश्य

इस यूनिट का उद्देश्य आपको मराठा साम्राज्य के उत्थान और शिवाजी की उपलब्धियों से परिचित कराना है। इस अध्ययन के दौरान आपको निम्नलिखित के बारे में जानकारी प्राप्त होगी –

1. 17वीं शताब्दी के पश्चिमी भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
2. शिवाजी के पूर्ववर्तियों की बदलती किस्मत
3. शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन और उनके प्रेरणा–स्रोत
4. शिवाजी की उपलब्धियाँ

3.3 17वीं शताब्दी के पश्चिमी भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

शिवाजी के जन्म और उनके सत्ता में आने से पहले दक्कन क्षेत्र के लिए शताब्दियों तक संघर्ष हुए। अलाउद्दीन खिलजी ने सन् 1296 में इस क्षेत्र पर आक्रमण किया तथा भारी मात्रा में माल–असबाब लूट कर ले गया। यह पहला मौका था, जब इस क्षेत्र ने मुस्लिमों के आगमन और उन्हें यहाँ बसते देखा। खिलजी के उत्तर को लौटने के बाद उसके सेनापति मलिक काफूर ने इस पूरे क्षेत्र को अपने नियंत्रण में ले लिया और सन् 1347 में यहाँ बहमनी वंश का राज्य स्थापित हुआ। ये शासक मुस्लिम थे और इन्होंने पारसी भाषा और संस्कृति को संरक्षण दिया। 15वीं शताब्दी तक अपने शासन के दौरान इस शासकों ने पूरे दक्कन क्षेत्र पर सम्पूर्ण नियंत्रण की कोशिश की, लेकिन सफलता नहीं मिली। 15वीं शताब्दी के अन्त तक बहमनी साम्राज्य 5 अलग–अलग राज्यों– अहमदनगर, बीजापुर, बेराड़, बीदर और गोलकुण्डा में विभाजित हो गया। ये राज्य आपस में लड़ते रहते थे। इन राज्यों के दरबार में तुर्क और अफगानी मूल के मुस्लिम तथा इस्लाम धर्म कबूल कर लेने वाले मुस्लिम थे। इनमें परस्पर तकरार और विवाद चलते रहते थे। इस समय तक ये राज्य भी उत्तर में अवस्थित मुगल साम्राज्य के साथ युद्ध और कूटनीति के जरिए सम्पर्क में आने लगे थे। बेराड़ का शासक इमाद शाह राजवंश से था। अहमद नगर ने बेराड़ को अपने राज्य में मिला लिया था। अहमद नगर राज्य पर निजामशाही का शासन था। निजाम एक धर्मान्तरित मुस्लिम था। अहमद नगर राज्य सन् 1636 में मुगल साम्राज्य का हिस्सा बन गया। बीदर राज्य पर बरीद शाह राजवंश का शासन था और बीजापुर के इब्राहीम आदिल शाही द्वितीय ने सन् 1619 में इसे जीत लिया। बीजापुर राज्य, जिस पर आदिल शाही राजवंश का शासन था, सन् 1686 में मुगल साम्राज्य का हिस्सा बन गया। गोलकुंडा राज्य या आज का हैदराबाद कुतुबशाही राजवंश के अधीन था। मुगल सेना ने सन् 1687 में इस राज्य को भी जीत लिया। अतः सन् 1627 में जन्मे शिवाजी, दक्कन के राज्यों में परस्पर तथा दक्कन के राज्यों के मुगलों के साथ संघर्ष के दौरान बड़े हुए थे। लेकिन दक्कन के राज्यों के बीच परस्पर शत्रुता के दौरान शिवाजी के पूर्ववर्ती एक महत्वपूर्ण राजनीतिक दल और सत्ता के दावेदारों के रूप में उभरे। उन्होंने इन प्रतिद्वन्दिताओं का फायदा उठाया और अपने परिवार तथा अपने वंश

की स्थिति को मजबूत करना शुरू कर दिया। यह सारा घटनाक्रम शिवाजी द्वारा मराठा शक्ति की कमान सम्भालने और मराठा साम्राज्य की नींव रखने तथा दक्कन के शासकों और अन्ततः मुगल साम्राज्य, दोनों के चुनौती देने से पहले का है।

3.4 शिवाजी के पूर्ववर्तियों की बदलती किस्मत

दक्कन में मराठा परिवार पाटिल और देशमुख जैसे प्रशासनिक पदाधिकारियों से सम्बन्धित थे। देशमुख और पाटिल सरकारी पदनाम थे, जो इन मराठाओं को उन्हें सौंपे गए क्षेत्र का प्रशासन चलाने और राजस्व वसूलने के लिए सम्बन्धित राज्यों द्वारा प्रदान किये गये थे। इसमें साधारण पृष्ठभूमि वाले मराठा भी थे, जो दक्कन राज्यों की सेना में सैनिकों के रूप में सेवाएँ देते थे। 16वीं और 17वीं शताब्दी के दौरान जब दक्कन के राज्य परस्पर संघर्षरत थे, अनेक मराठा परिवार दक्कन के विभिन्न राज्यों में युद्ध तथा कूटनीति के द्वारा अपना दबदबा कायम कर रहे थे। इस अवधि के दौरान जिन मराठा परिवारों ने अपना रसूख कायम किया, उनमें फाल्टन के निम्बालकर, म्हस्वाड़ के माने, जावली के मोरे, सिन्दखेड के जाधव, मुधोल के घोरपड़े, वेरूल के भोंसले शामिल हैं।

इनमें वेरूल के भोंसले परिवार का उत्थान सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक था। शिवाजी इसी परिवार में जन्मे थे। इस परिवार यानि शिवाजी के पूर्ववर्तियों ने नए शासन के लिए मराठों को संगठित करने में अग्रणी भूमिका निभाई। बाबाजी शिवाजी के प्रपितामह थे। उन्हें पाटिल के अधिकार अपने मातृपक्ष यानि ननिहाल की तरफ से मिले थे। ये क्षेत्र पूना जिले के अन्तर्गत थे। बाबाजी महत्वाकांक्षी व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने वेरूल में गाँव के मुखिया के रूप में रहना पसन्द किया। सन् 1597 और 1599 के आसपास उनकी मृत्यु हुई। वे अपने पीछे दो पुत्र माले जी और विठोजी तथा वेरूल, हिंगानी, देयुलगावा, खनवत, जिन्ती और करनाड के पाटिल के रूप में अधिकार छोड़ गए थे।

लेकिन उनके दोनों पुत्र, विशेषकर मालोजी परिवार की सम्पदा और सम्मान में वृद्धि के बहुत इच्छुक थे। मालोजी और उनके भाई विठोजी, आरम्भ में फाल्टन के एक उच्च मराठा सरदार जगपाल निम्बालकर की सेवा में थे। उसे वांगोजी नाम से भी जाना जाता था। मालो जी का वांगोजी की पुत्री उमाबाई से विवाह हुआ। इस रिश्ते के लिए सिन्दखेड़ के मराठा सरदार लाखूजी जाधवराव ने सिफारिश की थी। इस विवाह से पता चलता है कि मालोजी इस समय तक निम्बालकर के अनुकूल दर्जा प्राप्त कर चुके थे। इस रिश्ते से मराठा सरदारों के बीच मालोजी का दर्जा भी ऊँचा हुआ। इस अवधि के दौरान, दक्कन के दो राजवंश, अहमदनगर की निजामशाही और बीजापुर के आदिलशाही के बीच तकरार चल रही थी। निजामशाही ने अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए मराठा सरदारों को अपने पक्ष में करना शुरू कर दिया। सन् 1377 में मालोजी और उनके भाई ने अहमदनगर राज्य के सेवा में आ गए। मालोजी को अहमदनगर जिले के श्रिंगोड़ा में 600 एकड़ जमीन दी और मालोजी वहीं बस गए तथा बेरूल में अपने पैतृक घर से बहुत दूर इस जगह बस्ती बसा ली। मालोजी की 1605 ई0 में इन्दापुर में एक संघर्ष के दौरान मृत्यु हो गई। विठोजी को उनके परिवार, विशेषकर उनके पुत्र शाहजी की देखभाल का दायित्व सम्भालना पड़ा। विठोजी ने जब लाखोजी जाधव की पुत्री के साथ शाहाजी का विवाह किया, उसकी उम्र छः वर्ष की थी। विठोजी सन् 1611 में सक्रिय सेवा से सेवानिवृत्त हो गए।

अहमदनगर की निजामशाही में शाहाजी ने अपने पिता की जगह ली। इस अवधि के दौरान मुगल दक्कन में अपना प्रभाव बढ़ाने में सक्रिय थे। परिणामस्वरूप अनेक मराठा सरदार पाला बदल कर मुगलों की तरफ जाने लगे। शाहजी के ससुर, लाखोजी जाधव, जो निज़ामशाही की सेवा में थे, सन् 1621 में मुगलों की सेवा में चले गये। शाहजी मलिक अम्बर के विश्वासपात्र थे। मलिक अम्बर अहमदनगर का प्रधानमंत्री था और वह निमाजशाही को मुगलों से बचाना चाहता था। शाहाजी और विठोजी के पुत्र सम्भाजी का अहमदनगर के दरबार में शामिल मराठा सरदारों के साथ संघर्ष हुआ, ये मराठा सरदार मुगलों से जा मिले थे। इस संघर्ष में सम्भाजी मारे गए और शाहाजी घायल हो गये। अपने पिता की तरह ही शाहाजी भी मलिक अम्बर के प्रति वफादार बने रहे। मलिक अम्बर ने मुगल सेना और इसके सहयोगी बीजापुर राज्य के हमलों का मुकाबला करने के लिए दीर्घकालिक युद्ध अभियान चलाए। इस प्रतिद्वन्द्विता का अन्त सन् 1624 में भटवाड़ी की लड़ाई के रूप में हुआ। इस युद्ध में मलिक अम्बर ने मुगलों और बीजापुर की संयुक्त सेना का मुकाबला किया और जीत हासिल की। शाहजी और उनके भाई शरीफजी ने इस युद्ध में मलिक अम्बर का कन्धे से कन्धा मिला कर साथ दिया। अब तक लखूजी जाधव, जो मुगलों की सेवा में जा चुके थे, निजामशाही के दरबारियों को काफी हद तक अपने प्रभाव में ले चुके थे। इसलिये इस विजय के बावजूद शाहाजी सन् 1625 में बीजापुर के पक्ष में हो गए। वहीं दूसरी तरफ सन् 1626 में उनके सलाहकार मलिक अम्बर की मृत्यु हो गई। सन् 1627 में बीजापुर के आदिलशाह द्वितीय की भी मृत्यु हो गई। अब बीजापुर के दरबार में शाहाजी अलग–थलग पड़ गए थे और सन् 1627 में वे निजाम शाही की सेवा में चले गए। निजाम शाह ने 1628 में उन्हें पूना के राजस्व का ठेका दिया। लेकिन निजामशाह द्वारा उनके श्वसुर लाखूजी जाधव राव और उसके दो पुत्रों की हत्या करवाने के बाद उन्होंने पुनः अहमदनगर की सेवायें त्याग दीं। शाह जी इसके बाद शिवनेरी के किले में आ गए, जहाँ उन्होंने अपने पुत्र सम्भाजी का किले के सरदार विजयराज की पुत्री से विवाह किया। उन्होंने नौकरी के लिए आजम खान के माध्यम से मुगलों से वार्ता की। उन्हें पाँच हजारी दर्जे के साथ मुगल मनसबदार के रूप में नियुक्त कर लिया गया। उन्हें दो लाख नगद तथा खिलअत (एक रेशमी वस्त्र) प्रदान की गई। मनसबदार के तौर पर उन्हें सौंपा गया पहला दायित्व दरयाखान को गिरफ्तार करना था। इस मुगल अधिकारी ने निजाम शाह के यहाँ शरण ली थी और यह मुगलों के लिए परेशानी पैदा कर रहा था। शाह जी ने इस दायित्व को सफलता से निभाया।

शाह जी ने अहमदनगर की सेवा त्याग कर मुगल मनसबदारी स्वीकार की। इस संधिकाल के दौरान 19 फरवरी, 1630 को जीजाबाई ने शिवनेरी में शिवाजी को जन्म दिया। शाह जी लम्बे समय तक मुगल सेवा में नहीं रहे, क्योंकि उनके हित तो दक्कन से जुड़े थे। वे फिर सन् 1631 में निजामशाही में लौट आए। इसी वर्ष बुरहान निजाम शाह तृतीय की हत्या कर दी गई थी। इस कृत्य को उसके प्रधानमंत्री फतह खान ने अंजाम दिया था और उसने गद्दी हथिया ली थी। शाह जी ने इस दरबारी शत्रुता को समाप्त करने तथा अहमदनगर राज्य को एकजुट करने एवं दक्कन को मुगलों के खिलाफ मजबूत बनाने का प्रयास किया। वे इस बार मुहम्मद आदिल शाह का समर्थन प्राप्त करने में भी सफल रहे। आदिल शाह के अनेक दरबारी, जैसे कि खवास खान, रन्दौला खान और मुरारी पण्डित दक्कन की आजादी के लिए शाह जी के प्रयासों पर विश्वास करते थे। 1634 में मुगल सेनापति महावत खान की मृत्यु हो गई और यह शाह जी के लिए बहुत फायदेमंद रहा। लेकिन सन् 1636 में शाहजहाँ दक्कन आया और उसने शाइस्ता खान, अहलावर्दी खान के साथ मिलकर आदिल शाही तथा निजाम

शाही के तहत मराठों के संयुक्त प्रतिरोध को कुचल दिया। आदिल शाह को मजबूर हो कर मुगलों से सन्धि करनी पड़ी और शाहजी पूना और सूपा के जागीरदार के तौर पर आदिल शाही सेवा में बने रहे। निजाम शाही का अन्त हो गया और इसके भू–भाग को मुगलों और बीजापुर राज्य के बीच बाँट दिया गया।

इसके बाद मुहम्मद आदिल शाह ने शाह जी को कर्नाटक में तैनात कर दिया, जहाँ वे बीजापुर राज्य की सेवा में रहे। सन् 1656 में मुहम्मद आदिल शाह की मृत्यु के बाद शाहजी कर्नाटक के असल मालिक बन गए। अतः शिवाजी के जन्म तक मराठा, विशेष रूप से भोंसले परिवार दक्कन (दक्षिण) की राजनीति और युद्ध के मैदान, दोनों में अपनी धाक जमा चुका था। अब उनकी जागीर कुछेक गाँवों से बढ़कर लगभग एक राज्य के बराबर हो चुकी थी। वे दक्कन (दक्षिण) की दरबारी राजनीति में बहुत शक्तिशाली बन चुके थे और मुगल भी उन्हें एक शक्तिशाली कौम मानने लगे थे। इस पूरी अवधि के दौरान शिवाजी के पूर्वज ज्यादातर समय मुगलों से एक क्षेत्र के तौर पर दक्षिण की आजादी सुरक्षित रखने में अग्रणी रहे और उन्होंने इस प्रयोजन में विश्वास रखने वाले मुस्लिम कुलीनों तथा प्रतिभाशाली व्यक्तियों से गठबंधन किया। जब कोई विकल्प नहीं बचता था, तभी वे मुगलों से कोई वार्ता या सौदेबाजी करते थे।

शिवाजी आपसी संघर्ष, आदिल शाही राज्य और निजामशाही राज्य की उथल–पुथल भरी राजनीति तथा मुगलों द्वारा आक्रमण के माहौल में पले–बढ़े। उन्होंने अपने कार्यकाल में दक्षिण के दो राज्यों के भग्नावशेषों पर मराठा शक्ति को एकजुट करने और इस क्षेत्र में मुगलों की चुनौती से निपटने की दिशा में कार्य किया।

3.5 शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन और प्रेरणा–स्रोत

जिस वर्ष शिवाजी का जन्म हुआ था, उस वर्ष दक्षिण में भयानक अकाल पड़ा था। अकाल के बाद बेतहाशा बरसात हुई। बहुत भारी संख्या में जनहानि हुई। दक्कन (दक्षिण) का विशाल भू–भाग तहस–नहस हो गया। कृषि और व्यापार लगभग थम सा गया। इस अकाल से गाँव के गाँव बर्बाद हो गए, लेकिन राजनीतिक उथल–पुथल नहीं थमी। मुगलों तथा अन्य निकायों के बीच विवाद और युद्ध अभियान लगातार चलते रहे। सन् 1630 और 1636 के बीच शिवाजी के पिता शाहजी यहाँ–वहाँ पलायन करते रहे। इसका कारण बार–बार जगह बदलना और दुश्मनों का हमला था।

इस प्रकार शिवाजी का बचपन उथल–पुथल भरे राजनीतिक एवं आर्थिक हालातों में गुजरा। शाहाजी ने अपने पुत्र शिवाजी के लालन–पालन का दायित्व दादोजी कोन्डादेव और रामराव रान्जेकर को सौंपा था। दादोजी पूना में मल्थाना के कुलकर्णी थी। शिवाजी को अपनी माता जीजा बाई से अगाध प्रेम था। शिवाजी के प्रारम्भिक जीवन में ये तीन प्रमुख प्रेरणास्रोत थे। उन्होंने पढ़ना, लिखना तथा प्रशासक बनने के लिए जरूरी कला सीखी। इन सबके साथ–साथ उन्हें सैन्य प्रशिक्षण भी दिया गया। शिवाजी की माता जीजाबाई दृढ़ इच्छाशक्ति वाली महिला थी। शिवाजी ने अपनी माता की उत्कट और कभी हार न मानने वाली भावना को आत्मसात किया था। जीजाबाई ने मुगल दरबार में शामिल हो चुके अपने पिता की शरण लेने के बजाय पति के साथ यहाँ–वहाँ पलायन करना ज्यादा पसंद किया था।

पिता की अनुपस्थिति में दादोजी कोन्डादेव शिवाजी के लिए पिता समान थे। उन्होंने नागरिक प्रशासन के बारे में शिवाजी को लगभग सब कुछ सिखाया और जब शिवाजी ने अपनी जागीर की जिम्मेदारियाँ सम्भालना शुरू किया, वे हर समय शिवाजी के साथ रहे। इतिहासकार एक और प्रेरणास्रोत का हवाला देते हैं, जिसने शिवाजी के जीवन को प्रभावित किया, ये थी – पौराणिक गाथायें, हिन्दू महाकाव्य रामायण और महाभारत। चारण और भाट कथा कीर्तनों में इनका गायन और वाचन किया करते थे। शिवाजी इन कथा–कीर्तनों में नियमित रूप से जाया करते थे और उन्हेंने कथा–कीर्तनों में शामिल होने के लिए अपनी जान भी जोखिम में डाली थी। शिवाजी पढ़ना–लिखना जानते थे या नहीं, इस पर बहुत चर्चा–परिचर्चा हुई है, लेकिन इसके दस्तावेजी सबूत हैं कि अपने शासनकाल में उन्होंने अनेक प्रशासनिक सुधार किये थे।

3.6 शिवाजी की उपलब्धियाँ

सन् 1636 में, जब शिवाजी लगभग छः वर्ष के थे, शाहजी ने पूना परगना के 36 गाँव शिवाजी को सौंप दिये थे। सन् 1645–46 तक शिवाजी पूरी जागीर के ट्रस्टी बन गए। इसी उम्र से शिवाजी ने अपना शासनकाल शुरू किया। इसी चरण में उन्होंने संस्कृत में अपनी मुहर भी अपनाई।

3.6.1 तहस–नहस भू–भागों का जीर्णोद्धार

शिवाजी ने सबसे पहले अपनी जागीर में तबाह हो चुकी खेती को फिर से बहाल करने का कार्य किया। आदिल शाही सरदारों और सन् 1630–31 के अकाल ने खेती को तबाह कर दिया था। उन्होंने लोगों के लम्बे समय से चले आ रहे जमीन सम्बन्धी विवादों का समाधान किया। इससे उन्हें बहुत जन–समर्थन मिला। दादोजी कोंडादेव खेडबारे और मुठे–मावेल क्षेत्र से राजस्व प्राप्त करने में सफल रहे। उन्होंने गाँव के मुखियाओं पर कृषि कार्यों में लोगों की मदद करने और हमलों तथा अकाल के चलते वीरान हो चुके भू–भागों में लोगों को फिर से बसने के लिए समझाने का दबाव ड़ाला।

उनका दूसरा सबसे महत्वूपर्ण कार्य था उन किलों पर फिर से कब्जा करना, जो अपनी जागीर पर पकड़ बनाये रखने के अत्यंत अहम थे। इसलिये जैसे–जैसे वे किलों पर कब्जा करते गए, उनके आसपास के अपने प्रभाव क्षेत्र में लोगों को बसाते भी गए, उन्हें इन बसावटों में प्रशासन की एक ठोस व्यवस्था भी कायम की, ताकि उनके राज्य के लोगों का समर्थन उन्हें मिलता रहे। शिवाजी ने विस्तार और अपने राज्य के समेकन की नीति अपनाई। सन् 1647 में उन्होंने बीजापुर से कोन्डना (सिंहड़) का किला छीन लिया। यह अभियान मराठा साम्राज्य स्थापित करने की उनकी यात्रा का शुभारम्भ था। 27 वर्ष बाद 1674 में उनका राज्याभिषेक हुआ। इस समय तक वे अपने प्रशासन को दो परतों – प्रान्तीय (सूबाई) और केन्द्रीय के रूप में स्थापित कर चुके थे। राज्याभिषेक के बाद उनके प्रशसन और सेनाओं को और ज्यादा संगठनात्मक स्वरूप मिला।

3.6.2 किलों पर कब्जा और नियंत्रण

शिवाजी की एक प्रारम्भिक व महत्वपूर्ण उपलब्धि बिना रक्तपात के अपनी जागीर के आसपास के महत्वपूर्ण किलों पर कब्जा करना और उन्हें मजबूत प्रशासन के अधीन लाना था। इनमें पुरन्दर, रोहिड़ा, तोरण, रायगढ़ और चाकण के किले शामिल थे। उसके बाद उन्होंने अपनी चतुराई भरी चालों से आनन–फानन में जावली को अपने नियंत्रण में ले लिया। दक्कन (दक्षिण) में यह किला रणनीतिक तौर पर महत्वपूर्ण था। यह किला आदिल शाही के अधिराज्य के अधीन था। जावली में स्थित रायगढ और प्रतापगढ़ के किले उनके नियंत्रण में आ गए। अपनी जागीर को सुरक्षित बनाने के लिए उनकी यह विजय अत्यन्त अहम थी। इस दौरान शिवाजी ने मुगलों के साथ दोस्ताना सम्बन्ध बनाये रखे। मुगल भी आदिल शाही प्रभाव को मिटाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने शिवाजी को पूरी छूट दे रखी थी। सन् 1656 तक शिवाजी ने माहुली और महाड़ के बीच के क्षेत्र पर कब्जा कर लिया था और कुछ भू–भाग को छोड़कर पूरे कोंकण के उत्तरी भाग पर उनका वर्चस्व स्थापित हो गया था। किले इस रणनीति का एक अहम हिस्सा थे। शिवाजी ने लगभग 240 किलों (दुर्गों) पर अपना नियंत्रण कायम कर लिया था। इन किलों के अनुरक्षण की दिशा में वे काफी जागरूक थे। प्रत्येक किले में समान दर्जे के तीन अधिकारी हवलदार, सरनौबत और सबनीस तैनात किये गये थे। किले की रसद और भण्डार की निगरानी के लिए खरकानिस नियुक्त किये गये थे।

3.6.3 नागरिक प्रशासन (केन्द्रीय तथा प्रान्तीय या सूबाई) में सुधार

इन क्षेत्रों को अपने नियंत्रण में लेने के बाद यहाँ स्थिरता बनाये रखने के लिए शिवाजी ने प्रशासन का मजबूत ढांचा खड़ा किया। सन् 1657–58 में शिवाजी ने नागरिक एवं सैन्य दोनों प्रशासन की अलग–अलग शाखाओं के लिए 7 कारकूनों की एक परिषद बनाई थी। उनकी सेना में 1000 घोड़े, 1000 पैदल सैनिक थे तथा 40 किले उनके नियंत्रण में थे।

उन्होंने तत्कालीन परम्पराओं के आधार पर प्रशासन स्थापित किया ताकि यह प्रशासन सहनशील और टिकाऊ हो। इस आधार पर हम कह सकते हैं क भारत के आधुनिक काल के आरम्भ में शिवाजी एक कुशल प्रशासक थे। शिवाजी के राज्य के तीन सम्भाग (डिवीज़न) थे, उन्होंने सबसे पहले प्रत्येक सम्भाग में प्रांतीय (सूबाई) प्रशासन की नींव रखी। ये डिवीज़न (सम्भाग) इस प्रकार हैं –

1. उत्तरी सम्भाग – सलहर (आज का नासिक) और पूना के बीच का क्षेत्र, बम्बई के उत्तर में लगभग 100 मील की दूरी पर कोंकण का कुछ भाग।
2. मध्य सम्भाग – पश्चिमी घाट अथवा बालघाट और बम्बई के दक्षिण में भटकल तक दक्षिणी कोंकण के बीच का क्षेत्र।
3. दक्षिणी सम्भाग – पूना के दक्षिण में वारघाट से तुंगभद्रा के निकट कोपबल तक का क्षेत्र।

प्रत्येक सम्भाग का प्रमुख मजिस्ट्रेट दर्जे का अधिकारी था, जिसे सरकारकुन कहा जाता था। प्रत्येक सम्भाग को 14 जिलों में बाँटा गया था। प्रत्येक जिले का मुखिया सूबेदार कहलाता था, जो प्रशासन के असैन्य (सिविल) मामले देखता था। प्रत्येक सूबेदार की सहायता के लिए एक मजूमदार नियुक्त किया गया था, जो एकाउण्ट और ऑडिट का काम देखता था। प्रत्येक जिले को महल में बाँटा गया था, जिसका मुखिया हवलदार कहलाता था। इसके बाद महल के अन्तर्गत देशमुख, देशपाण्डे जैसे विरासतीय अधिकारी होते थे, जो गाँवों के समूह, जिन्हें परगना कहा जाता था, के प्रभारी होते थे। इसके अलावा पाटिल और कुलकर्णी भी थे, जो ग्राम स्तर पर दीवानी और आपराधिक मामले देखते थे।

सन् 1674 में, जब शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ, उन्होंने अष्ट प्रधान मण्डल नाम से 8 मंत्रियों की एक परिषद बनाई। केन्द्रीय प्रशासन का यह ढांचा सीधे शिवाजी के अधीन था। इस परिषद में शामिल लोगों को मराठा प्रशासन के अलग–अलग दायित्व सौंपे गये थे, जो इस प्रकार हैं –

1. मुख्य प्रधान – प्रधानमंत्री
2. आमात्य (मजूमदार) – राजस्व मंत्री
3. सचिव – सभी शाही फरमानों और पत्राचार का सचिव
4. मंत्री – वाकनिस – रिकॉर्ड कीपर और व्यक्तिगत सलाहकार
5. सेनापति – कमाण्डर–इन–चीफ
6. सुमन्त – विदेश मंत्री
7. न्यायाधीश – चीफ जस्टिस
8. पण्डित राव – पुरोहित/धार्मिक प्रमुख

3.6.4 राजस्व प्रबन्धन : कृषि और व्यापार को प्रोत्साहन

शिवाजी के प्रशासन की आय के मुख्य स्रोत भू–राजस्व (जमीन पर लगान) प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष; चौथ और सरदेशमुखी थे। इसके अलावा युद्ध से प्राप्त लूट भी इस आय में शामिल कर ली जाती थी। मराठा राज्य द्वारा प्राप्त राजस्व का एक चौथाई भाग चौथ के रूप में वसूला जाता था। सरदेशमुखी मराठा प्रभुत्व वाले किसी सूबे द्वारा उगाहे गए कुल राजस्व का 10 प्रतिशत होता था। सरदेशमुखी पहली बार सन् 1648 में वसूला गया था। यह लेवी प्राप्त करने का मतलब होता था कि शिवाजी के शासन के अधिकार को स्वीकार कर लिया गया है। धीरे–धीरे चौथ वसूली नियमित होती गई और बाद में अप्रत्यक्ष रूप से मराठों के नियंत्रणाधीन मुगल भू–भागों से भी चौथ वसूला जाने लगा।

जहाँ तक राज्सव उगाही और प्रशासन का सम्बन्ध है, जमीन की सटीक माप और उर्वरकता के अनुसार जमीन का वर्गीकरण निर्धारित करना शिवाजी की एक बड़ी उपलब्धि थी और भू–राजस्व इसी के अनुसार तय किया गया था। अपने राज्य के कुछ हिस्सों में शिवाजी ने बटाई बन्दोबस्त भी लागू किया। इस व्यवस्था में किसान के उत्पाद राज्य के साथ बराबर–बराबर बांटे जाते थे। शिवाजी ने यह सुनिश्चित किया था कि इन भू–भागों के किसान इसके अलावा कोई अन्य कर नहीं देंगे। उन्होंने जमीन सम्बन्धी विवादों का समाधान किया और लोगों को प्राकृतिक आपदाओं तथा आक्रमणों में बर्बाद हो चुकी जमीनों पर बसने के लिए प्रोत्साहित किया। साथ ही लोगों को बसाकर खेतिहर जमीन का विस्तार किया।

कृषि के विस्तार के लिए उन्होंने अधिकारियों को निर्देश दिये कि वे समझा–बुझा कर लोगों को बसने के लिए दबाव डालें और उन्हें सुरक्षा दें तथा क्रमिक रूप से वृद्धिगत राजस्व, जिसे इस्तवा कहा जाता था, के आधार पर कृषि कार्य के लिए प्रयुक्त जमीन का मूल्यांकन करें। इस व्यवस्था के तहत जिस जमीन पर लगातार आठ साल से खेती हो रही हो, उस पर पूरा टैक्स (कर) लगाया जाता था। नई जमीनों को कृषि योग्य बनाने के लिए यह एक उल्लेखनीय प्रोत्साहन था। बिचौलियों और दलालों की भूमिका खत्म करने के लिए शिवाजी ने केन्द्रीय प्रशासन और प्रान्तीय प्रशासन के सभी मंत्रियों को वेतन दिया।

शिवाजी ने वेतन, ईनाम और मुकासा जैसी पारम्परिक काश्तकारी को ससम्मान बनाये रखा, लेकिन इसके प्रति उन्होंने यथार्थ नजरिया अपनाया। असैन्य (सिविल) और सैन्य स्वरूप की ये दोनों सेवायें विरासतीय थीं। शिवाजी ने इन पुरानी व्यवस्थाओं में तब तक कोई दखल

नहीं दिया, जब तक कि वे गाँव और समुदाय के प्रति अपने दायित्वों को भली–भांति निभा रहे थे। उन्होंने नई काश्तकारियाँ भी बनाई और उन पुरानी सम्पदाओं को जब्त भी किया, जो अपने पारम्परिक कर्तव्य नहीं निभा रहे थे।

शिवाजी ने पुर्तगालियों द्वारा उनके राज्य को निर्यात किये जा रहे नमक पर भारी शुल्क लगा कर कोंकण के नमक उद्योग को संरक्षण दिया। इससे मराठा राज्य में स्थित नमक व्यापारियों और नमक थालों (कड़ाहों) अर्थात नमक बनाने के बर्तनों को फलने फूलने में सहायता मिली। संतुलित नैसेना (नेवी) और किलों पर अपनी पकड़ के बल पर उनके राज्य में अवस्थित वाणिज्यिक केन्द्रों ने इस दौरान अच्छी प्रगति की। शिवाजी ने कल्याण और भिवन्डी में जहाज निर्माण (शिप बिल्डिंग) उद्योग लगाए। यहाँ जहाज के निर्माण में काम आने वाले इमारती वृक्ष बहुतायत में उगते थे।

3.6.5 कुशल सैन्य शक्ति का निर्माण

शिवाजी ने शक्तिशाली नौसेना का गठन किया। उनकी जलसेना में दो स्क्वाड्रन (दस्ते) थे और प्रत्येक दस्ते में 200 पोत थे। वह उन कुछेक राजाओं में से थे, जिन्होंने अपनी नौसेना बनाई थी। शिवाजी ने एक कुशल सैन्य शक्ति का भी निर्माण किया था। इसमें पैदल सेना, नियमित घुड़सवार सेना और छापामार हमलावर शामिल थे। एक हवलदार के अन्तर्गत पच्चीस सैनिक होते थे। इससे ऊपर के पद (रैंक) जुमलादार, हज़ारी, पाँच हज़ारी थे। इन अधिकारियों का प्रमुख सरनौबत कहलाता था, जो नियमित घुड़सवार सेना से होता था। शिवाजी की सेना में उनके अंगरक्षक सहित 2 लाख सैनिक थे। उनकी सेना चुस्त–दुरुस्त, फुर्तीली और बिना ज्यादा ताम–झाम के थी। उनकी सेना में 200 हाथी भी थे।

यह एक सुसंगठित सेना थी और सेना में धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होता था। बीजापुर की सेवाओं को त्याग कर 700 पठान शिवाजी की सेना में शामिल हो गए थे। सेना में वे लोग भी शामिल थे, जो अपने घोड़े और हाथी लेकर आते थे, इन्हें सिलाहदार कहा जाता था। शिवाजी के अधीन मराठा सेना में ऐसे 60,000 भाड़े के सैनिक थे।

3.6.6 धार्मिक सहिष्णुता और उदारनीति

शिवाजी की प्रमुख उपलब्धि यह थी कि उन्होंने सभी के प्रति अत्यंत उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनाई। मराठा साम्राज्य खड़ा करने में उनकी सफलता का श्रेय इसी नीति को जाता है। उनके राज्य में विद्वानों और प्रतिभाशाली व्यक्तियों का सम्मान किया जाता था। धार्मिक पुरोहित पण्डित राव को विद्वानों को आमंत्रित करने और उन्हें राज्य में बसाने का पूरा अधिकार दिया गया था। हालांकि शिवाजी आजीवन मुगलों और दक्कन (दक्षिण) के सुल्तानों के खिलाफ संघर्षरत रहे, लेकिन उन्होंने इस धर्म के लोगों के साथ भेदभाव नहीं किया। मुस्लिम सन्तों और हिन्दू सन्तों को अपने पूजा स्थलों और धर्म स्थलों के रख–रखाव के लिए अनुदान और भत्ते दिये जाते थे। उनके शासनकाल के दौरान मठों, मन्दिरों और मस्जिदों ने शिक्षा के केन्द्रों के रूप में अच्छी भूमिका निभाई। उनके प्रशासन के सभी पहलुओं में भी धर्मनिरपेक्षता को पूरी तरह अपनाया गया था।

3.7 सारांश

17वीं शताब्दी में दक्कन (दक्षिण) में मराठा एक शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में उभरे और उन्होंने दक्षिण के सुल्तानों और उत्तर में मुगलों को कड़ी चुनौती दी। उन्होंने मुगल सेना का प्रतिरोध करने के लिए न केवल एक सुगठित राज्य की स्थापना की, बल्कि दक्षिण के सामाजिक और आर्थिक जीवन में उल्लेखनीय सुधार भी किया। 16वीं शताब्दी में अनेक मराठा परिवार दक्षिण के पाँच राज्यों के दरबार में सेवारत थे। बहमनी राज्य के पतन के बाद अस्तित्व में आये ये पाँच राज्य परस्पर युद्धरत रहते थे। इन पाँच राज्यों में सबसे ज्यादा प्रमुख अहमदनगर का निज़ामशाही राजवंश और बीजापुर का आदिलशाही राजवंश था। दक्कन (दक्षिण) की राजनीति में, हालांकि अनेक मराठा परिवार शामिल थे, लेकिन इनमें से भोंसले परिवार एक सशक्त निकाय के रूप में उभरा। इसी परिवार में शिवाजी का जन्म हुआ था।

शिवाजी के पितामह मालोजी एक अन्य मराठा सरदार फाल्टन के जगपाल निम्बालकर की सेवा में थे। उसकी सिफारिश से मालोजी निज़ामशाही राजवंश के अहमदनगर राज्य की सेवा में शामिल हुए और अपनी जागीर में काफी वृद्धि की। उनके पुत्र शाह जी ने अपने पिता का पद सम्भाला और मलिक अम्बर के विश्वासपात्र बन गए। मलिक अम्बर अहमदनगर राज्य का प्रधानमंत्री था। यह वह समय था जब अनेक मराठा जिनमें शाह जी के श्वसुर लखूजी जाधव राव भी शामिल था, मुगलों में शामिल हो रहे थे।

मलिक अम्बर की मृत्यु के बाद निजामशाही का पतन हो रहा था, शाहजी आदिलशाही राजवंश के अधीन बीजापुर राज्य में चले गए और मुगलों से मनसबदार पद मिलने पर मुगलों की सेना में शामिल हो गए। लेकिन मुगलों के साथ उनका यह मेल–मिलाप ज्यादा नहीं चला। वे बीजापुर लौट आए और उन्होंने मुगलों का सामना करने के लिए कुलीनों को एकजुट करना शुरू किया। बाद में उन्हें कर्नाटक में तैनात कर दिया गया, जहाँ उन्होंने अपने शासन के दौरान आदिलशाही राज्य की सीमाओं का विस्तार किया और इस क्षेत्र को मजबूत प्रशासन दिया। सन् 1650 में आदिलशाह की मृत्यु के बाद वे कर्नाटक के असल शासक बन गए।

दक्षिण में युद्धों और प्राकृतिक आपदाओं की तबाही के दौरान उथल–पुथल भरे माहौल में सन् 1630 में शिवाजी का जन्म हुआ। शिवाजी का बाल्यकाल पिता के साथ नहीं बीता था। उन्हें उनकी माता ने व उनके पिता के विश्वासपात्र लोगों ने पाला था। शिवाजी अपनी माता तथा दादोजी कोन्डदेव और रामराव रांजेकर के संरक्षण और मार्गदर्शन में युवावस्था को प्राप्त हुए। उन्होंने आत्मनिर्भरता की भावना को आत्मसात किया और पूना में युद्ध कला और प्रशासन का प्रशिक्षण प्राप्त किया। उन्होंने अपने पिता से मिली जागीर का सन् 1640 से विस्तार करना और समेकन करना शुरू किया। उन्होंने युद्ध और कूटनीति के जरिये दुर्गों पर कब्जा कर के दक्षिण के बहुत बड़े भू–भाग पर अपना नियंत्रण कायम करना और वहाँ कुशल प्रशासन स्थापित करना शुरू किया। सन् 1674 में उनका राज्याभिषेक हुआ (गद्दी सम्भाली) और इसके बाद उन्होंने आठ मंत्रियों की एक परिषद बनाई, जिसे अष्ट प्रधान कहा गया। यह परिषद ही केन्द्रीय प्रशासन थी, जो मराठा राज्य के अन्तर्गत स्थापित प्रान्तीय (सूबाई) प्रशासनों से तालमेल व निगरानी का कार्य करती थी। शिवाजी ने कृषि विस्तार को बढ़ावा दिया। कृषि राज्य के राजस्व का प्रमुख स्रोत थी। शिवाजी ने दलालों की भूमिका समाप्त करने, भ्रष्टाचार पर नजर रखने, व्यापार और उद्योग को बढ़ावा देने, धार्मिक शिक्षण की सुविधायें देने और अपने राज्य में इसके प्रसार के लिए भी कदम उठाए।

शिवाजी 240 दुर्गों (किलों) को अपने नियंत्रण में लेने और यहाँ कुशल प्रशासन स्थापित करने में सफल रहे। उन्होंने ऐसी कुशल सैन्यशक्ति का निर्माण किया, जिसमें दिखावे और तामझाम के लिए कोई जगह नहीं थी। उन्होंने कुशल राजस्व प्रबंधन के जरिये चौथ और सरदेशमुखी की उगाही की और शासन के हर पहलू में उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनाई। वे एक ऐसे सशक्त मराठा साम्राज्य की नींव रखने में सफल रहे, जिसे न केवल मुगलों, बल्कि ब्रिटिश, डच, फ्रैन्च और पुर्तगाली जैसी विदेशी व्यापारी ताकतों ने भी सराहा।

3.8 तकनीकी शब्दावली

पाटिल : गाँव का मुखिया, जो खेती, राजस्व प्रबंधन और दक्कन (दक्षिण) के क्षेत्र में सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने का दायित्व निभाता है।

देशमुख : यह एक उपाधि (पद) है। यह पद उसे दिया जाता है, जिसे दक्कन (दक्षिण) में कोई भू–भाग आवंटित किया गया हो और राजस्व तथा मजिस्ट्रेट के अधिकार दिये गये हों।

मनसबदार : मुगल प्रशासन में किसी व्यक्ति को दिया जाने वाला एक पद जो एक निश्चित भू–भाग का प्रभारी होगा।

खिलअत : एक बड़े राजा द्वारा सम्मान में दी जाने वाली एक रेशमी पोशाक।

पाँच हजारी : मुगल प्रशासन की मनसबदारी व्यवस्था में सबसे बड़ा पद (रैंक)।

जागीरदार : यह एक पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाला पद है। इसकी शुरूआत सल्तनत काल से हुई थी। किसी राजाधिराज द्वारा किसी व्यक्ति को विरासतीय अधिकारों के साथ प्रदान की गई सामंती जमीन जायदाद।

कुलकर्णी : महाराष्ट्र क्षेत्र में प्रचलित एक उपनाम जो उन लोगों को दिया जाता है, जो बड़े सामन्ती परिवारों के रिकॉर्ड रखा हैं।

कथा : सामाजिक और धार्मिक प्रथा के एक भाग के रूप में आयोजित पौराणिक नाट्य मंचन और गाथाओं का गायन।

चौथ : दक्कन (दक्षिण) में एक प्रकार का वार्षिक कर। कुल राजस्व या उत्पाद के एक चौथाई के रूप में इसका आकलन किया जाता है। शिवाजी के शासन के दौरान इसे नियमित बना दिया गया था।

सरदेशमुखी : शिवाजी के शासन का संरक्षण प्राप्त करने वाले सभी सूबाई शासकों द्वारा मराठा शासक को दिया जाने वाला वार्षिक खिराज (शुल्क)। यह उनकी कुल राजस्व का 10 प्रतिशत था।

हवलदार : शिवाजी के प्रशासन में एक अधिकारी जो किले के संचालक का दायित्व निभाता था।

सरनौबत : शिवाजी के दरबार का सैनिक कमाण्डर, जो किलों के अनुरक्षण का भी प्रभारी था।

सबनिस : शिवाजी के शासन में किले के प्रशासन में लेखाकार (एकाउण्टेंट)।

खरकानिस : शिवाजी के प्रशासन के दौरान किले के लिए रसद का इंतजाम करने वाला अधिकारी।

सूबेदार : मुगल प्रशासन और शिवाजी के प्रशासन में सूबे का गवर्नर।

मजूमदार : शिवाजी के केन्द्रीय प्रशासन में लेखाकार (एकाउण्टेंट)।

महल : प्रशासन की राजस्व इकाई, जो सूबे से छोटी होती है।

परगना : प्रशासन की राजस्व इकाई, जो महल से छोटी होती है, गाँवों का एक समूह।

इस्तवा : आपदाओं के बाद लोगों को पुनः बसाने के लिए मराठा शासकों द्वारा दिया जाने वाला अनुदान, शिवाजी ने इसकी शुरूआत की थी।

वतन : शिवाजी प्रशासन द्वारा किसी जागीरदार को दी गई कृषि भूमि।

इनाम : एक ऐसी भू–काश्तकारी जिस पर राजस्व आकलन की दर कम कर दी गई हो या राजस्व समाप्त कर दिया गया हो।

मुकासा : एक अनुबंध व्यवस्था, जिसके तहत लेनदार के दावे को निरस्त कर दिया जाता है और इसकी भरपाई अन्य जरियों से की जाती है। यह व्यवस्था मुगल और मराठा प्रशासन में प्रचलित थी।

हजारी : शिवाजी की सेना में एक पद, जिसके अधीन 1000 सैनिक होते थे।

जुमलादार : शिवाजी की सेना में एक पद, जिसके अधीन 100 सैनिक होते थे।

हवलदार : शिवाजी की सेना में एक पद, जिसके अधीन 25 सैनिक होते थे।

सिलहदार : भाड़े के सैनिक, जो अपने साजो–सामान के साथ शिवाजी की सेना में लड़ते थे और बदले में युद्ध से प्राप्त लूट में अपना हिस्सा लेते थे।

मठ : भारत में अवस्थित समन्वयवादी और आध्यात्मवादी प्रतिष्ठान। इनमें आध्यात्मिक निष्ठा को सबसे ज्यादा महत्व दिया जाता था। शिवाजी के राज्य में और इसके आसपास ऐसे मठों की बहुतायत थी।

3.9 स्व–मूल्यांकन के प्रश्न और उत्तर

1. शिवाजी के जन्म के वर्ष दक्कन में कौन सी प्राकृतिक आपदा आई ?
   (क) अकाल (ख) भूकम्प (ग) बाढ़ (घ) सूखा
2. शिवाजी ने जब अपनी मुहर बनाई, वे कितने वर्ष के थे ?
   (क) 14 (ख) 16 (ग) 18 (घ) 20
3. शिवाजी ने प्रत्येक किले में कितने अधिकारी तैनात किये ?
   (क) 2 (ख) 1 (ग) 3 (घ) 4
4. शिवाजी की नौसेना में कितने पोत थे ?
   (क) 100 (ख) 130 (ग) 250 (घ) 400

3.10 संदर्भ सूची

1. ए.आर. कुलकर्णी, दी मराठाज, बुक्स एण्ड बुक्स, 1996।
2. टी.टी. महाजन, आस्पैक्ट्स ऑफ एग्रेरियन एण्ड अर्बन हिस्ट्री ऑफ दी मराठाज, कॉमन वैल्थ पब्लिशर्स, 1991।
3. राजाराम व्यंकटेश नादकर्णी, दी राइज एण्ड फॉल ऑफ दी मराठा अम्पायर, पॉपुलर प्रकाशन, 1966।

3.11 अनुशंसित साहित्य

1. जदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, लॉन्गमैन एण्ड ग्रीन, 1920।
2. स्टीवर्ट गॉर्डन, दी मराठाज़ 1600–1818, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस – 1993।

3.12 दीर्घ उत्तरित प्रश्न

1. शिवाजी द्वारा अपने शासनकाल में निष्पादित महत्वपूर्ण कार्यों का वर्णन करें।

मुगलों के खिलाफ विद्रोह

1.1 परिचय
1.2 उद्देश्य
1.3 मुगलों का अभ्युदय और भारतीय उपमहाद्वीप में उनका साम्राज्य
1.4 खानवा के युद्ध (1527 ई0) में बाबर के खिलाफ राणा सांगा
1.5 बाबर और हुमायूँ के खिलाफ अफगानों के अभियान
1.6 हुमायूँ के खिलाफ बहादुर शाह
1.7 हुमायूँ के खिलाफ शेरशाह (1532–1540 ई0)
1.8 अकबर के खिलाफ हेमू और अफगान
1.9 अकबर के खिलाफ मेवाड़ में महाराणा प्रताप
1.10 अकबर के खिलाफ बंगाल में दाउद खान और अन्य
1.11 औरंगजेब के खिलाफ सतनामियों का विद्रोह
1.12 औरंगजेब के खिलाफ हरगोविन्द और तेगबहादुर
1.13 जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के खिलाफ साहजी और शिवाजी
1.14 सार–संक्षेप
1.15 तकनीकी शब्दावली
1.16 संदर्भ सूची
1.17 उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 परिचय

बाबर ने 1526 ई0 में पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोधी को पराजित करके दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया और इस प्रकार भारतीय उपमहाद्वीप में मुगल साम्राज्य की नींव रखी। 1857 ई0 में ब्रिटिशों द्वारा बहादुरशाह ज़फर को गिरफ्तार किये जाने तथा उसे निर्वासित कर रंगून की जेल में कैद रखे जाने के साथ ही लगभग 350 वर्षों तक चलने वाले इस मुगल शासन का अन्त हो गया। मुगल शासकों ने अनेक राज्यों को जीत कर और एक के बाद एक अनेक विद्रोहों को कुचल कर मुगल साम्राज्य की स्थापना की। अकबर अपने पूर्ववर्ती शासकों के विजय अभियानों को सम्पन्न करके अधिकांश भारतीय उपमहाद्वीप पर मुगल साम्राज्य स्थापित करने और इसे स्थाई बनाने में सफल रहा, लेकिन इससे यह अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिये कि मुगल शासन से आजाद होने के प्रयासों के फलस्वरूप होने वाली बगावतों पर भी विराम लग गया था। मुगलों के खिलाफ बगावत के कारणों को मुख्यतया दो संदर्भों में खोजा जा सकता है। मुगलों द्वारा किसी क्षेत्र या शासक पर विजय के इरादे से आक्रमण करना पहला संदर्भ कहा जा सकता है। अवसर प्राप्त होते ही किसी क्षेत्र या शासक वंश द्वारा अपने मजबूत गढ़ से मुगल प्रभाव और मुगल शासन को उखाड़ फेंकने का प्रयास करना दूसरा संदर्भ कहा जा सकता है। इस अध्याय में मुगल शासकों के घराने में गद्दी हथियाने के लिए हुए युद्धों, जैसे कि जहाँगीर, औरंगजेब और बहादुर शाह आलम के युद्धों को शामिल नहीं किया गया है।

1.2 उद्देश्य

इस यूनिट का उद्देश्य आपको उन सभी संदर्भों या परिस्थितियों से परिचित कराना है, जो मुगलों के खिलाफ विद्रोह से जुड़ी हैं और साथ ही मुगलों के खिलाफ विद्रोह करने वाली सभी शक्तियों के बारे में एक व्यापक समझ पैदा करना है। प्रथम मुगल शासक बाबर के भारत आगमन के समय यहाँ की राजनीतिक परिस्थितियों और बाद में भारतीय उपमहाद्वीप में उसके और उसके उत्तराधिकारियों के विजय अभियानों तथा के संक्षिप्त विवरण के साथ यह अध्याय अपनी यात्रा शुरू करता है। इस यात्रा वृत्तान्त में आगे चल कर उन सभी परिस्थितियों और घटनाओं को भी समेटा गया है, जो अलग–अलग मुगल शासकों के खिलाफ सत्ता के दावेदारों द्वारा किये गये विद्रोहों का कारण बनी थीं।

1.3 मुगलों का अभ्युदय और भारतीय उपमहाद्वीप में उनका साम्राज्य

बाबर ने 1504 ई0 में काबुल पर कब्जा कर लिया था, तभी से वह भारत को जीतने की योजना बना रहा था। बाबर ने 1525 ई0 में लोधी को हरा कर पंजाब को हथिया लिया। अगले ही वर्ष इब्राहीम लोधी से अन्तिम संघर्ष के लिए उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और पानीपत में घनघोर युद्ध के बाद उसने दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया। बाबर की यह जीत भारत में मुगलों के आगमन की सूचक थी, जो आगे चल कर लगभग सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में मुगल साम्राज्य की स्थापना की गवाह बनी। 1526 ई0 से लेकर अकबर के शासनकाल तक मुगल शासन को अनेक उतार–चढ़ावों का सामना करना पड़ा और इसके बाद मुगल साम्राज्य में एक अपेक्षाकृत व्यवस्थित प्रशासन प्रणाली कायम हुई और साथ ही कुलीनों, विभिन्न राज्यों तथा जन साधारण में इस साम्राज्य को राजनीतिक वैधता हासिल हुई। मुगल साम्राज्य के सम्पूर्ण शासन के दौरान इस उपमहाद्वीप के अन्य शासकों के साथ इस साम्राज्य के रिश्तों को युद्धों ने तय किया और जहाँ युद्ध से कामयाबी नहीं मिली, वहाँ राजनयिक समझौतों का सहारा लिया गया। मुगल साम्राज्य, विशेषकर अकबर के समय से, इस देश के शासकों के साथ युद्ध में रत रहा, लेकिन इन युद्धों का उद्देश्य इन शासकों का पूरी तरह से विनाश करना या उन्हें समाप्त करना नहीं था, बल्कि उन्हें मुगल सत्ता की अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर करना और उनके साथ करद राज्य के रिश्ते कायम करना था, ताकि मुगल साम्राज्य के लिए राजस्व जुटाया जा सके।

अनेक स्वाभिमानी शासकों ने मुगलों की अधीनता का प्रतिरोध किया और बगावत की, वहीं दूसरी तरफ कई शासकों ने मुगलों की अधीनता सहर्ष स्वीकार कर ली। अधीनता स्वीकार करने वाले राजाओं को मुगलों की मनसबदारी व्यवस्था में ऊँचे–ऊँचे पद दिये गये और इन शासकों ने देशी राजाओं के खिलाफ मुगल साम्राज्य की तरफ से युद्ध में भाग लिया। अनेक शासक, सेनापति और भाड़े के सिपाही ऐसे भी थे, जो युद्ध की परिस्थितियों का फायदा उठाने के लिए देशी राजाओं के साथ मिल जाते थे, तो कभी मुगल साम्राज्य का साथ देते थे। अतः मुगलों के खिलाफ प्रतिरोध, बाबर से लेकर औरंगजेब के समय तक निरन्तर बना रहा और धर्म कभी भी इस प्रतिरोध का आधार नहीं बन सका। मुगल साम्राज्य के प्रत्येक चरण में विद्रोह और समझौते का रास्ता मुगल दरबार और देशी शासकों के दरबार में होने वाली राजनीति ने ही निर्धारित किया।

1.4 खानवा के युद्ध (1527 ई0) में बाबर के खिलाफ राणा सांगा

प्रारम्भ में जब बाबर भारतीय उपमहाद्वीप की ओर रुख कर रहा था, राणा सांगा मालवा और पूर्वी राजस्थान पर अपना नियंत्रण कायम करने के लिए दिल्ली के लोधी वंश के साथ संघर्षरत था। इसी समय बाबर की भी नज़र दिल्ली पर थी और दौलत खान लोधी बाबर पर इब्राहीम लोधी के खिलाफ युद्ध अभियान चलाने के लिए जोर दे रहा था। उस समय राणा सांगा ने भी बाबर को ऐसा ही न्यौता दिया था।

शायद राणा सांगा को उम्मीद थी कि बाबर का भारत की ओर प्रस्थान, इब्राहीम लोधी को विचलित कर देगा और वह इस अवसर का फायदा उठा कर पूर्वी राजस्थान और मालवा को अपने नियंत्रण में ले लेगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ और बाबर ने आनन–फानन में पंजाब को अपने कब्जे में लेकर इब्राहीम लोधी को हराकर दिल्ली और आगरा की ओर कूच कर दिया। बाबर से पहले भारत आने वाले विदेशी हमलावर लूट–पाट के बाद वापस लौट जाते थे, लेकिन बाबर ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने की ठान ली, जबकि राणा सांगा जब बाबर लोधी के खिलाफ दिल्ली के लिए कूच कर रहा था, तब आगरा पर आक्रमण में उसने अपना कोई सहयोग नहीं दिया और बाबर ने इसे ध्यान में रखा। यह सुनिश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता कि राणा सांगा पानीपत के युद्ध से अथवा उसके बाद कब अलग रहे।

आगरा और दिल्ली को जीतने के बाद बाबर को अपनी भावी योजना से अपने कुलीनों को आश्वस्त करने तथा अपना शासन स्थापित करने के लिए राजपूतों और अफगानों से निपटने की योजना बनाने में कुछ समय लगा। इस बीच राणा सांगा ने रणथम्भौर के समीप कुन्ढार के किले पर कब्जा कर लिया और बाबर के खिलाफ सैन्य संगठन खड़ा करना शुरू कर दिया। राणा सांगा ने 1527 ई0 की शुरूआत तक अपनी तैयारी पूरी करके अपने नेतृत्व में एक विशाल सेना के साथ आगरा की ओर कूच कर दिया।

इस घटनाक्रम की जानकारी मिलते ही बाबर ने हुमायूँ को आगरा बुला लिया और राणा सांगा के साथ युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। बाबर ने अपने मुस्लिम सेनापतियों से वायदा किया कि वह राणा सांगा के प्रस्थान मार्ग पर पड़ने वाले तीन महत्वपूर्ण किलों को उन्हें सौंप देगा। ये किले थे – धौलपुर, ग्वालियर और बयाना। बयाना का सेनापति नाज़िम खान इस अवसर का फायदा उठाने के लिए दोनों पक्षों से सौदेबाजी करता रहा। बाबर ने राणा सांगा की आगे बढ़ती सेना को रोकने के लिए सेना का एक अग्रिम दस्ता बयाना भेज दिया। इस दस्ते को बुरी तरह हार का सामना करना पड़ा। इस पहली विजय ने राणा सांगा का पलड़ा भारी कर दिया और यह हार बाबर की सेना के लिए एक बड़ा आघात थी।

राणा सांगा ने राजपूतों के विख्यात शासक घरानों, जिनमें हाड़ौती, जालौर, सिरोही, डूंगरपूर, धुन्धार, आम्बार शामिल थे, के साथ गठबंधन कर सैन्य बल तैयार किया। मेवाड़ के राव गंगा ने अपनी सेना भेजी। मालवा में चन्देरी के राजा मेदिनी राव भी इस सैन्य बल में शामिल हुए। सिकन्दर लोधी का छोटा पुत्र महमूद लोधी , जिसे अफगानों ने अपना सुल्तान घोषित कर दिया था, भी इस गठबंधन में शामिल हुआ। मेवात के एक अफगानी हसन खान मेवाती भी अपने 12,000 सैनिकों के साथ इस सेना में

शमिल हुआ। इस संयुक्त सेना में सभी धर्मों के सैनिक थे। उनका बस एक ही उद्देश्य था कि किसी अन्य विदेशी को भारत में पैर नहीं जमाने देंगे। जो भी इस साझा उद्देश्य से सहमत थे, इस संयुक्त अभियान में शमिल हुए।

लेकिन बाबर ने अपनी सेना के मनोबल को बढ़ाने के लिए धर्म का सहारा लिया। उसने इस युद्ध को जिहाद का नाम देते हुए अपनी शराब की सुराही तोड़ दी और कभी भी शराब न पीने की घोषणा की। मुस्लिमों में मदिरापान को बुराई माना जाता है। उसने मुस्लिमों से वसूला जाने वाला कर, ''तमगा'' भी माफ करने का वायदा किया। उसने यह भी वायदा किया कि इस युद्ध के बाद काबुल लौटने के इच्छुक सरदार वापस जा सकेंगे।

बाबर अपनी इस घोषणा और वायदे के द्वारा अपने सैनिकों का मनोबल बढ़ाने में सफल रहा। बाबर अभी तक युद्धों के दौरान पार्श्विक (बगली) रणनीति का उपयोग करता आ रहा था। इस युद्ध में भी उसने इसी युद्ध कला को अपनाया।

उसने अपनी सेना की पहली पंक्ति में तोपों से लैस छकड़ों (कार्ट) को श्रृंखलाबद्ध तरीके से तैनात किया। इन छकड़ों के बीच खाली जगह में घुड़सवार सैनिक तैनात किये गये। ये सैनिक फुर्ती से अपनी जगह बदल कर आक्रमण करने में माहिर थे। इन छकड़ों पर तिपाइयों पर तोपची बैठाए गए थे जो तोपों को पलीता दिखाने का काम करते थे। आगे बढ़ती फौज के इस अग्रभाग के दोनों बाजुओं को खाइयाँ खोद कर सुरक्षित बनाया गया था। दुश्मन पर दायीं तथा बाईं ओर से तथा पीछे से हमला करने के लिए अलग से दस्ते रखे गए थे। दोनों सेनाओं का आगरा के समीप खानवा में आमना–सामना हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि राणा सांगा इस युद्ध रचना को कारगर नहीं समझते थे। उन्होंने अपने हाथियों और तलवारबाज सैनिकों के साथ बाबर की सेना के दाहिने भाग पर धावा बोला। बाबर ने तत्काल कमुक भेज कर इस धावे को विफल कर दिया। राणा के धावे पर रोक लगते ही बाबर की सचल फौज ने मोर्चा सम्भाला और राणा की सेना के पाँव उखड़ गए। अत्यन्त बहादुरी से मुकाबला करने के बावजूद राणा सांगा की पराजय हुई। राणा सांगा हार कर चित्तौड़ लौट गये और उनका सैन्य संगठन ध्वस्त हो गया। बाबर ने पानी की कमी और गर्मी के कारण राणा सांगा का पीछा नहीं किया। बाबर मेवात की ओर बढ़ा और वहाँ हसन खान मेवाती की राजधानी तिजारा तथा अलवर को छीन लिया, लेकिन इसके बदले लाखों की कीमत वाले कई समृद्ध परगने उसके पुत्र नाहर खान को प्रदान कर दिये।

खानवा के युद्ध में इस जीत के साथ दोआबा क्षेत्र में बाबर की स्थिति मजबूत हो गई। अब वह राणा सांगा को उसके सैन्य गठबन्धन से अलग–थलग करने की कोशिशें करने लगा, लेकिन सफलता नहीं मिली। राणा ने बाबर से एक और युद्ध की तैयारी शुरू कर दी थी, लेकिन 30 जनवरी, 1528 को उसकी मृत्यु हो गई।

1.5 बाबर और हुमायूँ के खिलाफ अफगानों का अभियान

पानीपत और खानवा के युद्ध में अफगानों की पराजय के बावजूद उन्होंने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। भारत में अनेक जगहों पर इनकी बसासत थी। इन्होंने भारत में मुस्लिमों को एकजुट करके एक बड़ा संगठन तैयार कर लिया था। वर्तमान उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग और बिहार इनके मजबूत गढ़ थे। इन्होंने अनेक हिन्दू राजाओं से

गठजोड़ कर रखे थे और इन क्षेत्रों में इन्हें व्यापक समर्थन प्राप्त था। इन किलों पर कब्जा किये बिना कोई भी शासक भारतीय उपमहाद्वीप में सफल नहीं हो सकता था।

बाबर इसे भलीभांति समझ चुका था, इसलिए उसने अफगानों के प्रति बल प्रयोग और सुलह की नीति अपनाई। वह पहले अपने सैन्य बल से उनको उनके किलों से खदेड़ देता था और बाद में उन्हें कहीं और ''इक्ता'' या जागीर दे कर उनसे सौदेबाजी करता था। बाबर अपनी इस नीति के जरिए इब्राहीम लोधी के कुछ प्रमुख सरदारों, जैसे कि अवध के शेख बयाज़िद को अपनी तरफ मिलाने में सफल रहा। कुछ ऐसे भी सरदार थे, जिन्होंने पहले तो बाबर की अधीनता स्वीकार कर ली, लेकिन बाद में उसके खिलाफ हो गए, जैसे कि पूर्वी उत्तर प्रदेश का बिबन।

लेकिन इनमें से अनेक सरदार बाद में विद्रोही अफगानों के पक्ष में चले गए, इसके बदले उन्हें बड़े–बड़े परगने दिए गए थे। इसलिए बाबर अफगानों पर पूरी तरह से भरोसा नहीं करता था। इस मामले में, अहमद खान नियाज़ी मुगलों से नफरत होने के बावजूद बाबर के साथ जुड़ा रहा। इसके अलावा पूर्वी उत्तर प्रदेश में जौनपुर के आसपास बसे अफगान सरदार भी थे। इन्होंने लोधी शासन के खिलाफ भी विद्रोह किया था। पानीपत के बाद इन अफगानों ने गुजरात के शहजादे बहादुर शाह को जौनपुर का शासक नियुक्त कर दिया था।

बाबर खुद को लोधी के उत्तराधिकारी के रूप में देख रहा था और लोधी सल्तनत के कब्जे वाले किसी भी भू–भाग को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। 1526 ई0 के आसपास हुमायूँ के नेतृत्व में भेजी गई सेना ने जौनपुर पर फिर कब्जा कर लिया, लेकिन इसके बाद मुगल सेना राणा सांगा के प्रतिरोध को दबाने के लिए भेज दी गई।

इस बीच सिकन्दर लोधी का छोटा पुत्र महमूद लोधी बिहार पहुँच गया और वहाँ बिबन तथा शेख बयाजिद समेत सभी अफगानों ने उसे अपना सुल्तान स्वीकार कर लिया। इन सब घटनाओं के दौरान बंगाल के तत्कालीन शासक नुसरत शाह ने, जो उत्तर प्रदेश और बिहार को दिल्ली के शासकों के खिलाफ ढाल की तरह रखना चाहता था, अफगानों के साथ मैत्रीपूर्ण रिश्ते बनाए रखे। बाबर अभी भी मालवा में ही था। उसने कन्नौज का रूख किया। बाबर के घाघरा नदी पार करते ही विद्रोही भाग खड़े हुए। अस्करी को वहाँ का प्रभार सौंप कर बाबर आगरा लौट आया। अफगानों को भागते देख बंगाल के शासक ने मुगलों को भरोसा दिलाया कि वह विद्रोहियों की कोई मदद नहीं करेगा और तटस्थ बना रहेगा, लेकिन अफगानों की दुरभिसंधि जारी रही और वे अपने खोये हुए भू–भागों पर काबिज होते रहे। बाबर ने 1528 ई0 में सभी विद्रोहों के दमन का फैसला लिया और प्रयाग तथा बनारस होते हुए चुनार और बक्सर के किले तक पहुँच गया। एक बार फिर घाघरा नदी के तट पर पहुँचने पर उसने नदी के उस पार उसके खिलाफ बंगाल और अफगानों की संयुक्त सेना को तैनात पाया।

नुसरत शाह ने नावों दस्तों के साथ एक मजबूत सैन्य दीवार खड़ी की थी। इसके बावजूद बाबर ने नदी के ऊपरी छोर से घाघरा को पार किया, उसके साथ अस्करी की अगुवाई में 20,000 सैनिक भी थे। बाबर की सेना ने बंगाली और अफगानी सेना के संयुक्त मोर्चे पर दो–तरफा हमला किया। घाघरा के तट पर 5 मई, 1929 को बाबर की सेना को इस युद्ध में निर्णायक जीत मिली। बिहार के सभी अफगानों ने बाबर के समक्ष

समर्पण कर दिया और इसके बदले बाबर ने उन्हें विशाल परगने प्रदान किये। बिबन और बयाजिद लखनऊ की ओर निकल गए। बाबर की सेना द्वारा खदेड़े जाने पर वहाँ से कालिंजर की ओर भाग खड़े हुए। बाबर ने बंगाल के नुसरत शाह से सुलह कर ली, लेकिन बाबर यह भी जानता था कि यह केवल अस्थाई व्यवस्था है और अफगानों ने अभी भी उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की है।

बिबन और बयाज़िद हालांकि पराजित हो गये थे, लेकिन जल्दी ही उन्होंने जौनपुर पर फिर कब्जा कर लिया। बाबर की मृत्यु के बाद हुमायूँ ने घाघरा नदी को पार कर के गोमती के तट पर अफगानों का मुकाबला किया और उन्हें करारी शिकस्त दी। बयाज़िद मारा गया और 1531 ई0 में अफगान विद्रोह छिन्न भिन्न हो गया।

1.6 हुमायूँ के खिलाफ बहादुर शाह

बहादुर शाह ने 1526 ई0 में मालवा की गद्दी सम्भाली। वह हुमायूँ का हमउम्र था। गद्दी के लिए हुए युद्ध में अपने छः भाइयों में से पाँच भाइयों को मौत के घाट उतार कर उसने गद्दी हासिल की थी। जीवित बचा एक भाई राजपूतों की शरण में चला गया था। इससे उसे राजपूतों के अधीनस्थ मालवा तथा अहमदनगर पर आक्रमण करने का बहाना मिल गया। मालवा क्षेत्र, जिस पर राजपूतों और दिल्ली के मुगलों की ललचाई नजर थी, के लिए बहादुर शाह एक प्रबल दावेदार के रूप में उभर रहा था। हुमायूँ की खिलाफत करने वाले अनेक अफगान सरदार और तिमुरिद शहजादे उसके दरबार में शामिल हो गए थे। इन सभी ने मिल कर उसे हुमायूँ के खिलाफ युद्ध के लिए उकसाने का प्रयास किया। धीरे–धीरे बहादुर शाह की महत्वाकांक्षाएँ बढ़ने लगीं और वह मुगल फौज के खिलाफ बगावत का नेतृत्व करने के लिए राजी हो गया। अमीर मुस्तफा और ख्वाजा सफर, दोनों ही तुर्क और माहिर तोपची थे। इनकी सेवाएँ मिल जाने से बहादुर शाह का हौसला और भी बढ़ गया। बाबर के तोपखाने और रणनीति में इन तुर्कों को विशेषज्ञता हासिल थी। बहादुर शाह ने 1532 ई0 में चित्तौड़ पर घेरा डाल दिया। उसका यह कदम हुमायूँ को भड़काने के लिए पर्याप्त था।

इसके जवाब में हुमायूँ ने 1533 ई0 में ग्वालियर को कूच किया। यह देख कर उसने चित्तौड़ के राणा से तुरन्त सुलहनामा कर लिया, जो कि एक दिखावा मात्र था, क्योंकि इस सुलहनामे के द्वारा उसने राणा से भारी भरकम खजाना वसूला था और पूर्वी मालवा का एक भाग हासिल कर लिया था। हुमायूँ तब तक लौट आया था और कुछ समय के लिए अपनी राजधानी ''दीन पंथ'' के निर्माण में व्यस्त हो गया था। इस दौरान हुमायूँ के साथ बहादुर शाह के रिश्ते मैत्रीपूर्ण रहे, लेकिन यह सब ज्यादा दिन नहीं चला। बहादुर शाह ने 1534 ई0 में चित्तौड़ पर फिर चढ़ाई कर दी और हुमायूँ के खिलाफ उसके शासन के प्रारम्भ से ही षड़यंत्र रचने वाले मुहम्मद जमां मिर्जा के साथ गठजोड़ का प्रयास किया। हुमायूँ ने तुरन्त मिर्जा के खिलाफ अभियान चला कर उसे परास्त कर दिया और उसे गिरफ्तार करके बयाना भेज दिया। मिर्जा बयाना से बचकर भाग निकला और बहादुर शाह से जा मिला।

इसके प्रत्युत्तर में बहादुर शाह ने एक अफगानी तातार खान तथा भाड़े के सैनिकों के साथ गठजोड़ कर मुगल फौजों पर कालंजर, आगरा और बयाना में तीन तरफ से आक्रमण किया। अस्करी और हिन्दाल के नेतृत्व में मुगल फौजों ने तातार खान को मार

दिया। हुमायूँ ने फैसला किया कि वह गुजरात तक बहादुर शाह का पीछा नहीं छोड़ेगा और रास्ते में आने वाले हर क्षेत्र को जीत लेगा।

हुमायूँ चित्तौड़ जाने के बजाय आगरा से उज्जैन की ओर रवाना हुआ। चित्तौड़ पर बहादुर शाह ने घेरा डाल रखा था। राजपूतों के संयुक्त प्रतिरोध ने बहादुर शाह को लम्बे समय तक उलझाए रखा। अन्ततः बहादुर शाह की सेना का मुगलों से मन्दसौर में आमना–सामना हुआ। शाह की अति आत्मविश्वासी सेना ने वही सुरक्षा–व्यूह अपनाया, जो बाबर ने पानीपत के संग्राम में उपयोग किया था। हुमायूँ की सेना ने शाह की रणनीति को समझ लिया था। उसने शाह की सेना के रसद मार्गों को काट दिया और लगभग एक सप्ताह में शाह के सैनिक बीमार होने लगे तथा घोड़े मरने लगे।

बहादुर शाह अपने तोपचियों को युद्ध का जिम्मा सौंप कर पीछे हट गया और मान्डू चला गया। हुमायूँ की सेना ने शिविर पर कब्जा कर लिया और शाह के सैनिकों को तितर–बितर कर दिया। हुमायूँ को शिविर में विशाल खजाना हाथ लगा। हुमायूँ ने माण्डू तक शाह का पीछा किया और अनेक अफगान सरदारों तथा माहिर तोपची मुस्तफा को अपनी तरफ मिलाने में सफल रहा। बहादुर शाह ने चित्तौड़ और गुजरात के बारे में सौदेबाजी की, लेकिन सफलता नहीं मिली। बहादुर शाह को माण्डू छोड़ कर चम्पानेर भागना पड़ा। हुमायूँ ने बहादुर शाह का पीछा करने से पहले तीन दिन तक माण्डू में तबाही मचाई। इस प्रकार हुमायूँ ने अगस्त, 1535 में चम्पानेर का किला जीत लिया और दक्षिण गुजरात पर विजय हासिल की। बारिश का मौसम समाप्त होने के बाद मुगल सेनाएं उत्तरी गुजरात की ओर बढ़ी, जहाँ बाहदुर शाह के गुलाम इमाद–उल–मुल्क ने 30,000 सेना के साथ महमूदाबाद में मुगलों का मुकाबला किया। मुगलों ने अक्टूबर, 1535 तक इस सेना को पूरी तरह परास्त कर दिया।

गुजरात को जीत तो लिया गया था, लेकिन हुमायूँ का कोई भी सरदार यहाँ का प्रशासक नहीं बनना चाहता था। अतः हुमायूँ ने गुजरात और उत्तरी भारत पर नजर रखने के लिए माण्डू में खुद ही गद्दी सम्भाली और गुजरात के प्रशासक के तौर पर अस्करी को तैनात किया। अस्करी एक मजबूत प्रशासन देने में कामयाब नहीं हुआ और इससे सूरत में बहादुर शाह को फिर एक बार सिर उठाने का मौका मिला। उसने कैम्बे और भड़ौच को फिर अपने कब्जे में ले लिया, लेकिन पुर्तगालियों के साथ एक लड़ाई में मारा गया। इसके बाद हुमायूँ गुजरात को अपने काबू में रखने पर ज्यादा ध्यान नहीं दे सका तथा अस्करी और अन्य मुगल सरदार भी गुजरात तथा माण्डू क्षेत्र से पीछे हट गए और पूरा क्षेत्र फिर से स्थानीय क्षत्रपों के कब्जे में आ गया। इस प्रकार हुमायूँ ने बहादुर शाह के नेतृत्व में हुए इस शक्तिशाली विद्रोह को कुचल तो दिया, लेकिन इस प्रक्रिया में वह जीते हुए क्षेत्रों पर अपनी पकड़ मजबूत नहीं कर सका। इसके अलावा बिहार में अफगान सरदार शेर खान के नेतृत्व में भड़क रहे विद्रोह पर भी उसे अपना पूरा ध्यान केन्द्रित करना था।

1.7 हुमायूँ के खिलाफ शेरशाह सूरी

हुमायूँ ने शेर खान से खतरे को भांप लिया था। शेर खान बिहार में एक अफगान सरदार था। हुमायूँ ने इस खतरे को दूर करने के लिए बंगाल की तरफ कूच करने का इरादा बनाया, लेकिन इस बीच उसे बहादुर शाह के विद्रोह से निपटने के लिए लौटना पड़ा और गुजरात के खिलाफ सैन्य अभियान चलाना पड़ा। शेर खान एक शक्तिशाली

सरदार के रूप में अपनी पहचान बना चुका था और उसकी अपनी महत्वाकांक्षायें थीं। हुमायूँ को शेर खान का पीछा करने और बंगाल को जीतने का कारण मिल गया था। बारिश का मौसम था। हुमायूँ जुलाई, 1537 ई0 में बंगाल की ओर बढ़ा और अफगानों के मजबूत गढ़ चुनार तक पहुँच गया। बनारस में कुछ समय बिताने के बाद उसने चुनार के किले की नाकेबंदी कर दी और एक लम्बे इन्तजार के बाद अन्ततः जून, 1538 ई0 को चुनार के किले पर उसका कब्जा हो गया। इस बीच शेर खान और आगे पूर्व की ओर बढ़ चुका था और वहाँ उसने गौर पर कब्जा कर लिया। शेर खान न केवल मुगलों को भारत से बाहर खदेड़ना चाहता था, बल्कि बंगाल पर भी कब्जा करना चाहता था, क्योंकि यहाँ का शासक निरन्तर बिहार पर आक्रमण करता रहता था।

हुमायूँ ने शेर खान के समक्ष समर्पण की शर्त रखी। इस शर्त के अनुसार हुमायूँ चुनार की जागीर और जौनपुर शेर खान को देने को तैयार था। बदले में शेर खान को बंगाल छोड़ना था। लेकिन शेर खान बंगाल छोड़ने को तैयार नहीं था, क्योंकि उसने बंगाल को अपने पराक्रम से जीता था। शेर खान ने बिहार को हुमायूँ को सौंपने और बंगाल पर उसके कब्जे को स्वीकार करने के बदले दस लाख रूपये सालाना कर हुमायूँ को देने की शर्त रखी। हुमायूँ शायद इस शर्त को स्वीकार कर लेता, लेकिन बंगाल के पराजित शासक महमूद शाह ने हुमायूँ से सम्पर्क कर उससे अनुरोध किया कि वह अपना बंगाल अभियान जारी रखे और बंगाल में शेर खान के खिलाफ प्रतिरोध में सहयोग करे। इस प्रकार बंगाल लड़ाई की जड़ बन गया।

हुमायूँ सींकरी गल्ली में प्रतिरोध का सामना करने के बाद गौर पहुँच गया, लेकिन उसे समझ नहीं आ रहा था कि इस अभियान के दौरान जीते गए भू–भाग का क्या किया जाय। उसने अपनी अधीनता में इस भू–भाग पर एक नया शासक नियुक्त करने की कोशिश की, लेकिन इस जिम्मेदारी को सम्भालने के लिए कोई योग्य और इच्छुक सरदार उसे नहीं मिला। इस बीच उसके भाई हिन्दाल ने उसके खिलाफ बगावत कर दी। मजबूरन उसे आगरा वापस लौटना पड़ा। हुमायूँ के बंगाल कूच के दौरान शेर खान ने मौका पाकर बनारस पर कब्जा कर लिया था, चुनार और जौनपुर की नाकेबंदी कर दी थी और कन्नौज तथा सम्भल तक मुगलों के कब्जे को तहस–नहस कर दिया था।

हुमायूँ की बंगाल से वापसी मुसीबतों से भरी थी। हिन्दाल की बगावत उसे आगरा लौटने को मजबूर कर रही थी। आगरा वापसी के दौरान जगह–जगह अफगानों के हमले जारी थे। वह अपनी सेना के साथ बड़ी मुश्किल से चौसा पहुँचा। यह स्थान बिहार और वर्तमान उत्तर प्रदेश की सीमा पर स्थित है। हुमायूँ को मुगलों की श्रेष्ठता पर अटूट विश्वास था। इन सभी मुसीबतों और सरदारों तथा सेना के बीच अव्यवस्था के बावजूद उसे भरोसा था कि जीत उसी की होगी। इसीलिए उसने शेर खान के साथ शान्ति वार्ता के बजाय चौसा में मुकाबला करने का फैसला लिया। इस युद्ध में हुमायूँ की रणनीति भी खामियों भरी रही और 26 जून, 1539 को उसे बुरी तरह पराजय का सामना करना पड़ा। हुमायूँ भाग कर आगरा की ओर कूंच कर गया, जहाँ उसके भाई कामरान ने उसे सहयोग देने या अपनी सैन्य टुकड़ियाँ सौपने से इन्कार कर दिया और खुद कुछ समय बाद लाहौर चला गया। हुमायूँ का शेर खान के साथ दूसरा युद्ध कन्नौज में हुआ। हुमायूँ की सेना बुरी तरह असंगठित थी और 17 मई, 1940 को उसे दुबारा बुरी तरह शिकस्त

मिली। यह ऐसा पहला विद्रोह था, जिसने मुगलों को लगभग 15 वर्ष के लिए भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर खदेड दिया था। शेर खान ने पंजाब को जीत कर हुमायूँ के भाई कामरान को भी भारत से बाहर कर दिया।

हुमायूँ आगरा पर दुबारा कब्जा करने के लिए भारत के उत्तर–पश्चिम में स्थित विभिन्न राज्यों से मदद की तालाश में दो वर्ष तक भटकता रहा। अन्ततः उसे ईरान के शाह तहमास्प ने शरण दी और उसकी मदद से उसने कन्धार और काबुल पर कब्जा कर लिया। आखिरकार 1555 ई0 में वह फिर से आगरा पर कब्जा करने मे सफल रहा और शेर खान द्वारा खड़ा किया गया साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया।

1.8 अकबर के खिलाफ हेमू और अफगान

हालांकि हुमायूँ दिल्ली पर काबिज हो गया था, लेकिन अफगानों ने दिल्ली से आजाद रहने की अपनी महत्वाकांक्षा को त्यागा नहीं था। 1556 ई0 में हुमायूँ की मृत्यु के बाद तो उनके हौंसले और बुलन्द हो गए थे। शेरशाह सूरी की विरासत पर दावा करने वाले अदाली का बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश पर वर्चस्व कायम था। उसकी राजधानी चुनार थी। बंगाल मुहम्मद खान सूर के अधीन था। हुमायूँ की मौत की खबर सुनकर जलाल खान सूर के पुत्र के नेतृत्व में संगठिन 50,000 अफगानों ने मुगलों को बयान, सम्भल, काल्पी, नारनौल और आगरा से खदेड़ना शुरू कर दिया।

वही दूसरी तरफ अदाली के सेनापति हेमू ने 50,000 घुडसवारों, 1000 हाथियों, 51 तोपों और 500 छोटे बाजों के साथ दिल्ली की ओर कूच कर दिया।

एक सम्प्रभु शासक की महत्वाकांक्षा रखने वाला हेमू अलवर के छोटे से कस्बे देउली साचारी के एक साधारण से बक्काल (बनिया) से सेनापति के ओहदे पर पहुँचा था। तरड़ी बेग को युद्ध में हराने के बाद उसने विक्रमजीत की उपाधि धारण कर ली थी, लेकिन उसकी सेना में ज्यादातर अफगान थे। पानीपत का दूसरा युद्ध 1556 ई0 में हुआ। हेमू का मुकाबला अकबर के संरक्षक बैरम खाँ से हुआ। हेमू ने मुगलों के दायें और बायें बाजू पर जबर्दस्त आक्रमण करके उन्हें हतप्रभ कर दिया और अपने हाथी पर सवार वह सेना के मध्यभाग की ओर बढ़ा, लेकिन इस दौरान आँख में तीर लगने से वह बेहोश हो गया।

हेमू को हाथी पर न देख कर उसकी सेना भयभीत होकर तितर–बितर हो गई। हेमू को गिरफ्तार कर बैरम खाँ के समक्ष लाया गया, जिसने उसे मौत के घाट उतार दिया। अकबर इस हत्या के लिए तैयार नहीं था, लेकिन बैरम खाँ ने उसे समझाया कि वह केवल अपनी तलवार से उसकी गर्दन को छू दे, शेष काम वह कर देगा। इस युद्ध से मुगलों के हाथ विशाल खजाना लगा। हेमू के घर पर आक्रमण कर के उसके पिता की भी हत्या कर दी गई। इस पराजय के बाद भी अफगानों से खतरा समाप्त नहीं हुआ। छह महीने के घेरे के बाद सिकन्दर सूर ने मनकोट में मुगलों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। इसके बाद अफगान फिर से संगठित हुए और उन्होंने सम्भल पर आक्रमण कर दिया। बैरम खाँ की मृत्यु के बाद अकबर ने स्वतंत्र रूप से गद्दी सम्भाली। अफगानों ने अदाली के पुत्र शेर खान को अपना शासक नियुक्त कर 20,000 घुडसवारों 50,000 पैदल सैनिकों और 500 हाथियों की फौज के साथ जौनपुर की ओर कूच कर दिया।

1564 ई0 में अफगानों ने जौनपुर पर फिर आक्रमण किया, लेकिन अलीकुली जमां खान ने स्थानीय जागीरदारों की मदद से इनके सभी प्रयासों को विफल कर दिया। अली कुली जमां खान ने विफलता के बावजूद बिहार और बंगाल के अफगानों से गठबन्धन करके मुगलों की अधीनता से मुक्त होने के प्रयास जारी रखा। अकबर समझ चुका था कि इन सब विद्रोहों को समाप्त करने के लिए उसे सबसे पहले अपने दरबार के सरदारों में वर्चस्व की लड़ाई को समाप्त करना होगा और उसके बाद मुगलों के भारत आगमन के समय से ही उनके खिलाफ संघर्षरत अन्य क्षत्रपों को वश में करना होगा।

1.9 मेवाड में अकबर के खिलाफ महाराणा प्रताप

अकबर 1556 से 1560 ई0 तक मुगल साम्राज्य के विस्तार और इसके शासन को मजबूत बनाने की कोशिश में लगा रहा। उसके इस अभियान की नीति थी कि केन्द्र के शासन को मजबूत करो और उसके शासन के अधीन क्षेत्रीय क्षत्रपों को शासन करने की आजादी दो। साथ ही राजस्व उगाही को कानूनी–जामा पहनाओ। उसने इस प्रक्रिया में उन सरदारों पर भी नियंत्रण का प्रावधान किया, जो मुगलों के नाम पर युद्ध अभियान चला कर जीते हुए राज्यों को अपने कब्जे में रखते और लूटे गए माल–असबाब को स्वयं हड़प लेते थे।

मालवा के बाज बाहदुर ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। अकबर ने उसे एक हजारी मनसबदार बना दिया और बाद में संगीत के बारे में उसके ज्ञान को देखकर उसका ओहदा बढ़ा कर उसे दो हजारी मनसबदारी दे दी। गढ़ कटंगा में अकबर ने इस विजित सूबे के दस किलों को अपने अधीन रख कर शेष पूरा सूबा दिवंगत रानी दुर्गावती के भाई चन्द्र शाह को सौंप दिया।

अकबर ने राज्य जीतने और फिर समझौते की नीति को अपने अभियान का हिस्सा बनाकर मालवा, गोंडवाना, राजस्थान, गुजरात, बिहार और बंगाल पर मुगलों पर नियंत्रण स्थापित किया। अकबर ने अपने इस विजय अभियान के दौरान, सूबों और केन्द्रीय स्तर पर राजस्व संग्रह की एक सुव्यवस्थित प्रणाली स्थापित की। बाबर और हुमायूँ भी ऐसा ही करना चाहते थे, लेकिन अकबर ही अपने शासन के दौरान इस व्यवस्था को स्थापित करने में सफल रहा। अकबर ने अपना विजय अभियान जारी रखते हुए आगरा से लेकर लाहौर तक सभी तरह के विद्रोहों पर काबू पा लिया।

हालांकि अकबर को राजपूताना रियासतों को अपने नियंत्रण में लाने के लिए ज्यादा प्रयास नहीं करने पड़े, लेकिन मेवाड़ के महाराणा प्रताप से उसे जबर्दस्त प्रतिरोध का समना करना पड़ा। महाराण प्रताप ने 1572 ई0 में सिंहासन सम्भाला था। इसके बाद अकबर ने महाराणा प्रताप के साथ समझौते के तीन बार प्रसास किए, लेकिन ये सभी प्रयास विफल रहे, क्योंकि महाराणा प्रताप अकबर के सामने झुकने को तैयार नहीं थे। यह एक ऐसी परम्परा थी, जिसमें आधीनता स्वीकार करने वाले शासक को झुक कर उस जमीन को चूमना होता था, जहाँ बादशाह खड़ा होता था। ऐसा न करने वाले शासकों के खिलाफ अकबर चढ़ाई कर देता था। महाराणा प्रताप ने इस परम्परा को मानने से इन्कार कर दिया था। अतः मुगलों और प्रताप के बीच युद्ध का एक लम्बा सिलसिला शुरू हो गया। अकबर अन्यत्र विद्रोहों को दबाने में व्यस्त था और महाराणा प्रताप को मुगलों के आक्रमण से निपटने के लिए पर्याप्त समय मिल गया।

1575 ई0 में अकबर ने सिवाना के मजबूत गढ़ पर कब्जा करने के बाद 1576 ई0 में अजमेर में डेरा डाल कर मेवाड़ पर ध्यान केन्द्रित किया। राजा मानसिंह के नेतृत्व में पहला आक्रमण किया गया। मानसिंह की इस पाँच हजार सेना में राजपूत और मुगल सैनिक थे। महाराणा प्रताप ने मुगलों के आक्रमण का पूर्वानुमान लगाते हुए चित्तौड़ तक सेना के काम आ सकने वाले सभी संसाधनों को हटा दिया और पहाड़ियों को जाने वाले सभी दर्रे बन्द कर दिए। इसके बाद वे अपनी राजधानी कुम्मलगढ़ से 3000 सैनिकों के साथ आगे बढ़े। उनकी सेना में भीलों का भी एक दस्ता था और साथ ही मिर्जा हाकिम सूर के नेतृत्व में अफगान सैनिकों का दस्ता भी इस सेना में शामिल था। 18 फरवरी, 1576 को हल्दी घाटी में दोनों सेनाओं का आमना–सामना हुआ। इस युद्ध का मूल उद्देश्य मेवाड़ की स्थानीय आजादी था, जिसने अलग–अलग धर्म और पंथ के लोगों को मुगलों से मुकाबला करने के लिए एकजुट किया था। हालांकि मुगलों की सेना में भी राजपूत थे और इस सेना का नेतृत्व भी एक राजपूत ही कर रहा था।

मुगल इस दुरूह भू–भाग में अपना तोपखाना नहीं ला पाए थे, इसलिए उन्हें घुड़सवार सेना और हाथियों की सहायता से पारम्परिक तरीके से युद्ध करना था। इस युद्ध में महाराणा प्रताप की सेना लाभ की स्थिति में थी और उसने मुगल सेना के दांये और बांये पक्ष को पस्त कर दिया। ऐसे समय में जब मुगलों के पांव उखड़ रहे थे, तब यह अफवाह फैली की अकबर स्वयं एक आरक्षित सैन्य दस्ते के साथ उनकी मदद के लिए पहुंच गया है। इस खबर ने युद्ध का रूख मुगलों के पक्ष में कर दिया और राणा की सेना दक्षिणी मेवाड़ की पहाड़ियों की ओर पीछे हटने लगी। पहाड़ियों में राणा की सैन्य टुकड़ियों से झड़प के भय और गर्मी से बेहाल मुगल सेना ने राणा की सेना का पीछा नहीं किया और यह संघर्ष हार–जीत के बिना समाप्त हो गया।

अब अकबर ने राणा के खिलाफ अभियान का नेतृत्व खुद सम्भाला। उसने महाराणा प्रताप को अलग–थलग करना शुरू किया। उसने गोगुन्दा, उदयपुर और कुम्भलमीर पर कब्जा कर लिया। मजबूर होकर राणा को गहन पहाड़ियों में छुपना पड़ा। इसके बाद अकबर ने जालौर के अफगान सरदारों तथा ईदर, सिरोही, बांसवाड़ा, दुर्गापुर और बून्दी के राजपूतों पर दबाव बनाना शुरू किया। बूंदी पर कब्जे के लिए विकट युद्ध भी हुआ। राणा प्रताप राजपूताने में पूरी तरह से अकेले पड़ गए थे। इन विपरीत परिस्थितियों में भी महाराणा प्रताप ने न तो समर्पण किया और न ही पकड़े गए और तीन वर्ष तक मुगल के खिलाफ युद्ध करते रहे।

1579 ई0 में अकबर का बंगाल और बिहार के विद्रोहों से निपटने में व्यस्त हो गया। 1585 ई0 में अकबर लाहौर चला गया और अगले 12 वर्षों तक वहीं रहा। इस अवधि के दौरान राणा के खिलाफ कोई अभियान नहीं चलाया गया और उन्होंने चित्तौड़ को छोड़कर शेष मेवाड पर फिर कब्जा कर लिया। उन्होंने दुर्गापुर के समीप चावण्ड को अपनी नई राजधानी बनाया। एक आन्तरिक घाव से 1597 ई0 में 51 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्र अमर सिंह और करण को 1598 ई0 और 1605 ई0 में अकबर द्वारा भेजे गए सैन्य अभियानों का सामना करना पड़ा, लेकिन वे मुगल फौजों के लिए चुनौती बने रहे। 1613 ई0 में नवयुवक शहजादे खुर्रम (बाद में शाहजहाँ कहलाया) के माध्यम से जहाँगीर के शासनकाल में ही शान्ति–समझौता सम्भव हो पाया। जहाँगीर

ने व्यक्तिगत रूप से झुकने की परम्परा पर जोर नहीं दिया तथा करण सिंह ने व्यक्तिगत रूप से जहाँगीर से आमने–सामने की मुलाकात की। करण सिंह को 5000 जाट, 5000 सवार का मनसब प्रदान किया गया और मालवा में रतलाभ, फूलिया तथा बांसवाड़ा की जागीर प्रदान की गई।

उदय सिंह, जो इस अभियान में अकबर के साथ लड़ा था, को राणा की उपाधि दे कर चित्तौड़ की गद्दी सौंप दी गई। मुगलों ने चित्तौड़ की दीवारों की मरम्मत कभी नहीं होने दी। इस प्रकार स्थानीय आजादी के लिए एक लम्बे संघर्ष के बाद मेवाड़ को मुगलों के साम्राज्य के अधीन ला दिया गया।

1.10 अकबर के खिलाफ बंगाल में दाउद खाँ

बंगाल राज्य दिल्ली में बदलते शासन के प्रभाव से अछूता रहते हुए स्वायत्त बना रहा। बंगाल के शासक बहुधा बिहार के अफगानों के साथ दुरभिसंधि करके दिल्ली के शासकों का इस क्षेत्र में आने पर प्रतिरोध करते थे। बाबर और हुमायूँ के शासनकाल में इन विद्रोहों और दुरभिसंधियों का एक लम्बा सिलसिला चला को मिलता है। लेकिन, अभी तक बंगाल के किसी भी शासक ने दिल्ली के शासन से मुक्ति की खुले रूप से घोषणा का दावा नहीं किया था।

अकबर के शासनकाल के दौरान सूबों के बारे में अकबर द्वारा अपनाई गई केन्द्रीयकरण की नीति से इस क्षेत्र में अनेक क्षत्रप नाराज थे। इस नीति ने विद्रोह को हवा दी। इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद दाउद खाँ ने अपने नाम का अलग से ''खुतबा'' पढ़वा कर और अलग से अपना ''सिक्का'' जारी करके दिल्ली से आजादी की खुले–आम घोषणा कर दी। दाउद खाँ के पास सुप्रशिक्षित 40,000 घुड़सवार सैनिक और 1,40,000 पैदल सैनिकों की फौज थी। उसकी फौज में 3,600 हाथी तथा 20,000 तोपों वाला तोपखाना और हजारों युद्धपोतों का दस्ता भी शामिल था। अकबर ने यह खबर मिलते ही पूर्व की ओर सेना भेजी। जौनपुर के सूबेदार मुनीम खाँ ने अग्रिम कारवाई करके पटना पर कब्जा कर लिया, लेकिन वह और आगे नहीं बढ़ सका। अब तक अकबार 1573 ई0 में गुजरात में अपना विजय अभियान पूरा कर चुका था। उसने एक विशाल सेना और नावों के एक बड़े दस्ते के साथ बंगाल का रूख किया। उसने पटना और हाजीपुर को फिर से अपने कब्जे में लेकर बंगाल में दाउद खाँ को बंगाल में खेदड़ दिया। इसके बाद मुनीम खाँ को फिर से कमान सौंप दी गई। मार्च 1575 में बालासोर के टुकरोई में घमासान युद्ध के बाद मुनीम खाँ ने इस क्षेत्र में अपना कब्जा बरकरार रखा, लेकिन इस युद्ध के बाद जल्दी ही मुनीम खाँ की मुत्यु हो गई और फिर से विद्रोह भड़कने लगे। दाउद खाँ ने अपनी पुरानी राजधानी टांडा पर फिर से कब्जा कर लिया।

मुगलों को बिहार से भी पीछे हटना पड़ा। हुसैन कुली खान–ए–जहां को नया मुगल सूबेदार नियुक्त किया गया और इस अभियान की कमान उसे सौंपी गई। 1576 ई0 में घमासान युद्ध के दौरान दाउद खाँ मारा गया। इसके बाद अफगानों का सैन्य प्रतिरोध कमजोर हो गया, लेकिन स्थानीय जमींदार जहाँगीर के शासनकाल में भी अपनी स्वायत्तता के लिए संघर्ष करते रहे।

1576 ई0 में दाउद खाँ की मृत्यु के बाद बंगाल में तैनात सरदारों के बीच 1580 ई0 में फिर विद्रोह भड़क उठा। इस चरण में विद्रोह ने बिहार को भी लपेट लिया। अपने

साम्राज्य को एकीकृत करने के लिए अकबर द्वारा अपनाई जा रही केन्द्रीयकरण की नीति, प्रशासनिक उपाय इस विद्रोह का प्रमुख कारण थे।

घोड़ों तथा अन्य पशुओं को दागने (ठप्पा लगाने) की प्रणाली 1574 ई0 में शुरू की गई थी। समय–समय पर इस प्रणाली की समीक्षा की जाती थी। कुलीनों और सरदारों की जाँच–पड़ताल की इस नीति ने शाही वंशजों की स्वयत्तंता और सूबाई नीति को काफी कमजोर कर दिया था। दाउद खाँ की मृत्यु के बाद इन मौजूदा नियमों–कानूनों को सख्ती से लागू किया गया। दिल्ली के अधिकारी पुराने खातों की जाँच की मांग करने लगे। इससे शाही वंशज और साथ ही मुल्ला–मौलवी अपमानित महसूस करने लगे तथा उनकी नाराजी बढ़ने लगी क्योंकि विशेषाधिकार प्राप्त अनेक लोग उन्हें प्राप्त सुविधाओं विशेषकर लगान मुक्त जमीन से वंचित होने लगे।

इस उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिम से अकबर के शासन को चुनौती देने वाले कुछ एजेंटों ने भी दिल्ली के खिलाफ विद्रोह में सहायता की। अकबर की तरफ से मिर्जा अज़ीज कोका और टोडरमल ने इस विद्रोह पर नियंत्रण किया।

1.11 औरंगजेब के खिलाफ सतनामियों का विद्रोह

सतनामी एक एकल व्यक्तिवादी समुदाय था। दिल्ली से लगभग 85 किमी0 दूर नारनौल (वर्तमान हरियाणा का एक जिला) के समीप बिजेसर निवासी बीरमान ने 1543 में इस समुदाय की स्थापना की थी। 17वीं शताब्दी में नारनौल इनका गढ़ था। स्रोतों से पता चलता है कि यह एक ईमानदार कौन थी और इनकी आजीविका का साधन खेती और छोटा–मोटा व्यापार था।

एक अत्यन्त तुच्छ कारण मुगलों से विवाद का मुद्दा बना। एक सतनामी किसान का मुगल सेना के एक पैदल सिपाही जिसे प्यादा कहते थे, से विवाद हो गया और सतनामियों ने मिलकर उस सैनिक की पीट–पीट कर हत्या कर दी। इस घटना की जानकारी मिलने पर, मुगल प्रशासन के लिए लगान वसूलने वाले स्थानीय अधिकारी, जिसे ''सिक़दार'' कहा जाता था, मुगल सैनिकों की एक छोटी सी टुकड़ी बदला लेने के लिए भेजी। सतनामियों ने भी एकजुट होकर इनका मुकाबला किया और इन्हें भगा दिया। यह क्रम कुछ समय तक चलता रहा और सतनामियों के लिए इस संघर्ष ने धार्मिक मोड़ ले लिया। शुरू–शुरू में इस मामले को दिल्ली से कुछ ही दूरी पर अवस्थित मुगल दरबार ने गम्भीरता से नहीं लिया और इस विद्रोह को कुचलने के लिए पर्याप्त संख्या में सैनिक नहीं भेजे। मुगल सैनिक बार–बार हारते रहे। हर जीत के साथ सतनामियों का हौंसला बढ़ता जा रहा था। उन्होंने नारनौल कस्बे के प्रमुख अधिकारी, जिसे ''फौजदार'' कहा जाता था, को उखाड़ फैंका और नारनौल पर कब्जा कर के इसे लूट लिया तथा मस्जिदों को ध्वस्त कर दिया और लगान वसूलना शुरू कर दिया। अन्ततः दिल्लीवासियों और मुगल दरबार के कान खड़े हुए। इसके अलावा, यह भी कहा जाने लगा कि एक महिला पैगम्बर इस धार्मिक विद्रोह से जुड़ गई है और यह अफवाह फैल गई कि उसने अपनी शक्तियों का प्रयोग करके विद्रोही सतनामियों को इस तरह संरक्षित कर दिया है कि मुगल सेना के हथियारों का उन पर कोई असर नही होता है। मुगल सेना के खिलाफ एक के बाद एक विजय ने इस अफवाह को और बल प्रदान किया तथा मुगल सेना हतोत्साहित होने लगी।

15 मार्च, 1672 को, औरंगजेब ने अपने अंगरक्षकों के एक दस्ते तथा तोपखाने के साथ रदन्दाज़ खान के नेतृत्व में 10,000 मुगल सैनिकों की एक टुकड़ी सतनामियों के खिलाफ भेजी। औरंगजेब, को ''जिन्दा पीर'' भी कहा जाता था, उसने अपने हाथों से इबादतें लिखकर और जादुई आकृतियाँ बना कर अपने सैनिकों को सौंपी और उन्हें आदेश दिया कि इन्हें अपने बैनरों और हथियारों पर इस पर प्रकार जड़ दें कि सभी को नजर आएं, इनसे शैतानी ताकतों का असर नहीं होगा। दूसरी तरफ, 5000 सतनामी भी मुगलों का मुकाबला करने के लिए लाभबंद हो चुके थे। इस संग्राम में सलनामियों को भारी नुक्सान पहुँचा। युद्ध के मैदान में लगभग 3000 सतनामी मारे गए तथा मुगल सेना ने पीछा करके अनेक सतनामियों को मौत के घाट उतार दिया। केवल कुछ सतनामी ही इस कत्ले–आम से बच पाए और इस पूरे क्षेत्र से विद्रोहियों का सफाया कर दिया गया।

1.12 औरंगजेब के खिलाफ हरगोविंद और तेगबहादुर

15 वीं शताब्दी में, हिन्दू कौम के खत्री वणिक जाति में बाबा लिखित नानक एक ऐसे सुधारक के रूप में उभरे, जिन्होंने धर्म ग्रंथों में कर्मकांडो और तत्व भावनाओं के बजाय धर्म के सार–सत्य पर बल दिया। बाबा नानक ने उनके कथन पर विश्वास करने वाले लोगों को अपने समुदाय में शामिल किया। यही समुदाय अन्ततः एक ऐसे लौकिक सम्प्रदाय के रूप में स्थापित हुआ जहाँ नैतिक रूप से आत्म शुद्धि की जगह सैन्य अनुशासन को महत्ता मिली। बाद में, बाबा नानक सिख पंथ के दस गुरूओं में प्रथम संस्थापक गुरू के रूप में विख्यात हुए। यह पंथ 16 वीं शताब्दी के मध्य तक एक निष्ठावान समूह के रूप में संगठित हो चुका था। इस पंथ के पांचवे गुरू अर्जुन सिंह के समय तक सिख समुदाय अपने सन्तमय जीवन और आदर्शों के लिए मुगलों के सम्मान का पात्र बना रहा।

गुरू अर्जुन सिंह के समय तक सिख पंथ में काफी बदलाव आ चुका था। यह पंथ बहुत लोकप्रिय हो चुका था और अमृतसर इनका गढ़ बन गया था। यहाँ एक व्यवस्थित तरीके से इस पंथ के अनुयाइयों से अंशदान लिया जाता था। इस प्रकार, गुरू की सम्पदा में बहुत वृद्धि हुई। गुरू को राजा का दर्जा मिला और खालसा की विचारधारा सिखों की भूमि के रूप में विरूपित होने लगी। सिंख गुरू अर्जुन सिंह के साथ मुगलों का सर्वप्रथम विवाद तब शुरू हुआ जब अकबर के उत्तराधिकार के लिए दावेदार शहजादे खुसरों के खेमे को उन्होंने अपना आशीर्वाद दिया। खुसरों जहांगीर का प्रतिद्वन्द्वी था। जहाँगीर ने मुगल बादशाह बनने के बाद, गुरु अर्जुन पर उत्तराधिकारी के संघर्ष में खुसरो का साथ देने के लिए जुर्माना लगा दिया। उन्होंने जुर्माना देने से इन्कार कर दिया। जुर्माना अदा न करने पर उन्हें प्रताड़ित किया गया और यातनायें दी गईं। इन अपार कष्टों को सहन करते हुए जून, 1606 ई0 में उनकी मृत्यु हो गई।

उनके पुत्र हरगोविन्द ने सैन्य प्रशिक्षण का रास्ता अपनाया और अपने अनुयाइयों को योद्धा बनाना शुरू कर दिया। गुरु हरगोविन्द का मानना था कि सांसारिकता और धर्म एक दूसरे से सम्बद्ध होने चाहिये। शाहजहाँ के शासनकाल में अमृतसर के समीप एक पक्षी के शिकार के दौरान शाहजहाँ के शिकारी दल और गुरु हरगोविन्द के शिकारी दल का आमना–सामना हुआ। गुरु हरगोविन्द और शाहजहाँ के बीच इस संघर्ष में मुगलों को मुँह की खानी पड़ी और उन्हें पीछे हटना पड़ा। इसके बाद 1628 ई0 में सिक्खों के

खिलाफ एक और सेना भेजी गई, जिसे संगराना के समीप सिक्खों ने फिर हरा दिया। इस विजय ने गुरु हरगोविन्द की प्रतिष्ठा और बढ़ा दी। शाहजहाँ एक के बाद एक भारी–भरकम सैन्य बल के साथ गुरु के खिलाफ अभियान चलाता रहा। अन्ततः गुरु की गद्दी अमृतसर पर मुगलों ने कब्जा कर लिया और गुरु हरगोविन्द कश्मीर की पहाड़ियों में स्थित किरतपुर चले गए, जहाँ 1645 ई0 में उनका देहावसान हो गया।

सिक्खों के विद्रोह के कारण मुगल प्रशासन व्यवस्थागत तरीके से सिक्खों को निशाना बना कर उन्हें प्रताड़ित करने लगा। इस बीच सिक्खों की एकता में विखण्डन का एक दौर चला और अधिकांश सिक्खों ने तेग बहादुर को गुरु के रूप में स्वीकार किया। औरंगजेब की भेदभाव पूर्ण नीति और सिक्खों और उनके धार्मिक स्थलों पर अकारण हमलों के चलते सिखों ने मुगल बादशाह औरंगजेब के खिलाफ बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया। कश्मीर के हिन्दू भी जबरन धर्म परिवर्तन के चलते मुगलों के खिलाफ थे। गुरु तेग बहादुर ने हिन्दुओं का सहयोग माँगा और हिन्दुओं ने भी मुगलों के खिलाफ बगावत कर दी। गुरु तेग बहादुर को कैद कर लिया गया। उन्हें इस्लाम धर्म अपनाने के लिए कहा गया, इन्कार करने पर उन्हें 5 दिन तक यातना दी गई और उसके बाद दिसम्बर, 1675 में उनका सिर कलम कर दिया गया।

गुरु तेग बहादुर के बाद दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने खुला विद्रोह जारी रखा। उन्होंने खालसा पर निःसन्देह आस्था और अनुकरण तथा गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की संस्कृति स्थापित की। उन्होंने सिक्खों को दीक्षा दी और हिन्दुओं व सभी समुदायों, जो औरंगजेब के मुगल शासन से पीड़ित थे, को मुगलों के खिलाफ आन्दोलित किया। उन्होंने सिक्ख सैनिकों की एक सक्षम रेजीमेंट तैयार की और पश्चिम पंजाब की पहाड़ियों में मुगल सेना और उनके गठबन्धनों के खिलाफ संघर्ष जारी रखा। वर्षों तक चले संघर्ष के दौरान उनके अनुयाइयों की संख्या बढ़ती गई, यहाँ तक कि मुस्लिम भी उनके इस संघर्ष में शामिल हो गए। सिक्खों के गढ़ आनन्दपुर पर पाँच बार कब्जा किया गया। उनके चार पुत्र इस संघर्ष में मारे गए। लेकिन गोविन्द सिंह लम्बे समय तक मुगलों की गिरफ्त में नहीं आए। आखिरी बार आनन्दपुर पर मुगलों के आक्रमण के बाद वे आनन्दपुर को छोड़ कर दक्षिण भारत चले गए। 1707 ई0 में बादशाह बहादुर शाह प्रथम ने उन्हें विश्वास में लेकर राजपूताना और दक्कन को कूच करने का आग्रह किया। वे पैदल सेना की एक छोटी सी टुकड़ी और कुछ घुड़सवार सैनिकों के साथ गोदावरी नदी के तट पर स्थित नान्देड़ आ गए और एक वर्ष तक यहाँ रूके। यहीं एक अफगानी ने अगस्त, 1708 में छुरा घोंप कर उनकी हत्या कर दी।

1.13 दक्कन में विद्रोह : मलिक अम्बर, शाह जी और शिवाजी

दक्कन में मुगलों की घुसपैठ अकबर के समय में शुरू हुई। अकबर ने अपने साम्राज्य के विस्तार और केन्द्रीयकृत प्रशासन के एकीकरण के लिए 1593 ई0 में दक्कन का रूख किया। बिराड़ सबसे पहली रियासत थी, जो मुगलों के कब्जे में आई। इसे 1596 ई0 में अहमद नगर की शासक चाँदबीबी से छीना गया था। दक्कन में तीन सल्तनतें प्रमुख थी और इन तीनों सल्तनों में परस्पर प्रतिद्वद्विता थी तथा सल्तनों के अपने दरबारियों में भी विग्रह था। ये तीन सल्तनतें थीं – गोलकुण्डा में कुतुब शाही, अहमद नगर में निजाम शाही और बीजापुर में आदिल शाही। जब चाँद बीबी को मुगलों

का सामना करना पड़ा, बीजापुर की सल्तनत ने मुगलों का साथ दिया। चाँदबीबी की 1600 में हत्या कर दी गई और बिराड़ मुगलों के हाथ में चला गया। युवा शहजादे को ग्वालियर के पहाड़ी किले में कैद कर दिया गया, लेकिन यह वंश अभी समाप्त नहीं हुआ था। निजाम शाही के वज़ीर मलिक अम्बर, अबसीनियन नस्ल का था, ने कुतुब शाही से गठबन्धन करके मुगलों और बीजापुर के आदिलशाही गठबन्धन से 20 वर्ष तक संघर्ष किया। अक्टूबर, 1624 में दोनों सेनाओं का युद्ध में आमना–सामना हुआ। इस युद्ध को भटवाड़ी का संग्राम कहा जाता है। मलिक अम्बर इस युद्ध में विजयी रहा। युद्ध में उसका सबसे विश्वासपात्र सेनापति शिवाजी के पिता शाहजी थे।

इस जीत के बावजूद मलिक अम्बर के नेतृत्व में संघर्ष जारी नहीं रह सका। शाहजी को अपनी जागीर में लौटना पड़ा, क्योंकि उनके श्वसुर लाखोजी जाधव राव को मुगलों ने उसे 24,000 की मनसबदारी की पेशकश करके अपने पक्ष में कर लिया था। निजाम शाही के अन्तर्गत साहजी असहज महसूस कर रहे थे, सल्तनत में उनकी खिल्ली उड़ाई जाती थी। मजबूरन वो बीजापुर दरबार में चले गए। यह सल्तनत पहले से ही मुगलों के साथ गठजोड़ किये हुई थी। मलिक अम्बर का 1627 ई0 में देहान्त हो गया और अहमद नगर राज्य नेतृत्व विहीन हो गया। शाह जी 1627 ई0 में निजामशाही में लौट आए और उन्होंने मुगलों की खिलाफत को फिर से जीवित करने का प्रयास किया। उन्होंने 1628 ई0 में पूना की जागीर हासिल कर ली। निजाम शाही ने लाखोजी से विश्वासघात का बदला लेने के लिए उनकी तथा उनके दो पुत्रों की हत्या कर दी। शाह जी अहमद नगर छोड़ कर शिवनेरी के किले में आ गए। यह किला विजय राज के नियंत्रण में था। शाह जी ने उसके माध्यम से मुगलों के यहाँ नौकरी पाने का प्रयास किया और उन्हें पाँच हजारी का ओहदा प्रदान किया गया।

इस समय शिवनेरी में 1630 ई0 में शिवाजी का जन्म हुआ। शाह जी एक भगोड़े का जीवन जी रहे थे और अपने पुत्र के साथ रहने की स्थिति में नहीं थे। 1631 ई0 में शाह जी ने निजाम शाही में लौटने और इसे पुनः बहाल करने का निर्णय लिया। मुगलों के षडयंत्र ने निजाम शाही को छिन्न–भिन्न कर दिया था और एक 7 वर्ष के बालक हुसैन तृतीय के नाममात्र के शासन में यह सल्तनत चल रही थी। शाह जी ने मुर्तजा निजाम शाह तृतीय को गद्दी पर बिठाया और पेमगिरी को राज्य की राजधानी बनाया। शाह जी मुहम्मद अली शाह तथा ख्वाजा खान, रन्दौला खान और मुरारी पण्डित जैसे अनेक दरबारियों को दक्कन के मुगलों से आजाद रखने के लिए समझाने में भी सफल रहे। अक्टूबर, 1634 में दक्कन का सूबेदार और मुगल सेनापति महावत खान की मृत्यु हो गई। इस घटना ने प्रतिरोध को और प्रोत्साहित किया, लेकिन 1636 ई0 में शाहजहाँ स्वयं एक विशाल फौज लेकर दक्कन पहुँचा। शाइस्ता खान और अहलावर्दी खान को विद्रोह कुचलने का दायित्व सौंपा। उन्होंने आदिल शाह को दबोच लिया और मुगलों के साथ संधि के लिए मजबूर कर दिया। महौली किले से शाह जी का संघर्ष तब तक जारी रहा, जब तक किले में सारी रसद समाप्त नहीं हो गई। अन्त में उन्होंने समर्पण कर दिया और उन्हें आदिल शाही दरबार में नियुक्त कर दिया गया। निजाम शाही वंश और उसका शासन समाप्त हो चुका था। शाह जी आदिल शाही दरबार में बने रहे, लेकिन उन्होंने और नीचे दक्षिण में आजकल के कर्नाटक पर अपना शासन स्थापित कर लिया और

बंगलौर को अपनी सत्ता की गद्दी बनाया। आदिल शाह का दरबार मुगलों की अधीनता में संधि से बंधा था और इसके दरबारियों में सत्ता और प्रतिष्ठा के लिए होड़ चल रही थी। अतः किसी ने भी दक्कन की स्वतंत्रता को बलपूर्वक समर्थन नहीं दिया।

इन परिस्थितियों में युवा शिवाजी का उदय हुआ। अपने पिता शाह जी से विरासत में मिली जागीर पूना से 1646 ई0 में शिवाजी ने अपनी संघर्ष यात्रा शुरू की। इस समय तक निजाम शाही और कुतब शाही भंग हो चुकी थी तथा आदिल शाही मुगलों के अधीन थी। दक्कन में आन्तरिक प्रतिस्पर्धा, दरबारी षडयंत्रों का दौर चल रहा था तथा गैर जिम्मेदार सरदारों को सबक सिखाने के लिए मुगल सेना के बार–बार हमले जारी थे।

शिवाजी ने अपने गुरु दादोजी कोन्डदेव से मिली सीख के अनुसार अपनी जागीर में विसतार करना और किलों पर कब्जा करना शुरू कर दिया। उन्होंने 1647 ई0 में पहला किला कोण्डना (सिंघड़) जीता। उसके बाद पुरन्दर के किलेदार पर दबाव बना कर इस किले को हथिया लिया। इस तरह शिवाजी ने बिना किसी रक्तपात के अपनी जागीर के आस–पास के प्रमुख किलों पर कब्जा कर लिया और उत्तरी कोंकण में एक बड़ी शक्ति बन गए।

शिवाजी की बढ़ती शक्ति पर रोक लगाने के लिए बीजापुर के कुछ दरबारियों ने शिवाजी के पिता शाह जी को धोखे से गिरफ्तार कर लिया, लेकिन मुहम्मद आदिल शाह ने महसूस किया कि शाह जी को कैद करना जोखिम भरा होगा और उन्हें कर्नाटक जाने की इजाजत दे दी। बाद में शिवाजी ने पिता की गिरफ्तारी का बदला लिया और मुधोल को ध्वस्त कर दिया। यह बाजी घोरपड़े की जागीर थी और बाजी घोरपड़े षडयंत्रकारी दरबारियों में शामिल था। शाह जी ने शिवाजी की नई राजधानी रायगढ़ के निर्माण में मदद के लिए 1602 ई0 में कुछ समय तक शिवाजी के साथ निवास किया। इस प्रकार शिवाजी को अधिपति बनने की अपनी इस महत्वाकांक्षी यात्रा के प्रारम्भ में सबसे पहले उन्हें बीजापुर दरबार के ईर्ष्यालु दरबारियों को वश में करना पड़ा। उन्होंने बीजापुर के उन अनेक भू–भागों को अपने नियंत्रण में लिया, जो उनकी जागीर के आस–पास अवस्थित थे। इस दौरान मुगलों के साथ उनके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे, क्योंकि दिल्ली का बादशाह बीजापुर सल्तनत को समाप्त करना चाहता था। जब शिवाजी ने बीजापुर सल्तनत के और भू–भागों पर कब्जे के लिए मुगलों से सम्पर्क किया, तो उन्हें मुगलों ने इसकी अनुमति दे दी।

लेकिन प्रतापगढ़ और रायगढ़ इन दो किलों पर कब्जा करने के बाद मई, 1657 में जुन्नार में मुगलों पर आक्रमण करके उन्होंने मुगलों को हैरत में डाल दिया। उन्होंने कल्याण पर कब्जा कर के अहमद नगर पर हमला कर दिया, लेकिन उन्हें आंशिक सफलता ही मिली। औरंगजेब ने उन्हें अहमद नगर से पीछे हटा दिया। शिवाजी ने इस स्थिति में अपनी सेना को युद्ध के लिए तो तैयार रखा, लेकिन संधि का आग्रह किया और मुगलों के प्रति निष्ठा जताई। लेकिन 1658 ई0 में औरंगजेब को दिल्ली की गद्दी पर अधिकार के लिए उत्तर की ओर कूंच करना पड़ा और इससे शिवाजी को अपना अभियान जारी रखने का मौका मिल गया। लेकिन 1659 ई0 में औरंगजेब ने सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत करने के बाद शाइस्ता खान को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। शाइस्ता खान ने शिवाजी के पुणे स्थित लाल महल सहित पुणे और बारामती पर कब्जा कर लिया। कर

तालिब खान को दक्षिण कोंकण में शिवाजी को गिरफ्तार करने का दायित्व सौंपा गया। बीजापुर दरबार भी शिवाजी को पकड़ना चाहता था। अफज़ल खान ने यह बीड़ा उठाया। सभी मराठा सरदारों और दरबारियों को फरमान जारी किया गया कि वे शिवाजी की फौजों को सहयोग न दें। ये आदेश और अफजल के चयन से शिवाजी को पकड़ने में कोई मदद नहीं मिली। अफज़ल खान ने शिवाजी के भाई सम्भाजी की हत्या की थी और मन्दिरों को अपवित्र किया था, इसलिए उससे सभी नफरत करते थे। शिवाजी को मवाल के देशमुख और जेधे सरदारों का सहयोग मिला। शिवाजी ने प्रतापगढ़ पहाड़ी के एक छोटे से पठार पर अफजल खान की हत्या कर दी और उसके शिविर को ध्वस्त कर भारी मात्रा में माल–असबाब लूट लिया। इसके बाद उन्होंने पन्हाला, रंगना, खेलना, दाभोल को नियंत्रण में ले लिया और समुद्र के नज़दीक राजपुर पर कब्जा कर लिया। बीजापुर की फौज ने पन्हाला में शिवाजी को रोकने का प्रयास किया पर उन्हें गिरफ्तार नहीं कर पाई। शिवाजी 1660 ई0 में विशाल गढ़ चले गए और अपना अभियान जारी रखा। उन्होंने राजापुर पर फिर से कब्जा कर के श्रंगारपुर का किला जीत लिया। शिवाजी ने 1662 ई0 में रात्रि में पुणे में लाल महल पर अचानक हमला कर के सभी मुगलों को मार दिया। केवल शाइस्ता खान मुश्किल से अपनी जान बचा कर भाग निकला। इस प्रकार शिवाजी ने अपने आवास पर फिर कब्जा कर लिया। शिवाजी ने 1664 ई0 में मुगलों के सबसे समृद्ध बंदरगाह सूरत पर कब्जा कर लिया। मुगल सूबेदार ने खुद को किले में कैद कर लिया और सूरत लुटता रहा। शिवाजी ने सूरत की लूट से मराठा किलों को मजबूत बनाया।

औरंगजेब ने अब, आम्बेर के मिर्जा राजा जय सिंह को दक्कन का सूबेदार बना कर भेजा। जय सिंह ने जब शिवाजी के सबसे बड़े किले पुरन्दर का घेरा डाला, उस समय शिवाजी ने गोवा में पड़ाव डाल रखा था। शिवाजी पुरन्दर पहुँचे और समझ गए कि जय सिंह की सेना से नहीं निपटा जा सकता। उन्होंने 11 जून, 1665 को समर्पण कर दिया। 12 जून को पुरन्दर की संधि हुई। शिवाजी ने 23 किले और इनके आस–पास का क्षेत्र मुगलों को सौंप दिया। शिवाजी के पास 12 किले रहे। शिवाजी से आगरा आने और शाही दरबार में उपस्थित होने को कहा गया। शिवाजी अपने पुत्र सम्भा जी के साथ 11 मई, 1666 को आगरा पहुँचे। मिर्जा राजा जय सिंह के पुत्र राम सिंह ने शिवाजी की अगवानी की। राम सिंह शिवाजी को दीवान–ए–खास ले गया, जहाँ शिवाजी ने बादशाह को खिराज भेंट की। इस दिन औरंगजेब का जन्मदिन था और दरबार आमोद–प्रमोद में मस्त था। शिवाजी को लगा कि उनकी अनदेखी की गई है, वे बिना कोई औपचारिकता निभाए दरबार छोड़ कर चले गए। औरंगजेब ने इसे अपना अपमान समझ कर राम सिंह को शिवाजी को कैद करने का हुक्म दिया। शिवाजी 17 अगस्त, 1666 को फरार हो गए और 20 नवम्बर, 1666 को रायगढ़ पहुँच गए।

इस घटना के बाद दक्कन में मुगल प्रशासन शहजादा मुअज्जम को सौंप दिया गया और जसवन्त सिंह को उसका सलाहकार नियुक्त किया गया। शिवाजी ने जसवन्त सिंह के साथ वार्ता कर के मुगलों के साथ सन्धि की पेशकश की। औरंगजेब ने इस पहल का स्वागत किया और शिवाजी के पुत्र सम्भाजी को 5000 का मनसब प्रदान किया, लेकिन यह संधि केवल 1669 ई0 तक कायम रही। शिवाजी ने पाया कि नया सूबेदार और उसका सलाहकार इस क्षेत्र में मुगलों की पकड़ बनाए रखने में सक्षम नहीं है।

शिवाजी ने उनके मतभेदों का फायदा उठाकर मुगलों को सौंपे गए अपने किलों पर फिर से कब्जा करना शुरू कर दिया। इसमें उनके प्रमुख किले सिंघगढ़, पुरन्दर, माहुली, कल्याण, भिवन्डी और लोहगढ़ शामिल थे। शिवाजी ने अपना अभियान जारी रखा और 1672 ई0 में सूरत को फिर से लूट लिया। वापसी में उनका मुगल सेना और तोपखाने से सामना हुआ। उन्होंने छापामार हमलों से मुगल सेना को काफी नुकसान पहुँचाया और कोंकण लौट गए। उन्होंने खानदेश, बगलाना और बेराड़ में मुगलों को बहुत प्रताड़ित किया। मोरो पन्त पिंगले के नेतृत्व में मराठों ने इसी वर्ष खानदेश और गुजरात की सीमा पर स्थित सल्हड़ के किले पर कब्जा कर लिया।

सूरत में शिवाजी की लूट से औरंगजेब आगबबूला हो रहा था। उसने महावत खान को दक्कन भेजा। उसके बाद बहादुर खाँ और दलेर खाँ को भेजा गया। इनमें से केवल दलेर खाँ ही शिवाजी को कड़ी टक्कर दे सका, लेकिन हार गया। उसने 1678—79 में एक बार फिर पन्हाला पर हमला कर के शिवाजी को पकड़ने का प्रयास किया, लेकिन सफलता नहीं मिली। 1673 ई0 तक शिवाजी ने पन्हाला, सतारा और पराली पर कब्जा कर लिया था। इसी वर्ष शिवाजी का राज्याभिषेक किया गया। अब शिवाजी दक्कन के निर्विवाद अधिपति बन चुके थे। इसके बाद मुगल न तो कभी उन्हें पराजित कर सके और न ही हरा सके।

1.14 सार—संक्षेप

मुगलों के खिलाफ विद्रोहों को दो संदर्भों में देखा जा सकता है। पहला — वो परिस्थितियाँ, जब मुगलों ने किसी शासक या क्षेत्र को जीतने की मंशा से उस पर आक्रमण किया। दूसरा — वह संदर्भ, जब मुगलों की राजस्व प्रणाली और उनके साथ करदाता जैसे सम्बन्धों को उखाड़ फैंकने तथा स्थानीय स्वतंत्रता और स्वायत्तता को बरकरार रखने के लिए किसी एक या अधिक क्षेत्रीय ताकतों ने मिल कर मुगलों के खिलाफ विद्रोह किया।

मुगल सैनिकों और सेनापतियों का नेतृत्व करते हुए बाबर और हुमायूँ ने भारत के किसी एक शासक या शासकों के साथ गठजोड़ करके दिल्ली और आगरा को जीता। उन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप में दिल्ली से अपना साम्राज्य स्थापित करने और इसे एकीकृत करने का प्रयास किया, लेकिन पूर्व में दोआबा के पार वाले क्षेत्र और पश्चिम में गुजरात से निरन्तर विद्रोहों के कारण उनकी विजय स्थाई नहीं रही। शेरशाह सूरी के द्वारा साम्राज्य स्थापना ने तो हुमायूँ के मुगल शासन को एक दशक से भी ज्यादा समय तक भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर कर दिया था। अकबर से पहले के मुगल शासक भारत में समेकित और स्थाई साम्राज्य स्थपित करने में असफल रहे। इसके अनेक कारण थे। बाबर और हुमायूँ के साथ आने वाले कुलीनों ने अपने आपको एक ऐसे अजनबी समाज में पाया, जो उनसे नफरत करता था। ये कुलीन यहाँ की बैरपूर्ण आबादी पर शासन की बजाय लूटपाट के बाद वापस लौट जाना चाहते थे। बाबर और हुमायूँ भारत के स्थानीय शासक वर्ग अर्थात् राजपूतों, अफगानों और अन्य शासकों की तुलना में मुगलों की श्रेष्ठता पर विश्वास करते थे। उन्होंने यहाँ के शासकों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए, उन्हें मुगल दरबार में शामिल करने का प्रयास नहीं किया। इसलिए दिल्ली की मुगल सत्ता के खिलाफ राजनीतिक षडयंत्र और विद्रोह चलते रहे, लेकिन सभी विद्रोही शासक युद्ध के

मैदान में एक संयुक्त मोर्चा बना कर मुगलों को निर्णायक तौर पर पराजित नहीं कर सके। इसलिए उनके विद्रोहों को हर बार कुचल दिया गया और ये विद्रोह एक सीमा तक ही कुछ सफल रहे और मुगलों को लम्बे समय तक अपने राज्य से दूर नहीं रख सके।

अकबर के सत्ता में आने के बाद हालात बदले। उसने सबसे पहले अपने ही दरबार में चलने वाले राजनीतिक षड़यंत्रों को समाप्त किया, मौजूदा मुगल राज्य को समेकित करने के लिए काबिल सरदारों को चुना। उसने क्षेत्रीय सत्ताओं के साथ सौदेबाजी की और उन्हें मुगलों की अधीनता स्वीकार करने के बदले संरक्षण की गारण्टी, ओहदा और सम्मान प्रदान किया। उसने मिले–जुले शासक वर्ग को विकसित होने दिया। इसमें अफगान, राजपूत, भारतीय मुस्लिम तथा सभी समुदायों के काबिल व्यक्ति शामिल थे। इस एकजुटता के साथ उसने मुगल साम्राज्य में पूर्व में शामिल सभी क्षेत्रों को फिर से नियंत्रण में लाने और इन्हें समेकित करने के लिए 15 वर्ष तक सैन्य अभियान चलाया। वह अपने शासन और प्रशासन की नई नीति के जरिये इस सीमा तक सफल रहा कि बहुत से विद्रोहों के मामले में अकबर ने इन विद्रोहों का स्वयं सामना नहीं किया, बल्कि राजपूत शासकों और अन्य विश्वास पात्र राजाओं को मुगल साम्राज्य की तरफ से लड़ने के लिए नियुक्त किया।

बाबर, हुमायूँ और अकबर के सम्पूर्ण शासनकाल के दौरान राजपूत शासक घराने विद्रोह करते रहे। जहाँगीर के शासनकाल के दौरान मुगल शासन को इनका खतरा नहीं रहा। इसी प्रकार अफगान भी विद्रोह करते रहे और इन्होंने बाबर, हुमायूँ, अकबर और जहाँगीर के खिलाफ विद्रोहों में राजपूतों को सहयोग दिया। सतनामियों और सिक्खों ने भी विद्रोह किया, लेकिन मुगल शासकों के खिलाफ लम्बे समय तक अभियान नहीं चला सके। दक्कन के शासक, विशेष रूप से मराठा, दिल्ली के शासन के खिलाफ अपेक्षाकृत लम्बे समय तक विद्रोह करते रहे। साथ ही यह भी ध्यान रखने योग्य है कि इन सभी विद्रोहों में कुलीनों, सैनिकों और एक समान समुदायों के आम लोगों ने भी मुगल शासकों को सक्रिय समर्थन और सहयोग दिया। ऐसा कोई भी विद्रोह नहीं था, जहाँ युद्ध के मैदान में दोनों पक्षों में अलग–अलग धर्मों और समुदायों के लोग न हों। अधिकांश विद्रोह सूबाई सत्ताओं की क्षेत्रीय आजादी और स्वायत्तता पर आधारित थे।

1.15 तकनीकी शब्दावली

प्यादा – मुगल सेना में पैदल सिपाही।

सिकदार – मुगल प्रशासन में लगान उगाहने वाला अधिकारी।

फौजदार – मुगल सेना में किले का कमाण्डर।

फरमान – दरबार से जारी होने वाला शाही आदेश।

खुतबा – शुक्रवार को दोपहर की नमाज में मस्जिद के मंच से किया जाने वाला शाही सम्बोधन, जिसमें शासक की सम्प्रभुता की स्वीकारोक्ति भी शामिल होती थी।

सिक्का – अपने शासन की सम्प्रभुता की पहचान के रूप में जारी शाही मुद्रा।

दीवान–ए–खास – मुगलों की प्रशासन व्यवस्था में एक ओहदा (पद या दर्जा)।

1.16 संदर्भ सूची

सतीश चन्द्र, मीडियावल इण्डिया II, आनन्द प्रकाशन, 2009

जदुनाथ सरकार, ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, 1962, तीसरा संस्करण

ए.आर. कुलकर्णी, दी मराठाज़, बुक्स एण्ड बुक्स, 1996

1.17 उपयोगी पाठ्य सामग्री

इरफान हबीब, दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, 1556–1707, ओयूपी

जदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, लौंगमैन एण्ड ग्रीन, 1920

स्टीवर्ट गॉर्डन, दी मराठाज़, 1600–1815, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993

1.18 निबन्धात्मक प्रश्न

क्या मुगलों के खिलाफ विद्रोह मुख्यतया धर्म पर आधारित थे ? उदाहरणों के साथ चर्चा करें।

मुग़ल साम्राज्य का पतन

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3औरंगज़ेब की भूमिका

2.4 उमराँ वर्ग की गुटबाज़ी और जागीरदारी संकट

2.5 कृषिगत व्यवस्था में संकट और जमींदार-कृषक विद्रोह

2.6 आर्थिक समृद्धि, नये वर्गों एवँ सत्ता के नये केद्रों का उदय

2.7 सारांश

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मुग़ल साम्राज्य की स्थापना सोलहवीं सदी के आरम्भ में ज़हीरुद्दीन मोहम्मद बाबर ने दिल्ली में अफ़ग़ान लोदी वंश के शासक इब्राहीम लोदी को पराजित कर की। हलांकि बाबर अधिक समय तक शासन नहीं कर सका और चार वर्ष में ही उसकी मृत्यु हो गई। इतने कम समय में बाबर भारत में कोई दूरगामी परिवर्तन नहीं सका। उसका पुत्र हुमायुँ भी भारत में मुग़ल शासन को स्थायित्व नहीं दे सका और बिहार के लोहानी पठान शेरशाह सूरी से पराजित होकर ईरान भाग गया। शेरशाह सूरी की मृत्यु के पश्चात 1555 ई. में हुमायुँ दिल्ली पर पुन: कब्ज़ा करने में सफ़ल तो हो गया परन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। अत: मुग़ल साम्राज्य की वास्तविक नींव 1556 ई. में अकबर ने रखी। अकबर नें न केवल सत्ता का विस्तार किया बल्कि राजपूतों के साथ राजनीतिक सम्बंध स्थापित किए। उसनें एक उदार धार्मिक नीति अपनायी जिसे 'सुलह कुल' अर्थात सभी के साथ शान्ति कहा जाता है। अकबर की नीतियों के कारण ही मुग़ल साम्राज्य इतना शक्तिशाली हो गया कि अगले 150 वर्षों तक कोई उसे चुनौती नहीं दे सका। 1707 ई. में औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात भी मुग़ल साम्राज्य की सर्वोच्चता बनी रही। हलांकि, अगले पचास सालों मे ही मुग़ल साम्राज्य का विघटन होने लगा और भारत में अनेक स्वतंत्र स्थानीय राज्य उभर आये। अट्ठारहवीं सदी में जिस तेजी से मुग़ल साम्राज्य का विघटन हुआ उसने इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित किया है। अट्ठारहवीं सदी के साहित्यकारों और इतिहासकारों ने सर्वागींण पतन का एक चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें कमज़ोर और नकारा मुग़ल उत्तराधिकारी, भ्रष्ट और पतित उमराँ वर्ग, दरबारी षडयंत्रों के साथ-साथ समाज के सांस्कृतिक पतन की तस्वीर सामने आती है। निश्चित रूप से अट्ठारहवीं सदी का ये बुद्धीजीवी वर्ग साम्राज्य के पतन को तो

रेखांकित कर पा रहा था परन्तु उसके कारणों को समझने में असफल था। बाद के इतिहासकारों ने मुग़ल साम्राज्य के ऐतिहासिक दस्तावेज़ों का अध्ययन कर पतन के कारण को जानने का प्रयास किया है।

इतिहासकारों के एक वर्ग नें मुग़ल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगज़ेब की नीतियों को दोषी माना है। इन नीतियों मे भी उसकी विभाजनकारी धार्मिक नीतियों को ज़िम्मेदार माना जाता है। इतिहासकारों का दूसरा वर्ग मुग़ल साम्राज्य के पतन को कुछ व्यक्तियों या नीतियों में देखने के बजाय, इसे साम्राज्य की प्रशासनिक संस्थाओं और कृषि-व्यवस्था में संकट के रूप में देखता है। इन दोनों ही वर्गों के इतिहासकारों ने मुग़ल साम्राज्य के पतन का अध्ययन करने के लिए फ़ारसी मे लिखे गये मुग़ल दस्तावेज़ों, ऐतिहासिक ग्रण्थों और स्मारकों आदि का अध्ययन किया है। चूंकि इन इतिहासकारों ने साम्राज्य के केन्द्र में ही उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों का ही अध्ययन किया है अत: इनके विश्लेषण को साम्राज्य-केंद्रित दृष्टिकोण कहा गया है। हाल ही में इतिहासकारों के एक अन्य वर्ग, जिन्हें संशोधनवादी इतिहासकार कहा जाता है, ने अट्ठारहवीं सदी के पूर्वार्ध में अस्तित्व में आये राज्यों की आर्थिक, राजनीतिक एवँ सामाजिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया। इन इतिहासकारों ने इन राज्यों के फ़ारसी, मराठी और दूसरी देशी भाषाओं में उपलब्ध दस्तावेज़ों का अध्ययन कर विघटन के विचार को ही चुनौती दी है। चूंकि इन इतिहासकारों ने साम्राज्य की परिधि में बने नए राज्यों में उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों का अध्ययन किया है अत: इनके विश्लेषण को क्षेत्र-केंद्रित दृष्टिकोण कहा गया है। इन इतिहासकारों ने साम्राज्य के पतन को विघटन न मानकर सत्ता का विकेंद्रीकरण माना है तथा इसे व्यापक आर्थिक और सांस्कृतिक समृद्धि के दौर के रूप में विश्लेषित किया है। आगे हम इन सभी इतिहासकारों के लेखनों का व्यापक विश्लेषण करेंगे।

2.2 उद्देश्य

मुग़ल साम्राज्य के पतन के विषय में आमधारणा है कि मुग़ल साम्राज्य का पतन औरंगज़ेब की कट्टर धार्मिक नीति का परिणाम था। ऐसा माना जाता रहा है कि औरंगज़ेब ने अकबर की सहिष्णुता की नीति का परित्याग कर दिया और जज़िया फिर से लगा दिया। इससे भी अधिक यह कहा गया कि उसके समय में हिन्दुओं को नौकरी से निकाल दिया गया था और मंदिरों को ध्वस्त कर दिया गया। ऐसा भी माना जाता था कि उसकी इस नीति के विरोध में ही मराठों, जाटों और सिक्खों ने साम्राज्य के प्रति विद्रोह कर दिया। इन विद्रोहों के फलस्वरूप ही मुग़ल साम्राज्य का विघटन हो गया। आज हम जानतें है कि मुग़ल साम्राज्य के पतन की यह अवधारणा मूलत: औपनिवेशिक इतिहासलेखन से जन्मी। बीसवीं सदी के पूर्वाध में सर जदुनाथ सरकार के अध्ययनों ने इस अवधारणा को और भी मज़बूती प्रदान कर दी। इस तरह के विचारों को प्रकट करने वाले इतिहासकार उन दिनों की देन हैं जब भारतीय इतिहासलेखन अपने विकास की आरम्भिक अवस्था में था और इतिहासलेखन में शासकों की राजनीतिक, सैनिक और व्यक्तिगत सफ़लताओं—असफ़लताओं को ही अधिक महत्व दिया जाता था। स्वतंत्रता के पश्चात मुग़ल साम्राज्य पर हुए अधिकांश अध्ययनों ने इन विश्लेषणों को कठोर चुनौती दी। हलांकि आज़ादी से पूर्व भी राष्ट्रवादी इतिहासकार डा. ताराचंद और मार्क्सवादी इतिहासकार के. एम. अशरफ ने मध्यकालीन इतिहास की ऐसी साम्प्रदायिक व्याख्याओं को चुनौती दी थी। आज़ादी के बाद तो मार्क्सवादी और गैर-मार्क्सवादी इतिहासकारों ने अपने अध्ययनों से मुग़ल साम्राज्य के पतन में औरंगज़ेब की भूमिका के विचार को लगभग ध्वस्त ही कर दिया।

बाद के इन इतिहासकारों का यह भी मत है कि मुग़ल साम्राज्य के पतन को व्यक्तियों या विशेष नीतियों के बजाय मुग़ल प्रशासन की बुनियादी संस्थाओं जैसे मनसबदारी व्यवस्था, जागीरदारी प्रथा तथा कृषि व्यवस्था और कृषि-सम्बंधों आदि में देखा जाना चाहिए। आगे हम क्रमबद्ध रूप से मुग़ल साम्राज्य के पतन के इन विविध कारणों का अध्ययन करेंगे। इस ईकाई का उद्देश्य मुग़ल साम्राज्य के पतन के कारणों पर विभिन्न ऐतिहासिक दृष्टिकोणों की विवेचना करना भी है। अत: हम समय समय पर ऐतिहासिक लेखनों को राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी या संशोधनवादी के रूप में विश्लेषित करेंगे। हम देखेंगे कि इन सारे ही ऐतिहासिक विवेचनों ने न केवल मुग़ल साम्राज्य के पतन अपितु मुग़ल साम्राज्य की प्रकृति के बारे में भी हमारी समझ को बढ़ाया है। इन अध्ययनों से अट्ठारहवीं सदी के सम्बन्ध में इतिहासकारों की रूचि बढ़ी और अनेक नये अध्ययन हुए।

2.3 औरंगज़ेब की भूमिका

जैसा कि हमने ऊपर चर्चा की है कि आरम्भिक इतिहासकारों ने मुग़ल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगज़ेब को ज़िम्मेदार ठहराया था। इलियट और डाउसन ने 19वीं शताब्दी के मध्य में भारतीय इतिहास के मध्यकाल से सम्बंधित फ़ारसी इतिवृत्तों को एकत्र कर इनके अंग्रेज़ी अनुवाद को आठ खण्डों में 'द हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, एज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियंस: द मोहम्मडन पीरियड' नाम से प्रकाशित कराया। बाद के अनेक इतिहासकारों ने मध्यकाल का इतिहास लिखने में इन अनुवादों का बारम्बार प्रयोग किया। परन्तु ये अनुवाद दरअसल ब्रिटिश इतिहासकारों में मौजूद औपनिवेशिक विचारधारा से प्रभावित थे। इन अनुवादों में न केवल त्रुटियाँ पाई गयीं, बल्कि मूल पाठ को अनुवादों में काँट-छाँट भी दिया गया था। इलियट का उद्देश्य भारत में ब्रिटिश राज को न्यायप्रिय और योग्य दिखाना था। अत: उन्होंने 'मुस्लिम शासकों' को क्रूर, निर्दयी और तानाशाह की भाँति पेश किया। उन्होंने आशा व्यक्त की कि 'इस तरह देसी लोग हमारे शासन की कोमलता और न्याय का अनुभव कर पाएँगे।' इसतरह के औपनिवेशिक इतिहासलेखन नें मध्यकाल और साथ ही मुग़ल साम्राज्य के बारे में एक नकारात्मक राय बना दी। यहाँ तक कि अनेक राष्ट्रवादी इतिहासकार भी ऐसे विश्लेषण करने लगे जिसमें मध्यकाल को पतन, शोषण और साम्प्रदायिक टकराव के काल के तौर पर देखा गया।

मुग़ल साम्राज्य के पतन पर विस्तृत अध्ययन सर जदुनाथ सरकार ने किया। उन्होंने चार खण्डों में 'द फॉल ऑफ़ मुग़ल इम्पायर' और पाँच खण्डों में 'द हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' नाम से महत्वपूर्ण ग्रण्थ लिखे। जदुनाथ सरकार के अध्ययन मूलत: औरंगज़ेब के समय की राजनीतिक स्थितियों का ही अध्ययन करते हैं। सरकार का मानना था कि औरंगज़ेब एक धार्मिक कट्टरपंथी शासक था तथा उसने अपने अधिकारियों और कुलीनों में धार्मिक आधार पर भेदभाव किया। सरकार ने यह भी कहा कि औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी और उसके अमीर भी अपने पूर्वजों की छाया मात्र थे और वे उसके द्वारा की गई गलतियों को सुधार नहीं सके। सरकार का मत था कि औरंगज़ेब की धार्मिक नीति के फलस्वरूप हिंदुओं में एकता आ गई तथा मराठा, राजपूत और दूसरे स्थानीय शासकों ने मुग़ल साम्राज्य का विरोध आरम्भ कर दिया।

ब्रिटिश इतिहासकार विलियम इरविन ने अपनी पुस्तक 'द लेटर मुग़ल्स' में मुग़ल शासकों और उनके कुलीनों (उमराँ वर्ग) की चारित्रिक गिरावट को साम्राज्य के पतन का ज़िम्मेदार माना था। जदुनाथ सरकार ने भी

माना कि शासकों और कुलीनों की योग्यता में गिरावट ने साम्राज्य को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित किया। उन्होंने यह भी जोड़ा कि उत्तर मुग़लकाल में हरम का प्रभाव बढ़ जाने से साम्राज्य के प्रशासन पर बुरा प्रभाव पड़ा। वहीं माउँट स्टुवर्ट एल्फ़िंसटन के अनुसार दक्षिण भारत में बीजापुर और गोलकुण्डा की विजयें मुग़ल साम्राज्य के लिए हानिकारक साबित हुई। ये राज्य मुग़ल साम्राज्य और मराठों के मध्य बफ़र राज्य की भाँति थे। औरंगज़ेब के द्वरा 1886-87 में इन दोनों राज्यों के उन्मूलन के फलस्वरूप मुग़ल साम्राज्य और मराठा सीमाएँ नज़दीक आ गई। अब मराठों को मुग़ल साम्राज्य पर छापा मारना आसान हो गया। सर जदुनाथ सरकार ने एल्फ़िंसटन के मत का समर्थन करते हुए लिखा कि औरंगज़ेब द्वारा दक्कन में मुग़ल साम्राज्य का विस्तार करने से राजनीतिक और प्रशासनिक रूप से साम्राज्य का प्रबंधन मुश्किल हो गया। इतिहासकारों ने दक्षिण भारत को मुग़ल साम्रज्य के लिए 'स्पेन का कैंसर' कहा अर्थात जिस तरह स्पेन के मामले में हस्तक्षेप ने नेपोलियन के पतन की पृष्ठभूमि तैयार की, वैसे ही दक्षिण भारत में औरंगज़ेब के हस्तक्षेप ने मुग़ल साम्राज्य के पतन की नींव रख दी। मार्क्सवादी इतिहासकारों मे सतीश चंद्रा और इरफ़ान हबीब ने भी मुग़ल साम्राज्य के दक्षिण भारत में संघर्षों और विस्तार को साम्राज्य के आर्थिक संसाधनों पर बोझ डालने वाला माना है। सतीश चंद्रा का मानना था कि दक्षिण हमेशा से एक घाटे का सौदा था और बीजापुर एवं गोलकुण्डा की विजयों ने जागीर संकट को कम नहीं किया। इरफ़ान हबीब ने माना कि मराठों से संघर्ष मुग़लों के लिए हानिकारक रहे। इन संघर्षों के परिणामस्वरूप दक्षिण में अराजकता फैल गई। मुग़लों ने सेना को गतिशील बनाए रखने के लिए आर्थिक संसाधनों को जुटाने की कोशिश की जिससे इन संसाधनों पर काफी बोझ पड़ा। वास्तव में मुग़ल साम्राज्य के लिए दक्षिण एक खर्चीला राज्य बन गया। फिर भी मुग़लों को मराठों पर सफलता नही मिली और 1707 में औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मराठा एक शक्तिशाली शासक दल के रूप में उभरे।

फिर भी, जहाँ तक मुग़ल साम्राज्य के पतन में औरंगज़ेब की भूमिका का सवाल है उसकी दक्षिण नीति के मुकाबले उसकी धार्मिक नीति ही इतिहासकारों के लिए अधिक आकर्षण का केन्द्र बनी रही। जदुनाथ सरकार के पश्चात एस. आर. शर्मा और ईश्वरी प्रसाद ने भी औरंगज़ेब को मुग़ल साम्राज्य के पतन का मुख्य कारण माना। बाद के अधिक सूक्ष्म अध्ययनों ने दिखाया कि औरंगज़ेब के बारे में इतिहासकारों के ये विचार पूरी तरह ठीक नहीं थे। अतहर अली ने 1966 में किए गये अपने अध्ययन 'द मुग़ल नोबलटी अंडर औरंगज़ेब' में पाया कि औरंगज़ेब के समय में हिन्दु मनसबदारों की संख्या बढ़ गई थी। उन्होंने अकबर और औरंगज़ेब के समय में मुग़ल उमराँ वर्ग की संरचना और भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन कर यह विचार प्रस्तुत किया था। दूसरे अध्ययनों ने पाया कि राजपूतों ने औरंगज़ेब या उसके पश्चात मुग़ल साम्राज्य का साथ नहीं छोड़ा था तथा वे मुग़लों के प्रति वफ़ादार बने रहे थे। इरफ़ान हबीब को वृंदावन के मंदिरों से औरंगज़ेब के ऐसे फ़रमान मिले जिनमें वहाँ के मंदिरों को करमुक्त भूमि दी गई थी। हाल ही में ऑद्रे ट्रश्क ने अपने अध्ययन 'औरंगज़ेब: द लाइफ एण्ड लिगेसी ऑफ इण्डियाज़ मोस्ट कंट्रोवर्सियल किंग' में तर्क दिया कि भारत और पाकिस्तान में औरंगज़ेब की जैसी छवी बन गई है वह सत्य से परे है। भारत में उसे एक कट्टर धार्मिक शासक की भाँति देखा जाता है जिसने हिन्दुओं को हिंसात्मक ढंग से दबाया। ट्रश्क ने अपने एक अन्य अध्ययन में पाया कि औरंगज़ेब के काल में संस्कृत का काफी उत्कर्ष हुआ। उनका मत है कि इस्लाम के साथ औरंगज़ेब का सम्बन्ध जटिल था। ये सम्बंध गतिशील, रणनीतिक एवँ

विरोधाभासी तक था। ट्रश्क से पहले भी इतिहासकारों ने माना था कि औरंगज़ेब ने वास्तव में अपने राजनीतिक लक्ष्यों के लिए धर्म का उपयोग किया। बहरहाल, भले ही औरंगज़ेब ने धर्म का राजनीति के लिए दुरुपयोग किया हो, मुग़ल साम्राज्य के पतन के लिए उसकी धार्मिक नीति ज़िम्मेदार नही थी। निश्चित रूप से, साम्राज्य के पतन के कारण औरंगज़ेब की नीतियों मे नहीं बल्कि साम्राज्य की बुनियादी संरचना और व्यवस्था में ही विद्यमान थे, जिन्हें औरंगज़ेब भी नही बदल सकता था। आगे हम इन मुग़ल संरचनाओं का ही अध्ययन करेंगे।

2.4 उमराँ वर्ग की गुटबाज़ी और जागीरदारी संकट

आरम्भिक इतिहासकारों में सर जदुनाथ सरकार ने यह भी माना था कि उत्तर-मुग़लकाल में योग्य लोगों का अभाव था। उनका मत था कि बादशाह कमज़ोर थे और अमीर वर्ग निकम्मा हो गया था। टी. जी. पी. स्पियर ने इस विचार को चुनौती देते हुए कहा कि अट्ठारहवीं सदी में योग्य व्यक्तियों की कोई कमी नहीं थी। सैय्यद भाईयों, निज़ामुलमुल्क, अब्दुस्समद खाँ, सआदत खाँ, सफदरजंग, जकरिया खाँ, मुर्शीद कुली खाँ तथा मिर्ज़ा राजा सवाई जयसिंह जैसे योग्य व्यक्ति और सिपहसालार मुग़ल साम्राज्य की सेवा मे थे। हलांकि, ये सभी योग्य लोग ख़ुद को ही आगे बढ़ाने मे लगे रहे और साम्राज्य की चिंता उन्होंने कम ही की। फलस्वरूप साम्राज्य के संकटकाल में आपसी संघर्षों में रत अमीर वर्ग नेतृत्व प्रदान करने मे असफल रहा। और, इस तरह मुग़ल उमराँ वर्ग ने साम्राज्य के पतन का मार्ग ही प्रशस्त किया।

यह भी कहा गया है कि मुग़ल शासक एवँ उमराँ वर्ग का चरित्र मूलत: विदेशी था, जो उनके पतन का कारण बना। परन्तु यह मत भी ठीक नही है। मुग़ल साम्राज्य के एकदम आरम्भ से ही मुग़ल उमराँ वर्ग देसी और विदेशी तत्वों का अदभुत मिश्रण था। जो अमीर बाहर से आये भी थे, वे भी समय के साथ-साथ जल्दी ही यहाँ के रंग में रंग गये। यहाँ तक की जो भी अमीर विदेशी थे उनका अपने मूलनिवासों या दूसरे देशों से कोई सम्बंध ही नही रहा। अत: उन्हें विदेशी कहना अनुचित ही नहीं गैर-ऐतिहासिक भी है। मध्यकाल तक लोगों के आपसी सम्बंध समान देश के निवासी या राष्ट्रवाद की भावना से नहीं, बल्कि जाति या नस्ल के आधार पर बनते थे। शायद भारत के इतिहास में कोई भी शासक वर्ग अपने नस्लीय संगठन में इतना विविधतापूर्ण नहीं था जितना मुग़ल प्रशासक वर्ग। यह शासक वर्ग अट्ठारहवीं सदी में मुख्यत: तुरानी, ईरानी, भारतीय, राजपूत और मराठा का मिश्रण था। वास्तव में यही उमराँ वर्ग, जिसमें भिन्न-भिन्न जातियों, नस्लों और धर्मों के लोग थे, मुग़ल साम्राज्य की केन्द्रीकृत शक्ति का आधार स्तम्भ था। इतना ही नहीं, इन वर्गों ने ही मुग़ल साम्राज्य की उन्नति, विस्तार और समृद्धि के साथ-साथ मुग़लकालीन समन्वित संस्कृति के विकास में योगदान दिया। फिर भी, 17वीं सदी के मध्य से इस उमराँ वर्ग को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा था, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

प्रसिद्ध इतिहासकार सतीश चन्द्रा ने अपने ग्रण्थ ‘पार्टीज़ एण्ड पॉलिटिक्स एट द मुग़ल कोर्ट (1707-40)’ में मुग़ल उमराँ वर्ग के गुटों में बँटे होने की बात कही है। कुछ महत्वपूर्ण गुट थे — असद खाँ और ज़ुल्फिकार खाँ के नेतृत्व में ईरानी गुट (बाद में इस गुट का नेतृत्व अवध के संस्थापक सआदत खाँ और सफदरजंग ने किया); गाज़ीउद्दीन खाँ, फ़ीरोज़जंग और चिनकिलिच खाँ (जो हैदराबाद का संस्थापक था और निज़ामुलमुल्क की उपाधि से जाना जाता था) के नेतृत्व में तुरानी गुट; सैय्यद भाईयों, खाँनेदौराँ, अफ़गान सरदारों और हिन्दु राजाओं के

नेतृत्व वाला हिंदुस्तानी गुट। सतीश चन्द्रा का मानना था कि इन गुटों के आपसी संघर्ष, एक-दूसरे के विरुद्ध षडयंत्र, विरोधी गुट को विफ़ल करने के लिए किए गये छल-प्रपंच आदि के परिणामस्वरूप मुग़ल शासक वर्ग कमज़ोर होता चला गया और अंनत: साम्राज्य का पतन अवश्यंभावी हो गया। सत्ता के केन्द्र अर्थात बादशाह से किसी विशेष गुट की निकटता स्वाभाविकरूप से दूसरे गुटों को उससे दूर करती थी। सभी गुट शासक से पद और महत्व पाने के संघर्ष मे लगे थे। सैय्यद भाईयों ने तो सीधे हस्तक्षेप कर मुग़ल राजकुमारों में से अपनी पसंद के मुताबिक बादशाह बनाए। इसके फलस्वरूप बादशाह और उसके वफादार अमीरों के सम्बंध ही खराब नहीं हुए बल्कि सेना में भी भ्रष्टाचार फैल गया। आरन्भ में वफादार रहे योग्य अमीरों ने स्वयँ के राज्य स्थापित कर लिए और मुग़ल साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया को तेज़ कर दिया। अपने बाद के अध्ययनों में सतीश चन्द्रा ने मुग़ल उमराँ वर्ग की इस गुटबाज़ी को मुग़ल साम्राज्य की आर्थिक समस्या से जोड़ा, जिसे वे जागीरदारी संकट कहते हैं।

दरअसल, मुग़ल साम्राज्य के राजनीतिक-प्रशासनिक संगठन का आधार मनसबदारी व्यवस्था थी। मनसब पदानुक्रम में दिया जाने वाला एक ओहदा था जिससे मनसबदार का पद ही नहीं बल्कि स्तर और वेतन भी तय होता था। छोटे मनसबदारों को तो नगद वेतन दिए जाते थे, परंतु बड़े मनसबदारों को वेतन के बदले जागीर का आवंट्न किया जाता था। इन्हीं मनसबदारों को जागीरदार कहा जाता था। सतीश चन्द्रा का मत है कि अट्ठारहवीं सदी में इस जागीरदारी व्यवस्था को संकट का सामना करना पड़ रहा था। प्रोफेसर चन्द्रा के अनुसार 17वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में योरोपीय व्यापारिक गतिविधियों के फलस्वरूप भारत में मुद्रास्फीति बढ़ गई, जिसकी वजह भारी मात्रा में बुलियन मुख्यत: चाँदी का साम्राज्य में प्रवेश था। इस स्फीति के कारण प्रशासन के खर्च बढ़ गये जिन्हें पूरा करने के लिए साम्राज्य ने विस्तारवादी नीति अपनाई और इसके लिए बड़ी संख्या में अमीरों की नियुक्ति की। एक ओर मुग़ल अमीरों की संख्या तो बढ़ रही थी परन्तु उसी अनुपात में उन्हें देने के लिए जागीरें नहीं थीं। सतीश चन्द्रा के मतानुसार दक्कन में मुग़ल साम्राज्य का विस्तार भी अतिरिक्त खर्च को पूरा नहीं कर सका क्योंकि दक्कन स्वयँ ही कमी का क्षेत्र था। हम जानते हैं कि मुग़ल साम्राज्य में जमा अर्थात निर्धारित राजस्व मांग और हासिल अर्थात वसूल हुई राजस्व आय में हमेशा से अंतर बना रहा था। अत: जागीरदारों को सदैव ही आमदनी की कमीं का सामना करना पड़ता था। चन्द्रा के अनुसार इस काल में जागीरदारों को भूराजस्व एकत्र करने में मुग़ल फौजदारों का पर्याप्त सहयोग भी नहीं मिला। अत: दक्षिण भारत और उपद्रव वाले इलाकों से जागीरदारों की वास्तविक आय अनुमानित आय से काफी कम थी। अब मुग़ल जागीरदार अच्छी जागीरों के आवंटन के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे थे। चन्द्रा ने पाया कि इस काल में कई जागीरदारों को वर्षों तक बिना जागीरों के रहना पड़ा। जब कभी जागीर का आवंटन हो भी जाता था तो इसे वास्तविक रूप से हस्तांतरित होने में समय लगता था। हलांकि मुग़ल साम्राज्य में भूराजस्व से प्राप्त 80% आय जागीरदार-मनसबदार के ही नियन्त्रण में थी परन्तु इस आय का वितरण बहुत असमान था। 17वीं शताब्दी के मध्य में तकरीबन 8000 मनसबदरों में से 445 ऐसे थे जिनका भूराजस्व की 61% आय पर नियन्त्रण था। 18वीं सदी में मुग़ल प्रशासन निश्चित रूप से पहले से महत्वपूर्ण मनसबदारों के अधिकार कम करने का जोखिम नहीं ले सकता था। औरंगज़ेब की मुत्यु के बाद की उथलपुथल ने भूराजस्व की वसूली को और भी मुश्किल बना दिया। परिणामस्वरूप मुग़ल साम्राज्य को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा था। अब कोई भी मनसबदार जो जागीरदार था अपेक्षित संख्या में सिपाही और घोड़े नहीं रख सकता था। अब मुग़ल

साम्राज्य भी प्रशासनिक निगरानी का कोई कारगर उपाय नहीं अपना सका। इससे फलस्वरूप मुग़ल साम्राज्य की सैनिक क्षमता कम हो गई और साम्राज्य अपने ऊपर हुए मराठों, ईरानियों (नादिरशाह) और अफ़ग़ानी (अहमदशाह अब्दाली) हमलों का मुकाबिला नहीं कर सका। सतीश चन्द्रा ने अपने बाद के अध्ययन में मुग़ल दरबार की गुटबाज़ी को भी जागीरदारी संकट से जोड़कर देखा। मुग़ल साम्राज्य में मनसबदारों-जागीरदारों को समाज में सम्मान और ऊँचा स्तर प्राप्त था। इस सम्मान को बनाए रखने कि लिए उन्हें उच्च जीवनस्तर बनाए रखना पड़ता था जो पर्याप्त आर्थिक साधनों के बिना लगभग नामुमकिन था। इस तरह की आर्थिक समस्या के वातावरण नें कुलीनों मे गुटबाज़ी को बढ़ावा दिया।

जे. एफ. रिचर्ड्स ने 1970 के दशक में किए गये अपने अध्ययन के आधार पर सतीश चन्द्रा के मत का खण्डन किया है। उनके अनुसार मुग़ल साम्राज्य में बेजागीरी की समस्या नहीं थी। गोलकुण्डा से प्राप्त दस्तावेज़ों के आधार पर रिचर्ड्स ने इस विचार को भी चुनौती दी कि दक्कन में जागीरों की कमी थी जिससे बेजागीरी उत्पन्न हुई। उनके अनुसार जागीरदारी संकट मूलरूप से प्रशासकीय और प्रबन्धन के स्तर पर था। उनका मानना है कि दक्कन राज्यों – बीजापुर और गोलकुण्डा, के साम्राज्य में विलय से राजस्व स्रोतों में निश्चय ही वृद्धि हुई थी परन्तु कुलीनों की संख्या भी बढ़ गई थी। रिचर्ड्स ने यह भी बताया कि कर्नाटक और मराठों के विरुद्ध युद्ध के खर्च को पूरा करने के लिए औरंगज़ेब ने समृद्ध जागीरों को खालसा भूमि (राजकीय भूमि) में परिणित कर दिया था। अत: जागीरदारी संकट वास्तव में बेजागीरी के कारण नहीं अपितु प्रशासनिक प्रबन्धन की अयोग्यता के कारण उत्पन्न हुआ। 1980 में अपने शोध को पुनर्मार्जित करते हुए सतीश चन्द्रा ने जागीरदारी संकट को बेजागीरी की समस्या से अलग कर दिया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'मेडीवल इंडिया: सोसाईटी, द जागीरदारी क्राइसिस एण्ड द विलेज' जागीरदारी संकट को मुग़ल प्रशासनिक और सामाजिक व्यवस्था से जोड़ा। चन्द्रा ने माना कि जागीरदारी संकट जागीरों की कमी, बेजागीरी मनसबदार आदि के कारण नहीं अपितु व्यवस्था के सुचारू रूप से चल न पाने के कारण ही उत्पन्न हुई। परन्तु उन्होंने इसके लिए औरंगज़ेब को दोषी न मानते हुए इसे एक लम्बी आर्थिक प्रक्रिया के रूप में देखा। सतीश चन्द्रा के अनुसार 17वीं शताब्दी में मौजूद व्यापक सामाजिक संघर्षों को मुग़ल अपने वर्गीय सम्बन्धों के वृहद ढाँचे के अंदर सुलझा नही पाए जिससे वित्तीय संकट उत्पन्न हुआ। इस आर्थिक संकट ने जागीरी संकट को जन्म दिया। उन्होंने पुन: ज़ोर दिया कि दक्कन में वसूली की कमी थी, जागीरदार प्रभावी नही रह गये और उनकी सैन्यशक्ति में भी कमी आई। इसके साथ-साथ परम्परागत सामाजिक सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो गये। सतीश चन्द्रा के मतानुसार जागीरदारी व्यवस्था का यह संकट कृषि और गैर-कृषि साधनों जैसे व्यापार का विस्तार कर रोका जा सकता था। परंतु, मुग़ल काल में कमोबेश व्यापार और राजनीति अलग-अलग क्षेत्र थे। यहाँ तक कि मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था के कारण भूमि और कृषि का विकास भी सीमित ही रहा था। अत: कुल मिलाकर शासकीय वर्ग (जागीरदारों) का बढ़ता आकार, कुलीनों के जीवन में बढ़ता आडम्बर, उत्पादन विस्तार न होने से उपलब्ध उत्पादन-अधिशेष की कमी और धीमा आर्थिक विकास जागीरदारी संकट को बनाने और बढ़ाने का ही काम कर रहे थे, जो मुग़ल साम्राज्य के पतन के लिए ज़िम्मेदार है।

2.5 कृषिगत व्यवस्था में संकट और जमींदार-कृषक विद्रोह

सबसे पहले सैय्यद नूरुल हसन ने मुग़लकालीन कृषि व्यवस्था में जमींदारों की भूमिका का अध्ययन किया। प्रोफेसर हसन के अनुसार मुग़ल शासन के दौरान कृषि सम्बन्धों में ऊपर से नीचे तक पिरामिडाकार ढंग से एक प्राधिकारी संरचना का विकास हुआ। इस संरचना में विभिन्न प्रकार के अधिकारी एक दूसरे के ऊपर अध्यारोपित किए गये। इस संरचना में सबसे ऊपर जागीरदार थे और सबसे नीचे किसान। जागीरदार ज़मींदारों के माध्यम से राजस्व वसूल करते थे। अत: इन दोनो वर्गों के बीच जमींदार थे जो सीधे किसानों से राजस्व वसूल कर साम्राज्य या जागीरदारों को देते थे। नूरुल हसन के अनुसार एक वर्ग के रूप में ज़मींदार साम्राज्य के प्रति काफी निष्ठावान थे। परन्तु, अट्ठारहवीं शताब्दी में जब मुग़ल सत्ता का पतन हो रहा था और जागीरदारों पर आर्थिक दबाव बढ़ने लगा तो राजस्व की मांग भी बढ़ गई। राजस्व की बढ़ी मांग का सबसे अधिक बोझ तो किसानों पर पड़ा, परन्तु ज़मींदार वर्ग भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। फलस्वरूप कृषि सम्बन्धों की पूरी व्यवस्था ही चरमरा गई और साम्राज्य पतन की ओर उन्मुख हो गया।

सत्रहवीं सदी के अंतिम तथा अट्ठारहवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में हुए कृषक-ज़मींदार विद्रोहों को मुग़ल साम्राज्य के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण माना गया है। मुग़ल साम्राज्य के द्वारा आरोपित आर्थिक दबावों का ज़मीनदारों और किसानों अक्सर विरोध किया था। साम्राज्य को जोरतलब ज़मीनदारों से भूराजस्व वसूली के लिए हमेशा ही सैनिक शक्ति का प्रयोग करना पड़ता था। औरंगज़ेब के काल और उसकी मृत्यु के पश्चात अनेक किसानों और ज़मीनदारों के विद्रोह हुए जैसे जाटों, सतनामियों और सिक्खों के विद्रोह। कभी इनकी व्याख्या करते हुए इन विद्रोहों को औरंगज़ेब की धार्मिक नीति के विरुद्ध प्रतिक्रिया के तौर पर तो कभी अतिक्रामक केंद्रीय सत्ता के खिलाफ क्षेत्रीय और सामुदायिक पहचानों (मराठा, राजपूत या सिक्ख आदि) की राजनीतिक दावेदारी के रूप में पेश किया गया है। औरंगज़ेब की धार्मिक नीति के विरुद्ध प्रतिक्रिया के विचार को नये शोधों के आधार पर इतिहासकारों ने पूरी तरह अस्वीकार कर दिया है। निश्चित रूप से इन विद्रोहों के मूल कारण राजनीतिक न होकर आर्थिक थे।

इरफ़ान हबीब ने अपने कालजयी अध्ययन 'द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुग़ल इंडिया' में भूराजस्व, कृषि अर्थव्यवस्था और कृषि सम्बन्धों का गहन अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि मुग़लों ने वेतनभोगी नौकरशाही पर आधारित अत्यंत कुशल भूराजस्व व्यवस्था को मध्यकालीन भारत में लागू किया था। यह व्यवस्था उत्पादन के आधार पर भूमि के प्रकार, भूमि की सटीक माप, प्रति वर्ष उत्पादन का उचित अनुमान और फसलों के बाज़ार मूल्यों के आधार पर राजस्व का सही-सही निर्धारण पर बनी थी। मुग़लों ने इसतरह राजस्व निर्धारण कर लिया कि किसानों और ज़मीनदारों के लिए छिपाने को कुछ बचा ही नहीं। कुल मिलाकर उत्पादन अधिशेष की वसूली में मुग़ल प्रशासन पहले से अधिक सक्षम था। इरफ़ान हबीब के मतानुसार मुग़ल राजस्व व्यवस्था इस अलिखित समझौते पर टिकी थी कि किसान के पास जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त अनाज छोड़ दिया जाता था। जहाँ तक सम्भव हुआ अधिशेष को पूरा वसूला जाता था। हलांकि, कुछ अन्य इतिहासकारों का मानना है कि उत्पादन जारी रखने के लिए भी किसान के पास निश्चित रूप से कुछ अनाज छोड़ दिया जाता था। जो भी हो प्रोफेसर हबीब के अनुसार किसानों पर इस काल में अत्यधिक दबाव था। बड़े किसान तो कुछ हद तक इस बोझ को सह भी सकते थे परन्तु छोटे किसान अपने आपको उत्पीड़ित समझने लगे। अत: विद्रोहों के अवसरों पर किसानों ने ज़मीनदारों का

साथ दिया। दूसरी तरफ जागीरदार भी किसानों और ज़मींनदारों का शोषण करते थे। जागीरदारों को दरअसल स्थानीय किसानों या भूमि से कोई लगाव नहीं था क्योंकि तबादले की व्यवस्था के कारण उनकी रूचि केवल अधिक से अधिक वसूली में ही थी। इसके विपरीत ज़मींनदारों का किसानों और भूमि से करीबी सम्बन्ध था। हबीब के अनुसार जागीरदारों का बढ़ता दमन ही सम्भवत: ज़मींनदारों की खुली अवज्ञा का कारण बना। मुग़लकाल में किसानों की दशा खराब होने का एक कारण इतिहासकारों ने इज़ारेदारी व्यवस्था को भी माना है। दरअसल अनेक मनसबदार-जागीरदार जो अपनी जागीर का प्रबंध करने में असमर्थ थे उन्होंने अपनी जागीरें अधिक से अधिक बोली लगाने वालों को निलाम करना आरम्भ कर दिया। हबीब ने पाया कि यह व्यवस्था शाहजहाँन और औरंगज़ेब के दौर में भी जारी थी परन्तु उत्तर-मुग़लकाल में अत्यधिक प्रचलित होने लगी। यहाँ तक की फरूखसियर के काल में तो खालिसा ज़मीनें भी इज़ारेदारी में दी जाने लगीं। स्वाभाविक था कि इज़ारेदार की किसानों से मांग मालगुज़ारी की मांग से भी ज़्यादा होती थी। अत: इस प्रथा का सबसे बुरा प्रभाव किसानों और छोटे ज़मींनदारों पर ही पड़ा। इज़ारेदारी व्यवस्था का व्यापक अध्ययन नोमान अहमद सिद्दीकी ने किया है। उनके अनुसार इज़ारेदार की रुचि किसान से केवल धन उगाहने में थी, जिसके लिए उन्होंने बहुत ही ज़ालिमाना तरीकों का इस्तेमाल किया। इज़ारेदारों के अलावा जागीरदार और उसके कारिंदे भी किसानों से अवैध वसूली किया करते थे। समकालीन इतिवृत्त लेखकों भीमसेन और ख़ाफ़ी खाँ ने किसानों की दुर्दशा और सरकारी कारिंदों की लूट-खसोट का व्यापक वर्णन किया है। इरफ़ान हबीब ने मुग़लकालीन कृषि सम्बन्धों को किसानों के लिए शोषणकारी व्यवस्था माना है। उनके अनुसार किसानों के शोषण पर आधारित इस व्यवस्था में पहले से ही कृषिगत संकट के बीज मौजूद थे। हबीब के अनुसार औरंगज़ेब के काल में हुए सतनामियों, जाटों, सिक्खों और मराठों के विद्रोह वस्तुत: किसान विद्रोह ही थे। इन किसान विद्रोहों के फलस्वरूप साम्राज्य के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तंतु क्षीण होते चले गये। इन विद्रोहों ने साम्राज्य को जड़ों तक हिला दिया। मुग़ल साम्राज्य की सारी सैनिक शक्ति इन उभरते हुए विद्रोहों को कुचलने के प्रयासों में खर्च हो गयी। बढ़ते आर्थिक बोझ को मुग़ल साम्राज्य सह नहीं सका और अंतत: साम्राज्य का पतन हो गया। इरफान हबीब ने माना कि इसप्रकार मुग़ल साम्राज्य ने अपनी कब्र ख़ुद खोदी। इन विद्रोहों के फलस्वरूप साम्राज्य के विभिन्न भागों में स्वतंत्र स्थानीय राज्य कायम हो गये और मुग़ल सत्ता कमज़ोर पड़ गई। हाल में कुछ इतिहासकारों ने किसानों की निर्धनता और आर्थिक दबाव को इन विद्रोहों और इसप्रकार मुग़ल साम्राज्य के पतन की पर्याप्त व्याख्या नहीं माना। इन्होंने अट्ठारहवीं सदी के भारत में आर्थिक संकट (जागीरदारी या कृषि संकट) के विचार को ही चुनौती दी है। आगे हम उन विश्लेषणों का अध्ययन करेंगे जो इन इतिहासकारों ने रखे है। यहाँ यह कहना उचित होगा कि इरफ़ान हबीब के अध्ययन ने मुग़लकाल पर इतिहासलेखन को आमूलचूल ढंग से परिवर्तित कर दिया। पहले के राजनीतिक विश्लेषण का स्थान आर्थिक विश्लेषणों ने ले लिया। उनके अध्ययनों को नज़रअंदाज़ कर मुग़लकालीन इतिहास लिखना असम्भव हो गया।

2.6 आर्थिक समृद्धि, नये वर्गों एवँ सत्ता के नये केंद्रों का उदय

अभी तक हमनें मुग़ल साम्राज्य के पतन के जिन कारणों के भी बारे में जाना है वे सभी साम्राज्य के फ़ारसी में लिखे दस्तावेज़ों और इतिवृत्तों के अध्ययन पर आधारित थे। इसके आलोचकों ने इसे इतिहासलेखन की राज्य-केंद्रित

व्याख्या कहा है। यह इतिहास स्थानीय स्तर पर अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं के अंतर को नज़रअंदाज़ करता है। हाल में संशोधनवादी इतिहासकारों ने मुग़ल साम्राज्य के पतन को नए समूहों के उत्कर्ष और इनके आर्थिक तथा राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर साम्राज्य को चुनौती देने की प्रक्रिया से जोड़कर देखा। इन इतिहासलेखकों ने मत दिया कि नव-उद्भुत इन वर्गों को नियंत्रित करने में एक दूर स्थित कमज़ोर केन्द्र असमर्थ था। आंद्रे विन्क ने मत दिया कि मुग़ल साम्राज्य विद्रोहियों को प्रशासनिक व्यवस्था में समाहित कर लिया करता था। दरअसल, मुग़लकाल में केंद्रीय सत्ता और क्षेत्रीय कुलीनों के बीच समझौते और तालमेल की एक प्रक्रिया निरंतर चलती रही। इसप्रकार मुग़लों की 'प्रभुसत्ता निरंतर परिवर्तनशील शत्रुताओं के साथ गठजोड़ों की एक संतुलनकारी व्यवस्था पर टिकी हुई थी।' फ्रैंक पर्लिन ने मुग़ल साम्राज्य में शासन की व्यवस्थाओं, मापन और राजस्व संग्रह के तरीकों तथा विभिन्न प्रकार के अधिकारों की बहुलता की बात कही है। उनके अनुसार विरासत में मिलने वाले अनेक अधिकार तो ऐसे थे जिन्हें बादशाह भी छीन नहीं सकता था। अत: मुग़ल साम्राज्य वास्तव में एक सर्वसत्तावादी शक्ति नहीं था बल्कि सत्ता विभिन्न स्तरों पर विभाजित थी। ऐसा भी माना गया है कि मुग़ल साम्राज्य में ऐसे निगमबद्ध समूह और सामाजिक वर्ग भी थे, जो तथाकथित अतिक्रामक केंद्रीय सत्ता के बावजूद विभिन्न प्रकार के अधिकारों से परिपूर्ण थे। प्रसिद्ध कैम्ब्रिज इतिहासकार सी. ए. बेयली ने अपने अध्ययन 'रूलर्स, टॉउन्समेन एण्ड बाज़ार्स' में 18वीं सदी के अंतिम दशकों में नये सामाजिक वर्गों के उदय की चर्चा की है जिनके पास पर्याप्त संसाधन थे जिसका निवेश कर वे भारी मुनाफा कमा सकते थे। इन वर्गों के संसाधनों को बेयली ने 'पोर्ट्फ़ोलियो कैपिटल' कहा है। बेयली ने तर्क दिया कि इस काल में आर्थिक पतन के ठोस प्रमाण नहीं हैं। जो भी संसाधन थे वे अब मुग़ल अमीरों के बजाय छोटे-छोटे कस्बाई अमीरों और व्यापारियों के बीच बँटने लगे थे। अब केंद्र के पास राजस्व पूरी मात्रा में नहीं पहुँच पा रहा था। छोटे कस्बे के व्यापारी और बैंकर मुग़ल साम्राज्य में कोई भूमिका नहीं निभाते थे लेकिन इन्होंने अब नवउदित क्षेत्रीय राज्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अब नई आर्थिक पद्यति और नये शहर अस्तित्व में आए। अत: कुल मिलाकर आर्थिक पतन नहीं हुआ और अर्थव्यवस्था में एक निरंतरता बनी रही। अशीन दास गुप्ता ने भी पाया कि मुग़ल साम्राज्य के दौरान व्यापार-वाणिज्य में प्रगति हुई थी और सूरत, मसूलीपट्टनम तथा हुगली जैसे बंदरगाह नगरों का उदय हुआ था।

संशोधनवादी इतिहासकार मुज़फ़्फ़र आलम के मतानुसार विकेंद्रीकरण और व्यवसायीकरण के चलते 18वीं सदी में 'नए नवाबों' के एक दल ने साम्राज्य के संसाधनों पर इसप्रकार अपना अधिकार जमा लिया कि पुश्तैनी मुग़ल ख़ानज़ादे भी उनसे वंचित हो गये। प्रोफेसर आलम का मत है कि 17वीं शताब्दी के अन्त और 18वीं शताब्दी के आरम्भ में अवध और पंजाब में निश्चित आर्थिक विकास देखने को मिलता है। इस आर्थिक समृद्धि का लाभ उठाकर नये वर्गों नें केंद्रीय सत्ता को चुनौती देना शुरु कर दिया और परम्परागत सामाजिक तथा राजनीतिक संतुलन बिगड़ गया। अवध की सूबेदारी में नये तत्वों का उदय हो गया। पंजाब में सिक्खों का उदय भी बड़े किसानों तथा ज़मींदारों का उदय था। आलम के अनुसार इन नये तत्वों के उदय में ही मुग़ल साम्राज्य के पतन के बीज छिपे हुए थे। इसप्रकार मुज़फ़्फ़र आलम ने इरफ़ान हबीब के अध्ययन, जिसमें सिक्ख विद्रोह को किसानों के शोषण और विपन्नता का परिणाम माना गया था, को सीधी चुनौती दी।

चेतन सिंह ने पंजाब पर किए गये अपने अध्ययन में सिक्ख-मुग़ल संघर्ष को एक लम्बी आर्थिक-राजनीतिक प्रक्रिया के तौर पर देखा। उनके अनुसार 17वीं सदी में सिंधु नदी में गाद जमा होने से पंजाब का जलमार्ग बुरी तरह बाधित हो गया, जिससे पंजाब की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा असर पड़ा। आटोमन इम्पायर में उथल-पुथल, ईरान के शाह का कंधार पर कब्ज़ा और इसे पुन: पाने के मुग़लों के प्रयासों के परिणामस्वरूप पंजाब से व्यापार का थलमार्ग भी बाधित हो गया। चेतन सिंह का मानना है कि पंजाब की अर्थव्यवस्था जो वाणिज्यिक कृषि पर निर्भर थी, नष्ट होने लगी। प्रोफेसर सिंह ने यह भी बताया कि पंजाब में आर्थिक विकास हर जगह एकसमान नहीं था। अत: आर्थिक दृष्टि से समृद्ध इलाकों पर ही व्यापार के पतन का सबसे अधिक असर पड़ा। उन्होंने पाया कि इन्हीं इलाकों में सिक्ख विद्रोह अधिक हुए। चेतन सिंह ने निष्कर्ष दिया कि पंजाब में उत्पन्न सामाजिक विक्षोभ और अंनत: साम्राज्य से उसका विच्छेद एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम था। अत: पंजाब में ऐसी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियाँ चल रहीं थी जिन पर मुग़लों का कोई नियंत्रण ही नही था। सिंह के इस शोध ने केंद्र के बजाय क्षेत्र में हुए परिवर्तनों के अध्ययन को मुग़ल साम्राज्य के पतन को समझने के लिए महत्वपूर्ण बना दिया।

इन नये अध्ययनों ने निश्चित रूप से मुग़ल साम्राज्य के पतन से सम्बंधित परम्परागत विचारों को चुनौती दी है। फिर भी, इन अध्ययनों ने साबित कर दिया कि मुग़ल साम्राज्य का पतन किसी एक व्यक्ति (औरंगज़ेब) की रुचि, द्वेष या नीतियों का परिणाम नहीं था बल्कि एक लम्बी आर्थिक, राजनीतिक एवँ सामाजिक प्रक्रिया का परिणाम था जो सत्रहवीं शताब्दी से ही चल रहीं थीं और जिनमें से कई पर तो मुग़ल साम्राज्य का कोई नियंत्रण भी नहीं था।

2.7 सारांश

हमने देखा कि मुग़ल साम्राज्य के पतन पर इतिहासकारों ने कई अवधारणाएँ दी हैं। परन्तु, इसका अर्थ यह नहीं है कि मुग़ल साम्राज्य के पतन पर इतिहासकारों में कोई सहमति ही नहीं है। बल्कि, हम पाते हैं कि इतिहासकारों ने एक मत से इस विचार को ख़ारिज कर दिया है कि मुग़ल साम्राज्य के पतन का मूल कारण औरंगज़ेब की विभाजनकारी धार्मिक नीतियाँ थीं। हमनें यह भी जाना कि अधिकतर इतिहासकार मुग़ल साम्राज्य के पतन को राजनीतिक के साथ-साथ आर्थव्यवस्था के पतन में देखतें हैं। जहाँ सतीश चन्द्रा ने साम्राज्य के पतन को जागीरदारी व्यवस्था में उत्पन्न समस्याओं से जोड़कर देखा, वहीं इरफ़ान हबीब नें इसे कृषक संकट कहा है। हलांकि, दोनों ही अध्ययन इतिहासलेखन की मार्क्सवादी परम्परा का पालन करते हैं, और पतन में राजनीतिक-सांस्कृतिक कारणों के स्थान पर आर्थिक तत्वों पर ज़ोर देते हैं। परन्तु, इरफ़ान हबीब का शोध इस कारण से महत्वपूर्ण है कि यह साम्राज्य के सबसे प्रमुख उत्पादक वर्ग कृषकों के शोषण, उत्पादन सम्बंधों, उत्पादन तकनीकों आदि का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। इससे भी अधिक यह अध्ययन कृषक विद्रोहों को मध्यकालीन सामंती शोषण से जोड़कर देखता है, जो दुनियाभर में मार्क्सवादी चिंतन का आधार रहा है। हलांकि, बाद के संशोधनवादी इतिहासकारों ने विपरीत विचार प्रस्तुत किए हैं। इन इतिहासकारों ने विद्रोहों को किसानों की आर्थिक विपन्नता के स्थान पर आर्थिक समृद्धि से जोड़ा। साथ ही, अट्ठारहवीं सदी में अनेक नये सामाजिक वर्गों के उदय तथा

अर्थव्यवस्था में आये बदलावों की ओर हमारा ध्यान खींचा है। अर्थव्यवस्था में आ रहे बदलावों के फलस्वरूप क्षेत्रों का उदय हो रहा था। इन नए आर्थिक समृद्धि के क्षेत्रों में शक्तिशाली व्यक्तियों ने सामाजिक गठबंधन कर नये राज्यों को जन्म दिया। इतिहासकारों का यह भी मानना है कि मुग़ल साम्राज्य में एक अपसारी प्रवृत्ति तो हमेशा से बनी हुई थी। मुग़लों ने प्रशासन की ऐसी व्यवस्था बनाई थी कि सभी अधिकारियों पर नियंत्रण और संतुलन बना रहता था। इसके अलावा साम्राज्य फ़ितना यानि विद्रोह को राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में ही समाहित कर लेने की नीति अपनाता था। 18वीं सदी में जैसे ही केंद्रीय व्यवस्था कमज़ोर पड़ी, क्षेत्रीय इलाके स्वतंत्र होने लगे और कई राज्य अस्तित्व में आ गये। हंलाकि, नये राज्यों के उदभव को केंद्रीय मुग़ल सत्ता के पतन के तौर पर तो देखा जा सकता है, परन्तु इसे 18वीं सदी के समूल राजनीतिक, आर्थिक या सांस्कृतिक पतन के तौर पर नहीं देखा जा सकता। अत: संशोधनवादी इतिहासकारों ने अट्ठारहवीं सदी को विघटन के बजाय विकेंद्रीकरण की शताब्दी के तौर पर देखा। कुछ भी हो यह तो मानना पड़ेगा कि शक्तिशाली मुग़ल साम्राज्य के पतन और नये राज्यों के उदय ने वह अवसर प्रदान किया कि एक व्यापारिक कम्पनी के रूप में आये अंग्रेज़ भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाल सके।

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

सीमा अलवी, द एट्टींथ सेंचुरी इन इंडिया (दिल्ली: आक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2002)

मुज़फ़्फ़र आलम एण्ड संजय सुब्रहमन्यम, संपादक, द मुग़ल स्टेट, 1526-1750 (दिल्ली: आक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1986)

इरफ़ान हबीब, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुग़ल इंडिया: 1556-1707 (दिल्ली, आक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2013)

इग्नू

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. मुगलों के पतन में औरंगजेब के उत्तरदायित्व का परीक्षण कीजिए।

2. मुगलों के पतन के कारकों पर विचार कीजिए।